किन्नर-देश

●

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल (होलसेल डिवीजन) प्राइवेट लिमि[टेड]
रजिस्टर्ड आफिस : ५६ ए, जीरो रोड, इलाहा[बाद]

ग्रन्थ संख्या : ४३६

प्रकाशक : किताब महल (होलसेल डिविजन) प्रा० लि०,
रजिस्टर्ड आफिस : ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।
शाखाएँ : २८, फैज बाजार, दिल्ली ७।
: १३५, हार्नबी रोड, बम्बई १।
एजेन्सियाँ : किताब महल, अटल भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर।
: किताब महल, अशोक राजपथ, पटना।
: किताब महल, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक : राम प्रिंटिंग प्रेस, कीडगंज, इलाहाबाद।

प्राक्कथन

प्रथम संस्करण

"किन्नर-देशमें" (मई-अगस्त १९४८) की यात्राका विवरण होनेके साथ हिमालयके इस उपेक्षित भागका परिचय-ग्रन्थ है। मैंने यहाँ नवीन भारतके नवनिर्माणकी दृष्टि से वस्तुओंका वर्णन किया है। आरम्भमें ग्रन्थ लिखनेका कोई विचार नहीं था, जो-जो बात आई लिखता गया, वही सामग्री यहाँ इस ग्रन्थके रूपमें आप पा रहे हैं। हो सकता है कहीं-कहीं पुनुरुक्ति हो, हो सकता है पूर्वापरको एक करके लिखनेका गुण यहाँ न दिखलाई देता हो, किन्तु तो भी मैं समझता हूँ, हिमालयके इस अंचलके बारेमें बहुतसी ज्ञातव्य बातें यहाँ आई हैं। त्रुटियोंकेलिये मैं अपने को दोषी मानता हूँ, यदि यहाँ कुछ गुण हैं, तो उसके भागी मेरे वे मित्र हैं जिनका नाम स्थान-स्थान पर इस पुस्तकमें आया है।

राहुल सांकृत्यायन

दूसरा संस्करण

आठ वर्ष बाद यह दूसरा संस्करण निकल रहा है। उस समय यह हिमालयके एक अंचल का परिचय दे रहा था। इसके बाद दार्जिलिंगसे चंबा तकके हिमालयपर अनेक ग्रंथ लिखे, जिनमें कुछ छपे, कुछ फँसे और कुछ छप रहे हैं।

१५-३-५६ मसूरी

राहुल सां त्यायन

समर्पण

एक्कीसवीं सदीके पाठकोंको
जो इसके पारखी होंगे

विषय-सूची

किन्नर देश

१ यात्रारंभ

किन्नर या किंपुरुष देवयोनि हैं। उनके देशकी यात्राका अर्थ है, देवलोकमें जाना। फिर पाठकोंको मेरी इस यात्रापर सन्देह हो सकता है। किन्तु साथ ही यह भी कहा जा सकता है, कि जिस देशमें कभी देवता रहते हैं, वहाँ पीछे पिछड़े मनुष्य रहने लगे, और जो पिछड़े मनुष्योंका देश हो, वह फिर देवलोक बन जायेगा। किन्नर देशके बारेमें मेरा यही विचार है, यदि भारत पीछे नहीं हटा, और पीछे हटना असम्भव है, क्योंकि वहाँ मृत्यु घात लगाये हुए है, तो यह किन्नर-देश इस शताब्दीके अन्तमें देव लोक बन के रहेगा।

किन्नर-देश हिमांचलका एक रमणीय भाग है, जो तिब्बत (भोट) की सीमापर सतलुजकी उपत्यकामें ७० मील लम्बा और प्रायः उतना ही चौड़ा बसा हुआ है। इसकी निम्नतम भूमि ५००० फुट से नीचे नहीं है, और ऊँची बस्तियाँ तो ११००० फुटसे भी ऊपर बसी हुई हैं। इसका थोड़ा ही सा भाग है, जहाँ मानसूनके बादल खुलकर पैर रखने पाते हैं, नहीं तो अन्यत्र उन्हें फूँक-फूँककर पैर रखना पड़ता है। यदि मेघदूतके यक्षके दूतको उसकी प्रेयसीके पास सन्देश ले जाना अवश्य ही था, तो उसे इसी रास्ते जाना पड़ा होगा, और यदि मेघदूतके रसिक पाठकोंको किसी कारणसे इधर आना पड़े, तो उन्हें इधरके दृश्यको देखकर अपने श्रमके व्यर्थ जानेका पछतावा नहीं होगा। किन्तु अभी मैं अपने रसिक पाठकोंको इधरका निमंत्रण नहीं दूँगा, नहीं तो वह रास्ते भर मुझे कोसेंगे, और कुछकी प्रेयसियोंको वर्षभोग्यशापसे भी मुक्ति नहीं मिलेगी, और वह जीवन भर मुझे शाप देती रहेंगी। हाँ, ऐसा ही बीहड़ मार्ग कहीं-कहीं आ जाता है, जहाँ पैर काँपने लगता है, और आँखें नीचेसे ऊपर देखनेकी हिम्मत नहीं करतीं।

किन्नर शब्द ही बिगड़कर आजकल कनौर बन गया। यहाँ पहुँचने के कई रास्ते थे। प्राचीन कालमें सबसे प्रसिद्ध रास्ता देहरादून जिलेमें उस जगहसे ऊपर चढ़ता था, जहाँ कालसी (खलतिका) नगरी थी, जिसके नीचे यमुना तटपर अब भी एक शिलापर अशोकके धर्म-लेख खुदे हुए हैं। आज इस रास्ते नीचेके लोग यहाँ नहीं आते, किन्तु कनौरके लोग कालसीको भूले नहीं हैं; अब भी जाड़ों में वह अपनी हजारों भेड़-बकरियोंको लेकर वहाँ पहुँचते हैं। जाड़ोंमें किन्नर भूमि बर्फसे ढँक जाती है, उस समय कालसीकी गर्म भूमि और उसके पहाड़ोंकी पत्तियाँ इनकी बड़ी सहायता करती हैं। यमुना और गंगाकी ऊपरी पार्वत्य घाटियोंसे भी यहाँ पहुँचा जा सकता है, यद्यपि इन दुर्लंघ्य डाँडों-को किन्नर लोग ही जाड़ोंके लिये पार करते दिखलाई पड़ते हैं। यहाँ आने का प्रचलित मार्ग शिमलासे कोटगढ़ हो सतलज उपत्यकासे है।

रास्तेकी जिन कठिनाइयोंका मैंने ऊपर कुछ वर्णन किया, उसे देखते हुये मेरा इधर आना, विशेषकर दूसरी बार आना बुद्धिमानीका काम नहीं समझा जायेगा, किन्तु क्या करना है, इसे आदतसे मजबूरी और भाग्यका फेर समझ लीजिये। हिमालयका आकर्षण और गर्मियोंसे बचना दोनों ख्याल सिरमें चक्कर मार रहे थे, जब कि मैंने प्रयागराजके ११३ डिग्रीके तापमानसे ३ मईको विदाई ली। सबेरे साढ़े आठ बजे गाड़ी चली, और २६ घंटे बाद हम शिमलामें थे। कितना अन्तर, कहाँ तीर्थराजके आँवेकी तपिश और कहाँ शिमलाकी शीतल मन्द समीर! किन्तु यह कितनोंके भाग्यमें बदी है? मेरे भाग्यमें भी नहीं, जो दस दिन बाद ही शिमला छोड़ खतरेको मोल लेनेके लिए आगे बढ़ना पड़ा।

शिमलामें आतिथ्यकेलिये ही श्री लाजपतराय नायर तथा उनकी योग्य बहिन तथा हिन्दीकी उदीयमान लेखिका कुमारी रजनी नायरका कृतज्ञ होना है। उन्होंने आगेकी यात्राके लिये परिचय और पत्र प्राप्त करनेमें बड़ी सहायता की। दूसरे व्यक्ति जिनका मुझे कृतज्ञ होना चाहिए, वह हैं श्री एन० सी० मेहता, जिनकी कृपाका पात्र मुझे यहाँ पहली बार नहीं बनना था, मेरी तिब्बतकी यात्राओंसे भी उनकी दिलचस्पी रही है। अबकी तो मैं उन्हींके शासित हिमां-चलप्रदेशमें जा रहा था। उन्होंने मेरी यात्राको सुकर बनानेका प्रयत्न किया,

किन्तु सुखमय बनानेके लिये तो अभी और भारी श्रम और समयकी आवश्यकता है।

वैसे शिमलासे नारकंडा तक मोटरबस और फिर ठाणेदार-कोटगढ़तक लारी चली आती है, किन्तु इस समय शिमलेमें पैट्रोलकी कमी हो गई, और नारकंडेसे आगे पैदल चलना छोड़ दूसरा चारा नहीं रहा। पहाड़ोंमें प्रायः सभी जगह जहाँ बस-लारी नहीं मिलती, सामान लेकर चलने वाले आदमीके लिये कठिनाई आती है। २२ साल पहिले जब मैं पश्चिमी तिब्बतसे इसी रास्ते लौट रहा था, तो नीचे नौला गाँवमें तीन दिन बैठा रहना पड़ा। उस शतवार संशप्त गाँवमें न रहनेका ठौर मिल रहा था, न भार ढोकर ३ मील ऊपर पहुँचानेकेलिए आदमी। अबकी बार नारकंडेमें रहनेको डाकबँगला तो मौजूद था, लेकिन ठहरनेकी नौबत नहीं आई। रामपुर हाईस्कूलके हेडमास्टर पंडित दौलतराम साथ थे, उन्होंने सामानकेलिए खच्चर ढूँढ़ निकाला। यद्यपि पिछले सितम्बरसे मैंने न हिलने-डोलनेकी कसम-सी खाकर जीवनको डायबेटिसके हाथमें सौंप दिया, तो भी ठाणेदारतक पैदल चलनेकेलिए तैयार हो गया। डायबेटिसको मैंने निमन्त्रित किया, यह अवशिष्ट जीवनमें बहुत बार कहनेका विषय है और मैं कहूँगा भी। यदि किसीने सचमुच उसके बारेमें पहले हृदयंगत करा दिया होता, तो मेरे जैसे कितने ही बच जाते। यही तो हृदयंगत कराना था, कि पर्याप्त भोजन पाने वाले आदमीको कुछ शारीरिक श्रम, चाहे चलने-फिरनेके रूपमें ही हो, अत्यन्त आवश्यक है, नहीं तो उसका दण्ड है डायबेटिस—पेशाबमें चीनी, जरासे घाव और फुन्सीका भी जहरबादके रूपमें परिणत होना ..।

अभी तो हिमाचल प्रदेशका नाम भर उज्जीवित हुआ है, और उसे रामपुर, जुब्बल आदि इक्कीस रियासतोंको मिलाकर बनाया गया है। बिलासपुर जैसे कितने ही राजाओंको प्रजाकी इच्छाके बिना ही अपनी अलग खिचड़ी पकानेको छोड़ दिया गया। भला १०, ११ लाखकी आबादीका प्रान्त कैसे अपनी आर्थिक योजनाओंको ठीकसे चला सकता है? हिमाचलवासियोंको स्वयं इस भूलका सुधार करना होगा।

खैर हिमाचल-प्रदेश बननेका लाभ हमें इस यात्रामें हुआ है, इसे स्वीकार

न करना कृतघ्नता होगी। हमने समझा था, ठाणेदार (कोटगढ़) तक बस-लारी पहुँचा ही देगी, इसलिए रामपुरसे घोड़े नहीं मँगवाये थे, जिससे नारकंडेसे पैदल ही चलना पड़ा। शिमलाके दस दिनके निवासमें मैं रोज मील दो-मील चलता-फिरता रहा, इसका एक फल तो हुआ, कि चलनेमें मुझे हिचकिचाहट नहीं हुई। उधर पंडित दौलतराम आगे बढ़ गये थे, जिसमें घोड़ोंको रामपुर लौट जानेसे रोकें। मेरे साथके लिए हरिद्वारके पण्डा मिल गये, जो इधर अपनी यजमानीमें जा रहे थे। मोटरबसपर तो उन्हें चक्कर आने लगा था, और मैं तो समझने लगा था, कि साल-दो-सालके तपेदिकके मरीज हैं, किन्तु तीन घंटेके विश्रामके बाद फिर उनका मुँह हरा हो गया; और चलनेमें हम लोगोंकी गति ४ मील प्रति घंटा थी, किन्तु पहिले ही घंटे तक, दूसरे घंटे वह तीनपर उतर आई। आगे कलई खुलनेही वाली थी, कि सईस घोड़ा लिए चला आया, और बाकी तीन मीलकी यात्रा पत-पानीसे कट गई। ठाणेदारके डाकबँगलेपर हम सूर्यास्त से पहिलेही पहुँच गये।

पंडाजी भोजन-छाजनके सुभीतेके लिये पगडंडीसे उसी शाम नौला पहुँच जाना चाहते थे। मैंने एवमस्तु कहा। हाँ, नौला वही गाँव है, जिसको मैं शतवार संशप्त कह चुका हूँ; और पंडाजी उसी बनियाँ यजमानके घर बड़े चावसे जा रहे थे, जिसने २२ साल पहले न अपने मित्रके पत्रका ख्याल किया, न मेरे परदेशी होने का; ढोने वाले आदमीके प्रबन्धकी बात तो अलग, उसने बैठने तकके लिये जगह नहीं दी। दुनियाँमें ऐसे विरोधी समागम बहुत देखने को मिलते हैं। मुझे उस बनियेके व्यवहारमें निराश होने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि मानवताने ऐसे समय अनेक बार मेरी सहायता की है।

ठाणेदारमें मैंने डाकबँगलेतक ही सहायताकी आशा की थी, किन्तु यहाँ पुराने परिचित डाक्टर भगवानसिंह बौद्ध मिल गये, और नया परिचय हुआ रायसाहब देवीदाससे। उनके नरम-गरम बिठूरे खानेमें बहुत मधुर लगे।

२ रामपुरको

ठाणादारसे १४ मईको सबेरे ६ बजे ही चले। रायसाहिब देवीदास तड़केही परावठे और फल लाये, किंतु अब शरीरमें पत्थर पचानेकी शक्ति तो थी

नहीं, एक समय जरा भी भोजन अधिक होनेपर दूसरे समय हाथ समेटनेकी जरूरत पड़ती है। रास्ता ७ मील उतराईका था, जिसमें घोड़ेपर चढ़ना न अपने आरामके लिए होता; न घोड़ेके लिये। साढ़े नौ बजे नीचे नौला पहुँचे, किंतु वहाँ ठहरनेकी जरूरत नहीं थी। अभी सबेरा ही था। हाँ, साहु गोपालचंदकी बनाई धर्मशाला देखकर उस दिवंगत आत्माका २२ साल पहिलेका अपने साथ रूखा व्यवहार याद आ गया। पासका खड्ड—यहाँ खड्ड छोटी नदीको कहते हैं—पार हो रामपुरकी तहसीलमें दाखिल हो गये।

अभी इधरकी सीमायें ढलाईकी घड़िया में पड़ी हैं। फरवरी (१६४८) में यही खड्ड शिमला जिला और बुशहर रियासतकी सीमा रही, किन्तु अब खड्ड पार हिमाचल प्रदेश है, और नौला पूर्वी पंजाबमें, धनुषकी रेखाकी भी अवहेलना करना रावणकेलिये मुश्किल हुआ, तो बारहों मास बहती इस खड्डकी सीमाकी अवहेलना कैसे की जा सकती थी? भारत सरकारने यह तो निश्चय किया, कि एक हिमाचल प्रदेश बनाया जाये; किन्तु यह निश्चय नहीं कर पाया, कि उसकी सीमायें स्वाभाविक हों या अँग्रेजोंके सूबोंकी भाँति मनमानी। अभी हिमाचल प्रदेशको मेंढक-कुदानकी भाँति अपनी सीमायें रखना पड़ रहा है। खड्डके पश्चिम पूर्वी पञ्जाब, फिर हिमाचलप्रदेशमें सम्मिलित हुई कितनी ही रियासतोंका भूखंड, फिर बिलासपुरकी पहाड़ी रियासत, जिसके राजाने अपनेको अलग रखना लाभदायक समझा, उसके बाद पञ्जाबके पहाड़ी जिला-अंश और फिर मंडीकी रियासत हिमाचलप्रदेश में आ मिली। पश्चिम हिमाचलप्रदेशकी सीमाकी जो हालत है, वही बात पूर्वमें टेहरी रियासत और कमायूँ के जिलोंके बारेमें भी है। जान तो पड़ता है, हिमाचलप्रदेशके बननेपर भी वह ऐसा ही छिन्न-विछिन्न रहेगा।

खड्ड पार हो आध घंटेमें ही हम निरत पहुँच गये, जो शिमलासे साठवें मीलपर है। सबेरे हम ७२०० फुटकी ऊँचाईपर थे, नौला खड्डपर २५०० फुटपर, और अब ३६०० फुटसे ऊपर। प्रयागकी ११०° की गर्मीको इतनी जल्दी तो भूला नहीं जा सकता था, किन्तु यहाँ वालोंके लिये तो यह स्थान गर्म है। लोग ऐसी बात कर रहे थे, मानो यहाँ प्राण सुखानेवाली लू चल रही है। रामपुर १२ मील था, चलना घोड़ेपर था, इसलिये कोई जल्दी नहीं पड़ी थी।

दोपहरके विश्रामकेलिये डाकबँगलेमें प्रबन्ध था। बाहर चलकर आते धूप और गर्मी लग रही थी, किन्तु बँगलेके कमरेमें घुसते ही सीतल जूड़ी छायाने अपना असर किया। कुर्सीपर बैठे ही थे, कि दो पुलिस कांस्टेबल सामने आये। दूसरा समय होता, तो रोमांच नहीं तो आश्चर्य होता। उन्होंने आकर बाकायदा सलामी दी और कहा दीवान साहेब ने सेवाके लिये भेजा है। अभी हिमाचल सरकारने अस्थायी तौरसे रियासतको सँभालनेके लिये मुख्य प्रबन्धाधिकारी (चीफ़ एक्जक्यूटिव अफसर) भेजा है, किन्तु लोगोंको यह नाम लेना आसान नहीं है, इसलिए वह उसे पुराने ही नामसे पुकारते हैं। मैंने दीवान साहेबको धन्यवाद देते सिपाहियोंकेलिये कोई सेवा न होनेपर खेद प्रकट किया।

यद्यपि सालके इस महीनेमें भी ३६०० फुटके ऊपर कोई फल तैयार हो सकता है, किन्तु लोगोंको फलकी तभी याद आती है, जब उसका पैसा बनता हो; नहीं तो उन्हें फलकी नहीं अनाजकी फिक्र होती है; जिसमें विटामिन भले ही कम हो, किन्तु किलोरी शक्ति अधिक रहती है। हमारे पास रायसाहिबका दिया पिछले सालका सेव था। खानेके बारेमें पूछनेपर मैंने छाँछ लानेके लिये कह दिया। इस समय यही हल्का भोजन अधिक अनुकूल जान पड़ा। बँगलेमें शीशे लगी खिड़कियोंके बाहर घनी जाली लगी देखकर कुछ अनकुस मालूम होता था, और यह बात सारे तिब्बत-हिन्दुस्तान सड़कके डाकबँगलोंमें थी, किन्तु इसका लाभ तब मालूम हुआ, जब अगले महीनोंसे मक्खियोंके झुंडके झुंड आक्रमण करने लगे। मैं अभी सेव छीलकर खानेमें ही लगा था, कि ज्वालापुरके पंडाजी आ पहुँचे। यह हमारी प्रतीक्षा नौलामें कर रहे थे, और उसी शाम संशाम घरमें। उन्हें भी दो सेव देकर हाथ जोड़ लिया। पंडोंसे शिक्षित लोग बहुत चिढ़े रहते हैं, किन्तु मैं उन्हें इसका पात्र नहीं समझता, यद्यपि मुझे अपनी दीर्घकालीन यात्रामें उनके आतिथ्यका उतना लाभ उठाना नहीं पड़ा। एक दिन चर्चा चलनेपर एक भद्र महिलाने कहा—"मटन (कश्मीर) के पंडोंकी भलमनसाहतकी मैं अवश्य प्रशंसा करूँगी, जो यात्राको आराम देनेमें चौकस किन्तु दक्षिणाकेलिये जरा भी आग्रह नहीं करते, परन्तु यही बात गयाके पंडोंके बारेमें नहीं कही जा सकती।" हो सकता है, मटनके पंडे अधिक भद्र हों, किन्तु हर तीर्थके पंडे यजमानको आरामसे रखनेकी पूरी

कोशिश करते हैं। सच तो यह है, यदि पंडोंका हस्तावलम्ब न होता, तो काशी जैसे राँड़-साँड़-सीढ़ी-संन्यासी वाले तीर्थोंमें तो अपरिचित और अनुभवहीन यात्रीकी खैरियत न होती। यात्रीकी सेवा करनेमें कहींके पंडे पीछे नहीं रहते, बाकी तो "सुर नर मुनिकी एही रीती। स्वारथ लाग करें सब प्रीती।" आपका सेवक भी पेट बाँधकर सेवा नहीं करता, आप कैसे आशा कर सकते हैं, कि, पंडे मुँह बाँध कर निष्काम सेवा करेंगे? रही, गया जैसे पंडोंकी बात, तो वह सिर्फ तीर्थ स्नान और देवदर्शन ही भर नहीं कराते, उनकी जिम्मेवारी इससे कहीं बड़ी है, उन्हें आपके हज़ारों पीढ़ियों—पुराण-पाषाण युगके उधरके भी पुरखों—को नरकसे निकालना पड़ता है, फिर आपकी जेबपर यदि कुछ करारा हाथ पड़ता है, तो इसकेलिये खीझना नहीं चाहिये।

निरत सतलुजके बायें तटपर है और शतद्रु यहाँ पश्चिमवाहिनी है। मैं समझता हूँ, पश्चिमवाहिनी होना, उत्तरवाहिनीसे कम महत्वका नहीं है। हमारी नर्मदा और ताप्ती भी पश्चिमवाहिनी हैं, और शायद चिरकुमारिकायें भी हैं। हाँ, सतलुजके तटपर होनेका यह अर्थ नहीं, कि वह समीप है। उसकी तो घर्घर ध्वनि भी हमारे पासतक नहीं पहुँचती थी। निरत नाम जब मेरे आँखोंके सामनेसे गुजरा, तभीसे उसकी विचित्रतापर दिलमें तरह-तरहके तर्क-वितर्क हो रहे थे। निरत या नृत्यका क्या अर्थ हो सकता है? "निरत" सुरतसे क्या बननेवाला है? शायद किसी और भाषाका शब्द होगा। क्या है, कोई साधारण गाँवके लिये इतनी माथा-पच्ची करनेकी क्या आवश्यकता? किन्तु २-३ घंटेके विश्रामके बाद जब घोड़ेपर सवार हो हम कुछ आगे बढ़े और पीछे मुड़कर नजर दौड़ाई, तो देखा गाँवमें एक मन्दिर है, जिसका दिखाई देता ऊपरी भाग गुप्तकालीन शिखर-सा है। ऊट-पटाँगसे मालूम होनेवाले नामोंमें ऐसी बात कितनी ही बार देखी जाती है, किन्तु हमें इस पहाड़में इसका सन्देह नहीं हुआ था। बिना किसीसे पूछेताछे भी मेरा कान खड़ा हो गया, और तब जब कि यह भी नहीं मालूम कर पाया था, कि यह सूर्यका मन्दिर है। गुप्तकालीन शिखरके साथ सूर्यका मन्दिर! भला छठी-सातवीं सदीसे पीछेका वह क्या हो सकता था। किन्तु मैं गाँव छोड़कर आगे चला आया था, सारे दलबलको लौटाना पसन्द नहीं था। साथ ही लौटकर फिर तो इसी

रास्ते आना था। हाँ, रामपुरमें जब सूर्य-मन्दिर होनेका पता लगा, तो अधीरता बढ़ गई।

इधरके निवासी कनेतोंको खश भी कहते हैं; खश, खछे और कशके शब्द शकसे ही उलट पुलटकर बने हैं। सूर्य और सविताकी पूजा भारतमें पहिले भी थी, किन्तु सूर्यप्रतिमा और सूर्यमन्दिरका व्यापक प्रचार शकोंने ही भारतमें आकर किया। इस मन्दिरमें भी पूर्ण (रूसी) बूटधारी सूर्यप्रतिमा थी, देख लेना चाहिये था। कुछ मील बढ़नेपर अपनी भैंसोंके रेवड़कोलिये मुस्लिम गूजर और गूजरियाँ मिलीं। जाड़ोंको नीचे बिताकर अब यह घुमंतू महिषपाल हिमाचलकी ऊपरी चरागाहोंकी ओर जा रहे थे। बातूनी साईस कह रहा था—हमने पहाड़को बेमुसल्मान करनेका ठान लिया था। मुसल्मान हैं ही कितने, किन्तु सब हिन्दू हो गये। गूजरोंपर जोर पड़ा—"हिन्दू बनो, नहीं तो पाकिस्तान जाओ।" उन्होंने कहा—"हम पाकिस्तानको नहीं जानते, हमारी सारी पीढ़ियाँ यहीं ऊपर-नीचे घूमती बीत गईं। जो कहो सो करेंगे।" सब हिन्दू हो गये। मुझे यह कहनेका उत्साह नहीं हो रहा था, कि अब भी तो उनकी पीढ़ियाँ मौजूद हैं। मैं सोच रहा था—ईसापूर्व दूसरी शताब्दी, आर्योंके सगे सम्बन्धी घुमंतू शकोंके ओर्दू गोबीसे कास्पथीय पर्वतमाला तक बिखरे थे। एकाएक हूणोंका प्रहार। शकोंके तम्बू और घोड़ों-भेड़ोंके रेवड़ महान् शकद्वीपके पूर्वीय भागको हूणोंकेलिये खाली करने लगे—वही लोग जिन्हें चीनियोंने पीले बाल, नीली आँखों वाले वानर जैसे लिखा। शक काफिला चला, मध्य-एसियासे कोई कराकोरमके दुर्लंघ्य रास्तेको पार हुआ, कोई सीस्तान और बलोचिस्तानके बँयाबानोंको, आया भारतमें। सर्दार राजा बन गये, मोग, कदर्फिसिस, कनिष्क, हुविष्क, वासुदेव—हाँ, वासुदेव! लेकिन अधिकांश पशुपाल अब भी पशु चराते रहे, आजतक चरा रहे हैं—गद्दी चंबा-मंडी-लाहुलकी तरफ भेड़ें चरा रहे हैं और गूजर बुशहर और टेहरीमें भैंसे। गद्दियोंपर जोर नहीं पड़ा, वह कनिष्कपौत्र वासुदेवका अनुकरण करते हिन्दू हैं और गूजर जाड़ोंमें मैदानमें उतरते रहे, जोर-दबाव पड़ा, उन्होंने दाढ़ी रखा ली; किन्तु उनकी जीवन-धारा अब भी वहा मध्य-एसियाके पार शकद्वीप-जैसी है। हाँ, उन्होंने अपने घोड़ों-भेड़ोंको भैंसोंसे बदल लिया, जिससे अधिक घी, अधिक दूध, अधिक आहार

और पैसा मिलता है। पंजाबकी आगकी लपट पहाड़ोंमें पहुँची—"हिन्दू बन जाओ, जीनेकेलिये हिन्दू बनना होगा।" "जो कहो वही, हम जीना चाहते हैं।" खैर, बात दूरतक नहीं गई, क्योंकि मैंने उनके शिर और दाढ़ी दोनोंको उनके शरीरपर देखा। हिन्दुओंमें हजारों दोष हैं, उत्तेजना और दबाव पड़नेपर क्षणिक पशुताके भी शिकार हो जाते हैं, किन्तु हैं वह शांतिप्रेमी, "जीओ और जीने दो" के माननेवाले, वैरसे नहीं अवैरसे हृदय जीतनेकी विचार-परम्पराके माननेवाले, मानवता-प्रेमी।

तिब्बत-हिन्दुस्तान-रोडपर हम जा रहे थे, चढ़ाई-उतराई कम करके मार्गको स्थायित्व देनेकेलिये काफी प्रयत्न किया गया है। किन्तु हिमालयको समृद्ध बनानेकेलिये मेवोंका देश बनाना है, उन मेवोंका जिनका उद्गम हमारे देशसे अलग हो गया और जिनकी हमारे देशको बड़ी आवश्यकता है। किन्तु यह फल बकरियों और खच्चरोंपर लादकर रेलतक पहुँचानेमें मोतीके मोल पड़ेंगे, उन्हें कौन खरीदेगा? इसलिये मोटरकी सड़क बनानी होगी। "बहुत जल्द मैं चाहता हूँ जीपका रास्ता निकाल दिया जाये।" हाँ, जीप सर्वगमा, अप्रेलमें मैं प्राचीन वैशालीके खेतों-खँडहरों, बाँधोंपर उसीपर चढ़कर उछल-कूद आया था। किन्तु यह उत्तुङ्ग पर्वत हैं, खेतोंकी मेंड़ें या खाइयाँ नहीं हैं। इस सड़कको जीपके लिये बनानी होगी। चौड़ाई थोड़ी ही बढ़ानी पड़ेगी, कहीं चढ़ाई और ढलुआँ करनी होगी, पुलोंको कुछ और दृढ़ और चौड़ा करना होगा। बड़ी बात नहीं, किन्तु यह जो जगह-जगह कच्चे पहाड़ हैं; एक जोरकी वर्षा हुई नहीं, कि लगे टूटकर गिरने। पत्थर गिरनेको रोकना कुछ आसान होता, किन्तु यहाँ तो अधिकतर मिट्टी धसककर आती है। तो भी यह मनुष्यकी शक्तिके बाहर नहीं, अधिक खर्च करना पड़ेगा, बारबार मरम्मत करनी पड़ेगी। मनुष्यका ही अपराध है, जो उसने इन पहाड़ोंको वृक्षवनस्पतिविहीन बना दिया; वृक्षोंकी जड़ें धँसकर मिट्टी-पत्थरको थामनेकेलिये नहीं रह गईं। पुरानी भूलोंपर पछताना व्यर्थ—"हेयं दुःखमनागतम्"। हिमाचलको सड़कें देनी होंगी, तभी इसे मेवोंका देश बनाया जा सकेगा, इसकी अपार खनिज संपत्तिसे लाभ उठाया जा सकेगा, भोलेभाले पहाड़ियोंको विद्याविभवसम्पन्न किया जा सकेगा।

इसी तरहके विचारोंमें डूबा मैं चल रहा था। एकबार घोड़ा बगलकी

चट्टानसे टकराया—हल्के ही, हड्डी नहीं टूटी, किन्तु छिल गया। डायबेटिस्के लिये यह भी कम नहीं और मैं हूँ अभी स्वतन्त्र हुये भारतका लेखक नागरिक। तुरन्त चलकर टिंकचर आइडिन लगाना होगा—सोचते आगे बढ़ रहा था, कि देखा बीससे साठ बरसके चार मर्द सड़कपर खड़े सतलुज पार ध्यानसे देख रहे हैं। उधर क्या है? इस प्रश्नका उत्तर तुरन्त किन्नरकंठियोंकी मधुर ध्वनिने दिया। दो-तीन तरुणियाँ दुर्भर पर्वतपार्श्वपर घास काट रही थीं, उनके कंठसे गीतकी मधुर ध्वनि निकल रही थी। अभी मैं पास नहीं पहुँचा था, किन्नरकंठियाँ चुप हो गईं। फिर सड़कपर खड़े पुरुषोंने कानपर हाथ रख गीतके स्वरमें उत्तर दिया। सतलुज कुछ नीचे थी, घर्घर ध्वनि मन्द थी, तो भी बाधक तो थी ही, किन्तु स्वर परले पार पहुँच रहा था जरूर। परले पार हँसिया घासपर चल रही थी किन्तु इधर थे बाटके बटोही, कहीं जा रहे थे, कि किन्नरियोंकी ध्वनिने उन्हें खींच लिया, या शायद उन्होंने ही छेड़ दिया। अब रास्ता भूल गया। सोचते होंगे, समय अपना है, एक घंटा आगे नहीं घंटा पीछे पहुँच लेंगे। वह जीवनका रस ले रहे थे। क्या गा रहे थे, नहीं मालूम, किन्तु उसमें उन्हें रस आ रहा था, यह उनके चेहरोंसे पता लग रहा था। उनके चेहरे मैले और रक्तहीन, उनके वस्त्र गन्दे और फटे, उनका जीवन कितना नीरस होता, यदि जीवनमें ऐसे कुछ क्षण भी नहीं होते। इन्हीं क्षणोंको तो हमें बढ़ाना है, मनुष्यके सारे जीवनको रसपूर्ण करना है। किन्तु वह तभी हो सकता है, जब इस पर्वत-स्थलीकी काया-पलट हो जाये, रत्नगर्भा वसुन्धरा अपने भीतरके रत्नोंको उगलने लगे।

अभी रामपुर नहीं आया था। बाईं ओर नदीके पास कुछ बाग और एक असाधारण-सा घर दिखाई पड़ा। सईसने बतलाया, कुल्लूके सावकारने कारखाना बनाया है, तेल, चावल, आटेकी कल बैठाई है। परले पार कुल्लू है। आरपार जानेकेलिये लोहेका तार और खटोला है, किन्तु परे पंजाब है और उरे हिमाचलप्रदेश। सावकारने पासकी खड्डुसे एक नहरिया निकली है—थोड़ी ही दूरसे, खर्च भी अधिक नहीं, उसी पानीसे बिजली और उसीसे यह कारखाना चल रहा है। एक अल्प-साधन आदमी यहाँ बिजलीके दीपक जलानेमें समर्थ। यह सारी पर्वतस्थली कब विद्युत्प्रदीपोंसे जगमगायेगी? कब मनुष्य सतलुज

और उसकी खड्डोंकी अपार बिजलीपर प्रभुत्व प्राप्त करेगा ? कब मनुष्य आकाशकी ओर निराशापूर्ण दृष्टिसे देखना छोड़ इस अपार जलराशिको अपने खेतोंकी ओर मोड़ेगा। हाँ, आज वर्षा नहीं हो रही थी, खेतोंमें जौ-गेहूँ सूख रहे थे। बेबस आदमी खिन्न मन हो आकाशकी ओर देखता न तो क्या करता।

बीच-बीचमें साईस बातें करता चलता था। वैसे राज्यके अतिथिसे बात करनेका साहस नहीं होता, किन्तु मैंने उसे उत्साहित किया था। उसने सोचा होगा, बाबू भले आदमी हैं। कभी वह कोई दूसरी बात भी करता, किन्तु अधिकतर कह रहा था, दो मास पहिलेके प्रजासंघर्ष और उसमें अपनी कोली जातिकी बहादुरीके कारनामें। कोली पहाड़के सबसे अधिक मेहनती, सबसे अधिक सताये अछूत, चमार-जुलाहा (कोरी)—भंगी सब इकट्ठे। खेत उनमें किसी ही किसीके पास है, मरे ढोरके चमड़ेका भी मालिकोंके पास मालके रूपमें दाम पहुँचाना पड़ता है। बड़ी जातिवालोंके घर छोड़ ओसारेकी छायातक उनका प्रवेश निषिद्ध है। साधारण पनघटसे भी पानी लेनेका उन्हें अधिकार नहीं। मेहनत मजूरीसे शिमला आदिमें जाकर यदि कुछ पैसा कमाया, तो उन्हें कनेतो (उच्च जातियों) के मकानोंकी भाँति शिखरदार छत बनानेका हक नहीं। उसके कहने का भाव था "क्या हम मनुष्य नहीं"। नई हवा दग्ध होनेकेलिये तैयार इन गंदी झोपड़ियोंतक पहुँच चुकी है। मार्चके संघर्षके बारेमें एकबार जो उसकी जीभ चल पड़ी, तो बार-बार मनमें भयका संचार हो जाने पर भी उसकेलिये जबानपर काबू करना और मेरे लिये उसे चुप रखना असंभव हो गया। घुमा फिरा कर उसने वह सब बातें कह दीं, जो मुझे रामपुरमें सरकारी पक्षसे मालूम हुई। अन्तर यही था, कि उसकी सहानुभूति प्रजा और नेता अणुलाल मास्टर की ओर थी, यद्यपि उसने सरकारी अफसरोंपर दोष देनेसे बहुत बच-बचा कर कहा, किन्तु सरकारी पक्षने अणुलाल और उनके सहायकोंको निरा लुच्चा लफंगा सिद्ध करना चाहा।

मैंने सोचा था, डाकबँगला रामपुरसे परे होगा, किन्तु वह एकाएक सामने आ गया, और राजधानीसे प्रायः एक मील उरे ही। जब वही राज्यका डाकबँगला और अतिथिभवन भी हो, तो उसे सब तरहसे सुन्दर और स्वच्छ बनानेका क्यों न प्रयत्न किया जाये। फलोंफूलोंके बागमें सतलुजके किनारे यहाँ एकसे अधि

गले हैं। बागमें कुछ उदासी-सी है, न फूलोंके सुध लेनेकी फिक्र, न तर्कारियों- लगानेकी ओर विशेष ध्यान। जगह सुन्दर, कमरे स्वच्छ और सजे। यहीं इरना होगा सुनकर यद्यपि हम बँगलेमें गये, केमरा कंधे से उतारकर रखा गैर कुर्सीपर बैठ भी गये; किन्तु रामपुर बस्तीको मील भर आगे देखकर मेरा न विद्रोह करने लगा। आखिर मैं तपस्या करने थोड़े ही आया था, कि हाँ तपोवनमें एकांतवास करता। मुझे आवश्यकता थी जनसंपर्ककी, यहाँकी थतिके बारे में अधिकाधिक जाननेकी, कनौरके मार्ग और चिनीके निवासके रेमें पता लगानेकी! चलकर यहाँ कितने आते, और वह भी कितनी देर इरते? मुझे यदि दिन भर नगरमें ही घूमना था, तो यहाँ रातको सोनेकेलिये इरना था क्या?

इसी तरहके विचार मेरे दिलमें आ रहे थे, कि दीवानसाहेबके आदमी ाकर आतिथ्योपचारके प्रबंधके बारेमें कहते हुये बतलाया, यदि आप चाहें दीवानसाहेबका बँगला भी हाजिर है। अंधेको क्या चाहिये, दो आँखें। मैंने रत कहा—मुझे दीवानसाहेबके साथ ही रहना पसंद होगा, यदि उन्हें कष्ट हो। आदमीने बतलाया—उन्हें कष्ट नहीं, परिवारके लोग शिमला गये ये हैं, वह अकेले उस बड़े मकानमें हैं।

मैंने अपना संकोच हटाकर दूसरेको सकोचमें भले ही डाला हो, किन्तु मेरा ाश्चय ठीक था। दीवानसाहेब सर्दार बलदेव सिंहने अपने उच्चतम अधिकारी माचलप्रदेशके चीफकमिश्नर श्री एन० सी० मेहता के पत्रमें मेरे बारेमें सारे शेषण "तमप्" प्रत्ययमें पढ़कर सोचा होगा, ऐसे व्यक्तियों को कैसे अपनी कुटिया" में रखा जाये और किस तरह सेवाकी जाये? आदमीसे कुटियाकी ओर ामंत्रण भेजकर वह पहिले पछताये तो जरूर होंगे, किन्तु चंद ही मिनटोंमें उन्हें ालूम हो गया होगा, कि उनका अतिथि उनके घरके व्यक्तिसे अधिक भेद नहीं खता। जराही देरमें हम घुलमिल गये। पहिले बाहरी बातें होती रहीं। सर्दार बलदेव ाहके बारेमें पहिले ही इतना कह देना है, कि वह बोलने-चालने, बर्ताव-व्यवहार भीमें बड़ेही भद्र पुरुष हैं। क्वेटाके रहनेवाले, लाखोंकी पैतृक संपत्ति महल-मकान रूपमें और हजार रुपये वेतनकी सरकारी नौकरी, सुखी परिवार, चैनमें दिन त रहे थे। आई अगस्त (१९४७) की भयंकर आँधी, हो गया सारा स्वाहा, हाँ

—सारा नहीं परिवारकी जान बच गई, सरकारी अफसर होनेसे पहिलेके :
विमानोंमें उड़कर निकल आये, किन्तु न वह महल, न वह मोटर, न व
निश्चिन्त जीवन। अब थे वह शरणार्थी। खैर, नौकरी मिल गई, पैर रखनेके
लिये जगह तो मिल गई। किन्तु वह जीवनभर रहे क्वेटामें, जो दुनिया
मधुरतम मेवोंकी खान, दुम्बे भेड़के मांसका भंडार और यहाँ रामपुर में रो
छोड़ छठे-छमाहे भी मांसका पता नहीं, तरकारियों का अभाव, सिर्फ आलू औ
दाल। बारबार कहते—मैं आपका कैसे स्वागत करूँ ? स्वागतकेलिये वस्तुओं
भी आवश्यकता होती है, विशेषकर गृहपतिकी दृष्टिसे; किन्तु अतिथिकेलिये उस
भी बढ़कर चीज है गृहपतिके सहृदय दिलकी और वह सर्दार जी के पा
मौजूद था।

मैंने प्रयाग छोड़नेके बाद सिर्फ एक बार शिमलामें इन्सोलिनकी सुई लग
थी, नहीं तो पान-मेलिट्सकी गोलियोंपर काम चल रहा था। किन्तु "रि
रुज-पावक पाप, इनहिं न गनिये छोट करि।" इंजेकशनका सारा साम
साथ चल रहा था, अब उसे लगानेकी फिक्र हुई। मैं स्वयं लगानेकी सोच र
था, किन्तु मालूम हुआ, सर्दार साहेब इस कलामें निपुण हैं। उनके ि
डायबेटिसके रोगी थे, पितृसुश्रूषामें उन्होंने यह विद्या सीखी थी। सचमुच ही उ
सुई लगानेमें पीड़ाका नाम भी नहीं था। उन्होंने सुईमें दवा भरी, और निश्
स्थानपर खचसे सुई मारी, सेकंडके हजारवें हिस्सेमें बेड़ा पार; मस्तिष्कतक सू
भी न पहुँच पाई, कि छुट्टी।

डाक्टर, अध्यापक तथा दूसरे अधिकारियों से उसी शाम भेंट हो गई, ।
थका समझकर देरतक किसीने बात करना पसंद न किया। अधिक सम
सर्दार साहेबके साथ ही बातचीत होती रही, और उससे काफी जानकारी
हुई।

३ रामपुरमें

भारतमें रामपुर अनगिनत हैं। रियासतोंमें युक्तप्रान्तमें एक और भी
पुर रियासत है, इसलिये बुशहर रियासतके खतम हो जानेपर भी मैं इसे रा
बुशहर (बिसाइट) नामसे कहूँगा। रियासत बुशहर ३८१० वर्गमीलके

लकी एक बड़ी रियासत है, यद्यपि आबादी एक लाख बारह ही हजार। उसके ।-तिहाई भागमें चिनी तहसील है, जिसकी आबादी तो और भी कम, सिर्फ तीस हजारके करीब। रामपुर पहिले हींसे इस राजवंशकी राजधानी नहीं था। हिले कामरू, सराहन, कल्यानपुरमें राजधानी रह चुकी थी। राजवंश ऐसा थान ढूँढ़ रहा था, जहाँ बर्फ और आँधीसे रक्षा हो। सराहनके ६७१२ फुटकी पेक्षा रामपुरकी ३८७० फुटकी ऊँचाई इसे बर्फसे सुरक्षित रखती थी, साथ ही हावत है, राजाने यहाँ दीपक रखकर देखा, तो वह यहाँ सारी रात जलता हा। इससे स्थान आँधीके भयसे भी सुरक्षित मालूम हुआ, और आजसे दो ो वर्षसे कुछ पहले रामपुरको राजधानी बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। किन्तु नवात स्थानके लिये सँकरी उपत्यका ढूँढ़नी पड़ी, जिससे यहाँ नगरकेलिये अधिक वेस्तारका अवकाश नहीं रहा। पहाड़ और सतलुजके बीचमें बहुत थोड़ी सी गगह है, जो प्रायः भर चुकी है। राजधानी बनानेके समय लोगोंकी दृष्टि उतनी र तक नहीं जा सकी। पहिला महल एक छोटेसे मंदिरके रूपमें आज मौजूद ं, उसीके नामसे तो भविष्यको आँका होगा। अन्तिम राजा पदमसिंह बहुत कुछ राने ढंगके व्यक्ति थे। उनके बनवाये महलको भी भविष्यका मापदंड माना गेता, तो ऐसे संकीर्ण स्थानमें राजधानी न बनवाई गई होती। खैर, अब तो मपुर बस गया है। राज्य गया, राजधानी गई, तो भी एक महत्वपूर्ण नगर ा यहाँ रहे हो गा। महल, स्कूल, सरकारी इमारतों और जनताके घरोंके रूप जो संपत्ति यहाँ खड़ी हो गई, उसे तो अन्यत्र उठाकर नहीं ले जाया ा सकता।

दूसरे दिन (१५ मई) सबेरे ही निश्चय कर लिया, कि रास्तेकी जानकारी था यात्रा के प्रबंधके लिये यहाँ दो दिन और ठहरना है। अगले दिन नगर खने निकला। २२ साल पहिले के देखे दृश्यका कोई हल्का सा चित्र भी मृतिपटलपर अंकित न था। सर्दार साहेब का बँगला एक छोरपर सड़कके पर था। नीचे उतरने पर पहिले बौद्धमंदिर मिला, जिसके पास पुराने राज-हल में देवमंदिर है। बौद्धमंदिरमें कन्जूर पुस्तक-संग्रह है, और साथ ही खों मन्त्रोंसे भरी ढोलकी शकलकी "मानी" जप करनेकी मशीनभी। पुजारीने बड़े चावसे अपने मंदिरको दिखलाया। दस कदम आगे बढ़नेपर सड़कके

दूसरी ओर बालिका विद्यालय है, जिसमें कुछ कृश मलिन गात्रा बालिकायें वैसी ही अध्यापिकाओंके नीचे शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। आगे सड़कसे नीचे उतरकर गलियों में होते बाजार वाली सड़कपर गये। सड़क ही कहिये, वैसे इस सड़कने कभी किसी पहियेवाली गाड़ीको नहीं देखा, और आगे भी बिना आमूल परिवर्तन किये गाड़ी इधरसे गुजर नहीं सकती। इसी सड़ककी दोनों ओर दूकाने हैं—अधिकतर नीचेसे लाये सौदेकी दूकानें, कुछ तो खाली। शायद मौसिमपर कुछ दूकानें और जम जाती होंगी। पहाड़में पत्थरकी दीवारें होनी ही चाहिये, जंगलकी लकड़ी सुलभ होनेसे उसका भी उपयोग होता है, किन्तु उतना नहीं, जितना ऊपर किन्नर देशमें!

मैं बाजारसे पहिले ऊपर (पूर्व) की ओर गया। ऊपर सीढ़ियोंसे रास्ता सतलुज तटपर जाता है, किन्तु वहाँ शतद्रु—शत-वेगवाली धारामें कौन स्नान करनेकी हिम्मत रखता होगा? नीचे वैष्णवका मठ मिला। कभी दरभंगा जिले-का कोई निर्मोही साधु इधर आ निकला। "जहाँ बैठ गये," और एक मन्दिर उठ खड़ा हुआ। कुण्ड छोटा सा पहिले ही रहा होगा, उसे पक्का करके ऊपर मंडप भी खड़ा कर दिया। आजकल दो मूर्ति "साधु" निवास करते हैं। महंत मौजूद न थे, दूसरा एक अनपढ़ साधु वहाँ था, जिसे अपने "करमधरम" की बातें कम मालूम थीं। शायद दोनों ही पहाड़के हैं, अतएव बाहर घूमे-फिरे कम अथवा साधुओंकी भाषामें टकसाली कहलानेके हकदार नहीं हैं। "साधु जन रमते भले" का अर्थ सदा रमते न भी लें, तो भी एक बार "चारों खूँट" (सारे भारत) की परिक्रमा तो अवश्य हो जानी चाहिये।

पंडे साधारण यात्रीका जितना उपकार करते हैं, उसे देखते मुझे वह बुरे नहीं लगते, उसी तरह साधुओंके मठ भी घुमक्कड़ोंके बड़े कामके हैं, कमसे कम सारे भारतकी यात्रा तो आदमी इनके बल पर बिना पैसे-कौड़ीके कर सकता है और बौद्ध साध हो तो अधिकांश एसियाका द्वार खुला है, हाँ भाषाकी कठिनाई के साथ।

मैंने सोचा था, वहाँ कुछ मूर्तियोंके दर्शन होंगे, साधुने दर्शन कराना भी चाहा, किन्तु मैंने कहा—खंडित मूर्तियोंके दर्शनसे हमारे जैसोंको पुण्य होता है, यदि खंडित मूर्ति हो तो दिखाओ। किन्तु रामपुरमें, कहाँ खंडित मूर्ति?

यह तो दीपक जलनेके भरोसे नया शहर बसा है। बाजारमें लौटकर और आगे चला। रास्तेकेलिये कुछ चीजें खरीदनी थीं। सोच ही रहा था, कहाँ लिया जाय, कि विद्याधरजी विद्यालंकार मिल गये। कल साधारणसा परिचय हुआ था, आज विशेष क्या, रामपुरमें सबसे अधिक सहायक वह सिद्ध हुये। पीछे एक और मित्रसे पता लगा, कि आगन्तुकोंपर उनकी ऐसी कृपा होती ही रहती है। वह गुरुकुल काँगड़ीके स्नातक, आयुर्वेदके स्नातक हैं, किन्तु यहाँ वैद्यकी नहीं, जंगल-विभागकी खजांचीगीरी करते हैं। कई सालोंसे यहीं हैं, वैसे रहने वाले अमृतसरके हैं। आटा, चावल, चीनी, मसाला आदि खरीदनेका काम मैंने उनको दिया। आगे भोजन बनानेकेलिये बर्तनभाँड़े भी चाहिये। उन्हें खरीद लिया। फिर बाजारमें चीजें देखने लगे। वैसे मुझे कुछ गर्म कम्बल जैसी चीज भी चाहिये थी, किन्तु मैं समझ रहा था, वह चीजें तो ऊपरसे आती हैं, फिर यहाँ खरीदनेकी क्या जरूरत? किन्तु यह मेरी गलती थी। यद्यपि पट्टू, गुदमा, पट्टी कनम्, सुङ्नम् स्पू में बनते हैं, किन्तु उनकी बिक्रीका स्थान रामपुर है, जहाँ सालमें तीन बार (एकबार कार्तिकमें) बड़े मेले लगते हैं। और प्रायः यहाँ चीजें उद्गम-स्थानसे भी सस्ती मिलती हैं। जो चीजें नहीं बिक पातीं, उन्हें लोग यहीं रख जाते हैं। फिर पशमीनेकी चादरें तो रामपुरमें ही बनती हैं, ऊपर तिब्बतसे तो सिर्फ कच्चा पशम भर आती है। ईधर पाँच सालसे एक चाकू पल्ले पड़ा था, जो न तरकारी काटने के कामका था, न पेंसिल बनानेके, भलामानुस पिंड भी नहीं छोड़ रहा था, कि दूसरा खरीदूँ। रूस, इंग्लैंड सबसे होता वह इस यात्रामें कहीं खो गया। गये चाकू खरीदने। हाथरसका काठकी बेंटवाला चाकू जो कभी दो पैसेमें बिकता था, उसका दाम ६ आना और दूसरा "असली रेती का चाकू" सवा रुपयेका जिसे पहिले चार आनेमें कोई नहीं पूछता। खैर, चौगुने दामके तो अपने राम कायल है, रुपया खर्च करते समय हिसाब चार आनेका ही लगाते हैं। किन्तु यहाँ अठगुनेका मामला था, तो भी खरीदना तो था, फिर दाम-दून देखनेकी आवश्यकता?

दिन सारा इधर-उधर घूमने और लोगोंसे पूछताछ करनेमें ही बीता। यह तो यहाँ तक ही पता लग गया, कि २२ साल पहिलेकी स्मृतिपर विश्वास नहीं करना चाहिये। चिनी तहसीलके कई आदमी मिले। दिवंगत महाराजके

निजी सचिव बाबू प्यारेलाल स्वयं उधरके ही हैं। पता लगा साग-सब्जीका समय अभी देरसे आयेगा, किन्तु सूखा मांस मिल जायेगा। मैंने कहा "जय हो किन्नर देशकी"। किन्तु आगे मालूम हुआ, अब सूखे मांसकेलिये वह पहिलीसी बात नहीं है। रास्ता के बारेमें यहीं जो कुछ मालूम हो गया, उसीपर दिल कहने लगा, यदि चिनींको ग्रीष्म-निवास बनाना है, तो प्रतिवर्ष जाड़ोंमें नीचे उतरनेका ख्याल छोड़ना चाहिये।

शामको हाई स्कूलमें अध्यापकवर्गने चाय पार्टी दी, जिसमें राजधानीके सभी अधिकारी और गण्यमान्य सज्जनोंसे परिचय प्राप्त करनेका अवसर मिला। आजकलके जमानेमें थाल भरे लड्डुओंको देखना कहाँ मुयस्सर ? किन्तु अब भाग्य कहाँ, चीनी मिठाईको तो ब्रह्माने हराम लिख दिया; चाय तकको फीका ही पिया। उस दिन राय कृष्णदासजी हमारे मित्र पण्डित ब्रजमोहनव्यासकी प्रशंसा करके कह रहे थे—उन्होंने डायाबेटिसको दबोच रखा है। बनारस जाते हैं, तो क्या वहाँकी मिठाई छोड़ते हैं ? बस अपने हाथसे इन्सोलिन की सुई कोंचके लड्डू-अमिरतीपर हाथ साफ करने लगते हैं। अपने रामको तो अभी इतनी हिम्मत नहीं और अपनेसे कोंचनेका उतना अभ्यास भी नहीं, तो भी इसका यह अर्थ नहीं, कि दूसरोंको लड्डू खाते देख जीभसे पानी टपक रहा था, जीभ इतनी बेवकूफ नहीं है। अतिथिवर्गके चायपानके बाद स्कूलके लड़कोंको भी लड्डू मिले। ऐसे स्कूल अब कहाँ हैं ? होते तो किसका दिल फिरसे विद्यार्थी बननेका नहीं करता। अन्तमें मुख्य अतिथिको भी भाषण करना जरूरी था। वह कोई संकटका सौदा तो नहीं है, आखिर कलम घिसनेसे पहिले ही जीभ चलानेकी विद्या सीखी थी। लेकिन श्रोता पँचमेल थे। एक ओर कितने ही उच्च शिक्षाप्राप्त अधिकारी और अध्यापक थे और दूसरी ओर तीसरे-चौथे दर्जे तकके विद्यार्थी भी। किनकेलिये क्या कहा जाये, इसीका बड़ा असमंजस था। सोचा बच्चोंकेलिये मिठाई काफी है ही औरोंकेलिये कुछ कहो। फिर भी कठिनाई दूर नहीं हुई। १८ अगस्त १९४७ के बाद देश दासतासे मुक्त हो गया, राजाका भी राज्य गया और मार्च (१९४८) से अब हिमाचल प्रदेशमें स्वतंत्र प्रजाका राज्य कायम हो गया। इस बातमें सच्चाई है, इससे मैं इन्कार नहीं करता, किन्तु यहाँ के लोगोंको विश्वास हो तब ना। लोग तो नाम तकको भी

बदला नहीं समझते और मुख्य-प्रबन्धाधिकारीको "दीवान साहब" कहते जा रहे हैं। साधारण जनता क्या समझेगी, जबकि सरकारी कर्मचारी भी नहीं समझते, कि अब वह दूसरी तरहके अधिकारी हैं। तो भी कुछ अपना स्वप्न सुनाया। हिमाचल प्रदेशमें ग्राम-ग्राममें स्कूल खुलेंगे। कोई अनपढ़ नहीं रहेगा। सारा पहाड़ मेवोंके बागोंसे ढँक जायेगा। घर-घर बिजली जलेगी। भूगर्भमें छिपी धातुयें बाहर आयेंगी और देश मालामाल हो जायेगा। पर्वत-स्थली इधरसे उधर दौड़ती मोटरोंके भोंपूसे गूँजती रहेगी और बीच-बीच में कुछ अपनी यात्रा की भी बातें।

अगले दिन १६ मई रविवार था, लेकिन हमारे लिये छुट्टी नहीं। कनौर पर कुछ अधिक लिखना है। बीचमें इतिहास आकर उलझ पड़ेगा, यह तो उस समय ख्यालमें आया नहीं था, नहीं तो सरकारी पुराने कागज़-पत्रों को उलटता। चलो जो भी सामने आये, देखते चलो।

सरदार साहब तोसाखाने दिखलाने ले चले। महाराजा पदमसिंह (मृत्यु १६४७ ई०) के बनवाये नये महलके ही हाते में तोसाखाने के मकान हैं। महाराजा पुराने विचारोंके आदमी थे। मैंने १६२६ में उनसे बातचीत की थी। सीधे-सादे से आदमी। आश्चर्य है, कैसे उन्होंने नये ढंगका महल बनवाया। किन्तु तोसाखाना अब भी प्राचीन संस्कृति का रक्षक था। वहीं लकड़ी के बखार जैसी छोटी-छोटी अँधेरी कोठरियाँ, वही पुराने ढंगके ताले। तोसाखाने में चाँदीकेकुछ बर्तन—थाल, गड़वे, कटोरे, चँवर, मोर्छल, भाला, बल्लम, कुछ पुरानी साधारण-सी तलवारें, गद्दी और मसनदके जरीके खोल थे। नई सरकार चाहती है, बेंच कर पैसा बनाये। विधवा राजमाता इसे अपमानकी बात समझती है। हो सकता है, नया बनवानेपर इन चीजोंपर अधिक रुपया खर्च हो, किन्तु नीलाम करने पर सरकारके पास चार-पाँच हज़ार से अधिक नहीं जा सकेगा। तोसाखाने के बड़े नामसे शायद ऊपर वाले समझते हैं, कौरव-पांडव वंशकी राजगद्दी, सारे कलियुग भर हीरा-रतन जमा होता रहा, भला यहाँकी निधिका क्या ठिकाना? किन्तु निधिको देखकर तो मुझे ख्याल आया—नाहक यह आग्रह है। यहाँ यदि कोई अधिक मूल्यकी संपत्ति रही होगी, तो अब वह यहाँ नहीं है और कम से कम रानीको नहीं मिली। दस-पाँच ऐतिहासिक संग्रहालयके उपयोगकी

चीजों को लेकर बाकी रानीको दे देना चाहिये। तोसाखाने पर उधर यह हुक्म, दूसरी ओर राजाके खच्चरों-घोड़ों पर अलग निगाह। खच्चरोंमें जो अच्छे रहे, क्या वह हिमाचल सरकारके आनेतक बचे रहे। अच्छे खच्चर पहिले चंपत हो चुके। राजमाताने चायकेलिये बुलाया था। बेचारी बड़ी रानी थी। महाराजा "वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी" के अनुसार छोटी रानीके वशमें थे, चंद्रवंश न सही सूर्यवंशकी भी तो यही परंपरा थी। उन्होंने जंगम संपत्तिको ही खुलकर छोटी रानी और उनके पुत्रको नहीं दिया, बल्कि शिमला आदिमें जो अपना मकान था, उसका भी अधिकांश छोटे कुमारके नाम कर दिया। बड़ी रानी जीवनमें उपेक्षिता रहीं। राजाने यह भी तो नहीं सोचा था, कि उनके आँख मूँदते साल भी नहीं बीतेगा, कि अँग्रेजोंका डंडा-कुंडा उठ जायेगा और बिसहर अपने बीसियों सूर्य-चंद्रवंशावतंसोंके साथ मिटकर हिमाचल प्रदेश बन जायेगा। यदि यह सोचा होता, तो बड़े कुमार और उनकी माताको पदमसिंहने भुलाया न होता। वह इतने कठोर न थे। सोचा था, बड़ा कुमार तो गद्दीका मालिक है, उसके लिये चिंता करनेकी क्या आवश्यकता? बेचारी राजमाताके आँसू निकल आये, तोसाखाना और खच्चरों की बातें करते। अभी तो कुछ नगदी रुपया था, जिसमें से बँटकर २०-३० हजार मिल गया था, और किसी तरह काम चल रहा था, किन्तु वह कितने दिनों तक ठहरेगा? एक मृत कुमारकी विधवाको दो सौ रुपया मासिक मिलता था, वह बन्द है। बनियोंका उधार हो गया है, अब कोई कुछ उधार देनेके लिये तैयार नहीं। बुरी दशा है। राजमाताके सामने उदाहरण मौजूद है, फिर क्यों न घबराहट हो—जब पासके रुपये खतम हो जायेंगे, तो यह आलीशान महल तो नहीं खिलायेगा। मैंने सान्त्वना दी—सरकार पेंशन (६० हजार) देगी, वह आपकेलिये आपके पुत्रकेलिये पर्याप्त होगी। सर्दार साहेबने भी ढारस बंधाया। बेचारी नवशिक्षिता तो नहीं है, जो कायदे-कानूनकी बात जाने और अपनेही सोचकर धैर्य धरे। लड़काभी अभी १३-१४ सालका बालक है। सौत झगड़ा मोल लेनेको तैयार। राज्य गया किन्तु राजसी रहन-सहन दो मासमें थोड़ेही बदल सकती है, इसीलिये खर्चका रास्ता वैसाही। राजमाता जैसे व्यक्तियोंके साथ सरकारको अधिक उदारतासे बर्ताव करना चाहिये।

आज मार्च-क्रान्तिकी बातें कुछ अधिक सुननेको मिलीं, जिनसे साईसकी बातोंकी ही पुष्टि हुई। मैंने भी उस समय पत्रोंमें पढ़ा था,—बुशहरकी प्रजाने विद्रोह कर दिया। राजकी पुलिसने दमन करके दबाना चाहा, किन्तु उसे मुँहकी खानी पड़ी। गोलियोंने कोई सहायता नहीं की, और सारी पुलिस, उसके अफसर और बड़े अधिकारी प्रजाके हाथमें बन्दी हो गये। टेहरीकी प्रजाको भी इसी तरह स्वेच्छाचारी राजाका मान-मर्दन करते पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई थी। बुशहरकी खबरसे तो मुझे खुशी हुई, क्योंकि मैं जानता था, बुशहर रियासतोंके भीतर सबसे पिछड़ा इलाका है। किन्तु बात क्या थी? प्रजाने राजाके विरुद्ध कहीं विद्रोह नहीं किया था। बात यह हुई। फरवरी (१६४८) में हिमाचलकी रियासतोंके राजा-प्रजा दिल्लीमें जुरे। भारत सरकारकी ओरसे कहा गया—प्रजा और राजा दोनोंकी भलाई इसीमें है, कि हिमाचलकी दर्जनों रियासतें मिलकर एक प्रांतका रूप ले लें। कितनेही राजाओंने कुछ इधर-उधर किया—निरंकुशताका चसका बहुत बुरा होता है। किन्तु वह यह भी जानते थे, कि अब उनकी पीठपर उनके प्रतिपालक अँग्रेज नहीं हैं, प्रजा जराभी ढील पातेही भूखे भेड़ियेकी भाँति उनपर टूट पड़ेगी, और अभी जो गुजारेके लिये मोटी रकम पेंशनमें मिलनेवाली है, वह भी हवा हो जायेगी, इज्जत-सम्मानकी बात तो दूर रही। आखिर अछता-पछताकर बहुतोंने भवितव्यताके सामने सिर नवाया। हिमाचल प्रदेश बनना पक्का हो गया। हाँ, बिलासपुर जैसे कुछ राजाओंको मनमानी तौरसे अलग होनेका मौका दिया गया, जोकि सर्वथा अनुचित था। हिमाचल एक भौगोलिक, सांस्कृतिक और आर्थिक एकाई है, प्रजाकी राय बिना जाने सिर्फ राजाओंकी मर्जीपर इस एकाईका भङ्ग करना न वर्तमानकेलिये अच्छा है, न भविष्यकेलिये। सरदार पटेलने रियासतोंके बारेमें जो रुख लिया, उसका मैं प्रशंसक हूँ। अँग्रेजोंकी भारत छोड़ते समय जो चाल थी, उसे उन्होंने असफल करने में बहुत दूर तक सफलता प्राप्त की। किन्तु रियासतोंके संघ या नये रूपकी स्थापनामें दूरदर्शितासे उतना काम नहीं लिया। यहाँ भी अँग्रेजों द्वारा बनाये जाते प्रान्तोंके समयके इतिहासको दुहराया गया है, जिससे हमारे बूढ़े राजनीतिज्ञोंका शिरदर्द भले ही कुछ कम हो, किन्तु आनेवाली सन्तानोंके रास्तेमें कठिनाई उत्पन्न होगी। आखिर हिमाचल प्रदेश

बनाना था, तो सारे स्वाभाविक हिमाचल प्रदेशको उसके भीतर आना चाहिए था। रियासतें तो सारी आनी ही चाहिये, साथही अल्मोड़ा, नैनीताल, गढ़वाल, शिमला तथा काँगड़ेके सारे जिले और होशियारपुर-गुरदासपुर जिलोंके पहाड़ी भाग भी इसके अन्दर होने चाहिये।

ख़ैर, हम बुशहर क्रांति की बात कर रहे थे। क्रांतिके नेता उस समय दिल्ली में थे, जब कि वहाँ रियासतोंको तोड़कर हिमाचल प्रदेश बनाना पक्का हो रहा था। अब न राजाओंके स्वेच्छाकारी शासनका सवाल था, न उसमें लोहा लेनेका। किंतु प्रजामंडल के कुछ नेता दौड़-दौड़े रामपुर पहुँचे और महाक्रांतिकेलिये कटिबद्ध होकर। बुशहरमें प्रजाका राज्य होना चाहिये, प्रजाका मंत्रिमंडल बनना चाहिये—स्मरण रखिये, हिमाचल प्रदेशका नहीं केवल बुशहर का। आखिर टेहरीने जिस तरह सफलता पाई, उसी तरह यहाँ भी हो सकता है। मास्टर अनुलाल स्कूलके अध्यापक बुशहर प्रजा-मंडलके एक नेता हैं। उनके मस्तिष्क में ख्याल आया, जरूर अपना मंत्रिमंडल कायम करना चाहिये। राजधानी रामपुरमें क्रांतिकेलिये सफलताका मौका न देख वह बीस मील और आगे सराहन पहुँचे। खूब जोशीले भाषण हुये—उलट दो राजाकी नौकरशाहीको, बनाओ अपना राज्य। राज्यके अधिकारी तो वही पुरानी टकसालके चट्टे-बट्टे थे, जिन्दगीभर मुसाहिबी करके पलते रहे, यदि इससे कोई अधिक बात सीखी, तो यही कि जरा भी विरोधी आवाज निकले, तो उसे कुचल दो। उनको क्या पता कि भारत बदल गया है, शासनका पुराना ढंग सफल नहीं हो सकता। अनुलालको दिलका बुखार निकाल लेने दो, लोगोंको समझाओ कि राजाका राज्य अब नहीं रहा, अब है यहाँ हिमाचल प्रदेश, वैसे ही जैसे युक्त प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश। यहाँ भी निर्वाचित मेम्बरोंका मंत्रिमंडल बनकर रहेगा। इतनी मत्थापच्ची कौन करे? अनुलालको पकड़नेके लिये पुलीसके जवान भेज दिये गये। अनुलाल गिरफ्तार हुये। उन्हें ले चले रामपुरकी ओर। जनतामें उत्तेजना फैली। गौरा गाँव पहुँचते-पहुँचते तीन-चार सौ आदमी जमा हो गये। जनताने अपने वीरको पुलीसके हाथसे छीन लिया। गिरफ्तार करनेवाले स्वयं गिरफ्तार हो गये। खबर राजधानी में पहुँची। अगले दिन जज साहब, डी० एस० पी०, ए० एस० पी० पुलीस दलके साथ पहुँच

गये। लोग अपने नेताको देनेको तैयार नहीं हुये, फिर क्या था, चलाओ गोली। गोली चली। कुछ लोग घायल हुये, मरा कोई नहीं। गोली खतम होने पर आई। अधिकारीवर्ग की सिट्टी गुम हुई। एक अधिकारीने निकलकर लोगोंसे बातकी और गोली-बन्दूक लोगोंके हाथोंमें देकर सब वीरोंने आत्म-समर्पण किया।

मास्टर अपने दल-बलके साथ पुलीस और अधिकारियों को बन्दी बनाये रामपुरकी ओर चले। प्रजाका राज्य स्थापित हो गया, इसमें किसीको सन्देह था? कलके शासक और उनकी पुलीस तो आज बन्दी बनकर चल रही थी। नौ मीलके रास्तेमें सारा पहाड़ टूट पड़ा। बन्दी रामपुरमें एक सरायमें बन्द किये गये, राजधानी पर विद्रोहियोंका अधिकार, "मास्टर अनूलालकी जै" होने लगी। मास्टरने जनता को शान्त रखा, न बन्दियों पर मार पड़ी न नगर में लूट-मार होने पाई, यद्यपि उत्तेजित अनभ्यस्त जनताकेलिये यह बिल्कुल स्वाभाविक बात थी। शहर के बनिये महाजन उन दिनों घबड़ाहट के मारे प्राण दिये देते थे। मास्टर अनुलालको यदि विद्रोह का दोषी ठहराया जाता है, तो उन्हें इस सुरक्षाका श्रेय भी देना चाहिये। किन्तु पुरानी नौकरशाही अपने पुराने मानसिक रोगसे मुक्त कैसे हो सकती है?

रामपुर पर क्रांतिकारियोंके अधिकार, पुलिस और अफसरोंके बन्दी होनेकी खबर सरकारके पास शिमला पहुँची। मुख्य-प्रबन्धाधिकारी सर्दार बलदेवसिंह पंजाबी हथियारबन्द पुलिसके साथ रामपुरकी ओर चले। रामपुर पहुँचनेसे पहिलेही प्रजामंडलके सभापति पंडित सत्यदेवजी सर्दारसे मिले। उन्हें लौट जानेकेलिये कहा, नहीं तो जनता किसीको जीता न छोड़ेगी। लेकिन पुलिसदल कहाँ रुकनेवाला था? क्या बुशहरको भारतसंघसे स्वतंत्र होने दिया जाता? जनताने किसीको नहीं मारा, पुलिसको भी गोली चलानेकी जरूरत नहीं पड़ी, यद्यपि मास्टरके आदमी इसे नहीं मानते। वह कहते हैं, पुलिसने कई आदमियों-को मारकर सतलुजमें डाल दिया। उसने एक बछियाको भी मार दिया। तटस्थ आदमियोंका कहना है, कोई आदमी वादिमी नहीं मारा गया, बछिया हल्ला-गुल्लामें पत्थरके गिरनेसे मर गई। पाकिस्तानकी पुलिस तो आई नहीं, फिर बछिया मारनेपर कौन विश्वास करता? तो भी इस बातका विचार काफी किया गया।

मास्टर अनूके बन्दी बन्धनमुक्त हुये, और कलके विजेता बन्दीखानेमें डाल दिये गये। मास्टर अनुलाल बुशहरके महामंत्री नहीं हो सके। वह पाँच दिनों-केलिये इतिहासमें बुशहरके राजा, अंतिम राजा हो सकते थे। लेकिन उनके मस्तिष्ककी उर्वरता यहाँ खतम हो गई थी, अथवा अनुयायी वहाँ तक न जाते। विद्रोहके अपराधमें सात साल की सजा उन्हें हुई, किन्तु पीछे छोड़ दिये गये। मास्टरने जनताकी सेवाकी थी। तभी तो पहाड़की सबसे पददलित कोली जातिभी उनके पक्षमें उठ खड़ी हुई। राजपूत कहलानेवाले बड़ी जातिवालोंने अपने जात-भाईको छुड़ानेकी हिम्मत नहीं की। पुलिसका काम समाप्त हो गया था, किन्तु पुराने शासनशास्त्रमें यह पाठ कहाँ पढ़ाया गया था? पुलिसको जगह-जगह अनेत फैलानेकेलिये छोड़ दिया गया। लोगोंपर अत्याचार हुये, खासकर कोलियोंपर बहुत जुल्म हुये—भेड़ बकरियोंके चटकर जानेका ही नहीं स्त्रियोंपर बलात्कार करनेका भी दोषारोप किया जाता है।

इस तरह बुशहरकी 'क्रांति' दबा दी गई, और 'प्रतिक्रांति' का पल्ला भारी रहा। यदि क्रांति सफल होती, तो कौन जानता है, तिब्बतके सीमांतपर भारत-संघसे बाहर यह दूसरा राष्ट्र खड़ा होकर राष्ट्रसंघकी सदस्यताका उम्मीदवार न होता! आखिर रियासतोंके मिटकर भारत-संघका एक प्रदेश बन जानेपर इस 'क्रांति' और विद्रोहकी आवश्यकता क्या थी? अलग राज्यका मंत्री और महामंत्री बननेकेलिये बुशहरमें ही यह पाप नहीं किया गया। टेहरीके मंत्रिगण भी आज इस बातका आग्रह कर रहे हैं, कि उन्हें स्वतन्त्र टेहरीका स्वतन्त्र शासक रहने दिया जाये। किसी बड़े सूबेमें नाथा गया, तो मंत्री-महामंत्री क्या सभासचिव बननेकी भी सम्भावना तो नहीं रह जाती।

४ किन्नर देशकी ओर

१७ मईको रामपुरसे प्रस्थान किया। यद्यपि मेरे पास एक ही खच्चरका सामान था, किन्तु पहाड़में अकेला खच्चर ले जाया नहीं जा सकता, इसलिये सामानकेलिये दो खच्चर और सवारीकेलिये एक घोड़ेका प्रबन्ध किया गया था। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि ठाणादारसे ही मैं सरकारी खच्चरों और घोड़ोंका व्यवहार कर रहा था। भाड़ेके भी इधर खच्चर चला करते हैं, किन्तु

उनका मिलना कोई निश्चित नहीं रहता। वैसे सरकारी खच्चर पर जितना खर्च आता है, उससे अधिक भाड़े के खच्चरों पर नहीं आता। मैंने शामको हीं कह दिया था, कि हमें बड़े सबेरे चलना है। सवेरे समय से थोड़ी देर बाद खच्चर रवाना हो सके। सर्दारसाहबसे और विद्याधरजीसे बिदाई ली। थोड़ा आगे चलकर घोड़ेपर सवार हुआ। थोड़े ही आगे गये होंगे कि घोड़ा कुछ ठमकने लगा। समझा—शुरू है, आगे ठीक हो जायगा। और चले, किन्तु वही रफ्तार। साथ चलने वाले लड़केसे पूछा—घोड़ेकी पीठ तो कटी नहीं है? लड़केने पहिले इधर-उधर करना चाहा, किन्तु जोर देने पर बोला—हाँ, पीठ कटी है। आखिर रियासती नौकर ठहरे कि। मेरे एक मित्रकी सगी बहिन एक रियासत की विधवा रानी थीं। छोटे भाईके आनेपर आवभगत क्यों न करतीं? चलते समय बहिन रानीने भाईको मिठाई और दूसरी चीजोंके साथ एक अच्छा साफा भी दिया। भला नौकर-चाकरोंके रहते रानीसाहब के भाई अपने हाथसे उन चीजोंको कैसे उठाकर ले जाते। बाहर आकर जब गाड़ीमें भेंट रखी गई, तो साफा नदारद। विदा होकर चले आये भाई क्या फिर लौटकर साफेके उड़नेकी बात कहने जायेंगे—राज्यके नौकरोंको यह बात भली भाँति ज्ञात थी। राज्यके अतिथियों को ऐसा अनुभव अक्सर प्राप्त होता है। खैर मुझे तो घोड़ा भेटमें मिला नहीं था, और न अस्तबल के खासादारको इससे विशेष लाभ हुआ होगा। शायद अच्छा घोड़ा पानेकेलिये भी अस्तबलके बड़े साईसको पहिलेसे बख़शीश देनी चाहिये थी, जिससे मैं अनभिज्ञ था। कटी पीठके घोड़ेपर मैं चार दिन पहाड़ोंको पार करते चिनी कैसे पहुँच सकता था? पहुँच सकता, तो भी मेरे पास वह दिल न था। मैंने घोड़ेको लड़केके हवाले करके कहा—इसे तुरन्त अस्तबल में ले जाकर दूसरा घोड़ा बदलके ले आ; मैं गौरामें प्रतीक्षा करूँगा। वह 'हाँ' करके लौट गया। मैंने विश्वास किया, कि घोड़ा अवश्य गौरा आ जायेगा। थोड़ा आगे एक कनौरा पुरुष मिला। मैंने सोचा शायद लड़का डरके मारे अस्तबलवालोंसे बात न करे, इसलिये मैंने इस पुरुषसे खास सेक्रेटरी बाबू प्यारेलालजीके पास संदेश भेजा।

नौ मील कोई बात नहीं। यद्यपि मैं इधर शरीरसे निर्बल था, और अभी पहाड़की चढ़ाई उतराईका अभ्यस्त भी न हो पाया था, तो भी घोड़ा आनेके

भरोसे बड़ी निश्चिन्तता से आगे चला। तीन साढ़े तीन घंटेमें गौरा डाकबँगलेमें पहुँच गया। गौरा रामपुरसे ढाई हजार फीटसे अधिक अर्थात् समुद्रतलसे ६५१८ फुट ऊँचा है, इसलिये रास्तेमें चढ़ाई भी पड़ी। मुझे दोपहरको वहाँ विश्राम करना था। दो-तीन घंटेमें घोड़ेके भी आजानेकी पूरी उमीद थी। किंतु घोड़ा कहाँ आनेवाला था? आगे चिनी तक खच्चरके साथ जानेकेलिये दौलतराम आ पहुँचे। घोड़ेके बारेमें पूछने पर बतलाया—हाँ वह सही सलामत अस्तबलमें पहुँच गया। झुँझलानेसे क्या लाभ, आखिर यह तो रियासती आतिथ्यका एक अभिन्न अग है। तीन घंटेकी प्रतीक्षा काफी थी। आगे अभी १२ मील चलना था, और रास्ता और भी कड़ी चढ़ाई-उतराईका। गौरामें घोड़ेकी आशा नहीं थी। यही गौरा था, जहाँके कोलियोंने मास्टर अनुलालको छुड़ा लिया था, और यही डाकबँगला था, जिसमें राजकी पुलिस और अधिकारियोंने शरण ली थी, गोली चलाई थी, और अन्तमें आत्मसमर्पण किया था।

१० मीलके रास्तेमें उतराई या समतल पथपर तो कुछ नहीं मालूम हुआ, हिम्मत भी करनेकी जरूरत नहीं पड़ी, किन्तु अन्तिम चार मील कड़ी चढ़ाईके थे। धूप भी तेज थी, ऊपरसे डायाबेटिस वाले आदमीका तालू वैसे ही सदा सूखा रहता है। मत पूछिये अन्तिम चार मीलोंने मेरी क्या गत बना दी। बस यही समझिये 'केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथानुयुक्तोस्मि तथा करोमि' वाली हालत थी। कष्ट असह्य था, किंतु हिम्मत छोड़नेकी बात न थी, जानता ही था, बिना सराहन पहुँचे शरण नहीं। रास्तेमें बुशहरी नारियाँ डाँड़ेपरके किसी मेलेसे खूब बनी-ठनी लौट रही थीं, कोई गीत भी गा रही थीं, किन्तु यहाँ देखने-सुननेकेलिये दिल कहाँ था? आगे तो चल रहा था, किन्तु हर पाँव घण्टे पर जान पड़ता था, पैरोंमें नई पंसेरी बाँधी जा रही है। क्या दिल माननेकेलिये तैयार था, कि आज ७६वें मीलपर (शिमलासे) पहुँचेंगे। लेकिन आखिर २१ मीलकी यात्रा करके सूर्यास्तके समय सराहनके डाकबँगलेपर पहुँच गया।

बँगला बंद था। कोई मेला हो और पहाड़ी जवान वहाँसे अनुपस्थित हो, यह क्या कोई होनी बात है? मालूम हुआ चौकीदार साहेब वहाँ गये हुये हैं,

आज रातको शायद ही लौटें। मेला तो होता है किसी बड़े शक्तिशाली देवताका ही। किन्तु उसमें डटकर शराब पीना, नाचना-गाना सबसे आवश्यक चीज है। आस-पासकी सारी तरुण-सौंदर्य-राशि जहाँ राशिभूति होती है, फिर "वहाँ नहीं यहीं बैकुन्ठा" माननेवाले क्यों पिछड़ेंगे। खैर, भंगी अर्थात् कोली बूढ़ा कुछ बीमार था, इसलिये वह मेला न जा सका था, नहीं तो उस थकावटमें सात हजार फुटकी रातको बाहर घासपर बैठना बहुत प्रिय नहीं लगता। बूढ़ेने कहींसे कुर्सी पैदा की। पूछताछ करनेपर मेट (चारस) के पास चाभी निकल आई। अब चाहे चौकीदार रातभर मेला करता रहे, हमें पर्वाह नहीं थी। कुछ देर बाद दौलतराम भी खच्चरोंको हाँके आ पहुँचे, किन्तु उनकी मनहूस सूरत देखकर हमारी अवस्था बेहतर नहीं हो सकती थी। जान पड़ता था, वह हमसे भी अधिक थके-माँदे हैं। उन्होंने जो भी खच्चरोंके लिये दाने-चारेकी फर्माइश की, देकर पिंड छुड़ाया-प्रति-खच्चर प्रति-दिन दस रुपयेसे क्या कम खर्च था।

दोपहरको छाछ भर लिया था, इसलिये भूख तो लगनी ही ठहरी, किन्तु इस समय थोड़ा लेट जानेका ख्याल था। नेगी ठाकरसेनका पत्र यहाँके मिडिल स्कूलके मास्टर साहबको मिल गया था और मास्टर सोहनलाल पता लगते ही आये—सराहन बस्ती कुछ फर्लाङ्ग ऊपर है। हम तो दौलतरामकी रसोईमें शामिल होना चाहते थे, किन्तु मास्टरजीने घरसे भोजन और दूध लानेका आग्रह किया। एवमस्तु! किन्तु हमें सबसे अधिक चिन्ता थी कलकी यात्राकी, अगले दिन पैदल चलनेकी शक्ति नहीं थी। मास्टरसाहबने जितनी जल्दी घोड़ा मिल जानेकी बात की, उसपर मेरा विश्वास नहीं हुआ—पहाड़ी लोग न करना जानते नहीं, किन्तु हर "हाँ" को पूरा करना उनकी शक्तिके बाहर है। फिर पूछनेपर मास्टर-सोहनलालने कहा—घोड़ा हमारे परिचित बनियेका है। मुझे २२ साल पहिले नौलाके बनियेके साथका अनुभव याद आ गया, कहीं यहाँ भी वैसा ही न हो। दिल पत्थर करके सोचा—खैर, यहाँ सिरपर छत तो है, साफ सुथरा पी० डब्ल्यू० डी० का बँगला, पलंग, मेज, कुर्सी मौजूद है। सराहनमें दूध, भोजन मिल जायेगा ही, हाँ खचरोंको भी आदमीके साथ बीस-बाइस रुपये रोज खिलाने पड़ेंगे। किन्तु मैं आजकलके रुपयोंको खर्च करते समय पहिले चारसे भाग दे दिया करता हूँ, आखिर १९३९ में चार आनेकी चीज़का

ही मूल्य तो आजकल एक रुपया है। खाना लाकर मास्टरजीने कहा—बनिया घोड़ा दे देगा। क्यों नहीं देता? शायद उसका लड़का स्कूलमें मास्टरजीके पास पढ़ता हो। और मास्टरजीके पास नेगी टाकरसेनकी महापंडितके बारेमें जबर्दस्त चिट्ठी आई थी। मास्टरजीने कहा—घोड़ेका किराया नचारतक अर्थात् २३ मीलके लिये २० रुपया माँगता है। बीस यानी ५ रुपये, कोई पर्वा नहीं मैंने घोड़ेको ठीक कर देनेके लिए कहा।

सराहन ऐसा महत्वहीन स्थान नहीं है, कि रातभर डाकबँगलेमें रहकर उससे छुट्टी ले ली जाये, लेकिन मुझे फिर इसी रास्ते लौटना था। सराहनका सतयुगका इतिहास भी ढूँढ़नेपर मिल सकता है। द्वापरके अन्तमें जब श्रीकृष्ण-चन्द्र आनंदकंद द्वारिकामें वास कर रहे थे, तो इसका नाम शोणितपुर था। यही प्रचंड-भुजदंड वाणासुरकी राजधानी थी। यहीं उसकी कन्या उषाने चित्र-लेखाके खींचे चित्रोंसे अपने स्वप्नाभिलषित प्रियतम अनुरुद्धको पकड़ मँगवाया था। उसी अनुरुद्धकी अविच्छिन्न परम्परा पिछले महाराजा पदमसिंह और उनके वर्तमान चिरंजीवी वीरभद्रसिंहतक चली आई है। प्राचीन नाम शोणितपुर और वर्तमान नाम सराहनके महत्वके बारेमें इससे बढ़कर और क्या कहा जा सकता है? और प्रमाण चाहिये, तो वह स्वयं सराहन नाममें दिया है, जो शोणितपुर से ही बिगड़ कर बना है। किस भाषातत्व या व्याकरणके अनुसार, यह यहाँके पंडित प्रवर मूर्खजपाटानंदसे पूछ लीजिये, जो यहाँसे थोड़ाही नीचेके रावी गाँवमें सतयुगकी पोथी लेकर बैठे हुये हैं। इस पोथीको न इनकी हजार पीढ़ी पढ़ सकीं और न वह खुद। बल्कि वह पोथी तहपर तह कपड़ोंसे लिपटी सारे कलियुगमें भी न खुली और यदि रामजीकी इच्छा होगी, तो आग-वाग लगनेपर कोयला बनकर ही खुलेगी।

सराहन रामपुरसे पहिले काफी समयतक बुशहरकी राजधानी रहा, जो पीछे गर्मियों भरकेलिये ही श्रीचरणोंसे पवित्र होता रहा। यहीं मैंने १६२६ में महाराजा पदमसिंहके दर्शन किये थे। उस समय रामपुरसे यहाँ तक टेलीफोन भी था। अब टेलीफोन खतम हो चुका है, रास्तेके खंभे भी बहुतसे लेट गये हैं। २१ मील लंबा तार मुफ्तमें लुट रहा है। अधिकारियोंको पता नहीं है, कि जल्दी ही उन्हें नचारतक टेलीफोन नहीं तार पहुँचाना होगा, यदि हिमाचल सरकारके

स्वप्न "सतलुज उपत्यको फलोंकी खान" को जाग्रतमें परिणत करना है। राजा और उनकी ग्रीष्मकी राजधानी न सही, सराहन अच्छा बड़ा गाँव है, और यहीं सारे बुशहरकी अधीश्वरी भीमाकाली आपरूप निवास करती हैं। मुझे इन बुशहरियोंपर झुँझलाहट आती है। हमारे देखते-देखते गढ़वाली आधे दर्जन नकली काशी, नकली प्रयाग यहाँतक कि नकली बद्रीनारायण भी बनवाकर मालामाल हो गये—"नकली बद्रीनारायण" यह मैं गंगोत्तरीके पंडोंके गुरु वैदिक जीकी बात मानकर कहता हूँ, जिनका कहना था कि असली या आदि बद्री भीट देशमें थोलिङ्ग मठमें हैं, जिन्हें लामा लोग पूजते हैं। भीमाकालीके आद्या भगवती होनेमें संदेह नहीं। कहते हैं उनके खजानेमें राजा रामचंद्रजीके रुपये-पैसे रक्खे हुये हैं, फिर तो त्रेतानकके लिए बात पक्की ठहरी। माईके दर्शनकी लालसा तो है लौटने समय, लेकिन मुश्किल है कि माईका द्वार मेरे जैसे बज्र नास्तिक तो क्या बुशहर राज्यके बाहर पैदा हुये निपट आस्तिकके लिए भी बंद है। खैर, और नहीं लौटते समय चौखटका तो दर्शन हो जायेगा और अगस्तके सूर्यनारायणने कृपा की, तो माईके मंदिरके चित्रका दर्शन आर्यावर्तके पुण्यवान प्राणियोंको भी हो जायेगा। खजानेके रामचंद्री रुपयोंके दर्शनकी लालसा तो किसीकी भी पूरी न होगी, क्योंकि अनूशाही प्रचारके अनुसार माईके खजानेको तोड़कर सर्दार उसे न जाने कहाँ उठा ले गया।

× × × ×

मिति १८ मई दिन मंगल ईसवी साके १९४८ का ब्राह्ममुहूर्त आया। मास्टर सोहनलाल कुछ प्रातराश लेकर पहुँचे, और इस संदेशके भी साथ, कि घोड़ा आ रहा है, आज ही उसे नचारसे लौटा दीजियेगा। २३ मील पहाड़ी यात्रा थी, किन्तु कल तो मैं पैदलही २१ मील चला आया था। मास्टर साहबके वर्णनसे बनियेका घोड़ा राजा भोजके कलवाले कठघोड़ेसे कम तेज न था। जलपान किया। दौलतरामको ताकीद करके सबेरे ही रवाना कर दिया। शाम हीको उन्हें दिनकी रोटी गाँठ बाँध लेनेकेलिये कह दिया था। अपनी रोटी तो आरामसे मिल रही थी, चाहे आटा सेर सवा सेरका ही हो, किन्तु रास्तेमें कनक-को पानीके बिना झुलसते देखकर चित्त खिन्न होता था। मेघ देवता प्रसन्न नहीं थे और सतलुज माई—नहीं बाबा सतलुज, क्योंकि यहाँ वालोंने सतलुजका

नाम समंदर रख छोड़ा है—मुफ्त ही इतनी बड़ी जलराशि बहाये लिये जा रही हैं। सूर्यनारायन उग आये। आसमानमें बादलकी कहीं एक फुटकी भी न थी। थोड़ी देरमें घोड़ा भी आ पहुँचा। कादम्बरीमें वर्णित इंद्रायुधसे डील-डौलमें क्या कम था? हाँ, पहाड़ी टाँघनोंमें अर्थात् उसकी अपनी जातिमें वह सबसे बड़ा घोड़ा था। कहते थे, उसे कोई सौदागर यारकंदसे बेचनेकेलिये लाया। राजा पदमसिंहने अपनेलिये खरीदा था, जो पीछेकी राजविराजीसे होते अब बाणासुरकी राजधानी के बनियेंके हाथमें पड़ा, और शायद कुछ समय बाद उसके भाग्यमें लदनी बदी है। मुझे उसके भाग्यपर तरस आया। क्या जाने यारकंदमें आये चंगेजखाँके श्यामकर्ण घोड़ेका वह वंशज हो और उसकी यह भवितव्यता!

यह कहना शायद भूल गया, कि चौकीदार साहेब रातको ही सही-सलामत पहुँच गये थे। चलते समय डाकबँगलेका रजिस्टर मँगाया। देखा वह पी० डब्लू० डी० का है। अपने राम २२ वर्ष पहिलेकी स्मृतिपर समझते थे, तिब्बत-हिंदुस्तान-सड़कपरके सारे बँगले वहाँके जंगलोंकी तरह पंजाबके जंगल-विभागके हैं, और इसी विश्वासपर पंजाबके चीफकंजर्वेटर साहेबसे आज्ञापत्र भी लाये थे। रजिस्टरमें पूछा गया था—आज्ञा-पत्र? पंजाब सरकारके एक विभागका आज्ञा-पत्र तो था, किन्तु चाहिये प्रधान इंजीनियरका। जिस चौकीदारपर हम आते समय इतना बौखलाये थे, वह आज्ञापत्र दिखलानेकेलिये कह सकता था, और न देनेपर अर्धचंद्र दे सकता था। किन्तु सौभाग्यसे सरकारी कायदे-कानून जैसे निष्ठुर होते हैं, वैसे उसके यह साधारण सेवक नहीं हैं। समझमें नहीं आता, दस-पाँच दिन छोड़कर इन बहुधन संपादित बँगलोंको सालभर बंद रखनेसे सरकारने क्या लाभ समझा है? सरकारी अफसरोंको पहिले स्थान मिले ठीक, आज्ञापत्र पानेवालोंको भी पहिले स्थान दिया जाये; किन्तु खाली बँगलेको साधारण यात्रीकेलिये क्यों नहीं खोल दिया जाये? मैं डाकबँगलोंको धर्मशाला बनानेकी सिफारिश नहीं करता, बल्कि मैं तो कहूँगा, एक रुपया प्रतिदिन शुल्क बहुत कम है, उसे कमसे कम दो या तीन कर देना चाहिये। बँगले और उसके असबाब इतने अच्छे हैं, कि आदमीको तीन रुपया रोज देनेमें भी उज्र नहीं होना चाहिये। बस उक्त शुल्कके साथ खाली बँगलेका दर्वाजा सबकेलिये खोल

देना चाहिये। भला सोचनेकी बात है, यदि किन्नरकी रम्य पर्वतस्थलीमें खाने-रहनेका अच्छा प्रबन्ध हो, हजारोंकी संख्यामें यात्री मैदानसे यहाँ विचरनेकेलिये आये, तो इसमें यहाँके निवासियोंको लाभ है या नहीं ? इंगलैंड, स्विट्‌जरलैंड और दूसरे पश्चिमी देश करोड़ों रुपया विज्ञापनमें खर्चकर सैलानियोंको अपने यहाँ आकर जेब खाली करनेका निमंत्रण देते हैं, और यहाँ है एक सरकार, जो आनेवालेको भी दुतकारती है। खैर, हिमाचल सरकारकी भूमिमें दालभातमें मूसलचन्द पंजाब सरकारका यह पी० डब्लू० डी० पुराने अँग्रेज प्रभुओंके चरण-चिह्नपर चल रहा था।

अब अपना जंगल, अपनी सड़क, अपना बँगला हिमाचल सरकारके हाथमें आयेगा, फिर उसे चाहिये कि यात्रियोंको आनेकेलिये अधिकसे अधिक सुभीता दे। मैं तो यह भी आशा करता हूँ, कि आगे चलकर हर बँगलेके साथ रसोइया, चाय-टोस्ट और भोजनका भी प्रबंध हो और सौभाग्यसे इस भूमिको यदि 'सूखा' न बनना पड़े, तो किन्नर देशकी स्वयंप्रसूता उदुंबरवर्णा द्राक्षी मदिरा भी अतिथियोंकेलिये सुलभ होगी। उदुंबरवर्णा सुराका नाम शास्त्रोंमें पढ़कर मुझे उसके प्रति बहुत सम्मान हुआ था, और "शराब गुलँगू" और "क्लडरेड वाइन" की सुन्दर ध्वनियोंसे वह और बढ़ा था। किन्नरमें आकर पता लगा, कि वहाँ श्वेत द्राक्षी मदिराके सामने रक्ताभाको घटिया समझते हैं। किसीभी काले अंगूरके रसका कुछ समय खास तौरसे रख छोड़नेपर वह उदुंबरवर्णा सुरामें परिणत हो जाता है, किन्तु महाश्वेता सुरा भापसे चुवानेपर बनती है, अतएव उसका दाम भी अधिक, मान भी अधिक है। किन्नर-देशने इधर कुछ सालोंमें द्राक्षी मदिरा बनानेमें अधिक प्रगति की है। वैसे द्राक्षा (अंगूर) और मदिरा किन्नर-केलिये नई चीज नहीं है। पिछली सदीमें पोंआडी (चिनीके पार) के जागीर-दारने अफसोस प्रकट किया था "किन्नर लोग द्राक्षाके बागकी ओरसे उदासीन हो रहे हैं, यहाँ बहुत तरहके अंगूर थे, किन्तु अब पोआडीमें सिर्फ अठारह जातिके रह गये हैं।" नेगी सन्तोखदास (रोगी)ने यह कथा कहते हुये बत-लाया, अब पोआडीमें एक लता भी द्राक्षाका नहीं है।

किन्नरके मानसूनबाह्य इलाकेमें फलोंके साथ द्राक्षाने काफी प्रगति की और उसमें मदिराका मुक्त मार्ग बड़ा सहायक हुआ है। पिछली बार १६२६ में जब

मैं किन्नरसे गुजरा था, उस समय महाराजा पदमसिंहने अपने राज्यमें मदिरा बन्द कर दी थी (शायद पीना नहीं बनाना बन्दकर दिया था, जिसमें लोग सरकारी दूकानोंसे खरीद कर पीयें); लेकिन कायदा चलने नहीं पाया। लोग चुपचाप बनाकर पीते, और राजको अँगूठा दिखला देते। पीछे युवराजके मुन्डन-महोत्सवमें राजाने मदिराके प्रतिरोधको बन्द कर दिया। बतलानेवालोंने गंभीरताके साथ कहा—यहाँके देवताओंने भी बहुत जोर लगाया, और राजासे कहा "मदिरा बिना हमारा काम नहीं चलता।" उधर राजा करीब-करीब अपने परिवारका संहार करा चुका था। और कितने दिनोंतक डटा रहता? फिर जिस तरह भगवान् ईसा मसीहके नायब रोमके पापा, एकलिंगके नायब, उदयपुरके राजा, उसी तरह तो भीमाकालीके नायब थे बुशहरके राजा। और भीमाकाली कमसे कम द्वापरसे कनोरके शिबू (लाल शराब) की आदी थीं, रोगीसे शिबू लानेकेलिये एक परिवारको अब भी जागीर मिली हुई है।

पाठकोंको मालूम हो, कि यदि मार्गका अच्छा प्रबन्ध और खाने-रहनेके अच्छे स्थान बन जायें, तो भाग्यवानोंको यहाँ "शिबू" उदुंबरवर्णा किन्नरी सुरा सुलभ रहेगी। सिर्फ खय्यामोंकी आवश्यकता है, साकी हजारों सुराही लिये यहाँ तैयार मिलेंगे। शम्पेन और बरांडीको मात करनेवाली किन्नरी-सुरा यहां मौजूद है। मैं उसके घरमें पहुँच गया हूँ, किन्तु अभाग्यकेलिये क्या किया जाये, पानीमें "मीन प्यासी" कहना चाहिये। इस जन्ममें तो ब्रह्माने सुरा चखना नहीं लिखा, और अगले जन्मपर विश्वास नहीं। मैं न सही दूसरोंका ही रास्ता साफ हो। मैं चाहता हूँ, हिमाचल सरकारका संकल्प पूरा हो, नचारतक मोटर-सड़क बन जाये, और मेरा भी स्वप्न पूरा हो, पचीस मीलकी रोपवे (तारगाड़ी) चिनीतक लग जाये। फिर क्या जरूरत होगी बाहर करोड़ों रुपया भेजकर अंगूरी शराब मँगानेकी, जबकि किन्नरी सुरा सारे भारतकेलिये सुलभ हो। यह तो मुझे विश्वास है, कि चाहे सारा भारत "सूखा" बन जाये, किन्तु किन्नरके देवताओंसे उत्प्रेरित यहाँके मनुष्य किन्नर-देशको उसी तरह सूखा नहीं होने देंगे, जिस तरह उन्होंने पदमसिंहके कानूनको ताकपर रखकर किया।

हाँ, तो हमें आगे चलना था, और इन्द्रायुध भी आकर तैयार था, इसलिये पाठकोंको भी प्रतीक्षा कराना अच्छा नहीं। इन्द्रायुधकी प्रशंसा मैंने या मास्टर

सोहनलालने गलत नहीं की। वह वस्तुतः सुन्दर, स्वस्थ और बड़े कदका घोड़ा था। घोड़ेपर अच्छी चमड़ेकी काठी लगी हुई थी। वैसे घोड़ेसे मैं उतना डरता नहीं, किन्तु पहाड़ी सड़कपर अड़ियल घोड़ेसे पाला पड़ना अच्छा नहीं है। मैंने थोड़ी देर चढ़नेके बाद समझ लिया, कि इन्द्रायुध लगाम क्या हल्की छड़ीको भी बर्दाश्त कर लेता है, तीरकी तरह तेज़ तो नहीं किन्तु बहुत सुस्त भी नहीं चलता। घोड़ेके साथ साईस भी था, जिसका इस बातपर बहुत जोर था, कि वह बनियेका नहीं राजाका साईस है, किसी कामकेलिये सराहन आया था, बनियेने हाथपैर जोड़े, इसलिये साथ चल रहा है। वह समझता होगा, उड़ते पंछीको यहाँकी बात क्या मालूम ? मैं जानता था, राजाके विराज होनेपर न जाने कितने घोड़े और साईस ही बेमालिकके नहीं हुये हैं, बल्कि भीमाकालीके प्रतापसे जीनेवाले सारे रावी गाँवके ब्राह्मणोंमें भी कुहराम मचा हुआ है, सरकारने देवीके अस्सी हजारके खर्चको घटाकर पन्द्रह हजारसे कम कर दिया है। ब्राह्मण-देवता जरूर घरपर निराहार पुरश्चरण करते होंगे। उनकेलिये इससे अच्छा तो फिरंगियोंका राज्य था। अच्छा देवताओ ! कोई पर्वा नहीं, तुम्हारे पास कपड़ेमें लिपटी वह सतयुगकी पोथी है। सुनते हैं उसमें सोना नहीं पारस बनानेकी विधि लिखी है।

सराहन पहाड़पर ढलवाँ बसा हुआ है और काफी नीचेतक। यह राजधानीके लायक स्थान है, लेकिन राजा केहरसिंहको न जाने किसने भाँग खिला दी, जो राजधानी रामपुर ले गये। सराहनके बारेमें और फिर कभी। डेढ़-दो मील चलनेपर एक पर्वतबाही—जिसे यहाँवाले धार कहते हैं—के पीछे पहुँचते ही सराहन आँखसे ओझल हो गया, लेकिन अभी हम किन्नर देशमें नहीं पहुँचे। अभी तीन-एक मील और चलना पड़ा, मान्योटीकी धार (पर्वत-बाही) आई। यहाँसे हम असली किन्नर-देशमें प्रविष्ट हुये। स्त्रियाँ ऊर्ण सारी पहने थीं। हाँ, ऊर्ण सारीको ऊनी साड़ी न मान लीजिये, यह काफी लम्बा चौड़ा पतला कम्बल होता है, जिसे स्त्रियाँ दाहिना कंधा खोले काँटेसे इस प्रकार पहिनती हैं, कि शिरको छोड़कर सारा शरीर ढँक जाता है। यहाँसे नीचेके लोगोंको किन्नर लोग कोची कहते हैं। कोची स्त्रियाँ शिरपर रूमाल बाँधती हैं, किंतु किन्नरियाँ अपने पुरुषोंकी भाँति टोपी लगाती हैं, जिसके तीन भागमें उठे कनपटे जाड़ोंमें नीचे गिरकर कनटोपका काम देते हैं।

रास्ता तिब्बत-हिन्दुस्तान-सड़कका था, किन्तु सड़क कैसी थी, इसे इसीसे समझ लीजिये, कि मैंने यहाँ चलकर तै कर लिया, कि यदि चिर्नीको अपना गर्मियोंका हेडक्वार्टर बनाना है, तो प्रतिवर्ष नीचे जानेका ख्याल छोड़ना होगा। रास्ता बहुत परिश्रमसे बनाया गया था, इसमें शक नहीं, किन्तु वह कितनी ही जगहोंपर कठिन था। यहाँ पहाड़ अधिक वृक्षसंकुल थे। पहिलेकी स्मृतिने धोखा देकर समझा रखा था, कि इस मोड़से कनम् तक आदमी लगातार 'देवदार जूड़ी छाँह' में ही जा सकता है, किन्तु यह धारणा निराधार थी। कहीं-कहीं देवदार भी थे, मगर सभी जगह नहीं। चौराके डाकबँगलेसे हमें कुछ लेना देना न था। साईसके साथ हम आगे बढ़ते गये। बतलाया गया था, शोलडिङ् खड्डुके पार रास्ता बहुत बुरी तरहसे टूटा हुआ है। मैंने समझा था, शायद वहाँ मुझे और घोड़े दोनों को टाँगकर पार करना होगा। रास्ता टूटा जरूर था, किन्तु लोगोंने खेतसे अस्थायी मार्ग बना दिया था। हम आसानीसे दूकान और सरायके पास पहुँच गये। सरायके धुपहले और शायद खटमल-पिस्सुओंसे भरे बराँडेको न पसन्द कर मैंने दूकानकी छाँह पसन्द की।

खच्चर और दौलतराम न जाने कितने पीछे छूटे थे, इसलिए उनके आ जानेपर ही आगे चलना था। बनिया बीमार था। दूकानमें काफी आलू पड़े थे और गुड़की भेलियोंपर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। मेरे खाने खरीदनेकी वहाँ कोई चीज न थी। पासके कड़े खेतमें अपनी रावटी डाले ग्यारह-खम्पा पड़े थे। खम् तिब्बतमें चीनके सीमापर एक प्रदेश है। शायद इनके पूर्वजोंमें कुछ किसी समय खमूसे खानाबदोशी करने इधर आये हों, किन्तु अब यह न भाषा हीमें खम्के हैं न वेषभूषा हीमें। शायद इसीलिये इन्हें सिर्फ खम्पा (खमूवाला) न कहकर ग्यगर (भारत)-खम्पा कहते हैं। इन लोगोंका कहीं घर नहीं है, किन्तु यह भिखमंगे नहीं हैं। इनका काम है छोटा-मोटा सौदा खरीदकर इधरसे उधर बचना। जाड़ोंमें ये मंडी, शिमला, हरद्वार, दिल्ली तक पहुँचते हैं, और गर्मियोंमें सतलुज और गंगाकी घाटियोंसे पश्चिमी तिब्बत। यह तिब्बती प्रजा हैं या भारतीय, इसका ठीकसे जवाब यह भी नहीं दे सकते। पासमें खम्पा बच्चोंको देखकर मैंने उनसे भोटिया भाषामें कुछ कहा, उनके कान खड़े हो गये और सयानोंको मालूम हुआ। एक तरुण और उसकी माँ पास आई। मेरे जैसे

वेषभूषाके आदमीको फरफर ल्हासाकी नागरिक भाषामें बात करते देखकर पहिले आश्चर्य हुआ। मैं बनियेके आदमीसे पीनेकेलिये पानी माँग रहा था। तरुणने कहा—मैं चाय लाता हूँ। उसे न जाने कैसे विश्वास हो गया, कि मैं छुआछूत नहीं मानता हूँगा। यद्यपि गर्मीमें चलकर आनेसे मुझे ठंडा पानी अधिक पसंद था, किन्तु तरुणके सत्कारको ठुकरा नहीं सकता था। तरुण बहुत ही संस्कृत मालूम हुआ, कुछ पढ़ा भी था, भारतकी राजनीतिक प्रगतिकी कुछ मोटी-मोटी बातें भी जानता था। सारनाथ, बोधगया भी एकसे अधिक बार हो आया था। माँ चाय बनाने चली गयी, और मैं तरुणसे बातचीत करने लगा। मेरी दृष्टि उसके स्वच्छ स्वस्थ प्रसन्न मुँहपर थी। कान और जीभ बातमें लगे थे, लेकिन मन कभी-कभी अतीतकी ओर चला जाता था। मेरे मनमें कभी ख्याल उठा था—इन्हींकी भाँति निर्द्वन्द्व हो गदहा, खच्चर और तंबू लिये एक देशसे दूसरे देशमें घूमूँ। काश, मैं बीस बरसका हो जाता, फिर इसी तरुणसे कहता—लो दोस्त! अब मुझे भी अपने परिवारमें शामिल कर लो, खानेकेलिये ही नहीं, अपने साथ काम करनेके लिये भी, अपने दुःख सुखमें शामिल होनेकेलिये भी, माँमें तो हकीकी साझीदार नहीं बन सकता, किन्तु पत्नी हमारी एक रहेगी और हम पश्चिमी तिब्बतसे भारततक ही नहीं विचरेंगे, बल्कि तिब्बतके महा-मैदानको पार करते सुदूरपूर्व खम् तक चलेंगे। रास्तेमें दुर्गम पथ ही नहीं लाँघना पड़ेगा, बल्कि बन्दूकधारी अश्वारूढ़ डाकुओंसे भी मुकाबला करना पड़ेगा, किन्तु मैं तुम्हारे साथ रहूँगा। किन्तु क्या पचपन सालसे बीस सालके होनेकी औषधि दुनियामें प्राप्त हुई है?

अब खम्पा लोग ऊपरकी ओर जा रहे थे। खानाबदोशी जीवनके बारेमें पूछनेपर तरुणने कहा—जीवन तो कठिन है, किन्तु उसे छोड़कर बसते नहीं बनता। बसनेपर आजकी तरहकी खान-पानकी सामग्री जमा करना हमारे लिये संभव नहीं होगा। पश्चिमी तिब्बतमें पहुँचते हैं, वहाँ यथेष्ठ मांस, मक्खन सुलभ होता है, यहाँ भी आस-पासके लोगोंसे अच्छा खाते हैं, अच्छा पहनते हैं, न ऊधोका लेना न माधोका देना। उसकी बातमें सचाई थी, इससे कौन इन्कार कर सकता था। चाङ्-थाङ् (तिब्बतके निर्जन बयाबान) में चीनी और सिग्रेट कहाँ और यहाँके गाँवोंमें रोज-रोज मक्खन-मांस कहाँ? तरुण बुद्ध-धर्म-

का भक्त था, ब्राह्मणोंके धर्मको सम्मानकी दृष्टिसे न देखता था और साथ ही न जाने कहाँसे कम्यूनिस्ट पार्टीका नाम भी जानता था। कांग्रेसकी प्रशंसा करता था। कहता था, भोटमें भी हाकिमों, जागीरदारोंका जुल्म खतम होना चाहिये। हमारी बातचीत भोट भाषामें हो रही थी, जिसे उसकी माँ भी ध्यानसे सुन रही थी। कनौरा दूकानदार चारपाईपर पड़ा हमारा मुँह देख रहा था और शायद एक भद्रवेषी (शुभ्र कुर्ता-धोतीधारी) पुरुषको भोटियाकी चाय पीते आश्चर्य भी कर रहा था। आश्चर्य मेरे ही लिये, क्योंकि यद्यपि चिनी तहसीलके शहरके ये कनौरे ब्राह्मणोंके जालमें फँस चुके हैं, किंतु लामा लोगोंकी मंत्र-शक्ति और सिद्धाईसे लाभ उठानेसे बाज नहीं आते। यह वस्तुतः रामखुदैयावाले लोग हैं।

दौलतराम कितनी ही देर बाद सिर दर्द लिए आये। उन्हें धीरे-धीरे शामतक नचारतक पहुँचनेकेलिये कहकर हम आगे चले। अब चढ़ाई थी। धूप सीधे बायेंसे पड़ रही थी, जिससे आड़ करनेकेलिये वृक्षोंकी छाया नहीं थी, पहाड़ वनस्पतिविहीन न था। चढ़ाई नरम इसीलिये मालूम हो रही थी कि हम दूसरेकी पीठपर थे। चढ़ाई दो मील रही होगी या ज्यादा, उसे पूरा करनेके बाद अब हम अवश्य देवदारोंके सुन्दर बनमें थे, सारे रास्तेका यह सुन्दरतम भाग था। सारा पर्वतगात्र तुङ्ग सरल सदाहरित देवदारुओंसे ढँका था। बीच-बीचमें कुछ गाँव भी मिले। एक सड़कसे नीचे पास हो था, जिसमें मन्दिर था। अठारह-बीस खूँदका सुङ्रा गाँव यही है। (इसीके पास किसी गुफामें बाणासुरकी सुभार्याने सात बहिन-भाइयोंको जन्म दिया था, जिनमें एक यहींका मेशु है, इसके दूसरे दो भाई भावा और चगाँव (ठोलङ्)के मेशू हैं, और सबसे बड़ी बहिन चिनीके पास कोठीकी देवी है, जो सबसे होशियार निकली, जिसने सभी भाई बहिनोंको चकमा देकर दाय-भागका असली सार अपने हिस्सेमें कर लिया।)

देवदारोंके सघन बनमें चलनेमें बड़ा आनन्द आ रहा था और घोड़ेको मैं उसके मनसे चलने दे रहा था।

२३ मीलकी यात्रा पूरी करके साढ़े पाँच बजे हम नचार पहुँचे। नचारमें पी० डब्ल्यू० डी० का बँगला नहीं बल्कि जंगल विभागका बँगला है। बँगला

सड़कसे कुछ ऊपर है। घूमकर वहाँ पहुँचे। सहायक कंजरवेटर ढिलन महाशय-के पास, ऊपरसे चिट्ठी आगई थी, किंतु उन्हें यह नहीं पता था, कि मैं किस दिन पहुँच रहा हूँ। बँगला बड़ा और दोतल्ला था, किंतु जान पड़ता था एकसे अधिक परिवार वहाँ रहता था, इसलिये भराभरा सा मालूम होता था। ढिलन साहब बड़े प्रेमसे मिले। उनकी धर्मपत्नीने भी नमस्ते करनेमें संकोच नहीं किया। अभी मुझे यह नहीं पता था, कि ढिलन अपने कालेज (देहरादून) के सबसे मेधावी विद्यार्थी थे। बातचीतमें यह तो मालूम हुआ, कि वह अनुभव प्राप्त करनेकेलिये विदेश भी जा चुके हैं। पंजाबी जानकर मुझे कुछ खेद हुआ, कि शायद उनका परिवार भी पंजाबके उन अभागे परिवारोंमें है, किंतु ज्ञात हुआ, वह जलंधरके रहनेवाले हैं। गर्मियोंमें उनका दफ्तर नचारमें रहता और जाड़ोंमें नीचे फल्लोरमें। चाय पीनेके बाद वह हमें बागमें ले गये। अभी फलोंके पकनेमें काफी देर थी, किन्तु गिलास (चेरी) ने हमें खाली लौटने नहीं दिया। गोभी और दूसरी तरकारियाँ लगी हुई थीं। कुछ महीने बाद यह फलतरकारी-संपन्न निवास होगा, किन्तु अभी तो चीजोंकी कमीकी शिकायत थी।

शाम हो रही थी, और अभी दौलतरामका पता नहीं। मैंने दूसरा आदमी दौड़ाया। चिराग वाला जाने लगा, किन्तु दौलतरामका अब भी पता नहीं। क्या सिर-दर्दने बुखारका रास्ता तो नहीं ले लिया? क्या वह पौंडाके डाक-बँगलेमें तो नहीं रह गया? घोड़ेवालेको लौटाते समय मैंने दौलतरामको जल्दी आनेकी ताकीद तो कर दी थी। मेरे पास कपड़ा मामूली था, जो ७००० फुटकी सर्द रातके लिये काफी नहीं था। ढिलन साहेबने चादर दे दी, किन्तु मेरी चिन्ता बढ़ रही थी। तीसरे आदमीको रास्ता देखनेकेलिये भेजनेकी बात हो रही थी, उसी समय किसीने आकर कहा, खच्चर काफी दिनसे ऊपर उतरनेकी जगह पहुँच चुके हैं, खच्चरवाला रोटी बना रहा है। मैं नाहक डर और अपनेको कोस रहा था—दौलतराम जरूर १०५ डिग्रीके बुखारमें बेहोश होकर कहीं पड़ रहा, और खच्चर मनमाने किसी ओर चले गये।

बँगला भरा हुआ था, इसलिये मुझे संकोच हो रहा था, मेरे आनेमें अवश्य दम्पतीको कष्ट होगा। भोजनोपरान्त गृहपतिने संकोच करते हुये कहा, एक दूसरा क्वार्टर है, वहाँ रहनेमें तो कष्ट होगा। लालटेन लिये वह उस

मकानमें ले गये। यद्यपि वह डाकबँगले जैसा तो नहीं था, किन्तु काफी स्वच्छ था। नेवारका पलंग और मेज-कुर्सी भी थी। और क्या चाहिये? अभी तक ढिलन साहेबसे ही बात होती रही, किन्तु यहाँ बाबू अमीचंद (पंगीबाबू) से भेंट हुई। उन्हें भी नेगी ठाकुरसेनका पत्र मिल चुका था। ढिलन साहेबने तो कलके लिये घोड़ा मिलनेमें भारी सन्देह प्रकट किया, लेकिन पंगीबाबूने आशा दिलाई। मुझे कलके तीन मीलके चढ़ाईके रास्तेकी चिन्ता थी, बाकी सात-आठ मीलकी कोई पर्वा नहीं थी। अमीचंदने कहा, मैं स्वयं भी आपके साथ वाङ्तूके बँगलेतक चलूँगा, सौभाग्यसे सड़कके इंस्पेक्टर बाबू लक्ष्मीनन्द आज वहीं ठहरे हैं, उनका घोड़ा मिल जायेगा। उड़नीकी चढ़ाईकी बातने कुछ परेशानी पैदा कर दी थी, किन्तु पंगीबाबूने उसे हटा दिया और मैं रातको इतमीनानसे सोया। देरतक दिमाग तरह-तरहके ख्यालोंमें डूबा रहा। ढिलन साहेबने बतलाया था—इधर भालू हैं, वह आदमीको कम किन्तु गाय, भेड़-बकरीको मारकर खा जाते हैं। ज्यादातर काले भालू हैं, किन्तु ऊपरी कंडोंमें भूरे भालू भी सुने जाते हैं। मेरी धारणा थी, कि सिर्फ ध्रुवकक्षीय सफेद भालू ही मछली खाते हैं, जिसे हमारे बंगाली भाई भी जलतरोई कहते हैं, नहीं तो बाकी भालू पक्के वैष्णव होते हैं। यह घोर जंगल है। यहाँ कहीं आसपासमें यह परमशांत जन्तु रातको घूमता फिरता तो नहीं, और यदि कहीं इस बँगलियाकी झाँकी करने आजाये। नचार जंगलके एक बड़े विभागका केन्द्र है, इसलिये यहाँ इस तरहके दर्जनों क्वार्टर बने हैं, फिर जाँबवान् हमारे ही कमरेको खास तौरसे क्यों पसन्द करेंगे? अन्तमें नींद आगई, जाँबवान् स्वप्नमें भी नहीं आये।

१६ मईको सबेरे ही उठे। शौच, मुँह धोधाकर ढिलन साहबके यहाँ चाय पी। (स्नानकी बात मत पूछिये। सप्ताहमें एक बार स्नान मैं यहाँकेलिये पर्याप्त समझता हूँ, नहीं तो हिमालयके पवित्र वायुका महात्म्य ही क्या रहेगा।) बाबू अमीचन्दके साथ नीचे उतरने लगे। नचारसे तीन मील वाङ्तूके पुलतक उतराई ही उतराई, और उतराई भी कठिन है, जो इस वक्ततक बुरी नहीं थी, किन्तु लौटते समय चढ़ाई बनकर दाँत खट्टे करने लगेगी। थोड़ा ही उतरनेपर अब पहाड़ भी नग्नप्राय, नदीपार तो और भी। डाकबँगला सतलुजके पुलसे कुछ ऊपर है, और उससे भी पहिले ही खड्ड (नदी) मिली,

जिसका पानी नचारसे चिनीतक रोपवे (तारगाड़ी) होनेके समय बिजली बनानेकेलिये उपयोगी साबित होगा, यद्यपि हिमपात-क्षेत्रकी सारी खड्डें जाड़ोंमें हिमानी टूटनेका मार्ग बन जाती हैं, जिससे बचनेकेलिये पानीको बगलमें ले जाकर वहाँ सुरक्षित जगहमें पावरहौस (शक्तिभवन) बनाना होगा।

वाङ्तू बँगलेपर कोई घंटे भरमें पहुँच गये। अब आठ मील और रहते थे। सड़क इंस्पेक्टर बाबू लक्ष्मी मौजूद और घोड़ेका मिलना भी निश्चित, इसलिये विश्राम करनेकेलिये काफी समय था। इंस्पेक्टर साहबने खानेकेलिये कहा, किन्तु अभी कलका ही भोजन पच नहीं पाया था। ठंडा पानी पीना चाहता था, और यहाँके चश्मेके शीतल मधुर जलको अमृत कहना अत्युक्ति न होगी। बँगलेके आसपास ऊँची-नीची जमीन है। उसमेंसे कुछको फलोंकी बगिया और तरकारीकी क्यारियोंमें परिणत किया जा सकता है, किन्तु उसकेलिये शौक और उत्साह किसे ? दो-तीन चूली (खूबानी) के दरख्त थे, जो अनाथसे मालूम होते थे।

चार घंटेके विश्रामके बाद चलनेका निश्चय हुआ। बाबू लक्ष्मीनन्द साथ चले, और बाबू अमीचन्द लौट गये। थोड़ी उतराईके बाद सतलुजकी धारपर वाङ्तूका लोहेका पुल आया। अब तो रामपुरसे तिब्बतकी सीमातक सतलजपर कई लोहेके पुल बन चुके हैं, किन्तु अभी पिछली सदीके मध्यमें भी उनका अभाव था। उस समय घासके रस्सेके झूले हुआ करते थे, चार रस्सोंके जोड़े-जोड़े ऊपर नीचे, उनके दोनों सिरोंको रस्सोंसे नीचेके रस्सोंसे बाँधा गया होता, और फिर नीचेके दोनों रस्सोंके बीच पतली पटरियोंको रस्सोंसे फँसा रक्खा जाता था। आदमीके चलनेपर यह रस्से हिलते थे। नीचे पैरों तले नदीका खौलता पानी चमकता था। खैर, आदमी तो बानरोंकी संतान है, बेचारी भेड़-बकरियोंकेलिये उनपर चलना बहुत कठिन था। वाङ्तूका पुल खूब दृढ़ लोहेका पुल है। यह न हिलता, न नीचे पाताल दिखलाई पड़ता।

पुल समुद्रतलसे ५२०० फुटपर है। आसपासकी अपेक्षा इसे गरम स्थान कह सकते हैं। पुल पार हो अब हमें सतलुजके दाहिने तटसे चलना था। कुछ ही दूर आगे चलनेपर बाईं ओरसे भाबाकी खड्ड गरजती हुई सतलुजमें समा रही थी। इस खड्डमें दो तीन गाँव हैं, और इसके किनारे-किनारे आगे

जोत टपकर स्पितीमें पहुँचाया जा सकता है। लोग आते-जाते भी रहते हैं, किन्तु स्पितीकेलिये सड़क यहाँसे नहीं भारतके अंतिम गाँव नमग्याके पाससे निकाली जा सकती है, जहाँ स्पिती नदी स्वयं आकर मिलती है। अभी हमें स्पितीसे काम नहीं था, तो भी स्पितीको भुलाया नहीं जा सकता। सौ बरस पहिले स्पिती लदाखका भाग था—स्पितीवाले भोट भाषा बोलते हैं। लदाखको काश्मीर-ने ले लिया, स्पिती किसी मालिककी खोजमें थी। अँग्रेजोंकी कृपा-दृष्टि पड़ी, किन्तु इलाका छोटा, सर्दी कठोर, आमदनी नहींके बराबर, उसका शासन कैसे किया जाये ? १८६४के आस-पास एक अँग्रेज अफसर भेजा गया इस धारणा के साथ, कि शासनयंत्र सबसे सस्ता होना चाहिये। अफसरने लदाखके राज-सेवकोंमेंसे एकको बृटेन की ओरसे शासक नियुक्त करनेकी सिफारिशकी। तबसे वही नोनो-वंश स्पितीका बेताजका बादशाह है। कभी-कभी कुल्लूका आसिस्टेंट कमिश्नर सैर-शिकारकेलिये पहुँच जाता, नहीं तो स्पितीवाले अपने भाग्यपर छोड़ दिये गये थे। आज वह भारतके नकशेके भीतर है, किन्तु स्पितीवालोंके-लिये कोई परिवर्तन नहीं, और जबतक वह पंजाब के हाथमें है, तबतक कुछ होगा भी नहीं। वस्तुतः काँगड़ेके लाहुल-स्पितीवाले तिब्बती-भाषा-भाषी इलाकों-की भलाई इसीमें है, कि उन्हें हिमाचल प्रदेशमें मिला दिया जाये, और कनौरके हङ्रङ जैसे भोट-भाषा-भाषी इलाकेकी शिक्षा और संस्कृति संबंधी योजनामें सम्मिलित होनेका अवसर दिया जावे।

भाबा-खड्डको पुलसे पार हो हम आगे बढ़े। आगे सतलुज एक विशाल पर्वतको तिर्छे काटकर निकलती है, यद्यपि लाखों वर्ष संघर्ष करके पर्वतने सत-लुजसे पराजय स्वीकार की, किंतु समुद्रसे आनेवाले बादलोंके रास्तेको रोकनेकेलिये वह अब भी काफी सबल है। यहाँसे नीचे तर इलाका है और ऊपर सूखा। जहाँ नीचे वर्षा डँटकर होती है, वहाँ ऊपर २५ इञ्च और १५ इंच तक रह जाती है। बादलोंका दल बड़े वेगसे चलता है, किन्तु पर्वत-गात्रसे टकराकर बहुतोंको निष्फल मनोरथ होना पड़ता है। पतले मार्गसे जो कुछ भीतर घुस पाते हैं, उनमें भी कितने ही आगे सतलुजकी भूल-भुलैयाँ छोड़ उसकी परिचारिका बस्पाका रास्ता लेते हैं, इस प्रकार वर्षाके सम्बन्धमें बस्पावाले चिनीसे अधिक सौभाग्यशाली हैं, किन्तु साथ ही सूखे जलवायुके फल जितने अच्छे चिनीमें होते हैं, उतने

बस्पामें नहीं। अंगूर तो बस्पामें वर्षाके मारे फट जाता है, इसलिये लोग उसका बाग नहीं लगाते।

चार मीलके करीब रास्ता सतलुजके पासपाससे चला, और बहुत कुछ समतलसा समझिये। नदी पार छोलटूका जंगलीय डाकबँगला दिखाई पड़ा। ढिलन साहेबने सिफारिश की थी, रात वहाँ बितानेकी। वह गरम स्थानमें है, इसलिये साग, तरकारियों और फल भी चिनीसे और नचारसे भी काफी पहिले तैयार हो जाते हैं। बँगलेके घेरेमें तरकारियोंकी क्यारियाँ भी दिखाई देती थीं, किन्तु कौन सड़क छोड़ पुल पार हो वहाँ जाये। अंतमें हम टापरी (कुटिया) पर पहुँचे। यहाँ डाकढोनेवाले ठहरा करते हैं, दूसरे भी आवश्यकता पड़नेपर ठहर सकते हैं। तीन चार कोठरियाँ हैं। वाङ्तूके इसपार वर्षाकी कमीसे जंगलकी उतनी इफ़रात नहीं है। देवदार भी यहाँके उतने ऊँचे नहीं होते, और बहुत रक्षाकी अपेक्षा रखते हैं तो भी काष्ठ दुर्लभ नहीं है, इसलिये टापरी बनानेमें काठकी साखर्चीसे काम लिया गया है। टापरी पहुँचनेसे पहिले ही इंस्पेक्टर सड़कमें लगे अपने कामको देखने लगे, और साईसके साथ मैं घोड़ीपर आगे चला। घोड़ी पतली-दुबलीसी मालूम हुई। डर लगने लगा, कहीं चढ़ाईमें धोखा न दे। टापरीमें साईसने चिलम भरी। चौकीदार कनेत (राजपूत) था, इसलिये कोली उससे दूरसे आग लेकर अलग ही चिलम पीने लगा। मैंने २६ महीने बाद सिगरेटका व्रत लंदनमें तोड़ा था, और फिर ६ महीनेके बाद मध्य फर्वरीसे उसके पास नहीं फटकता था। सिग्रेट अतिथिसेवाका बहुत उपयोगी उपकरण है, किन्तु जो स्वयं नहीं पीता, वह सेवाकरनेकेलिये ढोये उसे नहीं फिर सकता। यदि पीता होता, तो गंदी टापरीमें साईसके चिलम पीनेकेलिये रुकना नहीं पड़ता (मुझे कुछ प्यास लग आई थी, किन्तु मटमैले पानीका रंग देखते वह भाग गई)।

अब यहाँसे प्रायः ३ मील चढ़ाई ही चढ़ाई थी। उड़नीमें ७५०० फुटपर पहुँचना था। सड़क घूमघुमौआ थी, जिसके किनारे खेत भी आने लगे। यह चगाँवके खेत थे, जिसके पग्रामङ, राजग्राम और ठोलङ् कई नाम हैं। यहाँ कहीं चाँदी की खान बतलाई जाती है, किन्तु न जाने किस युगसे देवताने बंद कर रखा है। कुछ सफेदसा पत्थर मेरे पास पीछे लाया गया, किन्तु उसमें भारीपन नहीं; यदि चाँदी होगी भी तो बहुत कम। पग्रामङ् खुंद किन्नर देशके सात खुँदों

(इलाकों)में एक है, राजग्राम इसे इसीलिये कहा गया, कि पहिले यहाँ कोई राजा या ठाकुर रहता था। चगाँव चारगाँवका संक्षेप बतलाया जाता है। खेत वैसे बहुत दूरतक फैले हुये हैं, किन्तु पानी उनके लिये पर्याप्त नहीं है। पानी सारे ऊपरी किन्नरदेशकी समस्या है, जिसे हल करनेकेलिये बड़ी योजना और लाखों रुपयोंकी आवश्यकता है, जो दसगुना बीसगुना होकर लौट आयेगा, इसमें संदेह नहीं, किन्तु ऐसी बहुधन साध्य योजनाओंको हिमालयप्रदेश कैसे पूरा कर सकेगा, जबकि उसके शरीरके बड़े भागको काटकर उसे १० लाखकी आबादी-का एक जिला रखा दिया गया है।

घोड़ी दुबली-पतली जरूर थी, किन्तु उसके बारेमें मेरी शंका निर्मूल साबित हुई। वह धीरे-धीरे किन्तु दृढ़तापूर्वक ऊपर चढ़ती गई और शामसे बहुत पहिले १२५ वें मीलपर उड़नीके डाकबँगलेपर पहुँच गई। दौलतराम वाङ्तूमें रुके नहीं थे, इसलिये वह पहिले ही वहाँ पहुँच चुके थे। पी० डब्लू० डी० का डाकबँगला, दो अच्छे कमरे सब तरहका आराम। पास तो जंगलातका था, किन्तु ठहरे बिना चारा न था। सबेरेकी चाय और वाङ्तूकी एक गिलास लस्सीके बाद अब यहाँ भूख लग आये, तो आश्चर्य क्या? किन्तु वहाँ तैयार भोजन कहाँ था। मीठे बिस्कुटसे पर्हेज और फीकेसे प्रेम नहीं। दो चम्मच लूकस फाँकनेसे क्या काम चलता? मेवोंके देशमें आगये थे। सामने अंगूरकी लता थी। यद्यपि फलोंके पकनेके अभी देर थी, किन्तु सोचा कोई सूखा फल मिल जायेगा। ढूँढ़ने-पर मेटने न्योजा (चिलगोजा) लाकर दिया। न्योजाका वृक्ष देवदार जातिका है, किन्तु उसकी छाल सूखकर लिपटी रहनेकी जगह साँपकी तरह बराबर केंचुल छोड़ती रहती है, जिससे उसका तना और शाखायें सफेद या हरीसी बनी रहती हैं। इनपर ही मोरमुकुट या बड़े कमल-गट्टे सा नोकदार पांच-छ अंगुल बड़ा फल लगता है। पक जानेपर फलमेंसे कमलगट्टेकी तरह भीतरसे पतले और लंबे-लंबे छिलकेदार दाने निकलते हैं। इन्हें भून लिया जाता है, और छिलका निकालकर खाया जाता है। न्योजामें बादामकी तरह तेल भरा रहता है, खानेमें भी अच्छा लगता है। किन्नरके गरीबोंका यह एक बड़ा आधार है, यह कह तो सकते हैं, किन्तु अब महँगा होनेसे लोग इसे बेच डालनेका अधिक ध्यान रखते हैं। न्योजाके वृक्ष हिमालयमें सिर्फ इसी जगह होते हैं, पेशावरके

उत्तरके पहाड़ोंमें न्योजाकी दूसरी उद्गम-भूमि है। मान्यअतिथिके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते लोग ऊर्णासूत्रमें गुंथी न्योजाकी माला गलेमें डालते हैं। न्योजाके गुण तो बहुत हैं, किन्तु उसके फलोंको चुननेमें आजतक न जाने कितने हजार आदमियोंने जान गँवाई होगी। वह बागके वृक्ष नहीं दुरारोह पर्वतोंके स्वयम्भू पादप हैं, और आदमी चाहता है, किसी वृक्षका फल छूटने न पाये। मेटने न्योजा दिया। छिलकर खाया, चना छिलकर खाने जैसा समझिये, किन्तु वहाँ दूसरा काम क्या था? बँगलेके चौकीदारका कहीं पता न था, आखिर वह गाँवका रहनेवाला था, उसके और भी घरके काम थे। मेटने चाय ही नहीं रोटी भी बनाकर खिलाई। यहाँ दोनों खच्चरोंपर छ रुपये घासके लगे; और आटा सवा रुपया सेर।

एक मिडिलतक पढ़े तरुणने स्कूल और डाकखानाके अभावकी शिकायत की। दस मीलकी चढ़ाई-उतराई करके लड़के नदी पार किल्बामें नहीं पढ़ने जा सकते, चिनी और नचार और भी दूर हैं। मैंने लड़केको इसके लिये आवेदन-पत्र लिखवा दिया। हिमाचल प्रदेशमें स्कूल और डाकको बहुत फैलानेकी जरूरत है।

५ "राजधानी" चिनीको

सबेरे जलपानके बाद रवाना हुये। सबेरे गहरा जलपान अच्छा है, दिन भरकी छुट्टी हो जाती है। आज चौदह मील जाना था। उड़नीसे निकलते ही सड़क उतराईमें चली। आगे यूलाकी खड्ड आई। यूला अच्छा-खासा गाँव ऊपरकी ओर है, और मीरू गाँव आगे सड़कसे कुछ ऊपर। सड़कके पास जौ काटे जा रहे थे, और ऊपर खेत हरे खड़े थे। रोज चार-पाँच मील पैदल चलनेका कुछ व्रतसा कर लिया, "दूधका जला छाछ फूँक-फूँक कर" आखिर शारीरिक श्रमकी अवहेलना करके ही तो डायाबेटिसको बुलौआ दिया था। सड़कसे ऊपर ऊँचे देवदार दिखलाई पड़ते थे। आगे सड़क रक्षित बन-खंडमें घुसी। जंगल-विभागने जरा परिश्रम किया था, बीज बो पौधे लगाये थे, तारोंसे घेर दिया था, जिसमें भेड़-बकरियाँ घुसकर नवजात पौधोंको बर्बाद न कर दें, लोगोंपर भी अंकुश रखा गया था, जिसका

परिणाम था यह लंबा-चौड़ा काफी हरा-भरा जंगल, इस शुष्क भूमिमें भी। वाङ्तूसे इधर जंगलात विभाग एक तरह जंगल-व्यवसाय नहीं, जंगल-रक्षाका काम करता है। किसानोंको अपनी स्वतंत्रतामें रुकावट कैसे पसंद? अगर उनकी चलती, तो अबतक यह प्रदेश चटियल पड़ गया होता। जंगलविभागकी आरंभिक रिपोर्टोंसे पता लगता है, कि उस समय जंगल जलाकर खेत बनानेका रवाज था—कुछ वर्ष खेती करके उसे छोड़ किसान दूसरा जंगल जलाकर खेत बनाते थे। यह ज्यादा नहीं अस्सी बरस ही पहिलेकी बात है। आदमी भविष्य और अपनी संतानोंकी भी कम पर्वा करता है।

इसी रक्षित-वनखंड, एकाध और स्थानों तथा नचारके जंगलने बाईस वर्ष पहिले स्मृतिपर वह प्रभाव डाला था, जिससे मैं बराबर कहता फिरता रहा—हिमाचलकी सर्वसुंदरी भूमि कनौर है, हिमाचलकी सबसे दीर्घ देवदारुस्थली यहीं सतलुज उपत्यका है। अभी जंगलोंसे बाहर नहीं गये थे, कि भेड़ बकरियोंके पैरसे लुढ़कते पत्थर आये। कल ही मालूम हुआ था, कि रोगी से चार मील पहिले रास्ता बहुत टूटा हुआ है। मैं समझा था, यह भी शोल्डिङ्-की तरह ही खाली भड़काऊ बात है। किन्तु यह खाली भड़काऊ बात नहीं थी। पिछले जाड़ोंमें हिमानी सड़कको बुरी तरह बहा ले गई, और अब लोगोंको टूटे नालेसे बचनेकेलिये भेड़-बकरियोंके पैरोंसे बने मार्गपर सीधे ऊपर चढ़ना पड़ रहा था—हाँ, सीधे नाकके सीधे ऊपर की ओर चढ़ना। उतराई अच्छी होती है, किन्तु यदि बहुत सीधी होती है, तो हम मैदानियोंकी नानी मर जाती है। हमें आड़े पैर रखकर चलनेकी आदत नहीं, इसलिये फिसलकर नीचे लुढ़क पड़नेका डर रहता है। खड़ी चढ़ाई कठिन होती है, जो फेफड़ेकेलिये भले ही कड़वी हो, किन्तु पैर हमारे जमकर चल सकते हैं। तो भी यह खतरनाक जगह थी, इसमें संदेह नहीं। नेगी संतोखदासका कहना था, रास्तेकी जगह कच्ची है। जबतक कूल (नहरिया) का पानी डालकर वहाँ की मिट्टी बहा न दी जाये, तब तक वहाँ की सड़क पक्की नहीं हो सकती। अर्थात् लौटते समयतक सड़कके बननेकी आशा कम ही है। खैर, किसी तरह 'राम-राम" करके अबतकके इस सबसे कठिन रास्तेको पार किया। आगे उतराई पड़ती ही थी, फिर लौटकर बनी सड़क पर आना था, किन्तु वह उतनी कठिन और

दूर तक न थी। उतराईकी सड़कपर दूर निकल जानेपर देखा दौलतरामका कहीं पता नहीं। कहीं वह पीछे तो नहीं रह गया, कहीं कोई खच्चर तो नहीं लुढ़का, लुढ़कना अचरजकी बात न थी। आगे कुछ लोग चाय बना रहे थे, मालूम हुआ अभी खच्चर-खुच्चर नहीं गया। रुके, कुछ देर बाद दौलतराम आते दिखाई पड़े। उनको सबेरे ही कह दिया था—सीधे चिनीमें कलपा (जंगल विभाग) के बँगलेमें जाना।

अभी रोगी गाँव नहीं पहुँचे थे, कि बाईं ओर विचित्र दृश्य दिखाई पड़ा। टीनकी छत तोड़-मरोड़कर कहीं पड़ी हुई है, कहीं लकड़ी पत्थरके ढेर। अबकी साल असाधारण हिमपात हुआ। हिम ऊभड़-खाभड़ भूमिको समतल बना रहनेपर रद्दा जमाता तो जाता है, किन्तु भार बहुत अधिक हो जाता है, नीचे आधार दृढ़ नहीं होता, ऊपरसे सूर्यदेवकी किरणें कलेजा छेदने लगती हैं, तो लाख-लाख मनकी हिमानी नीचेकी ओर खिसकने लगती है। फिर उसके रास्तेको कौन रोक सकता है? देवदारके वृक्ष आये, हिमानी रौंदते आगे बढ़ी, गाँव आये पस्त करती चली, बड़े-बड़े चट्टानोंतकको कंदुक सदृश उछालती बढ़ी, फिर पी० डब्ल्यू० डी०का मामूली बँगला उसके सामने क्या था? इंजीनियरकी गुस्ताखीका दण्ड हिमानीने बड़ी क्रूरताके साथ दिया था। गाँव बसते हैं सदियोंके अनुभवके बाद, उसी जगह, जहाँ मालूम हो चुका है, कि यहाँ हिमानी नहीं आती। हिमानी खड्डों और नालोंमें तो बराबर आती रहती है, वहाँ भला कौन मकान बनानेका दुस्साहस करेगा? इंजीनियर साहबने खड्डसे परे देवदारु बनके बीच एक अच्छी सी जमीन देखी। देखा वृक्ष भी काफी दिनों के हैं, अर्थात् तीसों सालोंसे हिमानी इधर नहीं उतरी, बस वहाँ सुन्दर बँगला बना दिया। और आज यह दिशा! यह बँगला बहुत दिनों पूर्व नहीं बना था। घोड़ेका काम हो गया था, मैंने उसे यहाँसे लौटा दिया, वैसे आज उसकी सवारीका बहुत कम काम रहा। टूटी सड़ककी खड़ी चढ़ाईपर तो घोड़ेपर चढ़ा नहीं जा सकता था।

एक बजेके करीब रोगी पहुँचे। रोगी अपने मेवाबागोंकेलिये कनोरकी रानी है और यहाँके जेलदार नेगी संतोखदास फलोंके विशेषज्ञ। इनका परिवार धनी और शिक्षासे परिचित है। इनके बड़े भाई शायद किन्नरके प्रथम

ग्रेजुयेट थे। यह स्वयं उर्दू पढ़े हुए हैं, किन्तु बहुत मेधावी और व्यवहारकुशल हैं। बरसों राजा पदमसिंहके ऊँचे दर्बारी भी रहे हैं। अब तीन-चार ही मील जाना था, रास्ता भी अच्छा, इसलिये मुझे जल्दी नहीं थी। मैं नेगीका मकान पूछते वहाँ पहुँचा। स्त्रियाँ जो गाँवसे बाहर नहीं गई हैं, वह किन्नर भाषा छोड़ हिन्दी नहीं समझतीं, उनकी भाषा हिन्दीसे दूरकी है। किन्तु कितनी ही स्त्रियाँ अपने पतियों या भाइयोंके साथ भेड़-बकरियोंको लिये जाड़ोंमें नीचेके पहाड़ोंमें हो आई हैं, वहाँ उन्हें पहाड़ी हिन्दीसे वास्ता पड़ता है। ऐसी स्त्रियाँ कुछ हिन्दी समझ लेती हैं। पुरुष तो शायद ही कोई मिले, जो हिन्दी न समझ पाये।

नेगी सन्तोखदासका घर गाँवसे नीचे ग्रामदेव नरेनस् (नारायण)के मन्दिरके पास है। मकान नहीं बँगला कहना चाहिए। मकान तो थोड़ा हटकर एक बगलमें है। नीचेका तल तो सामान्य है, किन्तु ऊपरी तलकी दो कोठरियोंके द्वारों और खिड़कियोंमें शीशे लगे हुये हैं। तिब्बती ढंगकी चाय-चौकी और बैठनेकी गद्दीके साथ मेज, कुर्सी, पलँग और अलमारी भी है। इसीलिये इसे बँगला मानकर किसी मनचली कवयित्रीने सन्तोषदासके बँगलेपर कविता भी बना डाली। यहाँ कविता कुछ आकर्षक और नवीनता लिये होनी चाहिये, फिर तो वह जंगलकी आगकी तरह यहाँके स्वच्छन्द षोडशियोंमें फैल जायेगी। पता लगते ही नेगीजी आये। उनके पास भी नेगी ठाकुर सेनने मेरे बारेमें पत्र भेज दिया था, और वह यह भी जानते थे, कि मेरी थोककी थोक डाक चिनी डाकखानेमें जमा हो रही है। बैठकेमें बैठाया। ग्रेजुयेट दामादको ब्याही लड़कीको चाय और भोजन बनानेका आदेश दिया। फिर हमारी बात होनी शुरू हुई। शायद कनौरके बारेमें ज्ञातव्य बातोंका जितना ज्ञान उन्हें है; उतना और किसीको नहीं। मेवोंपर भी उन्होंने बहुत तजर्बा किया है और कई तरहके अंगूर लगाये हैं। दूसरे फलों पर भी तजर्बा रखते हैं। अंगूरी शराबकेलिये तो रोगी सारे बुशहरमें प्रसिद्ध हैं, सराहनकी भीमाकाली तो द्वापरान्तसे उसकी कदरदान है, और आशा है, यदि किसीकी शनिदृष्टि न पड़ी, तो रोगी-लांछन-लांछित शिबू (उदुंबरी मदिरा) और महाश्वेता उसी तरह सारे भारतमें प्रसिद्ध होगी, जिस तरह पाणिनि दादाके समयमें कपिशा (काबुल)की

कापिशेयी। बल्कि मैं तो कहूँगा, फ्रांसके शम्पेन गाँवकी तरह 'रोगी' सर्वश्रेष्ठ द्राक्षी सुराका दूसरा नाम हो जायगा। पाठकोंको भ्रम नहीं होना चाहिये, कि इस प्रचारकेलिये रोगीवालोंने मेरी कुछ भेट पूजा की है, यद्यपि मैं इससे इन्कार नहीं करता, कि नेगी सन्तोखदासके आतिथ्यसे मैं बहुत प्रभावित हुआ।

रोगी 'समंदर' (सतलुज)से तीन हजार फीटसे कम ऊपर नहीं है, और यहाँ नीचे तक मेवोंके बाग लगे हुये हैं। यहाँके मेवोंके बारेमें लेकचर देनेकी जरूरत नहीं, बस, मेवोंको सस्ते किराये पर रेल (शिमला)तक पहुँचानेका प्रबन्ध हो जाना चाहिये। आज खच्चर बीस रुपया मन किराया पर भी मुश्किलसे मिलते हैं, फिर इतने महँगे फलोंको नीचे कौन खरीदेगा? दूसरी जरूरत है, परीक्षण द्वारा अनुकूल जातिके फलोंको तैयार करना। यहाँके अंगूर बड़े होते हैं—काले सफेद दोनों—मीठे होते हैं, रस भरे होते हैं, किन्तु गुद्देसे शून्य। यह खानेमें अच्छे होते हैं, शर्बत, सिरके और मदिराकेलिये भी उपयुक्त हैं; किन्तु इन्हें सुखाकर मुनक्का-किशमिश नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि सूखनेपर इनमें बीज और चमड़े छिलके भर रह जाते हैं। काबुल-कंधारका कोई मेवा नहीं है, जिसे रोगी और उसके पड़ोसी गाँव नहीं पैदा कर सकते। यदि पास-तक मोटरकी सड़क पहुँच जाये, तो कनौर लाखों मन बढ़िया मेवा हर साल भारतके कोने-कोनेमें पहुँचायेगा। वह अपने २००० वर्गमीलके पहाड़ोंको नीचेसे ऊपरतक बागोंसे ढाँक देगा।

[नेगी संतोखदास—मालूम नहीं नेगी किस भाषाका शब्द है। पश्चिमी हिमालयमें तो प्रायः सर्वत्र यह 'बाबू साहेब' या 'रावसाहेब' के अर्थमें सम्मान प्रदर्शन करने, बड़े खान्दानको बतलानेके लिये प्रयुक्त होता है, किन्तु वहाँ भी उसके शब्दार्थको कोई नहीं जानता। पूर्वी युक्तप्रान्तमें नेगी शब्दमें कोई उतना सम्मान नहीं है। व्याह और खुशीके अवसरपर जिन लोगोंको कुछ पानेका हक होता है, उन्हें नेगी या 'पवनी' कहते हैं। 'नेगी'में नाई, कुम्हार, बढ़ईसे ले बहिन, बहनोई आदि संबंधी तक आ जाते हैं। नेगियोंके हकपदको नेग (दक्षिणा) कहते हैं। लेकिन वहाँ भी 'नेग' किस धातु प्रत्ययसे बना है, इसे काशीके महावैयाकरण भी नहीं बतला सकते।] हाँ, तो नेगी संतोखदास बतला रहे थे, पिछले साल अक्तूबरमें वर्षा और अबकी फर्वरीमें हिम इतना

पड़ा, कि सड़क क्या खेत भी कितने ही धसक पड़े, जाड़ेके पहिलेकी बोई फसल बर्बाद हो गई, आलूका बीज भी मिलना मुश्किल है। और इस वक्त वर्षा आनेका नाम नहीं ले रही है, जिससे कीड़े बहुत बढ़ गये हैं। मैंने देखा सचमुच यहाँसे चिनी और आगे तकके अखरोटोंके नवकिसलयोंको खाकर कीड़े साफ कर गये हैं। मैंने तो समझा, कि अबके साल भर इन्हें नंगा ही रहना होगा, किन्तु महीने भर बाद देखा, फिर पत्ते आ रहे हैं, और जूनके अंत तक कितने ही वृक्ष फिरसे हरे पत्तोंसे ढँक गये थे। मैंने नेगीजीको ज्ञान देनेकेलिये चर्खेसे ऊन कातनेकी बात बतलाई। उन्होंने लुधियानेके बने पैरसे चलाये जाने वाले लोहेके चर्खेको लाकर रख दिया। कहते थे, आजकल दाम बहुत बढ़ गया है, और मिलता भी नहीं। मैंने फलोंको सुखानेकी बात कहकर कुछ आगे बढ़ना चाहा। उन्होंने कहा, हम कुछ फल सुखाते तो जरूर हैं, किन्तु उन्हें सिर्फ धूपके भरोसे। उन्होंने यह भी बतलाया कि कोटगढ़में श्रीसत्यानंद स्टोकके यहाँ एक अमेरिकन मशीन देखी थी, जिसमें सेब जल्दीसे छिलता कटता और आँचके सहारे सूख भी जाता है। उसे मँगानेकेलिए बहुत कोशिशकी, किन्तु नहीं मिल सकी। नेगीसे बात करनेपर मैंने कई बातें उनसे सीखीं और हर मुलाकातमें सीखीं, मुझे नहीं मालूम मैंने उन्हें क्या नई बात बतलाई।

मध्याह्न भोजनके बाद थोड़ी देर विश्राम किया। फिर नेगीजी पहुँचाने चले। गाँवके देवता (नरायन)के मंदिरको दिखलाते हुये बोले यहाँ पहिले हमारे बाप-दादोंकी बनवाई पान्थशाला थी, देवताने कहा कि 'हमें दे दो'। क्या करते, दे दिया और पान्थशाला गाँवके बाहर बना दी। मैं समझता हूँ, देवताने जगह माँग कर बुरा नहीं किया। अब पान्थशाला सड़क पर है, जहाँ पथिकोंको ठहरनेका और सुभीता है, पानी भी पासमें है। देवता वहाँके मनुष्योंसे बातचीत करते हैं, इस पर अन्यत्र कहेंगे।

गाँवके बाहरसे नेगीजी लौट गये, और मैं आगे चला। एक जगह यहाँ भी नालेमें सड़क टूटी थी, किन्तु गलातोड़ चढ़ाई-उतराई नहीं थी। दो-ढाई मील जाने पर सामने चिनी गाँव दिखाई पड़ा, कोई अस्सी एक घरोंका बड़ा गाँव। इसे तिब्बती लोग ग्यल्स (राजधानी) चिने कहते हैं, जो किसी पुराने कालकी गूँज है—चिनीमें तहसील तो १८९५ ई०में बनी। सारे कनौरमें ऐसा विस्तृत

स्थान मिलना मुश्किल है। सतलुज तटसे लेकर ६ हजार फीट ऊपर तक और लम्बाईमें चार-पाँच मील तक भूमि ढलुवाँ है, जहाँ खेत फैले हुये हैं। ऊपरी भागमें चूली (छोटी खूबानी) और बेमी (छोटा आड़ू) ही अधिक हैं, किन्तु गाँवके नीचे दूसरे फल भी हैं। इस गाँवकी स्थिति ऐसी है, कि किन्नरके हर अच्छे युगमें इसे प्रधानता दी जायेगी। चिनी में १३६वाँ मील पत्थर ६२३८ फुट पर लगा हुआ है। इतने ऊँचे और भी स्थान हैं, किन्तु चिनी उनकी अपेक्षा अधिक सर्द है, विशेषकर जाड़ोंमें। इसके दो कारण हैं, एक तो अधिक खुला स्थान होनेसे यहाँ हवा अधिक चलती है। दूसरे सामने 'कैलाश' की हिमाच्छादित शिखर श्रेणियाँ हैं, जिनके बर्फ स्पर्श होकर हवा इस तरफ लौटती है।

कैलासके नामसे भ्रममें पड़नेकी आवश्यकता नहीं। धर्मों और उनके पुजारियोंके पेटमें झूठ बहुत पचता है। लोगोंने यहाँकी एक चोटीका नाम कैलास मान लिया है। इतना ही नहीं इस 'कैलास' की परिक्रमाकी जाती है, यद्यपि उसका पीछेवाला रास्ता बहुत कठिन है। मैदानी भगत तो कभी उसके लिए हिम्मत भी नहीं कर सकते। इस श्रेणीकी चोटियोंमें अपेक्षाकृत छोटी किंतु दूर एक चोटी है, जिसे खाली आँखोंसे देखनेपर ऊपर पिंडी (शिवलिंग) जैसा पत्थर खड़ा दिखलाई पड़ता है। बस, अब इसके कैलाश होनेमें क्या सन्देह हो सकता है ! मैंने दूरबीन लगाकर देखा तो वहाँ पत्थर चोटीके बीचमें नहीं, बाहरकी ओर आठ-दस हाथकी पत्थरकी आड़ी खड़ी पटिया मालूम हुई। यदि आदमी दूरबीनसे पटियाकी स्थिति और रूपको देख लेता, तो कभी कैलासके फेरमें न पड़ता। भक्त लोग तो यह भी विश्वास करते हैं, यह 'शिवलिंग' दिनमें कई रंग बदलता रहता है। यदि विंध्यवासिनी देवी दिनमें तीन रूप बदलती हैं, तो उनके पति यहाँ कई रंग बदलें, तो क्या आश्चर्य ?

पाँच बजे चिनी डाकघरमें पहुँचे। डाकघर मिडिल स्कूलके पासही है, और स्कूलके ही एक अध्यापक बाबू नारायणसिंह डाकमुंशी भी हैं। चिट्ठियाँ और समाचारपत्र काफी थे। लेकर आध मीलकी और चढ़ाई-उतराई करते कलपाके डाकबँगलेमें पहुँचे। प्रधान बनपालका आज्ञा-पत्र था, इसलिये मैं यहाँ ठहरनेका

पूरा अधिकारी था। बाईस साल पहिले तो बिना पत्रके भी यहाँ ठहर चुका था। बँगला प्रासाद जैसा है, इसमें तीन बड़े-बड़े कमरे और दो स्नान कोष्टक हैं। दौलतराम पहिले ही पहुँच चुके थे। सामान उतारकर रखा जा चुका था। दौलतरामने अगले दिन सबेरे ही जानेकी इच्छा प्रकट की, उन्हें ४४ रुपया इनाम और खच्चरोंकी खोराककेलिये दिए और सभी चीजोंके सुरक्षित पहुँच जानेकेलिए धन्यवाद भी। भोजनका प्रबन्ध चौकीदारके जिम्मे किया और उस दिन (२० मई को) बहुत रात तक पत्रों समाचारपत्रोंके पारायणमें बिताया, एक प्रूफ भी पटना, प्रयाग, शिमला भटकते यहाँ तक पहुँच गया था। यदि प्रेसने प्रूफके लौटने भरकी प्रतीक्षाकी होगी, तो उसका दिवाला ही निकला समझिये। खैर, हमने देखकर भेजते हुए अपना धरम पाला। सारी चिट्ठियोंका जवाब देनेके लिए तो एक लिपिक रखना चाहिये, और साथ ही टिकट लिफाफेका काफी बजट भी। (पहिलेमैं प्रत्येक पत्रका उत्तर देना जरूरी समझता था, किंतु अब यह शक्तिसे बाहरकी बात है इसलिए परिमित संख्यामें उत्तर देता हूँ। लिखनेवाले नाराज हो सकते हैं, किन्तु नाराज होनेके डरसे आदमी शक्तिसे बाहर काम कैसे अपने सिरपर ले सकता है?)

डाकबँगला बहुत अच्छे स्थानपर देवदारकी हरियालीके बीच है, साथमें सेब, नासपाती आदि फलों, तरकारियों और फूलोंका बाग भी है। अगले दिन (२१ मई) मुझसे एक मास पूर्व पहुँचे तरुण रेंजर देवदत्त शर्माजी भी मिलने आये। उसी दिन उनकी मिलनसारीका परिचय मिल गया और आगे तो चिनी निवासमें उनसे और घनिष्ठता हो गई, और कितनी ही बार उनकी नवविवाहिता पत्नी कृष्णा और बहिनके हाथोंका स्वादिष्ट भोजन भी प्राप्त हुआ। मुझे चिनीमें तीन मास रहना था। यद्यपि रहनेकी आज्ञा थी, तो भी मैं तीन मासतक बँगलेको दखल करनेकेलिए तैयार न था, एक कमरे तक सीमित रहनेपर भी आने-जाने वाले यात्रियों और मुझे भी तरद्दुद रहता। इसीलिए दूसरे दिन शामको अस्पतालके ऊपरवाले बँगलेको देख लेनेपर मैंने तै कर लिया, कि निवास वहीं होगा।

चिनी पहुँचनेके दूसरेही दिन लामा सोनम् ग्यंछो या साधु पुण्यसागर मेरे पास पहुँच गये। आनन्दजी और दूसरे मित्रोंने मुझसे बहुत आग्रह किया था,

कि० . ४

कि किसीको अपने साथ ले जायें, किन्तु मैंने पसन्द नहीं किया। मुझे लिपिक और पाचककी आवश्यकता होगी, यह मैं जानता था, किन्तु सोचता था, ऐसे व्यक्ति इधर भी मिल जायेंगे। मैदानका आदमी यहाँके खान-पान और कष्टोंको शायद पसन्द न करे। आनेके दिन ही सूखा भेड़का मांस आ पहुँचा, और पीछे तो जहाँ-तहाँसे इतना आया कि मेरा दिल ऊब गया और खाना बन्द कर दिया। दूसरे दिन पुण्यसागर (पुराना नाम किम्मत-राय) पहुँच गये। यदि मैं भाग्य-भगवान् पर विश्वास करता तो कह देता, उसीने इस पुरुषको मेरे पास भेज दिया। उन्होंने सारी यात्राकेलिये मेरे भोजन-छाजनकी चिंताको दूर कर दिया, पैसे-कौड़ी, चीज-वस्त्र सभीसे मैं बेपर्वा हो गया।

तीसरे दिन (२२ मई) यहाँके तहसीलदार बाबू मंगलरामजी मिलने आये। वह दौरेपर थे। यहाँका तहसीलदार मालगुजारी ही नहीं वसूल करता, दीवानी, फौजदारीके मुकदमोंको भी देखता है। दूर-दूर बसे किन्नरके गाँवोंमें घूम-घूमकर न्याय वितरण करना ग्रामीणों पर अनुकंपा करनी है, इसमें सन्देह नहीं। यद्यपि इससे भी अच्छा होगा, ऐसे मुकदमों का अधिकार ग्राम-पंचायतों-को दे दिया जावे। तहसीलदार साहबको मेरे बारेमें सरकारी पत्र मिल चुका था, आनेका पता मालूम होनेपर वह एक दिन दौरेको छोड़कर पहुँचे। मेरे सारे निवासकालमें उन्होंने बड़ा ध्यान रक्खा, जिसके लिये शब्दोंमें कृतज्ञता प्रकट करना संभव नहीं होगा। रियासतें चाहे छोटी हों, या बड़ी, राजा लोगोंके और ठाट-बाटोंकी भाँति विभागों और अधिकारियोंके रखनेमें भी वह एक दूसरेका कान काटती रही हैं। अस्सी-नब्बे हजारकी आबादीके रामपुर राज्यमें भी तीन तीन तहसीलदारियाँ और तहसीलदार, सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस, सहायक सुपरिन्टेन्डेन्ट, लघु जज, महाजज आदि अधिकारी वैसे ही भरे थे, जैसे किसी बड़ी रियासत या बीस लाख आबादीके जिले में। दूसरी रियासतमें जो पदाधिकारी हैं, वह अपनेमें क्यों न हों? और जिसने राजाको खुश कर दिया, उसे कोई पद मिलना चाहिये, इन विचारोंसे रियासतोंमें आवश्यकतासे अधिक पदाधिकारी भर दिये जाते—पदाधिकारियोंमें स्वभावतः अयोग्य या परिस्थितिके कारण अयोग्य व्यक्ति भी होते हैं और योग्य भी। हिमाचल प्रदेश बन जानेपर कैसे

हो सकता है, कि राजा साहबकी सारी भरती जिंदगी भरके लिए बहाल रखी जाये, इसलिए नौकरोंकी छँटाई स्वाभाविक थी। तहसीलदार साहब भी चिंतित थे। मैं इसके सिवाय और क्या आश्वासन दे सकता था, कि योग्य व्यक्तियोंके छाँटे जानेका डर नहीं। साथही मैंने उन्हें बतलाया, कि हिमाञ्चल सरकार फलोंकी उपज बढ़ानेपर अपना सारा ध्यान लगा रही है, और यहाँकी खनिज सम्पत्तिको निकालकर जनताके जीवनतलको ऊँचा उठाना चाहती है। इस काममें आपको पूरी तत्परता दिखलानी चाहिये और अब तक उपजाये जाते मेवों और स्थान-स्थानपर प्राप्त खनिज धातु-पाषाणोंको जमा करवाकर उनके बारेमें सरकारको सूचित करना चाहिये, जिसमें सरकार अपने काममें जल्दी आगे बढ़ सके। बाबू मंगलरामजीने मेरी बात स्वीकार की और मेवों और धातुपाषाणोंके नमूनों और आँकड़ोंको बड़ी तत्परतासे जमा कराया।

उसी दिन (२२ मई) जाते समय उन्होंने थानेदारको ताकीद कर दी, कि मेरा सामान नये बँगलेमें भेजनेकेलिए आदमी भेज दें। थानेदारने दफादारको हुक्म दे दिया और वह हुक्म न जाने कितने रास्तोंसे होते ढोनेवाले आदमियों तक पहुँचा या न पहुँचा। मैंने शाम नजदीक आती देखी और आदमियोंका पता नहीं। चिंता हुई। किन्तु अब मैं बेहाथ-पैरका नहीं था, पुण्यसागर भी मेरे पास थे। वह स्कूलके पासके लामा मंदिरमें गए। बैशाखी पूर्णिमाको बुद्ध जयन्तीके लिए वहाँ जमा लोगोंमेंसे तीन चार भिक्षुणियोंको बुला लाए। वह बेचारी आज व्रत रखे हुए थी, उन्होंने बौद्ध पंडितको उसके निवास-प्रवेशमें सहायता देनेको भी पुण्यका काम समझा और हमारा सामान शामसे पहिले ही तीन महीनेकेलिए निवास बननेवाले बँगलेमें पहुँच गया।

वर्तमान शताब्दी के आरम्भमें इस बँगलेको ब्रोस्की नामक किसी जर्मन जातिके योरपियन पादरीने बनवाया, सिर्फ अपने पैसेसे ही नहीं अपने श्रमसे भी। धार्मिक संकीर्णता हमें इन धर्म-प्रचारकोंकी अपूर्व सेवा, अद्भुत त्यागका मूल्य समझने नहीं देती। अस्सी बरस पहिले स्पू (यहाँ से ४८ मील और ऊपर)में कुछ ऐसे ही त्यागी पादरियोंने अपना आश्रय बनाया था। वस्तुतः सेवामें दधीचिकी भाँति उनमेंसे आधे दर्जनोंने अपनी अस्थियोंको सदाकेलिए उसी भूमिको उर्वर बनानेकेवास्ते छोड़ दिया। स्पूके बाद वहींके एक पादरी

ब्रूस्कीने १८६७ में आकर यहाँ सड़कके किनारे चिनीमें इस स्थानको किसी जमींदारसे खरीदा। सुन्दर बाग-बँगला (१६००) और दूसरे घर बनाए, लड़कोंकेलिए स्कूल (१८६६-१६०७ ई०) खोला, लोगोंमें शिल्पका प्रचार किया। १३ वर्षोंमें इस भूमिको सुन्दर सुसज्जित बाग-बँगलेके रूपमें परिणत कर ब्रूस्की चला गया, उसकी बीबीने भी रोते हुए स्थानको छोड़ा। पीछे पादरी पीटरने सँभाला।

अन्तमें १६१२ में ६०००) रुपयेमें मुक्ति सेनाके हाथमें बेचकर मोरावियन मिशनको उठ जाना पड़ा। इसी समय एमर्सन (पीछे पंजाब गवर्नर) राज्यके प्रबन्धक हुए। उच्च अँग्रेजी अफसर सहायता दिलानेकेलिए बड़े उत्सुक थे। मुक्ति सेनाने अस्पताल खोला, फिर राजकी मासिक सहायतापर राजकी ओरसे मकान बनवाकर यहाँ एक अस्पताल खोल दिया गया, एक मुक्ति सैनिक एंग्लो-इंडियन डाक्टर सेमुयेल (बरफुट) और उनकी बीबी साल भर तक काम करती रहीं। मुक्तिसेनाने यहाँ ऊन कातने बुननेका स्कूल भी खोला। कुछ सालों तक संस्थाको चलानेकी कोशिश की गई, किन्तु वह चल नहीं सकी। प्रथम विश्व-युद्धने यूरोपपर ऐसी आर्थिक तबाही डाल दी, कि राजाओंके बटुवे छूछे पड़ गये और उनसे पहिलेकी भाँति दान का स्रोत नहीं बहता था, जिसमें कि दुनियाके कोने-कोनेमें लगे ऐसे आश्रमोंको शक्ति-जल मिल सके। उधर राज्यका प्रबन्ध राजा पदमसिंहने सँभाल लिया, अँग्रेज प्रबन्धक चले गए। अन्तमें (१६१६) मुक्तिसेना पाँच हजार रुपयोंमें बाग-बँगलेको राजके हाथमें बेचकर चली गई। ब्रूस्की और पीटरकी स्मृति लोगोंके-लिए बहुत मधुर रही। मुक्ति सैनिक बाकर, मोर्टिमोरने भी तत्परतासे काम किया, किन्तु मुक्ति सेना का बड़ा अवलम्ब था राज्यके अँग्रेज प्रबन्धक। एमर्सन मिशन को, बेगार, लकड़ी, और दूसरी चीजें खूब मिलतीं। जैसे ही वह सहायता बन्द हुई, उन्हें बेंच बाँचकर हटना पड़ा। वस्तुतः यहाँके कामका श्रेय ब्रूस्की और मोराविअन मिशनको है, जो अँग्रेज नहीं जर्मन थे। वह अँग्रेज अधिकारियों और सरकारकी मददसे काम नहीं करते थे, बल्कि यूरोपसे सहायता पाते थे। ब्रूस्की तो स्वयं धनाढ्य आदमी था।

ब्रूस्की सपत्नीक स्पूसे आकर यहाँ दो-तीन साल तक तंबूमें रहा। फिर

राजा शमशेरसिंहकी सहायतासे यह जमीन खरीदी, जो उस समय बहुत ऊभड़-खाभड़ थी। आजसे ४८ साल पहिले (१९००)में यह बँगला बनकर तैयार हुआ, जिसमें बैठकर मैं इन पंक्तियोंको लिख रहा हूँ। कितने प्रेम और श्रमसे ब्रूस्कीने मिस्त्री कृपारामको बतला-बतलाकर इस बँगलेको तैयार किया होगा। यद्यपि १९१९ के बाद इस बँगलेकी किसीने उतनी पर्वाह नहीं की, बहुतसे शीशे टूट चुके हैं, वार्निश और प्लास्तरकी ओर ध्यान नहीं, भीतर दीवारकी आल्मारियाँ भर रह गई हैं, बाकी सामान सब विलीन हो चुके हैं। एक बड़ा यूरोपीय ढंग का चूल्हा—जिसमें पाव रोटी, बिस्कुट तथा दूसरा भोजन बनता था—(१९४०)में नीलाम होकर एक किसानके घरमें पड़ा हुआ है। बड़ा पियानो न जाने कहाँ गया? ईसाका मन्दिर बनानेकेलिए जो पत्थर गढ़ कर तैयार किए गए, उनसे तहसील बन गई। स्थानका वैभव कहाँ। जिसे ब्रूस्की दम्पतीने अपने स्निग्ध हाथोंसे धीरे-धीरे तैयार किया था, और अपने पतिसे पीछे जिसे छोड़ते समय फ्राउ ब्रूस्की रो पड़ी थीं। ब्रूस्कीने हालैंडसे सेब और नास्पातीकी पौध मँगाकर लगाई थी, जिनके फलोंको वह नहीं पीछेके लोगोंने खाया। ब्रूस्कीके बनाए बँगलेमें मेरी तरह कितने ही पथिकोंने शरण पाई, और आशा है, हिमाचल सरकारकी सम्पत्ति होकर अब इसकी उपेक्षा नहीं की जायेगी।

यहाँ अस्पतालकी एक अच्छी इमारत है, किन्तु वर्षोंसे डाक्टर नहीं। सारे चिनीकी इतनी बड़ी तहसीलकेलिए डाक्टर न हो, यह शरमकी बात है। बूढ़े कम्पाउंडर ठाकुरसिंह किसी तरह गाड़ी चलाये जा रहे हैं। ठाकुरसिंहने ब्रूस्कीको देखा था। वह उनके स्कूलमें पढ़े थे। मुक्ति सैनिक मोर्टीमोरने डोरा डालकर उन्हें इसाई बनाना चाहा, और इसकेलिए वह इन्हें शिमला ले गया। वहाँ मुक्तिसैनिक-सैनिकाओंने झंडे-पताकेसे खूब स्वागत भी किया, किन्तु रास्तेमें ठाकुरसिंहको कोई गुरु मिल गया था, जिसने पाठ पढ़ा दिया। ठाकुरसिंहने ईसाई बननेके बारेमें कहे जानेपर कहा—मैं पिताका अकेला पुत्र हूँ, ईसाई बननेपर देश-जातिसे निकाल दिया जाऊँगा, इसलिए दस हजार रुपया मिलना चाहिए; मुझे विलायत पढ़नेकेलिए भेजना चाहिए, और इन सुमुखी मिसोंमेंसे एकके साथ ब्याह करनेका मौका मिलना चाहिए। मुक्ति सेनाके यहाँ मुक्ति भले ही टके सेर हो, किन्तु यह शर्तें इतनी सस्ती नहीं थीं। ठाकुरसिंहसे पादरी

मोर्टीमोर नाराज हो गये। मुक्ति सेना यहाँ किसीको ईसाई बनानेमें सफल नहीं हुई।

लेकिन ब्रूस्की और मोरावियन धर्मप्रचारकोंसे ढँढोरची मुक्तिसैनिकोंकी तुलना नहीं की जा सकती। यद्यपि मोरविनोंने स्पूकी भाँति यहाँके सांस्कृतिक-आर्थिक जीवनमें सहायता पहुँचानेका अवसर नहीं पाया, किंतु उनकी स्मृतियोंको भुलाना कृतघ्नता होगी। उन्होंने प्रयत्न किया और कमसे-कम ब्रूस्कीके सेबों और नासपातियों (नाखों)से बहुतोंने अपने यहाँ कलमें लगाईं। पीटरका लगाया अति सुगंधित शतपत्र गुलाब अब भी उपेक्षित रहते भी दर्शकको आकर्षित किए और उसके दिलमें टीश पैदा किए बिना नहीं रहता। पीटर शायद वही बिशप पीटर होंगे, जिनके दर्शन और फ्राउ पीटरकी केक खानेका मौका मुझे १९३३ ई० में लेह (लदाख)में मिला था।

तारीफ तो यह कि यहाँ दो-दो माली भी हैं, तो भी बागकी इस तरहकी उपेक्षा है। अस्पर्गस्‌को मालीने खोदकर फेंक दिया और उस जगह फाफड़ा बोया। पीटरके शतदल गुलाबके थालेमें न खुर्पी लगती है, न पानीकी बाल्टी; यह देखकर सहृदय दर्शकका हृदय तिलमिला जाता है। गूज़बरीके कुछ ही थाले रह गये हैं, जिनमें भी घासें भरी हैं, और न ध्यान देनेपर एकाध बरसमें उच्छिन्न होकर रहेंगी। हालैंडसे मँगाकर लगाये सेबों और नाखों (नासपातियों)में वर्षोंसे थाले नहीं बने। वह प्रकृतिकी दयासे खड़े हैं। ब्रूस्कीने बहुत-सी अंगूरकी बेलें लगाई थीं, सब उच्छिन्न हो गईं, सिर्फ एक घासों और गुलाबों-की झाड़ीमें बची हुई है। दूसरे कौन-कौन तरहके पौधे नष्ट कर दिये गये, मालूम नहीं। बाग और बँगलेका एक तरह कोई सुध लेनेवाला नहीं है। कितना ही स्थान खाली है, जिसमें घास भी नहीं उगाई जाती। बिल्लीके भाग्यसे छींका टूट गया। किसी सेठने पिछले साल सन्तोजेन बनानेकेलिये कोई बूटी लगाकर इसी बागमें तजर्बा करना चाहा, गोया इतने अच्छे फूलोंका तजर्बा यहाँके लिये पर्याप्त नहीं था। खैर, बूटी तो जमी नहीं, किन्तु पूछनेपर माली कहता है, "क्या करें, साहूकारने जो जमीनका ठीका ले लिया है।" आशा है, हिमाचल सरकारके राजमें इस बागकी और अधोगति न होगी।

ब्रूस्की बँगला अब तीन मासके लिये मेरा निवास-स्थान हुआ।

६ भोजन-छाजन

चिनीके इतिहासपर यहाँ नहीं लिखना है, वह प्रागैतिहासिक कालतक जा सकता है, किन्तु उसकी सामग्री सुलभ नहीं। हाँ भूमिके अन्दर अब भी उसमेंसे कुछ सुरक्षित जरूर होगी। चिनी गाँव एक जगह बसा है, किन्तु उसके कितने ही कृषकोंने अपने-अपने घर अपने खेतोंमें बना लिये हैं। खेतोंका सबसे बड़ा भूभाग जंगलोंसे अलग है, और वहाँ चूली, बेमी, अखरोटके अतिरिक्त दूसरी तरहके जंगली वृक्ष नहीं हैं। पिछले अक्तूबरकी वर्षा और फर्वरीकी हिमवृष्टिने खेतोंको तथा जमीनको जहाँ-तहाँ नुकसान भी पहुँचाया, किन्तु एक लाभ हुआ है, अबके कूलोंमें खूब पानी है, सिंचाईसे लोग निश्चिन्त हैं, और पानीकेलिये मार-पीट नहीं होती। पाँच-पाँच छ-छ हजार फुटतक नीचेसे ऊपर चले गये खेतोंमें पानी लगानेकेलिए लोग जो-कठी (मशाल की लकड़ी) लिए रात-रात भर भूतोंकी भाँति घूमते दिखलाई पड़ते हैं, यह काम स्त्रियोंका है। पुरुषोंका काम है हलसे खेत जोत देना, नहीं तो बाकी सारा खेतीका काम स्त्रियाँ करती हैं। वृद्ध लिपिक धर्मानंदने तीन स्त्रियाँ रखी हैं। उन्हें शराब पीकर निश्चिंत विचरनेकी छुट्टी है, सारा घरका काम स्त्रियोंने सँभाल लिया है। हाँ (यहाँ पांडवविवाह-प्रथा है) सभी भाइयोंकी सम्मिलित पत्नी होती है, जो एकसे अधिक भी हो सकती हैं। धर्मानंदके भाई होते; तो वह भी तीनों पत्नियोंमें सम्मिलित होते। स्त्रियाँ खेती-गृहस्थीकेलिए कितनी उपयोगी हैं, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं। यह बात सिर्फ बुशहर ही नहीं सारे पहाड़में देखी जाती है।

खेतोंमें बने स्थायी घरोंके अतिरिक्त किसानोंने फसलकी रखवाली का काम करनेकेलिए मीलों दूर साधारणसे छोटे-छोटे घर बना लिए हैं, जिन्हें "डोगरी" कहते हैं। कभी-कभी खेतोंमें काम करनेवाली स्त्रियाँ इन्हीं डोगरियोंमें रह जाती हैं। कंडे (ऊपरी पर्वत भाग) की डोगरियाँ बहुतसी प्रेम-गीतोंका विषय बन गई हैं। अविवाहिता षोडशियोंकेलिए राधा-कृष्णका सदेह अभिनय किन्नर-समाजमें बुरा नहीं समझा जाता।

चिनी गाँव एक पुराने दुर्गके पास बसा है। दुर्ग भी आसपासकी भूमिसे कुछ ऊँची एक पहाड़ी टेकरीपर था। इसका ध्वंस आगसे हुआ था। मकान और

दीवारोंका अधिकांश भाग उस समय भी काष्ठका रहा होगा। आग लगनेपर *खांडवदाहका दृश्य उपस्थित हुआ होगा। आज भी गढ़में* खोदनेपर कोयला, जले पत्थर मिलते हैं। दुर्ग बहुत बड़ा नहीं था। उसके एक भागको समतल करके वहाँ १६११ ई०में स्कूल बनाया गया, जिसमें आजकल आठवीं श्रेणी तककी पढ़ाई होती है। चिनीमें हाई स्कूलकी बड़ी आवश्यकता अब है। लड़कों-को पढ़नेकेलिए रामपुर जाना पड़ता है, और बहुतोंको अल्प सामर्थ्यके कारण निराश हो घर बैठ जाना पड़ता है। चिनीमें दुर्गका स्थान जाड़ोंमें और भी अधिक ठंडा हो जाता है, हवाका प्रचंड झोंका उसीपर पड़ता है। सोचा जा रहा है, स्कूलको कलपाके पासके जंगलोंमें आड़की जगह ले जाया जाये, किन्तु यह सोच तब हुई थी, जब राजाका राज्य था और चिनीमें मिडिलस्कूलसे आगेका स्वप्न नहीं देखा जा सकता था। चिनीको हाईस्कूलकी आवश्यकता है और उद्यान-विद्या तथा प्रयोग-उद्यानके साथ। पुरानी योजनामें इसका सन्निवेश नहीं था।

[चिनी गाँवमें भी कनोरके और गाँवोंकी तरह कनैत (खश), बढ़ई और कोली रहते हैं। कनैत यहाँके उच्च कुलीन हैं, जो अब अपनेको राजपूत कहते हैं। बढ़ई, लोहार, सोनार, हज्जाम, पाषाण-शिल्पी सभीका काम करते हैं। यह अर्ध अछूत हैं क्योंकि पानी न चलनेपर भी इनकी चिलम चल जाती है। आर्थिक अवस्था इनकी कोलियों जैसी बुरी नहीं है। चिनीमें बढ़इयोंके पानीका चश्मा जहाँ कनेती चश्मेके पास है, वहाँ कोलियोंका दूर है। तीनोंके चश्मोंके देखनेसे ही आप समझ सकते हैं। कोलियोंका काम चमार, भंगी, मोची, धोबी, कोरी सभीका पेशा है। सबसे गंदे और कड़े परिश्रमके काम इन्हें करने पड़ते हैं, और सबसे गरीबीकी जिन्दगी इन्हें बितानी पड़ती है। कनेतका चश्मा गढ़े पत्थरका बँधा हुआ कुण्ड-सा है, उससे नातिदूर लोहारका चश्मा भी कुछ उसी तरहका है, इसमें लोहारका स्वयं पथरकट होना भी सहायक हुआ।] इन दोनोंकी परछाईं से दूर कोलीका चश्मा, जान पड़ता है, बरसातमें भैंसके थानपर लकड़ी की टोंटी लगा दी गई है।] हमारे भारतके सभी गाँवोंके घर तो भगवान्के सँवारे हुये हैं, किन्तु इधर पहाड़ोंमें वह उससे कुछ बढ़े ही हुए हैं। कोलियोंकी चमरौटीकी गंदगीके बारेमें मत पूछिये? मैं जब उनके घरोंकी ओर

चला, तो साथके आदमीने रोकना चाहा—बहुत गंदगी है, न जाइये। कोई कहता—"यह लोग बड़े गंदे रहते हैं. हम तो उनका अछूतपन हटाना चाहते हैं. किन्तु गंदगी छोड़ें तब तो।" गोया ब्रह्माने ही उन्हें जन्मसे गंदा बनाया है। उनके पास खेत नहीं होने दिया गया, शरीरकी कठिन मेहनतके सिवा कोई जीवनका साधन नहीं रहने दिया, कमाकर यदि किसीने चार पैसे पैदा कर लिया, तो भी वह ऊँची जातिवालों जैसा घर नहीं बना सकता, न अच्छे कपड़े पहिन सकता, उसे बड़ी जातिके घर को छूने तककी इजाजत नहीं, न विद्याके पास फटकनेका मौका। हर तरहसे अपमानित, लांछित करके रखा गया, फिर यदि गंदे रहते हैं, तो उनपर यह जबर्दस्ती लादी गंदगी उनकी उसी स्थितिमें बनाये रखनेका कारण मानी जाने लगी। कैसा अच्छा न्याय, अत्याचार कायम रखनेका बहाना? कनोरके लिए इतना कहूँगा, कि यहाँका कोली-भंगी मेरा सामान उठाकर कलपासे यहाँ लाया, किन्तु इसे किसीने बुरा नहीं माना। चिनीके कोलियोंके घर और कूचे बहुत गंदे हैं, इसमें आश्चर्यकी क्या जरूरत? लेकिन क्या हिमाचलप्रदेश आगे भी उन्हें इसी स्थितिमें रक्खेगा? यह मानव क्या आगे भी ऐसी नारकीय जिन्दगी बितानेके लिये मजबूर किये जावेंगे?

× × × ×

किन्नर देवताओंका देश है, अलंकारिक नहीं सीधी भाषामें। देवता प्रकाशके प्राणी कहे गये हैं, किन्तु मैं समझता हूँ वह घोर अंधकारके वासी हैं। जब तक मनुष्यके हृदयमें घोर अज्ञान न हो, देव लोग वहाँ ठहरना नहीं चाहते। कल (२३ मई) दो मील नीचे कोठीकी देवीका मेला था। देवी-देवताओंके लिए हर महीने मेला या भोज होता रहता है। कहीं-कहीं तो मेलेके समय देवताके भंडारसे शराबकी सदाव्रत भी दी जाती है। नहीं दी जाये, तो भी देवताओंका मेला शराबके बिना कैसे हो सकता है? देवताओंने शराबबंदी हटानेकेलिये राजाको मजबूर किया, उसके कुलतकको नष्ट कर देना चाहा। मेलेके दूसरे दिन एक आदमीको बुरी तरह शिर फुड़वाकर अस्पताल—बिना डाक्टरके अस्पताल—में आए देखा। "डाक्टर" ठाकुरसिंहने बतलाया हर मेलेके दिन दो-चारकी यही हालत होती है। देवता शराब और बलि बंद करनेकी बात-तक सुननेको तैयार नहीं। देवता यहाँ बात करते हैं या इशारेसे अपना भाव

प्रकट कर देते हैं। बात वह माली (ग्रोक्स) के मुँहसे करते हैं। देवताओंकी बातचीतकी बात फिर कभी मैंने सोचा, देवीको मनानेका कोई रास्ता निकालना चाहिये। पता लगा, देवी क्वारी है। उसका कोई दोस्त है, किंतु वह पतिके तौरपर नहीं। चिरकौमार्य क्रोधकी मात्राको बढ़ा देता है, इसलिए मैंने कोठीकी देवीके ब्याहका प्रस्ताव किया। कुछ सज्जनोंने इस विचारको पसंद भी किया।

डायबेटिसको दबोच रखनेवाले मेरे मित्र पंडित ब्रजमोहन व्यासका बतलाया नुसखा, रोज ४-५ मील टहलना है। मैंने २४ मईसे उसपर अमल करना शुरू किया, और अब नियमसे सबेरे चाय पीनेके बाद तिब्बत-हिन्दुस्तान सड़कपर यहाँसे १४१वें मीलतक जाने-आने लगा। नहीं कह सकता, अभी दुश्मन दबोच गया या नहीं। दबोचे जानेका अर्थ है, पंक्रिया ग्रंथिका फिरसे काम करने लगना, जिससे जठराग्निमें फिरसे तीव्रता आना। यद्यपि मूत्र-परीक्षामें शक्करका पता नहीं है, किन्तु हो सकता है, परीक्षाका मसाला (बेनडिकसोलूशन) खराब हो गया हो, क्योंकि जठराग्निकी मंदता हटी नहीं है, बुद्ध के बतलाये नुस्खे 'भोजने मात्रज्ञता' को शब्दशः माननेपर ही काम चलता दिखलाई पड़ रहा है। सचमुच, 'ते हि नो दिवसा गताः' कहकर मुँहसे हसरतभरी आवाज निकलने लगती है। कहाँ पत्थरतक पेटमें जाकर हजम हो जाता था, और कहाँ एक ग्रासकी कमी बेशीमें खट्टी-मीठी डकार आने लगती है? पहाड़का पानी भारी होता है, इसमें सन्देह नहीं। संकटमोचनवाले बाबाने भी पतेकी बात कह रखी है 'लागे अति पहाड़कर पानी', किन्तु यह पतेकी बात चित्रकूट और तराई-के बरसाती पानीकेलिये है। आखिर पहले भी तो पहाड़का पानी बरसों पीते रहे, और भूख लगती रही। खैर, पचपनसालाका भी ध्यान रखना होगा।

और खाना? किन्नरदेश विशेषकर वाङ्तूसे ऊपरका भूभाग पानीकेलिये ही सूखा देश नहीं है, बल्कि अन्न भी यहाँ अपर्याप्त होता है। बकरियोंपर अन्न ढो-ढोकर नीचेसे ऊपर लाना आज ही नहीं हो रहा है, बल्कि शायद सदियोंसे यहाँके बोझा ढोनेवाले पशु नीचे तिब्बती पशम और ऊन पहुँचा अनाज उठाये लौटते रहे। आजकल इसका अपवाद है, विलायती बड़ी मटर यहाँके गाँवोंसे लोग शिमला पहुँचाते हैं। कहते हैं, वहाँ इसका अच्छा दाम लगता है। अच्छा दाम नहीं लगता, तो २० रुपया मनकी ढुलाईवाले रास्ते वह

शिमला कैसे पहुँचती ? काश, यह हरी मटर भी मिलती। मई-जून तो साग-सब्जियोंके अकालका दिन रहा। ब्रूक्की बागमें बत्थू बहुत उगे थे, और बत्थू भी लाल कलँगीवाले बत्थू, किन्तु यहाँके लोग उसे छूतेतक नहीं। कहते हैं इसके खानेसे सूज़ाक हो जाता है। मैंने पुण्यसागरसे कहा—'रामका नाम लो, तुम रोज उसे बनाया करो', किन्तु एक बारके कहनेका प्रभाव दो चार बारतक ही रहता। हालाँकि कनोर लोग बत्थूका पूरा बायकाट नहीं किये हुए हैं, नहीं तो यहाँ बत्थू बाकायदा खेतोंमें क्यों बोये जाते ? मरसा (लालसाग) के बड़े-बड़े पत्तोंको देखकर मुँहसे लार टपकती है, लेकिन ये लोग पत्तोंकेलिए उसे नहीं बोते, बोते हैं उसके दानेके लिए, जिसे रोटी और भातकी शकलमें खाते हैं। हरे मरसेकी खेती भी इसीलिए करते हैं। इसका नाम उन्होंने बदलकर तुलसी रख दिया है। 'तुलसी महरानी, बिन्दा महरानी' गरीबोंकी आधार हैं। ऐसे कई नाम यहाँ उलट-पलट गए हैं, कई खाद्य वस्तुयें अखाद्य और अखाद्य खाद्य हो गई हैं। फाफड व फाफड़ा (बकव्हीट) ओगला कहा जाता है, और फाफड़ा उसीका छोटा भाई है। कोद्रा भी है, किन्तु वह हमारे यहाँका कोदो नहीं मँडुआ (रागी) है। गेहूँ, जौ, मटर जैसे हमारे परिचित अनाजोंके अतिरिक्त यहाँ नंगा (बिना छिल्केका) जौ भी होता है, किन्तु चिनीसे दूर स्पूमें। उसके लिये कुछ अधिक ऊँचाई या ठंडककी जरूरत होती है। अनाजोंकी पर्याप्त किस्में यहाँ होती हैं। टहलते समय मक्का भी एक खेतमें उगा देखा, अब (१३ जुलाई) तो उसमें बालें भी फूटी हैं, किन्तु पुण्यसागरका कहना था कि वह पूरा पकता नहीं। ब्रूक्कीकी लगाई तथा बचकर अब सिर्फ अकेली रह गई द्राक्षालताके बारेमें तहसीलदार साहेबकी भी वही राय है। शायद मेरे रहने (८ अगस्त) तक कहीं अंगूर पक जाये, नहीं तो दूसरे तो मधुर मृद्वीकाका आस्वाद लेंगे ही।

जहाँ तक साग-सब्जीका सवाल था, मई-जूनमें उनका बड़ा ठाला था। वैसे आनेके दिन ही एक जाँघ भेड़का सूखा मांस भगवानने भेज दिया था। सूखे मांससे भंडार कभी खाली नहीं रहा। कभी-कभी तो, इतनी आ जाती कि लड़कोंमें बाँट देनेके लिये पुण्यसागरको ताकीद करनी पड़ती। साल भरके सूखे चिमड़े मांसकेलिये न मेरे पास, न पुण्यसागरके ही पास पाचनशक्ति थी।

पुण्यसागर चालीस सालसे ऊपरके हो गये हैं। उन्हें दिमाग और धातुकी निर्बलताकी शिकायत है, तो भी चतुर गृहिणीकी तरह वह हर चीजको जोगाके रखना चाहते हैं, 'कःकाले फलदायकः।' मैं भी उनके काममें दखल नहीं देता, किंतु पासकी आल्मारीमें रखे पुराने मांसकी गंध उतनी प्रिय नहीं लगती। जहाँतक तेमनका सवाल था, तेमनराज मांस, बराबर अखुट रहा, किन्तु मूसाके अनुयायी तो भगवानके भेजे स्वर्गीय भोजन 'मन्ना' को भी बराबर खाते-खाते ऊब गये थे। कुछ दिनोंके बाद नेगी सन्तोखदासने आध मन आलू भेज दिया, जिसने पत रख ली। जब हम लोग दो सप्ताहकी यात्रामें गये, तो आलू आध-आध बित्ताके अंकुर दे चुके थे; हमने पुण्यार्थ या सदुपयोगके लिए उसमेंसे कुछको लेकर एक क्यारी बो डाली। पीछे सड़क-इंस्पेक्टर श्रीलक्ष्मीनन्दने बतलाया, अंकुरोंसे स्वादमें कोई कमी नहीं आती। खैर, तब तक उरेपरेसे बहुतेरा साग आने लगा, कभी नेगी संतोखदास भेज देते, कभी यूलाके नम्बरदार। रेंजरसाहेब शर्माजीकी कृपासे कई विटामिनोंकी खान हरे सागों और मटरकी फलियोंकी कमी नहीं रही। मक्कावाले खेतमें तो आजकल कद्दू (काशीफल)के स्वर्णिम पुष्प भी खिले थे। एक दिन हमारे रास्तेमें कद्दूकी एक नरम-नरम लता पत्रसहित पड़ी थी। मैं भी बहुत हाँड़ियोंका भात खाये हुए हूँ। बंगाली बंधुओंकी भाँति चाहता था, लताको उठा लूँ, सागकी कमीके कारण नहीं, बल्कि खाद्यके अपव्ययसे द्रवित होकर; किंतु पञ्चतंत्रके कपोतराजकी भाँति पुण्यसागरने कहा 'यहाँ निर्जन वनमें इसका उद्गम कहाँ' अर्थात् कद्दूकी लताका उद्गमस्थान तिब्बत-हिंदुस्तान सड़क नहीं हो सकती, जरूर दालमें कुछ काला है। और सचमुच हाँ लताके पत्तोंको सरकानेपर वहाँ और भी कुछ चीजें दिखलाई पड़ीं। पुण्यसागरने कहा—यह देखिये भस्मकी रोटी भी है। हाँ, सचमुच भस्मकी रोटी मँडवा (रागी)के लिट्टीकी तरह वहाँ रखी थी। यह भूत भगानेका अमोघ रामबाण है। मैं नहीं जानता पुण्यसागरकी क्या राय थी, किंतु अपुन तो समझ रहे थे, भूत कभी ऐसा मूर्ख नहीं हो सकता, कि भस्मकी रोटीके पीछे घरवालीको छोड़कर तिब्बत-हिंदुस्तान रोडपर मीलों दूर भूखों मरने आये। पीछे पुण्यसागर भी मेरी रायसे सहमत मालूम पड़े। दो सेर पक्का साग इस प्रकार अकारथ गया, मुझे तो सिर्फ इसका अफसोस था।

बदबख्त लामाने भस्मकी रोटीपर देवदारकी हरी पत्तियोंका प्रयोग क्यों नहीं बतला दिया, यदि भूतको भस्मकी रोटी और अन्नकी रोटीकी पहिचान नहीं, तो उसे देवदार और कद्दूके हरे पत्तोंमें क्या पहिचान होगी ?

मई-जूनमें चिनीमें ही सागका टाला क्यों होना चाहिये ? आखिर बर्फ तो यहाँ अप्रैलमें ही खतम हो जाती है, कितने ही साग और लाल मूलियाँ—जो बाईस दिनमें तैयार हो जाती हैं—तो इतने समयमें तैयार हो सकती हैं। 'यहाँके लोगोंको शौक नहीं', रेंजरसाहब थारा बेट्टा जीवे, आपकी बात बिल्कुल ठीक, बेटा नहीं है, होगा। ब्याहके ७ महीने ही बाद किसको बेटा हुआ है। यहाँ वालोंको क्या भारतमें कहींके गाँववालोंको साग-तरकारियोंका उतना शौक नहीं, यह कहते सिर्फ बंगभूमिका ख्याल संकोच में डालता है। यहाँ वाले तो कोई अन्न पा जायें तो उसीकेलिये खुदा मियाँका हजार शुक्रिया अदा करें। चूलीको इन्हें प्रदान कर घटघटके वासी मिट्ठी अविनाशी बहुत-बहुत शुक्रिया वसूल भी कर रहे हैं। फलोंमें चूली है, जो यहाँ हर गाँवमें है। गरीबके खेतमें भी दो-चार वृक्ष उसके जरूर खड़े रहते हैं। जाड़ेका संबल जब खतम हो जाता है, और किन्नर-दम्पती खाद्यकेलिये तिलमिलाने लगते हैं, उस समय यही फलराज है, जो गजकी टेर सुननेवाले भगवानकी तरह सबसे पहिले उनके पास पहुँचता है। जूनके अंततक नीचे-नीचे (नेवलमें) चूलीके फल पककर सुन-हले बनने लगते हैं। जितने दिन बीतते जाते हैं, वह पहाड़पर नीचेसे ऊपरकी ओर धावा करने लगते हैं। चूली एक तरहकी छोटी खूबानी है। पकनेपर इसका स्वाद मीठा, किसी-किसीका कुछ कसैला भी होता है। इसकी गुठली बादामकी भाँति तेलसे भरी होती है, किन्तु खानेमें प्रायः कड़वी हुआ करती है। हाँ, तेल निकालनेपर कड़वाहट नहीं रहती। उसे तो आप बादामका तेल कह सकते हैं। चूली है भी बादामकी सहोदरा भगिनी। चूली जब कभी कच्ची होती है, तभीसे लोग उसपर अपना दाँत साफ करने लगते हैं। सबकी बात मैं नहीं कहता, किन्तु हमारे चौकेमें तो जंगली पोदीनेके साथ उसकी चटनी बराबर बनती रही। पककर पीली पड़ जानेपर तो गरीबोंके घरमें बधावा बजने लगता है। और मेरी यार फलती भी इतनी है, कि तोबा, तोबा, लोग-लुगाइयाँ—टोकरे-टोकरे भरकर पीठपर ढोती रहती हैं, और वह घटनेका नाम नहीं लेती।

आजकल सड़कपर टहलनेकेलिये जाते समय दो मील दूर नीचेकी ओर तेलगांके घरोंकी छतोंको पीला-पीला देखकर मैं पुण्यसागरसे पूछने जा रहा था—तेलंगी देवताने सुवर्णकी वर्षा तो नहीं की ? किन्तु तुरन्त ख्याल आगया—चूली देवी जो किन्नरदेशमें पधारी हैं। वह चूलीके फल छतपर सूखनेकेलिये फैलाये हुये थे। पुण्यसागरने मुँह उदास करके कहा—हमारे यहाँ यह सुभीता नहीं, वहाँ वर्षा बहुत होती रहती है। हमारे यहाँ लोग खानेसे बची चूलीको कहीं जमा कर देते हैं, कुछ दिनोंमें सड़ जाती है, फिर झरनेपर ले जाकर उसे धो-धोकर गुठली अलग कर लेते हैं, जिसका खाद्य तेल निकाला जाता है। यह पौष्टिक खाद्यका अपव्यय है। 'उसकी शराब क्यों नहीं निकालते, कि अनाज बचता है', इसका उत्तर उन्हें यह छोड़कर दूसरा नहीं सूझा कि खाद्य नहीं है, यहाँ ऊपरी किन्नरमें पकी ताजी चूलीपर लड़के-बच्चे दिन-रात लगे रहते हैं, हर समयके भोजनमें उसकी सबसे अधिक मात्रा रहती है। मैंने भी दो चार दिन परीक्षा करनी चाही, किन्तु फिर मन ऊब गया। अच्छा तो यह मेरी बात नहीं, किन्नर-किन्नरियोंकी बात है। रोजके खानेके अतिरिक्त मनों चूली घरकी समतल मिट्टीकी छतोंपर डाल दी जाती है, जो कभी धूपमें सूखती कभी फुहारमें तर होती, अन्तमें सूख-साखके कुछ चिचुक जाती है, जिसे जमा करके लोग बखार भर लेते हैं। यह उनके जीवनका सबसे बड़ा संबल है। ताजी चूलीको खाली खा सकते हैं, कुछ आटा मीठा डालकर लपसी बना सकते हैं, किन्तु सूखी चूली उबालकर लपसीके रूप हीमें अधिकतर खाई जाती है, वैसे कभी-कभी पथिक अपने इस पाथेयको किसी पत्थरके पास तोड़कर सूखे भी खाते देखे जाते हैं, कड़वी गुठली तो खाली नहीं खाई जा सकती, किन्तु किसी-किसी चूलीकी गुठली मीठी भी होती है। चूली इन पहाड़ोंका प्राण है इसमें किसको शक है, और वह यहाँकी आदि-वासिनी है, अरण्यकाके तौर पर न सही, ग्राम्याके तौरपर ही सही।

चूलीके आसपास ही अलूचा पकने लगता है, किन्तु यह शायद क्या, है ही विदेशी म्लेच्छ। होता मीठा है, किन्तु वह उतना उपकारी नहीं है, यद्यपि फलनेमें चूलीसे भी निर्लज्ज। चूली तो एकाध डाल नहीं, एकाध वृक्ष भी किसी-किसी साल छोड़ जाती है, किन्तु अलूचा एक डालको भी नहीं। इसकी गुठली छोटी, शुष्क और तेलविहीन होती है। सुखाकर तो रख सकते हैं, किंतु

अभी यह उतनी संख्यामें बागोंमें देखे नहीं जाते। गिलास (चेरी) पकनेमें चूलीसे पीछे नहीं है, किन्तु यह शुद्ध पश्चिमी म्लेच्छ फल है, जिसे तुरन्त ही खाकर खतम करना पड़ता है। इसे तो आप कहीं-कहीं बिरले शौकीनोंके ही बागोंमें देख सकते हैं। वैसे बादाम, आड़ू, अंगूर आदि दर्जनके करीब और भी मेवे यहाँ होने लगे हैं, और देवताओंके पूरे विरोध करनेपर भी; किन्तु यहाँ समय नहीं, सभी फलों और उनके गुण-अवगुणको गिनानेका। अखरोट (अच्चोट) स्वदेशी मेवा है, और 'सतयुग'से चूलीके बाद यह सबसे अधिक लगाया भी जाता है, शायद इसका मूलस्थान भी हिमालयमें ही कहीं रहा, सोवियत् किर्गजिस्तानमें तो अब भी उसका सैकड़ों मीलका स्वाभाविक जंगल है. किन्तु अखरोटको यहाँकेलिये उतना उपकारी नहीं कह सकते। उसकी गुठली भर खाई जा सकती है। अखरोटकी लकड़ी भारतकी सबसे अच्छी लकड़ी है। उसे कीड़ा नहीं खाता, उसपर बहुत अच्छे बारीक बेलबूटे बनाये जा सकते हैं, बार्निश लगाये उसके सोफियाने फर्नीचरके सौंदर्यके बारेमें क्या कहना ? किन्तु ये गुण किन्नरके गरीबोंके किस कामके ?

अच्चोटके बाद दूसरा स्वदेशी और चूलीके बाद सबसे अधिक लोकप्रिय फल है, बेमी आड़ूकी परम सहोदरा भगिनी। यह जूलाईके अंतमें पकती है। अभी पकी बेमी खाई नहीं, किन्तु कहते हैं मीठी होती है। इसे सुखाकर भी रखते हैं, किन्तु बेमीका उपयोग चूलीकी भाँति खाद्यके तौरपर उतना नहीं होता, जितना तीर्थ-सेवनकेलिये। 'तीर्थ' पशुओंकी भाषामें गंगा-यमुना या काशी-प्रयागको कहते हैं। किन्तु वीर कौलोंकी भाषामें सुरा-सुन्दरीका यह पुल्लिंग नाम है, 'अनेक रूपरूपाय'। 'सवन'का अर्थ भाखामें है 'चुवाना' भभकासे अरक उतारना, वाष्प बनाकर फिर तरल रूपमें परिणत करना। भगवतीके सुपुत्र ब्रह्मचारी चैतन्यका कहना है, बेमीके 'तीर्थ'के सामने अंगूरी मदिरा कोई चीज नहीं। वह बहुत बड़ी औषध भी है। बेमी-मदिराकी प्रशंसा करते वह थकते नहीं। जान पड़ता था, वह मेरा आजन्म व्रत तोड़वाना चाहते हैं। सुनते-सुनते मेरा कान पक गया, तो मैंने कल (१२ जूलाई) उनसे कहा—'आप बेमीकी प्रशंसा करके सारी दुनियाकी रायको पलट नहीं सकते। पूरब-पश्चिम-उत्तर-दक्खिन चारों खूँट पृथ्वीमें अंगूरी मदिराको ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, हमारे

पाणिनि बाबाने कापिशेयी सुरा (काबुली अंगूरी मदिरा)को ही अपने सूत्रोंमें स्थान दिया है" । मैंने अपने तर्कसे ब्रह्मचारीके मुँहको बंद कर दिया जरूर, किन्तु उन्होंने मान लिया, यह बात नहीं है । अंगूरी मदिरा किन्नरमें दुर्लभ नहीं, और ब्रह्मचारी जैसे सिद्ध तीन वर्षसे बारह हजार फुटपर कुटी बना बारहों मास तपस्या करने वाले महापुरुषोंकेलिये तो वह परम सुलभ है, फिर उनका बेमी-पक्षपात निराधार नहीं हो सकता, आखिर जिसने न उसको, न इसको कभी ओटसे लगाया, उसे कुछ भी फैसला देनेका क्या अधिकार है ? हाँ, एक बात मैं अवश्य बेमी-प्रचारके पक्षमें कह सकता हूँ । उसके लोकप्रिय होनेका अर्थ है, हजारों मन अनाजका सड़ाया जाना बन्द होना, जिसे और किसी तरह नहीं बचाया जा सकता । गांधीका गुर किन्नरमें कुंठित हो जायेगा, यहाँ पानप्रतिषेध-का प्रयोग भारतमें सबसे पीछे करना चाहिये, यदि हिमाचल सरकार अपने विधि-विधानकी प्रतिष्ठा खोनेपर उतारू न हो । 'समन्दर' पार हिब्बाके एक भद्र जनने 'आर्य सनातन-प्रजा-मंडल'के पिछले वर्षके अधिवेशनके पास किये प्रस्तावको दिखलाते हुये कहा, इससे देवताओंको भी कष्ट होगा । मैंने कहा—देवता लोग निश्चिन्त रहें, भारतके सभी कुओंमें भाँग नहीं पड़ गई है, महामंत्री पन्त जैसे देवपुत्र भारतमें पड़े हुये हैं, जो अयोध्या-काशी आदि महातीर्थोंके महात्माओंको वचन दे रहे हैं, कि उनके अधिकारपर सरकार जरा भी रेफ नहीं आने देगी । इति बेमी महाकांड समाप्त ।

आहारके प्रकरणमें हम कहाँसे कहाँ चले गये, किन्तु बुद्धने कहा है 'सब्बे सत्ता आहारट्ठितिका' अर्थात् सारे प्राणियोंकी स्थिति आहारपर निर्भर है । फिर उसे छोटी-मोटी बात कैसे कहा जा सकता है ? हम चाहते हैं, भारतके कोने-कोनेसे भद्र-पुरुष और भद्र-महिलायें किन्नर-देशमें आयें और अपनी जेब खाली करें, किन्तु बिना खान-पानकी सुव्यवस्थाके वह कैसे आयेंगे । इसलिये आहार-प्रकरणको गौण नहीं बतलाया जा सकता । अन्न-आहारकी कमी यहाँ अवश्य है, किन्तु पैसेवालोंके लिये नहीं, रुपया-सवा रुपया सेर गेहूँका आटा आसानीसे मिल जाता है । सैलानी-सैलानिकाओंको हिमाचल सरकार विज्ञापन-बाजीसे नहीं बुला सकती, वह तो तभी आयेंगे जब नचारतक मोटर आ जाये और आगे घोड़ेकी सवारीका स्थायी प्रबन्ध हो । फिर तो यहाँके मेवे नीचे ढुलने

लगेंगे और यहाँ अन्नकी बाढ़ उमड़ आयेगी। आप यह न डरें कि फिर यहाँ मेवे खानेको कहाँ मिलेंगे, अथवा फिर हम उसे घर बैठे ही क्यों न खा लेंगे? कुछ आलसी जरूर ऐसा सोचेंगे, किन्तु जानते हैं न, रानीने भरथरीको जोगी बननेसे रोकनेके लिये घर ही गंगा मँगा देनेकी बात कही थी, जिसपर आज भी अमर भरथरी जोगीने श्रीमुखसे कहा था 'घरकी गंगा गड़ही बरोबर।'

हमें पहिले कुछ आटेकी कमी मालूम हुई, किन्तु 'अग्रसोची सदा सुखी।' हम रामपुरसे बीस सेर आटा, बीस सेर चावल ले आये थे। जब दो खच्चर अवश्यमेव ले चलना था, तो कुछ और सामान न ले लेना क्या बुद्धिमानी होती? फिर हमने समझा पैसेकी अपेक्षा अन्नसे अन्न आसानीसे मिल सकता है। हमें वह करनेकी जरूरत नहीं पड़ी, नेगी बलवन्तसिंहकी कृपासे आटा, तेल, घी सबका मुर्भाता रहा। चावल कुछ इधर-उधर भेंटमें गया। अपुन तो डायाबेटिस होनेसे खा नहीं सकते, पुण्यसागर भी उसकी ओर उपेक्षा हीसे देख रहे हैं, और तीन-चौथाई चावल, कहते हैं, अभी तक बचा हुआ है। वही हालत यहाँ लाई पाँच सेर चीनीकी भी है। मैंने उन्हें सजग कर दिया है, कि यहाँसे कोई खाद्य वस्तु लौटकर रामपुर नहीं जा सकती।

मैंने रामपुरमें सर्दार साहबके मुँह से डायाबेटिस् वालोंके लिये मधुकी छूट और दूसरे माहात्म्य बड़ी श्रद्धासे सुने थे। वहीं मधु-संचय करनेकी कोशिश की, और श्री विद्याधर विद्यालंकारकी कृपासे डेढ़ सेर पक्का शुद्ध मधु मिल भी गया। मैं रास्ते भर उसका सेवन करता रहा और यहाँ आकर तो राजापुरके राजवैद्य पंडित मोहनलाल पांडेकी भेजी दवाओंके साथ और भी उसकी अनिवार्यता हो गई। मधुपर आड़ा हाथ पड़ने लगा, वह कितने दिनों टिकती। मैंने मधुगवेषणाकेलिये दोस्तोंसे कहा। कर्पूरश्वेत मधुकी किन्नर-देशमें बड़ी महिमा है। किन्तु मेरे दुर्भाग्यसे पिछले जाड़ोंमें जो अति हिमपात हुआ था, उसने मधु-मक्षिका-वंशपर आफतका पहाड़ ढा दिया, उनकी बड़ी संख्या नष्ट हो गई। सर्वथा वंशोच्छेद नहीं हुआ है, इसलिए आगे आनेवाले मधुप्रेमियोंको निराश होनेकी आवश्यकता नहीं। अकाल वस्तुतः शंकरवर्णी मधुका है, रक्ताभा या पांडुरवर्णी शहदका नहीं। तीन साल पुरानी एक छँटाक श्वेतमधु डाक्टर ठाकुरसिंहने एकबार दी थी और एकबार तहसीलदार साहेबने आधपाव

कहींसे पैदा की थी। बस इतना ही भर, किन्तु, पांडुरवर्णा शहदकी तो कुछ ही दिनोंमें 'भरि-भरि भार कहारन आना' वाली बात हो गई। फिर एक ओर बर्तनकी कमी पड़ी, और दूसरी ओर स्नेहकी—आखिर 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' कहा गया है। आगे मधु-संचय रोक दिया गया। पीछे तो समस्या पैदा हुई, कहीं इस मधुको ढोकर रामपुर-शिमला-प्रयाग तो नहीं पहुँचाना होगा। चीनी और गुड़से भी सस्ती होनेसे इस मधुमें सांकर्य-दोषकी सम्भावना नहीं है, किंतु स्थान छोड़नेपर स्नेहका बिरवा फिर पनपने लगेगा। मनसाराम कह रहे हैं—'इसमें न जाने कैसी गंध आता है; इसमें मक्खियोंके शरीरका सत्त और मोम भी मिली हुई है।' कुछ सीमातक मैं इससे सहमत हूँ।

(किन्नरमें मक्षिकापोषण सतजुगी ढंगसे होता है। दीवारोंमें आधा भाग काष्ठका होता है, उसीमें सूक्ष्म छिद्रके साथ दरबा बना दिया जाता है। मक्खियाँ जाड़ोंमें दरबेके भीतर रहती हैं, फूलके मौसिममें बाहर भी छत्ता लगाती हैं। घरवाले सालमें दो बार मधु-संचय करते हैं। धुआँ देनेसे मक्खियाँ दरबेसे चली जाती हैं। छत्तेको तोड़कर मधु निचोड़ लेते हैं,) जिसमें मक्खियाँ चाहे न निचुड़ती हों, किन्तु उनके अंडों और मोमकी निचुड़नेकी संभावना तो अवश्य है। खैर, कुछ भी हो हम कौनसे वैष्णव हैं, अकावकातुर कौन अपनेसे छूटे हैं?

दूध-दही-मक्खनकी समस्या यहाँ कठिन-सी मालूम हुई और अन्ततक रही। लोगोंका इस तरफ ध्यान नहीं मालूम होता। चूलीके तेलपर निर्वाह करते लोग कमसे कम घी-मक्खनका प्रयोग करते हैं। भेड़-बकरीके दूधसे अपुन कोसों भागते हैं, न भी भागते तो भी वह सुलभ न होता। छेरी-भेड़ी न देखीं, यहाँकी गायें देख लीं। होतीं तो सभी श्यामा, "जिन्ह जसु वेद-पुरानन गावा", लेकिन दूध सीप भर। (रेंजर शर्माजीने सत्तर-अस्सीमें एक श्यामा खरीदी है, जो डेढ़ प्याला दूध देती है,) वह मुझसे एक ही मास बाद पहुँचे हैं। नौकरोंने बतला दिया, यहाँ की गायें बस इतना ही दूध देती हैं। उन्होंने पियाला भर दूधवाली गाय खरीद ली। दूसरा नौकर उनसे सेर भर दूध देनेवाली गायकी बात कर रहा था, किन्तु मुझे विश्वास नहीं पड़ता, यह मुट्ठी भरकी कामधेन्वा इतनी उदार होगी। हाँ, याक (चमरी) साँड़ और गायकी संकरी नसल जरूर अधिक दूध देती है। एक बार दो-ढाई सेर दूध और मक्खनमें हरियानेकी भैंसको मात

करनेवाली। किन्तु सकरी नसल—जोमो—की यहाँ बहुत कमी है। चमरके-लिए यहाँ उपयुक्त ठंडी जगह भी नहीं है। तिब्बतसे जबतब खरीदकर लोग लाते हैं, क्योंकि इन छेरी-भेड़ी जैसी गायोंसे हल जोतने लायक बैल प्राप्त करनेका कोई दूसरा उपाय नहीं। लेकिन चमरको गर्मियोंमें ऊपरी कंडेमें रखनेकी ही जरूरत नहीं पड़ती, बल्कि लम्बे बालोंके काट देनेपर भी उन्हें कीड़ोंसे बचाना पड़ता है। कहते हैं कीड़े चमड़ेके भीतर पड़ जाते हैं। इस कठिन समस्यापर चिंता प्रकट करते शरङ्के महासिद्धको कहा—कोई पर्वाह नहीं, बरेलीके प्रयोग-प्रतिष्ठानमें मैंने इन्हींकी तरहकी मुट्ठी भरकी पहाड़ी गायोंको शाहीवालके साँड़से छ मासमें अपनेसे दुगुनी बछिया पैदा करते देखा है। बस हिमाचल सरकारकी कृपादृष्टि चाहिए, यहाँ हवाई अड्डा बन जाना चाहिए, फिर हरियाना और शाहीवालके साँड़ बरेलीमें बैठे यहाँकी गायोंको वीर्यदान देंगे, और भारी दाम देकर मरनेकेलिए आनेवाले चमरोंकी जरूरत नहीं होगी। वस्तुत: घी-दूधकी समस्या गायोंकी कमी और उनकी निकृष्ट जातिके कारण है, जिसे विज्ञान हटा सकता है, और विज्ञानको यहाँ आनेसे कौन रोक सकता है? हमें आगे फलों और द्राक्षा सुराके साथ किन्नरमें दूध और मधुकी नदियाँ बहानेकी आशा रखनी चाहिए।

किन्नर ठंडी जगह है। मईके अन्तिम सप्ताहमें तो एक कंबलमें सर्दी नहीं समाती थी, अर्थात् यहाँ प्रयागके माघ-पूस जैसी सर्दी थी। मुझे "डाक्टर" से पट्टू लेना पड़ा और कोलीको नया पट्टू बुननेकेलिए कहना पड़ा, किन्तु जूनके अन्तमें ऊपरकी यात्रासे लौटनेपर सर्दी एक कंबलकी रह गई। मैंने रामपुरमें पश्मीनेकी चादर, पट्टू, गुदमा नहीं लेना चाहा, सोचा इनके घरमें तो जा ही रहा हूँ। यहाँ आनेपर पता लगा, पश्मीना भले इधरसे जाता हो, किन्तु उसका सूत और चादरें रामपुरमें ही तैयार होती हैं। गुदमे कनम्, सुङ्-नम् और स्पूमें बनते हैं। पट्टू (ऊनी चादरें) यहाँ भी तैयार होती हैं; किन्तु यह सब चीजें लोग 'लोई' केलिए तैयार करते हैं। लोई (मेला) रामपुरमें सालमें तीन बार होता है, जेठकी लोई सौर २५ वैसाखसे शुरू होती हैं, इसके अतिरिक्त सौर कार्तिक और सौर पूसमें दो लोइयाँ होती हैं। सबसे बड़ी लोई (मेला) कार्तिकमें होती है, जिसकेलिए किन्नर लोग महीनोंसे कपड़ा तैयार

करते हैं। उस समय फसल कट गई रहती है, खेत खाली होते हैं, रास्तेमें ऊपर न अभी बर्फ पड़ी रहती है, न निम्न पर्वत-स्थलीमें वर्षाका डर रहता है। इस लोईमें किन्नर-किन्नरियाँ बड़ी संख्यामें रामपुर पहुँचती हैं। अपना माल बेंचनेकेलिए और नीचेसे आये मालको खरीदनेकेलिए। कहते थे, कभी-कभी गुदमा, पट्टू, पट्टी रामपुरमें इतने सस्ते मिलते हैं, जितने मुङ्नम् और स्पूमें भी नहीं। यह तो बाजार भावपर निर्भर करता है, माल अधिक, खरीदार कम, और ऊपरसे विक्रेता अपने मालको लादकर घर लौटने-केलिए तैयार नहीं, फिर तो दाम गिरना जरूरी ठहरा। रामपुरमें पश्मीनेकी चादर प्राप्य होनेसे मैंने श्रीविद्याधरको दो चादरों केलिए लिखा। साधारण मोटी एकपलिया साठ रुपये, बारीकएकपलिया नब्बे रुपयेतक, दाम अधिक नहीं मालूम हुआ। लिख दिया, पंडित दौलतरामजीके आते समय उनके हाथसे भेज दें। सर्दी अधिक होनेके समय तो कोई नहीं आई। जूलाईमें एक चादर विद्याधरजीने भी डाकसे भेज दी और दो पंडित दौलतरामजीने भी। सोच रहा हूँ, क्या अब मुझे चादरोंका व्यापार शुरू कर देना चाहिए। मैंने ही तो दोनों मित्रोंको दो चादरोंकेलिए लिखा था। इसी तरहकी गलतियाँ और हुईं। मैं अपना पता—"डाकघर चिनी, द्वारा शिम्ला" लिखता रहा। यारोंने समझा चिनी कहीं शिम्लेकी ओर पासमें है, एकसे अधिक तार मेरे पास पहुँचे, और कुछ तो किसी सभा-सम्मेलनका सभापतित्व करनेकेलिए भी। उन्हें क्या पता, कि मैं दुर्गम पहाड़ोंको पार करते शिम्लासे १३८वें मील पाँचवें फर्लांगपर बैठा हूँ। इतना ही नहीं, मैंने मुजफ्फरपुर (बिहार) बाबू दिग्विजय नारायणसिंहको लीचियाँ भेजनेकेलिए लिख दिया, सोचा डाकसे सात-आठ दिनमें आ जायेंगी। रामपुरतक रोज और वहाँसे चिनी हर दूसरे दिन डाक आती है। आठ दिनमें लीचियाँ खराब नहीं होंगी। मुझे क्या मालूम, चिट्ठी पहुँचनेतक लीचियाँ खतम हो जायेंगी। दिग्विजय बाबूने समझा, पूछापेखी करना खामखाहकी बात है, तब तक कहीं मालदहा (लँगड़ा) का भी समय न चला जाये। उन्होंने झट टोकरी भरवा आठ रुपये किराया भी दे रेलसे शिम्लाको पार्सल कर दिया, और बिल्टी यहाँ मेरे पास भेज दी! बिल्टी मेरे पास सही सलामत और शायद आठ दिनमें पहुँच गई। और लँगड़ा? शिम्ला स्टेशनके पार्सल घरमें। मैं तो बतेरा

देवता-पित्तर मनाता रहा, कि कोई चोरी करले, आखिर मुजफ्फरपुरी लँगड़े किसीके काम तो आ जायें ? चिट्ठी कुमारी रजनीनायर को भेज दी, यद्यपि डरते-डरते, कहीं वह न समझ ले, कि सड़े लँगड़ेको मेरे मत्थे थोपा गया। खैर; जहाँ समझने-समझानेकी इतनी गलतियाँ हुईं, वहाँ एक और सही।

किन्नरके यात्रियोंको खान-पान गरम वस्त्रकी चिंता नहीं करनी चाहिए। काम तो मेरा १९४८में भी चल गया, जब कि हिमाचल सरकारकी स्थापना हुये चार महीने भी नहीं हुये, फिर आगे आने वालोंके लिए क्या चिंता ? उनके-लिए मैं भी चारों ओर दर्वाजे खटखटा रहा हूँ। "उसकेलिए" इसलिए कहता हूँ, कि यद्यपि मैं अपने दोस्तोंसे कहकर आया था और साथमें कुछ रुपये भी लाया था, कि सालमें सात मासकेलिए यहाँ अपना स्थायी वास बनाकर लौटूँगा। लेकिन रामपुर पहुँचते-पहुँचते मालूम हुआ, स्थायी वास तभी बनाया जा सकता है, जब साल-साल नीचे लौटनेका इरादा छोड़ दिया जावे। यहाँ पहुँचनेपर तो साफ दिखलाई देने लगा, कि चिनी तबतक मेरा स्थायी निवास नहीं हो सकती, जबतक मोटर इसके एकाध दिन पासतक न आजाये। "जो इच्छा करिहौ मन माहीं। हरि प्रताप कछु दुरलभ नाहीं।" हरिप्रताप नहीं हिमाचलसरकार-प्रताप सही। अपुन तो फिर आनेकी बहुत आशाके साथ चिनी नहीं छोड़ेंगे, देखें आगे क्या होता है।

७. घुमक्कड़ोंका समागम

मैं अपनेको अवसर-प्राप्त घुमक्कड़ कह सकता हूँ। १९०७ ई० (१४ साल की आयु) में घुमक्कड़ी अस्थायी थी, किन्तु १९०९ में जो घुमक्कड़ी व्रत लिया, तो पाँच वर्ष जबर्दस्ती जेलमें बंद रहनेके समयको छोड़कर आजतक बराबर घुमक्कड़ी करता रहा। पाँच साल जबर्दस्ती बंद रहनेके भी गिने जावें, तो भी ३४ साल घुमक्कड़ी-धर्मकी सेवा की है, अब ५६ साल लग जानेपर मुझे पेंशन लेनेका पूरा अधिकार। किन्तु जिसने एकबार घुमक्कड़-धर्मको अपना लिया, उसे पेन्शन कहाँ, विश्राम कहाँ ? आखिरमें यह हड्डियाँ घुमक्कड़ी करते ही कहीं बिखर जायेंगी। मैं चाहता हूँ अपने देशके सभी तरुणों-को घुमक्कड़ बना दूँ। मुझे जान पड़ता है, "अथातो घुमक्कड़जिज्ञासा" कहते घुमक्कड़ शास्त्र मुझे लिखना ही पड़ेगा। अब भी मेरी यात्राओंको पढ़कर

कितने ही माता-पिताओंको अपने सपूतोंसे वंचित होना पड़ा होगा, किन्तु अबतो मैं खुलेआम घुमक्कड़-धर्मका प्रचार करना चाहता हूँ, और हजारों माता-पिताओंका शाप और आसुओंकी वर्षा या आँधी अपने ऊपर लेना चाहता हूँ। घुमक्कड़ धर्म मुझे प्राणोंसे प्यारा है. भला उसका प्रचार करना मेरा सबसे बड़ा कर्त्तव्य क्यों नहीं होगा? मैं समझता हूँ जातियोंके उत्थानमें घुमक्कड़ोंका सबसे बड़ा हाथ हैं; हमारे स्वतंत्र देशको भी यदि महान् बनना है, तो उसे हजारों घुमक्कड़ पैदा करने होंगे। हां, जैसेतैसे घुमक्कड़ोंसे इस महान् उद्देश्यकी पूर्ति होना मैं नहीं मानता. और न हर घूमनेवाले याचक या अयाचकको मैं घुमक्कड़ कहता हूँ। घुमक्कड़ बननेकेलिए कुछ साधनोंकी आवश्यकता है, उन साधनोंको प्राप्त कर लेनेपर ही आदमी घुमक्कड़ बननेका अधिकारी बन सकता है, वह निशित छुरेकी धारपर चल सकता है। खैर साधन, अधिकार उद्देश्य घुमक्कड़-शास्त्रकी बातें हैं, जिनपर मैं यहाँ लेखनी नहीं चला रहा हूँ; उन्हें मैं फिर लिखूँगा और आशा है नातिचिरेण। संक्षेपमें यही कह सकता हूँ, कि सच्चा घुमक्कड़ सर्वसाधन संपन्न हो अपनी तपश्चर्यासे लेखक, कवि या चित्रकारके रूपमें अपनी सेवायें मानव समाजके सामने उपस्थित करता है। सच्चा घुमक्कड़-धर्म, जाति, देश-काल सारी सीमाओंसे मुक्त होता है, वह सच्चे अर्थोंमें मानवता-प्रेमीका उपासक होता है। वह दुनियासे लेता कम और देता अधिक है।

एक घुमक्कड़ किसी दूसरे घुमक्कड़से जब मिलता है, तो उसमें उसी मात्रामें आत्मीयता बढ़ी तीव्र पड़ती है. जितनी मात्रामें कि घुमक्कड़ी साधनामें वह ऊपर पहुँच चुका है। कोई-कोई घुमक्कड़ी धर्मकी साधना "स्वांत: सुखाय" करते हैं, किन्तु मैं उन्हें निम्न श्रेणीका घुमक्कड़ कहता हूँ। इसका यह अर्थ नहीं, कि मैं उनकी कठिन मात्राओं और दुर्भर तपश्चर्याओंको हेय दृष्टिसे देखता हूँ। वह अपने मूक आचरण या वार्तालापसे नये घुमक्कड़ोंकेलिए क्षेत्र पैदा करते हैं; आखिर अनवद्द नानाने अपनी यात्राकथाओंसे ही मेरे हृदयमें घुमक्कड़ी का अंकुर पैदा किया, जिसमें कितने ही अपठित या अल्पपठित घुमक्कड़ोंने जलसिंचन किया। इस यात्रामें भी मुझे कुछ घुमक्कड़ मिले, जिनका परिचय पाठकोंसे कराये बिना मैं आगे नहीं बढ़ सकता। एक-एक घुमक्कड़के

परिचयकेलिए एक-एक पोथी चाहिए, जिसकेलिए न मेरे पास अवसर है, न मैंने उतनी सामग्री एकत्रित की है। जिन घुमक्कड़ोंके बारेमें मैं यहाँ लिखने जा रहा हूँ, उनका श्रेणी-विभाजन नहीं करना चाहता, उसे पाठक खुद कर लें।

अम्दो घुमक्कड़—अम्दो ल्हासासे उत्तर दो मासके रास्तेपर कोकोनोर और कान्सू प्रदेशमें एक इलाका है। अम्दो-जाति यद्यपि भाषा और जातिसे तिब्बती जातिकी ही अंग हैं, किन्तु वह तिब्बती लोगोंसे बहुत पहिले सभ्यतामें दाखिल हुई। उसकी मुख्य भूमि पीत-नदी (ह्वाङ्हो) के बड़े चौकोर चक्करसे पश्चिम थी, जिसे चीनी लोग हिया या हूमिया कहते। इनकी राजधानी एक-बार तुङ्ह्वान (आधुनिक निङ्हिया) रही। पूर्वी चिन् वंश (३१७-४२० ई०) ने तंगूतों (अम्दुओं) के राज्यको खतम कर दिया, और फिर वहाँपर किंचुग् वंश राज्य करने लगा। इसी समय ३९९ ई० में महान् चीनी पर्यटक फाहियान अपनी भारत-यात्रामें इधरसे गुजरा। तंगूत् फिर पाँचवी सदीमें स्वतन्त्र हो गये। ग्यारहवीं सदी (१०८३ ई०) में चेन्-युयेन् इनका सम्राट् था। बारहवीं सदीके अन्तमें, तंगूत् राज्य कंसू, शान्सी और ओर्दुस् (ह्वाङ् हो वक्रताके पास) के उत्तरी नगरोंतक फैला था। तंगूतोंने चिंगिस् हान्का जबर्दस्त मुकाबिला किया, जिसके प्रतिशोधमें चिंगिस्ने बहुत क्रूरतापूर्वक इनका दमन किया। पुरानी राजधानी तुङ् ह्वान्से रूसी शोधकोंको कितने ही बौद्ध ग्रन्थ तंगूतोंकी और लिखित सामग्री मिली है। यही पुराने तंगूत् या "हिया" आज अम्दोके नामसे प्रसिद्ध हैं। चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदीमें इस जातिने चोङ्खपा सुमतिप्रज्ञ जैसे महान विद्वान और सुधारकको जन्म दिया। आज तिब्बतमें उसीके अनुयायी (गेलुक्पा) धर्म और शासनके नायक हैं।

यद्यपि तिब्बतमें डेपुङ्, सेरा गन्दन और टशील्हुन्पो जैसे महान् विद्यापीठ हैं, जिनमेंसे प्रत्येकमें तीन हजारसे सात हजारतक भिक्षु रहते हैं, किन्तु वह विद्यामें अम्दोके जोनी तथा कंबुम्के विहारोंका मुकाबिला नहीं कर सकते। मेरी चारों तिब्बत यात्राओंके सुपरिचित डेपुङ् (ल्हासा) के गेशे-शेरब और टशील्हुन्पोके सम्लोगेशे विद्वत्तामें अद्वितीय थे, और विद्वत्ताके लिए ही उन्हें मध्य तिब्बतमें लाकर रखा गया था। मेरी दो तिब्बत यात्राओंके साथी गेशे गेंदुन्छेम फेल् (संघधर्मवर्धन) एक सर्वतोमुखी प्रतिभाके आदर्शवादी स्वतंत्र-

चेता विद्वान् थे—या हैं कहूँ। वह तर्क और दर्शनके विद्वान तो थे ही, साथ ही तिब्बती साहित्यका उनका ज्ञान बहुत व्यापक था। वह एक अच्छे चित्रकार और उससे भी बड़े कवि थे। भारतमें बारह-तेरह साल रहनेके बाद जब वह स्वदेश लौट रहे थे, तो उन्हें उनके स्वतन्त्र विचारोंकेलिए पकड़कर जेलमें डाल दिया गया, जहाँ दो सालसे यह अद्भुत प्रतिभाशाली पुरुष सड़ रहा है। यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी, कि तिब्बतकी यात्रामें मेरी जिन पंडितों से घनिष्ठता हुई, वह या तो अम्दो (तंगुत) थे या मंगोल।

अम्दो लामा, जिनसे चिनीमें आकर मुलाकात हुई, उसी पुरातन तंगुत् जातिके हैं। वह अस्पतालकी एक कोठरीमें ठहरे हुये थे। अस्पताल कई सालोंसे बिना डाक्टरका है। कंपौंडर हर किसीसे झगड़ा मोल लेनेको तैयार नहीं, इसलिए अस्पताल छात्रावासका भी और धर्मशालाका भी काम देता है। उसका आँगन गदहों और घोड़ोंके बाँधनेका स्थान है। इसी अस्पताली सरायमें अम्दो घुमक्कड़ आकर ठहरे। उन्हें किसीसे मेरा पता लगा, आये मिलने। अम्दो छोड़े उन्हें बीस सालके करीब हो गये। कुछ साल ल्हासाके पासके मठमें पढ़ते रहे, किन्तु उसमें उनका मन नहीं लगा। फिर खङ्-रिम्पोछे (हिमवन्त महाराज, कैलाश) के दर्शनके लिए आये वहाँ किसी हठयोगी लामाने उन्हें अपनी तरफ खींचा और छ-सात सालसे वह इधर ही विचर रहे हैं। अभी रवालसर (मन्डी) तीर्थका दर्शन करके लौट रहे थे। कुछ घुमन्तू खम्पा रास्तेमें मिले, जिन्हें सामान दे आगे बढ़ आये। खम्पाकी स्त्री प्रसवके बाद बीमार पड़ गई, जिससे वह समयपर नहीं पहुँच सके। मुझे नहीं बतलाया, किन्तु पुण्यसागरसे कुछ अन्न उधार माँगा। मैंने सुना, तो उन्हें मुक्तहस्त हो सहायता करनेकेलिये कह दिया। लेकिन दूसरे दिन खम्पा लोग आगये, अम्दो घुमक्कड़ बचे चावालको लौटाना नहीं भूले, उधारके लौटानेकी बातको मैंने स्वीकार नहीं किया।

कहाँ है ह्वाङ्हो (पीत नदी,) कहाँ कोकोनोर (नील-सरोवर) और कन्सू? और यह व्यक्ति हमारी भाषा भी नहीं जानता, किन्तु भारतके बहुतसे भागोंमें घूम आया है, सिंहल (लंका) भी हो आया है, और अब बर्मा जानेकी बात कर रहा था। उसके लिये पृथ्वीका चारों खूँट जगीरीमें है। दूसरे दिन

हम टहलते समय अम्दो घुमक्कड़के यजमानके डेरेपर गये। देखा हमारा पूर्व परिचित खम्पा तरुण भी वहीं है। वह भला बिना चाय पिलाये कैसे छोड़ता? अम्दो परिव्राजक प्रसूताके लिए पाठ कर रहे थे। अपनी व्यवहार बुद्धिसे कुछ दवा और रोगोपचारकी बात भी बतला रहे थे। वह अपने देशभाई गेशे धर्म बर्धनको पहिले ही से जानते थे। बतलाया, तिब्बतमें आजकल अन्धाधुन्ध चल रही है। मानसरोवरमें डाकुओंने अड्डा जमा लिया है। ल्हासामें मठके गुन्डोंका राज्य है। सेराके एक मंगोल (निश्चय ही मेरे मित्र गेशे तन्दर) शांत रहने-केलिये कहनेपर उनके क्रोधके शिकार हुये। भोट-रिजेंट रेडिङ् लामाको भी उन्होंने मार डाला। गेले धर्मवर्धन यह कहनेके लिये जेलमें डाल दिये गये, कि वह यहाँ भी शासनमें प्रजाहित सामने होने की बात करते थे। फिर उन्होंने भारतमें युद्ध, लदाखपर संकट ही नहीं वर्मा लङ्का और जापान तककी बातें पूछीं। यद्यपि वह आदर्श श्रेणीके घुमक्कड़ नहीं हैं, अर्थात् अपने अनुभव और अपनी आँखोंसे देखी बातोंको दूसरोंको साक्षात्कार नहीं करा सकते; किन्तु उनके साहस और कष्टसहिष्णु जीवनको कौन दाद नहीं देगा?

मंगोल घुमक्कड़—वाह्य मंगोलिया (राजधानी उर्गा, आधुनिक उलान-बातोर) के निवासियोंको खलखा मंगोल कहते हैं। मंगोलिया सोवियत् संघके भीतर नहीं है, किन्तु उसके सोवियत् आर्थिक राजनीतिक व्यवस्थाको स्थानीय परिवर्तनके साथ स्वीकार किया है। १६१८-२० ई० से ही वहाँ नये समाजकी रचना होने लगी। लेकिन उससे पहिले ही हमारे घुमक्कड़ अपने देशको छोड़ चुके थे। सुदूर मंगोलियासे छ महीनेकी कठिन यात्रा; मरुभूमि तथा हिमाच्छादित पर्वतोंका उल्लंघन, डाकुओंके संघर्षसे गुजरकर मध्यतिब्बतमें पहुँचना ठट्ठा नहीं है। इसलिये वाह्य मंगोलिया, बुर्यत् मंगोलिया (बैकाल सरोवर) और खैलर (अन्तरमंगोलिया) तथा अस्त्राखानसे जो मंगोल भिक्षु ल्हासा पहुँचते, वह अधिकांश लगनवाले विद्यार्थी साबित होते। हमारे घुमक्कड़ उनके अपवाद थे, और हमारी प्रथम यात्राके साथी मंगोल सुमतिप्रज्ञकी भाँति निरक्षर भट्टाचार्य न होते भी विद्यासे विशेष रुचि नहीं रखते थे। वर्षों ल्हासाकी गुम्पा (मठ) में रह तीन साल ग्याँचीके पास किसी जगह एकांत ध्यानमें बिताया, अब मंगोलिया लौटनेकी न संभावना है न इच्छा ही, इसलिए वह

विचरते हुये जीवन बिता देनेका निश्चय रखते हैं। भारतके बौद्ध तीर्थोंका यह पहिला भ्रमण है, किन्तु इसे आरम्भ ही समझिए। तिब्बतके लोग भी गर्मियोंमें भारतमें रहनेसे घबड़ाते हैं, फिर सिबेरियाके अंचलमें बसी मंगोलियाके निवासियोंके बारेमें क्या कहना है? जाड़ोंमें घूमते वह अमृतसर पहुँचे, उस समय वहाँ मारकाट चल रही थी। मारकाटवालोंने तो उन्हें नहीं पूछा, इनका चेहरा और लाल वस्त्र इस बातके प्रमाण थे, कि वह रामखुदैयासे दूर हैं। हाँ, पुलीसने जरूर गिरफ्तार करके दो-तीन दिन बंद रखा, समझा रूसी बोल-शेविक हैं। रंग ज्यादा साफ और अधिक लाल था, लेकिन मंगोल आँखें और श्मश्रुहीन मुँह कहीं छिपे रह सकते हैं? दो-तीन दिन बाद पुलीसने छोड़ दिया। इतनेपर भी उनकी सहानुभूति पाकिस्तानके साथ नहीं है, क्योंकि भारत उनकी धर्मभूमि है, उससे मंगोलियाका सांस्कृतिक संबंध है।

उनसे ल्हासाने अपने मित्रोंके बारेमें भी कितनी ही बातें मालूम हुईं। मेरे मित्र गेशे तन्दर उनके देशभाई थे। वह पहिली ही यात्रासे मेरे मित्र बन गये थे। वह भी इन्हींकी भाँति खलखा भूमि (बाह्य मंगोलिया) को क्रान्तिसे पहिले छोड़कर तिब्बत चले आये थे। पहिले हर साल मंगोल सार्थ तीर्थयात्रा करने ल्हासा आता। उनके हाथ सगे-सम्बन्धी सोना भेजते, जिससे मठोंके मंगोल विद्यार्थी सुखपूर्वक विद्याध्ययन करते। क्रान्तिके बाद वह आमदनी बन्द हो गई, किन्तु मंगोल मेहनती विद्यार्थी थे, इसलिए सहायता मिल जाती थी। गेशे तन्दर रडिङ् लामा (पीछे भोटके रिजेंट) के उस समय भी गुरु थे। सरकारी परीक्षामें उस सालके १६ "ल्हा-रम्पा" (डाक्टर) उपाधि-प्राप्त करनेवालोंमें वह सर्वप्रथम आये थे। सबसे अन्तिमबार वह मुझसे १९३८ में मेरी चतुर्थ तिब्बतयात्राके समय मिले थे। वह उस समय मंचूरियासे लौट-कर फिर तिब्बत जा रहे थे, कलकत्ता कलिंपोङ् के रास्ते। वह राजनीतिक व्यक्ति नहीं थे, विद्याव्यसन ही उनके जीवनका ध्येय था, तो भी उनके हृदयमें अपनी मातृभूमिका प्रेम था, और नवीन मंगोलियाके वह प्रशंसक थे। इसलिए लामाओंके बीस बरसके विरोधी प्रोपेगंडाके बाद भी वह स्वदेश लौटना चाहते थे। मंचूरिया और मंगोलियाकी सीमापर पहुँचे भी, किन्तु उसका पार करना उन्हें सम्भव नहीं मालूम हुआ। यदि नवीन मंगोलियाके प्रति सहानुभूतिका

जरा भी संकेत पाते, तो जापानी उन्हें अपनी जेलमें रख देते, और जापानसे जरासा भी सम्पर्क सिद्ध होनेपर मंगोल भी उसी तरह स्वागत करते। बेचारे हताश होकर लौट रहे थे। जन्मभूमि के देखनेकी सम्भावना नहीं थी। शेष जीवन तिब्बतमें ही बीतनेको था। नौ सालसे अधिक नहीं हुआ। वह इधर सेरा महाविहारके एक खन्पो (आचार्य) बना दिये गये थे। यह बड़े सम्मानका पद था। सेराके पाँच हजार भिक्षुओंके चार प्रधान आचार्योंमें एक का पद प्राप्त करना भारी गौरवकी बात थी। लेकिन साथ ही यह सेराकेलिए भी गौरवकी बात थी, जो उसे गेशे तन्दर जैसा आचार्य मिला था। किन्तु अब तिब्बतके यह विहार विद्या और विद्वानोंके निवास-स्थान नहीं गुन्डोंके डेरे बन गये हैं। वहाँ विद्याव्यसनियोंका नहीं रक्तपाणि राक्षसोंका बोलबाला है। रेडिङ् लामा रिजेंट होकर सबको प्रसन्न कैसे कर सकते थे? उन्होंने इनके हाथ अपने प्राण खोये। गुन्डोंको शान्त करनेका विफल प्रयत्न करते गेशे तन्दर-ने भी अपनी भविष्यकी उमंगोंको सदाकेलिए कुर्बान किया।

मंगोल घुमक्कड़से यह भी मालूम हुआ, कि गेशे धर्मवर्धनको इसलिये पकड़ा गया, कि उन्होंने मंगोलियाकी आधुनिक व्यवस्थाकी प्रशंसा की। गेशे धर्मवर्धनने "धम्मपद" ही नहीं "गीता" और "अभिज्ञानशाकुन्तल" का सुन्दर पद्यबद्ध अनुवाद किया है। इस पुरुषसे तिब्बती साहित्यको बहुत आशा थी, किन्तु आज वह ल्हासामें बन्द है। मंगोल घुमक्कड़के कथनानुसार उन्हें जेलमें नहीं नगरमें बन्द रखा गया है। उन्होंने बतलाया कि रेडिङ्की हत्याके बाद डेपुङ्का कोई बूढ़ा रिजेंट बनाया गया है, जिसके बाद कुन्देलिङ् लामाके रिजेंट होनेकी संभावना है। ल्हासामें बहुतसे लामा और विद्वान् तलवारके घाट उतारे गये हैं, बहुतसे गद्दीधारी लामा गलेमें काठ मारे बंदीका जीवन बिता रहे हैं। यह सब है प्रभुताकेलिये। दलाई लामा अभी १४ सालका बच्चा है; अभी उससे प्रभुताकांक्षियोंको भय नहीं है। किन्तु क्या तिब्बत ऐसे ही रहेगा? तिब्बतके भाग्यका फैसला चीनकी रणभूमिमें हो रहा है।

३—**ब्रह्मचारी चैतन्य**—जब मैंने ब्रह्मचारीके साहसका बखान किया, तो रेंजर शर्माने कहा—क्या वही जो जंगीमें एक स्त्रीके पीछे पागल हो गया।

मैंने कहा—आप तो सनातनी हैं, पागल क्या ब्रह्मा और शिवजी नहीं हुये ? संस्कृतकी सूक्ति है :—

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशनाः,
तेऽपिस्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहंगताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुंजते मानवाः,
तेषांमिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरम् ।।

(विश्वामित्र, पराशर आदि जो हवा-पानी-पत्ता खानेवाले थे, वह भी स्त्रीके सुललित मुखपंकजको देखकर मुग्ध हो गये । फिर जो आदमी घी-दूध-दही सहित शालीके भात खाते हैं, यदि उनकी इन्द्रियोंका निग्रह हो जाये, तो कहना चाहिये विंध्यपर्वत समुद्रमें तैर रहा है ।)

यह कहते हुये मैंने बतलाया, उक्त दोषके होने भी यात्रीके साहसकी महिमा नहीं घट सकती ।

ब्रह्मचारी परमानन्द चैतन्यका जन्म अल्मोड़ा जिलेमें कहीं पर आजसे ४० वर्ष पहिले हुआ था, और उनकी आधी आयु घुमक्कड़ीमें बीत चुकी है । उन्होंने अपना भ्रमण-क्षेत्र कश्मीर, लदाख, मानसरोवर, नैपाल लेते सारे हिमालयको बनाया, और कठिनसे कठिन रास्तोंको चाल डाला । कह रहे थे, १५-१६ साल पहिले मैं जुब्बलके पहाड़ोंमें घूम रहा था । एक दूकानदारने बड़ी खातिर की । भोजन करानेकेलिए उसकी तरुणी कन्याने हाथ-मुँह धुलाया, साथ बैठी । उसकी माँने हम दोनोंको साथ बैठाकर भोजन कराया । रातमें एक कोठरीमें रख दिया । मैंने संयम किया । दूसरे दिन गृहपतिने घर-जमाई बननेका प्रस्ताव किया । इन्कार करनेपर रोक रक्खा । फिर आकर अपना निश्चय बतलाऊँगा—यह कहकर चला आया । यह पथकी प्रथम बाधा थी । ब्रह्मचारीने अधिक समय चम्बा, कुल्लू, जुब्बल जैसे खुले यौन-सम्बन्धके प्रदेशोंमें ही बिताया है । उच्च श्रेणीके घुमक्कड़ोंकेलिये और योग्यताओंके साथ "चौरी नारी-मिच्छा । और घुमक्कड़-इच्छा" इस ब्रह्मवाक्यका पालन करना आवश्यक है—"नारी" से बन्धन बननेवाली नारीका अभिप्राय है । किन्तु ब्रह्मचारीसे यह आशा नहीं की जा सकती, कि वह इस वाक्यका पालन करेगा । उनका ब्रह्मचर्यका ढोंग भी उनके दो घंटेकी समाधि लगानेकी बात जैसा ही

यात्राके संबलका एक अंग है। वह अपने कथनानुसार एक बार मूत्रकृच्छ्के शिकार हो चुके हैं, हाँ अधिक योगाभ्यासके कारण। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं, उनकी विचरण भूमि ही ऐसी है, जहाँ मूत्रकृच्छ् उपदेशका आँकड़ा ७५ सैकड़ासे कम कोई ही कोई बतलाता है। इसमें इन लोगोंका दोष नहीं, दोष है अधिक सभ्य कहलाये जाने वाले नीचेके लोगों और गोरोंका, जिन्होंने इनकी सामाजिक स्वच्छन्दताका अनुचित लाभ उठाया। अपने यहाँ तो यौनप्रतिबन्धके मारे वेश्यावृत्ति मात्र ही यौन-सदाचार पालनका एक मात्र साधन बना दिया, और वेश्याके रतिजरोगका खुला प्रसाद अपने भक्तोंको बाँटती हैं। उसीको लेकर हमारे भाई पहाड़ोंमें पहुँचे और यहाँके मुक्त संबंधके वातावरणमें उनका लगाया बिरवा एकसे दो दोसे चार, चारसे सोलह होते आज सारे पहाड़में फैल गया है। अब आप ही बतलाइये, गरीब पहाड़ियोंको आज इस दशामें पहुँचा देनेका दोष किसपर है ? इसका परिणाम पागलपन और कोढ़का भयंकर प्रहार हो रहा है; जिसका साकार रूप ऋषीकेश-लछमनझूलाकी सड़क, तथा सपाटूमें पड़े कोढ़ी-कोढ़िनोंकी पल्टनके रूपमें दिखलाई दे रहा है। घुमक्कड़ बननेकी आकांक्षा रखनेवालोंके मार्गमें यह बड़ा खतरा है। सरकारकेलिये रतिजरोग कितनी बड़ी समस्या है, इसे स्वयं समझिये। यद्यपि पेंसलिन् और दूसरी ऐसी रामबाण औषधियाँ निकल आई हैं, जिनके चंद इन्जेकशन मूत्रकच्छ्रको चुटकी बजाते-बजाते भगा देते हैं, किन्तु एक हिमाचलको ही रतिजरोग-निर्मुक्त करनेकेलिए करोड़ों डालरोंकी दवाइयाँ चाहिये, यह डालर कहाँसे आयेंगे ?

ब्रह्मचारी कश्मीरसे नेपालतकके पहाड़ोंको अंगुल-अंगुल छाने हुए हैं, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है। और ऐसे रास्तोंसे; जिन्हें देखकर हमारे अधिकांश पाठकोंका शरीर सिहरने लगेगा। कश्मीरसे लदाख होते मानसरोवर पहुँचना और सो भी परम बेसरोसामानीके साथ, ऐसी-वैसी बात नहीं है। अजपथोंसे जा-जाकर पहाड़ोंपरके सरोवरों और ग्लेशियरोंमें पांडवोंके तपस्या-स्थल और नये तीर्थोंका आविष्कार करना भी आसान काम नहीं है। वह यूला-खड्ड (नदी)के ऊपरके डाँड़े परके सरोवरों और पांडवोंकी तपस्याकी बातें कर रहे थे। वहाँ एक कुण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी मूर्तियाँ हैं। मैंने समझ लिया, यदि इनकी बात सच्ची हो, और उनकी सत्तर-प्रतिशत बातोंको

मैं ऐसे ही काट देता हूँ, तो वहाँ अवलोकितेश्वर-मंजुश्री वज्रपाणिकी त्रिमूर्ति होगी। मानसरोवरके रास्तेकी एक पुरानी गुफामें उक्त तीनों मूर्तियाँ राम, लक्ष्मण, सीताके रूपमें मजेसे मानी जा रही हैं। यह मालूम है, भक्त भाव-प्रधान होते हैं, उन्हें लिंगभेद करनेकी फुर्सत कहाँ? मैंने कहा—इन छोटे सरोवरोंके तीर्थ प्रचलित नहीं होंगे, मानसरोवर काफी है। यदि आविष्कार करना ही है, तो जाओ लाहुल (कुल्लू) के परले पार लदाखके रास्तेपर। वहाँ एक नंगे पर्वतकी जड़से मोटी-मोटी सहस्र धारायें निकल रही हैं, जिनको हिन्दू आसानी-से तीर्थ मान सकते हैं। यद्यपि वहाँ पहुँचनेकेलिये कुल्लूसे दो जबर्दस्त जोतें पार करनी पड़ेंगी, जिनमें एकके पासका पर्वत तो जान पड़ता है, विशाल कछुयेकी तरह सरक रहा है, और हर समय उसपरसे पत्थर गिरते रहते हैं। किन्तु इस कठिनाईको हमारी विमान-कम्पनियोंके स्वामी धर्मात्मा सेठ हल कर सकते हैं। वहाँ फोलक-डंडामें काफी मैदानी जगह है, वहाँ थोड़ेसे परिश्रमसे छोटे पत्थरों-को हटाकर हवाई मैदान बनाया जा सकता है। बल्कि आजकल तो शायद हमारे सैनिक विमान उसी आकाशसे हर रोज जा रहे हैं। ब्रह्मचारी मेरी बातको इतना ध्यानसे सुन रहे थे, मानो वह कल ही वहाँ जाकर किसी तीर्थराजका झंडा गाड़ देंगे। मैंने एक बार उस अनाम-तीर्थका महातम एक सिक्ख तीर्थ-यात्रीको भी बतलाया था, जो गंगोत्रीकी ओर गुरु गोविन्दसिंहकी तपोभूमिको ढूँढ़ रहे थे। कहीं ब्रह्मचारीके जानेसे पहिले ही फोलकडंडाका अनाम तीर्थ गोविन्द-तीर्थ न बन जाये ?

ब्रह्मचारीके नेपाली गुरु चंबामें रहते हैं, जहाँ उनकी सिद्धाईकी बड़ी ख्याति है। चम्बा तो उनकेलिए घर-सा ठहरा। "पर्यटन् विविधान् लोकान्" तीन वर्ष पहिले वह किन्नर देशमें पहुँचे। लदाख, स्पिती, मानसरोवरकी अनेक यात्राओंके सम्पर्कसे वह तिब्बती भाषाका कामचलाऊ ज्ञान रखते हैं, उनके प्रति-द्वन्द्वी घुमक्कड़ मोने-रौला के पास वह ज्ञान नहीं है। साथ ही शक्ति-उपासक होनेसे बौद्ध लामाओंके प्रति ब्रह्मचारी बहुत उदार हैं, और लोगोंको भक्त आचारी वैष्णव बनानेकी नहीं अभेद-बुद्धिकी शिक्षा देते हैं। माईके प्रसाद (मदिरा) के माईकी भाँति ही अनन्य भक्त हैं, और दिनमें जितनी बार मिल जाये, "अधिकस्याधिकं फलं" मानते हैं। किन्तु मांससे वैसा ही सख्त पर्हेज

रखते हैं, जैसा माईके प्रसादके साथ माईके सामने साष्टांग दण्डवत् करने वाले कितने ही गुजराती-मारवाड़ी सेठ। कहते हैं "शुद्धि (मांस) सेवन करनेपर माई हाथसे काटे बकरेकामांस माँगेगी, अभी तो मैं नारियल या कुष्मांडकी बलि देकर छुट्टी ले लेता हूँ।"

ब्रह्मचारीकी आयु चालीसके आसपास है, शिर पर तैलाक्त दीर्घकेश और मुँहपर लम्बी दाढ़ी रखते हैं। दोनोंमें अभी सफेदीका स्पर्श नहीं हुआ है। तीन वर्ष पहिले कैलाससे विचरते वह यहांसे छ मील आगे पंगी गाँवमें पहुँचे। दो चार दिन ठहरे। लोगोंमें श्रद्धा देखी। निश्चय किया, यहीं योग समाधि लगानी चाहिए। जानते थे, तिब्बतके लामा तीन साल और कोई-कोई तो जन्म भरकेलिए गुफामें बंद हो जाते हैं, भक्त लोग उनके खानपानको एक छिद्रसे रख आया करते हैं। ब्रह्मचारीने तीन सालकी प्रतिज्ञा ली। पंगीमें सड़क ८६५० फीट की ऊँचाईपर है, ब्रह्मचारीने उससे भी तीन हजार फीट ऊपरके स्थानको चुना, जहाँ पहुँचनेसे पहिले वृक्षकटिबन्ध समाप्त हो जाता है। भक्तोंने वहाँ उनकेलिए सात कोठरियोंका घर बना दिया। ऋषिकुल तैयार हो गया—ब्रह्मचारीने यही नाम अपने समाधि-मन्दिरको दे रखा है। उस स्थानपर बर्फकी बात क्या पूछनी? चार-पाँच मास तो ऋषिकुल बर्फसे ढँका रहता है। लेकिन योगीको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। ऋषिकुलमें लकड़ियोंका गंज ही नहीं खान-पानसे (हाँ, पान जरूरी ठहरा, क्योंकि एक बार भी पान न मिलने पर ब्रह्मचारीका पेट दर्द करने लगता है) भंडार हर वक्त भरा रहता। पंगीमें तपस्या समाधि शुरू हुई। दो साल होते-होते इन्द्रका आसन डगमगाने लगा। वह अपनी आदतसे मजबूर था जो हथियार उसने विश्वामित्र और दूसरे महर्षियों पर प्रयुक्त किया, उसीको उसने ब्रह्मचारीपर छोड़ा। यह कोई कठिन नहीं था। ब्रह्मचारीने लामाओंकी तरह एक छिद्र छोड़कर अपनी गुफाका द्वार बन्द नहीं कर लिया था। भक्त-जन सत्संगकेलिये आया ही करते थे, और अक्सर माईका प्रसाद लेकर आते। भक्तिनोंका प्रवेश भी अबाध था, बल्कि ब्रह्मचारीके प्रतिद्वन्द्वी मोने रौलाके कथनानुसार तो वह छोकरियोंके गानेपर हारमोनियम बजाया करते थे। खैर, इन्हीं छोकरियोंमें एक इन्द्रके हाथका हथियार बनी, ब्रह्मचारी पुराने ऋषियोंके पद-चिह्न पर चलनेकेलिए मजबूर हो गये। "अहं

भैरवः त्वं भैरवी हो गया। भैरवी हफ्ता-दस दिन ऋषिकुलमें अहोरात्र रह गई। ब्रह्मचारीने समझौ, लोग इसे सिद्धाईका एक अंश समझकर चुप हो जायेंगे, किन्तु यह उनकी गलती थी।

ब्रह्मचारी कोठीकी चंडिका-माईके अनन्य भक्त थे, वहाँ आते-जाते रहते थे। कानाफूसी होने लगी। एक दिन सभा जुटी, वहाँ ब्रह्मचारी भी थे, लड़कीका बाप भी था और दूसरे लोग भी। प्रसङ्ग छिड़ा। बापने भरी सभामें कहा—"मैं अपनी लड़कीको ब्रह्मचारीको देता हूँ।" कन्यादान मिल गया। ब्रह्मचारी फूले नहीं समाये, किन्तु पिताको यह अधिकार नहीं था। लड़कीका दान एक बार वह दूसरेके हाथमें कर चुका था, और किन्नरोंकी प्रथाके अनुसार नगद गिनवाकर। पहिले दामादने लड़की पानेकी कोशिश की, मामला आगे बढ़ते देख पिताको भी अकल आई, किन्तु अब लड़की नहीं मानती थी, वह ऋषिके चरणोंकी दासी बन गई थी। ऋषिने उसका ज्ञाननेत्र खोल दिया था। मामला अदालतमें पहुँचा। ऋषि तहसीलदारकी अदालतमें गये, मौन-रौलाके अनुसार हथकड़ी डालकर पकड़ मँगाया गया। खैर, किन्नरोंकी प्रथाके अनुसार धर्नाके लगे धन (बीस रुपये) देकर उन्हें छुट्टी मिल गई।

अब भी पङ्गीके सारे भगत ऋषिकुलसे बागी नहीं हो गये हैं, विवेकी पुरुष हर जगह होते हैं, किन्तु ब्रह्मचारीका मन उचट गया है। आज ऋषिकुल सूना है। महीने भरके भीतर ही उन्होंने भैरवीको पितृकुलमें भेज दिया। ३०–३१ मईको वह मुझसे मिले। उसी समय तीर्थ आविष्कारकी बात उन्होंने की। ११ जुलाईको फिर आये। कह रहे थे 'पांडवतीर्थ या मन्दिर बनानेका प्रबन्ध कर आया हूँ। आजकल आदमी नहीं मिल रहे हैं। अब कैलासकी परिक्रमा करने जा रहा हूँ।" सच्चे कैलासकी नहीं, झूठे की जो मेरे कमरेकी खिड़कीसे इस समय भी दिखलाई दे रहा है। परिक्रमामें कमसे कम एक-चौथाई मार्ग तो अवश्य बकरियोंको ही पसन्द आ सकता है। परिक्रमाकेलिए जाते वह यहाँसे फिर पङ्गी गये। मैं उनसे यह कहना भूल गया "मङ्गोल घुमक्कड़की भाँति तुम भी अपनी भैरवीको साथ ले जाओ।" कहता भी तो मजाकके तौर पर ही, क्योंकि किसीको घुमक्कड़-पथसे च्युत करना बड़ा पाप है। मङ्गोल घुमक्कड़ शक्ति-सम्पन्न हो गया है, किन्तु यदि घुमक्कड़ी दिव्यांशका

अणुमात्र भी उसके भीतर है, तो उसे "त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्" का पाबंद होना होगा।

४—मोने-रौला—मोने-रौला यह उनका नाम नहीं है, लेकिन यहाँके लोगोंने उसे यही नाम दे रखा है। बस्पा उपत्यकाके ऐतिहासिक ग्राम कामरूको किन्नर भाषामें मोने कहते हैं, और रौला साधु-फ़कीरको; इस तरह निवास-स्थलके कारण उनका यह नाम पड़ा। मोने-रौलाका घरका नाम था रविलाल। उनका जन्म १९०६के आस-पास नैपालके पूर्वी भाग दार्जिलिंगके पास धनकुटा जिलेमें हुआ। २१ सालतक घरमें रहे "ओनामासीधं। बाप पढ़े ना हम।" घरकी खेती पथारीका काम था। फिर परदेश जानेका विचार हुआ। गाँवके लोग बर्मामें नौकरी करते थे। मोने-रौला भी चल पड़े। बर्मामें सालभर नौकरी करते रहे। मालूम हुआ, शान-रियासतमें रतन निकलता है। कुछ देश-भाइयोंके साथ वहाँ पहुँच गये। वहाँ रियासतकी ओरसे जमीन खोदनेकेलिए इस शर्तपर मिल जाती थी, कि रतनका दशांश राजाको दो। बहुत लोग भाग्य-परीक्षा कर रहे थे। मोने-रौलाके कथनानुसार उनके सामने एक आदमीको ९० लाखका नीलम मिला, एक आदमीने पंद्रह हजारका रतन पाया, किन्तु पैसा हाथमें आते ही डाकू मारकर उसे छीन ले गए। ऐसे खून आम थे, कुछ लोग खोद. कर भाग्य-परीक्षा करते, और कुछ छुरा तलवार चलाकर। मोने-रौला और उसके साथी परीक्षामें असफल रहे, किन्तु पाँच मासमें असफलता स्वीकार कर लेना क्या पुरुषका काम है? शायद उसी समय हो गये खूनने हिम्मत पस्त कर दी। बहुमूल्य धातु-पत्थरोंकी खानोंमें सारे संसारमें यही सनातन धर्म मालूम होता है। अमेरिकाकी कलेफोर्नियाँ, आस्ट्रेलियाकी विक्टोरियाकी सोनेकी खानोंकी भी यही बात है। दूर क्यों जाइए, हिमाचल-प्रदेशके पड़ोसमें जम्मू-काश्मीरकी नीलमकी खानोंमें भी ऐसा ही खतरा कुछ उलटे रूपमें देखा जाता है।

वहाँ नीलमकी खानोंसे नातिदूर कूटका जंगल भी है। कूट सुगन्धित द्रव्य है, जिसके एक भारका सौ सवासौ रुपया धरा समझिए। आस-पासके पहाड़ी लोग नीलमकी लूट करने जाया करते थे, और शायद अब भी जाते हैं। नीलम हाथ लगा तो हज़ारोंका वारा-न्यारा, नहीं तो कूट चुराकर सौ सवासौ बना लेना मामूली बात थी। हमारे दोस्त पुण्यसागर चम्बामें पाँच सालतक धुनी रमाए

रहे और हर साल नीलम-लूटके लिए जाया करते, किन्तु हाथ आता कूट। नीलमके लुटेरे लाहुल और चम्बाके अप्रचलित दुर्गम मार्गोंसे खानके पास पहुँ-चते, कहीं जंगलमें पाँच-पाँच सात-सात मिलकर डेरा डालते, रातको नीलम-खानपर पहुँचते। नीलम-खानपर कहाँ पहुँचते? वहाँ तो काश्मीर सरकारकी ओरसे सशस्त्र पहरा पड़ता, कुत्तेभी इसी कामके लिए रक्खे हुये थे। खान खोद-कर फेंके पत्थर और मिट्टीकी ढेर जो खानसे सैकड़ों गज नीचेतक पड़ी रहती थी, बस इसीको टटोलना नीलम चोरोंका काम था। क्या हरज था, यदि काश्मीर सरकार शान-रियासतकी भाँति दस सैकड़ापर लोगोंको भाग्य-परीक्षाकी आज्ञा दे देती। नीलमचोरीके शहीद अनगिनत बतलाए जाते हैं। पुण्यसागर तो सहीसलामत बच आए, कुत्तोंके पीछा करनेपर उन्हें भागना पड़ा। श्यारी खड्डुके एक भूतपूर्व नीलमचोर आज भी कानेके रूपमें मौजूद हैं।

मोने-रौला साधारण व्यक्ति नहीं थे, जो नौकरी करते एक-एक रुपया बटोरते रहते। उनके पास जब दो ढाई सौ रुपया हो गया, तो उन्होंने मोनेवासे मनीपुरके रास्ते लौटना चाहा—यह एक बार बर्माके दक्षिणी छोरपर पहुँचकर सिंहापुर जानेमें असफल होनेके बाद। मनीपुरके लिए पगडंडीका रास्ता पकड़ना मौतको सिरपर बुलाना था। लेकिन मोने-रौलाने १६२८ में वही रास्ता लिया। कहीं-कहीं रौलाको नरभक्षक नागोंके देशमें दिनमें जंगलमें सोना और रातको चलना पड़ा। अन्तमें एक दिन वह मनीपुर पहुँच ही गये। बिना पासके मनीपुर पहुँचना भी अपराध था। रौला सीधे जाकर मन्त्रीके पास हाजिर होगये। मन्त्री दार्जिलिङ्गके रहनेवाले थे, उन्होंने उन्हें नौकर रखवा दिया। रौला गोरखा सिपाहियोंकी रोटी बनाने लगे, किन्तु थोड़े ही समय बाद उन्हें पेटकी भारी बीमारी लगी। लोग निराश हो गये, सूबेदारने पासके ढाई सौ रुपयोंको किसके पास भेजनेके बारेमें पूछा। रौलाने कहा—मेरे शरीरका ब्रह्मपुत्रमें प्रवाहित कर देना, और रुपयोंको दान-पुण्यमें लगा देना। रौलाको अभी अक्षरसे भेंट नहीं थी, धरम आस-पाससे सीखे हुए ढंगपर सीमित था। लेकिन रौला मरे नहीं, ब्रह्मपुत्रमें डुबकी लगाते ही चंगा होने लगे। उनकी श्रद्धा तीर्थोंपर बढ़ी। वह डेढ़ साल मनीपुरमें रहे।

'होनहार बिरवानके होत चीकने पात', रौलामें धीरे-धीरे घुमक्कड़ीका

बीज अंकुरित होने लगा। सात साल उन्होंने कभी नौकरी करने, कभी घूमनेमें लगाया। माँगनेकी उनको आदत नहीं थी, अब भी आदत नहीं है। रौलाके प्रतिद्वन्द्वी पंगी ब्रह्मचारीका कहना है, वह पत्थरमेंसे पैसा निकालना जानता है। रौलाने भी स्वीकार किया, कि एक बार महाराज पद्मसिंहने बारह सौ रुपये दिये थे। शायद रौलाकी माँगनेकी आदत न होनेसे अर्थ है, अपने खाने-पीनेके लिये माँगना, स्कूलोंके लिये चंदा माँगनेसे उन्हें इन्कार नहीं है। माँगनेकी आदत न होनेसे एक बार रौलाने अपने प्राणोंको संकटमें डाल दिया। एक बार वह द्रविड़ देशमें घूम रहे थे। पासका पैसा चुक गया। चार दिन भूखे रहनेपर रौला भीख माँगने गये। घरोंसे दुत्कार मिली 'इल्ले, पो' नहीं है, जा। रौलाने मरनेका संकल्प कर लिया और किसी ब्राह्मणके घरके पास पड़ रहे। ब्राह्मणने रौलाकी अवस्था देखकर हाल पूछा, किंतु एक दूसरेकी बात नहीं समझते थे। अन्तमें गाँवका मुसलमान बुलाया गया। उधरके मुसलमान हिन्दी समझते हैं। ब्राह्मण सुनकर रो पड़ा। वह वैष्णव नहीं शैव था, इसलिये रौला जैसा आचारी वैष्णव उसके हाथका भोजन खा नहीं सकता था। ब्राह्मणने सामग्री दी। रौलाने बनाया। ब्राह्मणने चलते समय आठ आना पैसा भी दिया, जो महीनेकी यात्राके बाद पच्चीस-तीस रुपयेपर पहुँच गया।

खैर, हम कह रहे थे, रौला सात सालतक नौकरी करते घुमक्कड़ी करते रहे, जब सौ डेढ़सौ रुपये हो जाते, तो वह नौकरीको धता बता देते। रौलाने बर्मा, मनीपुरमें नौकरी की, बालासोर (उड़ीसा), दिल्लीमें नौकरी की। हरद्वारके पास किसी पंजाबी स्वामीकी गायें भी चराईं, रौलाने साधु बनने या गुरु करनेमें जल्दी न की। उन्हें मालूम था 'पानी पीजे छानके, गुरु कीजे जानके।' काशी, अयोध्या, ऋषीकेश, हरद्वार सब जगहसे बिना चेला हुए, अछूते बच निकलना पहाड़ीके जीवटकी बात थी।

बद्रीनाथ गंगोतरीकी यात्रामें रौलाने रामेश्वरके लिए गंगाजली भरी। और पैदल ही बनारस, गया, कलकत्ताकीबादशाही सड़कपर गये। फिर जगन्नाथपुरी होते बेजवाड़ा (विजयवाड़ा), मद्रास होते रामेश्वर पहुँच शंकरपर गंगाजल चढ़ाया। उसी यात्रामें किसी बैरागी वैष्णवने रौलासे पानीमेंसे तेल निकलनेकी बात कही। मालूम हुआ, तोताद्रिमें भगवानके अभिषेकका वह जल

है, जिसमें तेल होना ही चाहिये, क्योंकि लक्ष्मीनाथ बिना तेल लगाये नहीं रह सकते। खैर, पानीसे आपरुप तेल न निकलनेका अफसोस नहीं हुआ। वह रामानुजी वैष्णवोंके शंकराचार्य तोताद्रिपीठके शिष्य हो गये, नाम पड़ा यज्ञरामानुजदास। घुमक्कड़ी मन्त्रके तो वह रजिस्टर्ड स्नातक थे ही, किन्तु धर्मकी दृष्टिसे उनका सारा करम-धरम बिना रजिस्ट्रीका मनमुखी हो रहा था, क्योंकि उसकेलिये किसी रजिस्टर्ड धर्मका सदस्य होना अत्यावश्यक है। मेरी दृष्टिमें रौलाने जिस रजिस्टर्ड धर्मकी दीक्षा ली, वह घुमक्कड़ी जीवनके सर्वथा प्रतिकूल है। यह बात अपने तजर्बेसे कहता हूँ, क्योंकि मैंने भी कुछ मासोंतक उस धर्ममें रहकर देख लिया। घुमक्कड़को हिन्दुओंके जैसे धर्मको फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहिये। जहाँ हाथसे छूनेसे नहीं आँखसे देख देनेमें छूत लग जाती, ऐसे धर्मका घुमक्कड़ निर्वाह कैसे कर सकता है? इसीलिये इन अचारियोंमें तेलीके कोल्हूवाले ही अत्यन्त निकृष्ट श्रेणीके घुमक्कड़ निकले। पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदीजी आशा है, मेरी इस स्पष्टवादिताके लिये क्षमा करेंगे। वैसे वैरागी धर्म भी घुमक्कड़ीके उतना अनुकूल नहीं है, तो भी 'परमहंस' 'मधुकरी बाबा' नाम लगाकर काम कुछ चल जाता है, किन्तु वह 'आसेतोः आहिमद्रेः' तक ही हिमालयमें भी नेपालमें चावलके ऊपर अंडा रखा देखकर धर्म-संकट उपस्थित हो जाता है। आप पूछेंगे, घुमक्कड़ोंके लिये सबसे खरा धर्म कौन है? मैं कहूँगा जहाँतक हिन्दू-धर्मके भीतर रहनेका सवाल है, वह है संन्यासीका, लेकिन दंडी-पाखंडी नहीं, निर्द्वन्द्व स्वच्छन्द अवधूत सर्ववर्ण-संगम गिरि-पुरी भारती आदि दसनामी, और उदासीन भी। और इनके भीतर भी हीरा धर्म है शक्तिकुलसम्मत धर्म, जिनमें भारतके सारे साधु-अखाड़ों, मठोंका द्वार खुला रहते भी बहुत दूरतक स्वतंत्रता रहती है, क्योंकि सर्वदर्शनप्रतिष्ठापनाचार्य श्री १००८ भगवत्पादशंकराचार्यका श्री मुखवचन है 'न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्माः।' और यदि सचमुच घुमक्कड़ीके पूर्ण अनुकूल धर्म स्वीकार करना चाहते हैं, तो वह है बौद्धधर्म, जो देश-काल-व्यक्तिके विविध पारतंत्र्यसे मुक्त कर देता है, साथ ही विश्वके बहुत बड़े भागमें अदृष्ट परिचितोंकी भारी संख्या भी प्रदान करता है।

रौलाने एकसौग्यारह नंबरवाले घरमें भी सबसे निकृष्ट कोठरीका आना

लगाकर भूलकी, इसमें संदेह नहीं; किन्तु घुमक्कड़ हर परिस्थितिमें अपनेलिए रास्ता निकाल लेता है, यह सर्वत्रादिसम्मत सिद्धान्त है। चुनांचे रौलाको किसीके हाथका भोजन पानेमें कोई एतराज नहीं। रौलाने एकसे अधिक बार सेतुबन्ध तककी यात्रा की। पूर्वमें सदिया-परशुरामकुण्डसे द्वारिकातक ही पहुँच पाये, अर्थात् भारत सीमापार नहीं कर सके। हिमालयमें पैदा हुये पले रौलाका उसके प्रति खास आकर्षण है। चेला होकर रौला सालभर तोताद्रिमें गुरुके मठमें कैंकर्य करते रहे। यहीं अक्षरसे परिचय हुआ। सिर्फ एकसौग्यारह लगा लेने भरसे तो काम नहीं चल सकता, कुछ पाठपूजाभी आवश्यक है। रौलाने अक्षर पढ़े, और लगे गीता, रामायण, सुखसागर, प्रेमसागरपर हाथ साफ करने। गीता-सहस्रनामका पाठ तो खैर, वह पुण्यार्थ करते हैं, किन्तु वर्षों 'करते-करते अभ्यासके' अब वह भाखा-ग्रन्थ समझ लेते हैं, हिन्दी खूब बोल लेते हैं। अंधोंको देखना हो, कि कैसे हिन्दी भारतकी राष्ट्रभाषा है, तो रौलाको देख लें। नेपालके एक पहाड़ी कोनेमें पैदा हुये रौलाने अब इतनी योग्यता प्राप्त कर ली है, कि वह 'स्वान्तः सुखाय रौल रघुनाथ-गाथा' ही नहीं पढ़ लेते, बल्कि मोने (कामरू) में शिष्य-शिष्याओंको 'सुखसागर', 'प्रेमसागर'का पाठ भी पढ़ाते हैं।

एक साल एक जगह टिक जाना रौलाके लिये बहुत था। १६३५ में रौला द्रविड़ देशसे उत्तरकी ओर चले, फिर बदरीनारायण, मानसरोवर होते नेपाल काठमांडव, आगे पूर्वमें जनकपुर निकल गये। वहाँसे फिर लौटे तो मुक्तिनारायण (नेपाल-तिब्बसीमा) पहुँचे। अगले साल (१६३७) गंगोत्री होते मानसरोवर दूसरी बार गये, और उधरसे लौटकर किन्नरदेश जा निकले। तबसे किन्नर रौलाके घुमक्कड़ी-क्षेत्रकी केन्द्र-भूमि बन गया; और जैसा कि आरम्भमें मैंने लिखा, उनका नाम ही मोने-रौला पड़ गया। वह चार साल लगातार किन्नर भूमिमें रह गये। यहाँ रौलाको पहाड़के डांडीके फाँदनेके साथ-साथ एक और व्यसन लग गया, वह था गाँवोंके लड़कोंके लिए स्कूल खोलना। रौलाने कामरु, मोरङ्, ग्याबुङ्, हङ्गो आदिमें स्कूल खोले। कहीं अध्यापक नहीं मिला, तो खुद पढ़ाने लग गए। यहाँ कुछ वर्षोंसे रियासतने हिन्दीको राजभाषा मान ली थी, नहीं तो उर्दूके जमानेमें रौलाका काम आसान न होता। आज हिमाचल सरकारके दुबारा हिन्दीको राजभाषा घोषित कर देनेपर भी चिनीकी

तहसील और थानेके सारे काम उर्दूमें ही हो रहे हैं, स्कूलमें भी दूसरी श्रेणीसे उर्दू अनिवार्य पढ़ाई जाती है, हालाँकि कनोर बालकोंको अपने अधकचरे उर्दू-ज्ञानके उपयोगका कभी मौका नहीं मिलेगा। रौलाके स्कूल खोलनेका ढंग है—चन्देसे रुपया जमाकर छमासका वेतन दे अध्यापकको बैठा देना, फिर जंगलविभागसे पेड़ माँग, कभी खुद भी पीठपर पत्थर उठा स्कूलका मकान उठानेमें लग जाना। गाँवमें अदूरदर्शी भले ही अधिक हों, किन्तु बेशर्म इतने अधिक नहीं होते, कि वह साधुको अपने गाँवकेलिए इतना काम करते देख आँख मूँदकर चल देते। छः-छः, आठ-आठ महीनेमें रौलाने कई स्कूल स्वीकृत करवा लिए। रौला पहिले सिर्फ दूधाधारी थे। शायद इसमें छूत-छातवाला ख्याल भी काम कर रहा था। महाराज पदमसिंहने अपने पास बुलवाकर अन्न-भोजन करनेपर राजी किया। अपने कथनानुसार पिछले साल निमोनियामें मरणासन्न हो जानेपर रौलाने दूसरोंके हाथका भोजन खाना शुरू किया। चार सालतक किन्नरमें रहकर वह हरिद्वारके मेलेमें गए (१६४१), फिर जगन्नाथतक जा पलटकर हरिद्वार, लाहौर और बदरीनारायण जा पहुँचे (१६४२)। वहाँसे थोड़ा नीचे उतर नीतीघाटीकी ओर तपोवन (तातपानी) में एक वर्ष तक तप करते रहे। फिर वहाँसे मानसरोवर (१६४३) लौटकर शिप्की होते सराहन पहुँचे। मोरङ्के लोगोंको रौलाके आनेका पता लगा। वह दौड़े-दौड़े सराहन पहुँचे। उन्हें स्कूल चाहिये था। रौलाने जाकर वहाँ स्कूल खोल दिया, और छः मास बाद उसे स्वीकृत भी करवा दिया।

१६४५ में रौला फिर निकले और अबके बम्बई होते त्रिवाँकुर तकका धावा मारा। लौटनेपर हङ्गो (१६४६), ग्याबोङ (१६४७)में भी अपनी ओरसे स्कूल खोलकर मंजूर कराये। रौला किन्नर देशमें स्कूल खोलनेवाला बाबाके तौरपर प्रसिद्ध हो गया है।

रौलाने पाँच बार मानसरोवरकी यात्राकी है, दो बार और भी गये, किन्तु बीमारीके कारण वहाँ तक नहीं पहुँच सके। पाँचों बार वह अपनी पीठपर गुड़-सत्तू-चाय बाँधकर गये, भोटिया लोगोंके हाथका अन्नजल न ग्रहण कर अपना सत्तू-चाय घोलते गये और आये। कितनी ही बार निर्जन बयाबानमें अकेले चले। एक बार रास्ता भूल गये। भटकते रहे। अन्तमें समझ लिया, अब

मरनेके अतिरिक्त कोई चारा नहीं। मौतसे डरना रौलाके शास्त्रमें नहीं लिखा है, लेकिन साहस छोड़नेको भी वह ठीक नहीं समझते। वह एक पहाड़पर चढ़ गये। वहाँसे कोई मनुष्यावास दिखाई पड़ा। वह वहाँ पहुँचे। मानसरोवरका इलाका इधर कितने ही सालोंसे डाकुओं द्वारा उत्पीड़ित हो रहा है। रौलाको एकसे अधिक बार उनसे मिलनेका मौका मिला। एक बार वह मानसरोवरकी परिक्रमामें जा रहे थे। देखा, एक बैरागीको डाकुओंने एक कंधेसे कमरतक काटकर दो टूक कर दिया है, और दूसरा सिसककर दम तोड़ रहा है। रौलाके पहुँचते ही डाकू उसपर टूट पड़े। रौलाने अपना सारा सामान उनके सामने पटक दिया और इशारेसे कहा—'लो, ले लो।' डाकुओंने सत्तू और पट्टू (ऊनी चादर) भर देख उसे छोड़ दिया। आगे दूसरे डाकुओंने घेरा। उन्हें उसने इशारेसे बतलाया—'पीछे डाकुओंने सब छीन लिया।' और गर्दनको सामने झुकाकर संकेत किया, 'लो काट लो।' डाकुओंने छोड़ दिया। लुट जाने-पर भी रौलाकी लँगोटीमें सौ रुपये बँधे थे।

रौलाका देवताओंसे भी कभी-कभी साक्षात्कार हुआ है। एक बार वह हनूमानजीको सिद्ध कर रहे थे। हाथीके सूँड़ और पैरकी भाँति लाल-लाल हाथ पैर प्रकट होने लगे; रौला डर गये। मानसरोवर यात्रामें राह भूल अकेले वह एक गुफामें ठिठरे पड़े थे। चारों ओरसे निराश थे, समझते थे, भूख या डाकू काम तमाम कर देंगे। इसी समय आवाज आई—'घबड़ाओ नहीं, कोई अनिष्ट नहीं होगा।' रौला इधर-उधर देखने लगे, किन्तु वहाँ कोई नहीं दिखलाई पड़ा। यहाँ मानसरोवरमें कौन हिन्दीमें बोल रहा है! भय दूर होनेकी जगह और बढ़ने लगा, जिसपर फिर वही आवाज आई। इसी तरह एक बार और रौला निराश हो डाकुओंसे भरे मानसरोवरके मैदानमें एक जगह पड़े थे। रातकी चाँदनी थी। इसी समय एक आदमी उनके पास आकर खड़ा होगया। रौलाने 'कौन है' कहकर पुकारा, किन्तु कोई जवाब नहीं। रौला सोच रहे थे, 'मारना चाहता है तो मार लें, इस तरह भय पैदा करनेका क्या काम?' लेकिन तीसरी बार पुकारनेपर मूर्ति एक ओर चली गई।

मोने (कामरू) में रौलाने अनेक दैवी चमत्कार देखे। उनका कहना है, इस उपत्यकामें देवता और भूत बहुत रहते हैं। पिछले साल एक साधारण

अनपढ़ लड़कीपर देवता आया। दोनों हाथोंकी मध्यमा अँगुलियोंको केशसे बाँध देने और मिर्च पाखानेका धुआँ देनेकी तैयारी करनेपर देवता बोलनेकेलिये तैयार हो गया। हाँ, पहिले उसने अँगुली बाँधते समय बड़ी आपत्ति की! देवता शुद्ध हिन्दी फरफर बोल रहा था, हालाँकि तरुणी हिन्दी बिल्कुल नहीं जानती थी। यही नहीं उसने कांग्रेसके नेताओंके नाम बतलाये, और यह भी कि अमुक दिन अँग्रेज़ोंका राज्य उठ जायेगा। सभी बातें सच निकलीं। किन्नरदेश ऐसी भूमि है, जहाँ आकर सभी व्यक्ति देवविश्वासी होकर लौटते हैं, छोड़ दीजिये मेरे जैसे अभागोंको, जो कहते हैं—मैं तो तब विश्वास करूँ, जब देवता चिनीके ठाकरकी तलवार-बर्तन-अँगूठी या कोई ऐसी जगह बतला दे, जहाँसे प्राप्त वस्तुओंसे तत्कालीन इतिहासपर प्रकाश पड़े, अथवा कोई लुप्त संस्कृत ग्रंथ बोलकर लिखा दे, किन्तु हो ऐसा ग्रंथ जिसका अनुवाद भोटभाषामें मौजूद है। मोने-रौलाने देशमें भी देवताओंकी करामातें देखी हैं, किन्तु उनको बस्पा-उपत्यकामें देवता बहुत दिखलाई पड़ते हैं। रौला लड़कों-लड़कियोंके स्कूल खोलने ही से संतुष्ट नहीं हैं, बल्कि सनातन वैष्णवधर्मके प्रचारमें वह सतत प्रयत्नशील रहते हैं, इसके लिये तरुण-तरुणियों को प्रेमसागर, सुखसागर पढ़ाया करते हैं। कीर्तनके वह बड़े प्रचारक हैं, और एक बार तो डर लगा, कहीं वह कीर्तनवाला रौला न बन जायें। एक बार वह अपनी गुफामें पढ़ा रहे थे, कि एकाएक एक षोडशी अचेत होकर गिर पड़ी। रौला घबड़ा गये—हे भगवान्! यह क्या बला आई। मालूम हुआ षोडशीपर देवता आ गया—षोडशियों और प्रौढ़ाओंतक ही देवता अपने अवतरणको सीमित रखते हैं। खैर, दोनों हाथोंकी मध्यमा अँगुलियाँ बाँधी गईं। गन्दा-कड़वा धुआँ देनेकी तैयारी की गई। 'मारके मारे भूत पराये' भूतने बोलना शुरू किया। रौलाने हनुमानजी-को आधी दूरतक ही सिद्ध करके छोड़ दिया, नहीं तो बस्पावाले लोग-लुगाइयोंका वह दूसरी तरह भी बहुत उपकार कर सकते थे।

रौला एक साहसी यात्री हैं। अपने पुरुषार्थसे उन्होंने किन्नरवालोंका उपकार किया है। शिक्षाकी कमी अवश्य उनके जौहरको पूरी तौरसे खुलने नहीं देती।

८ जंगीतक

१३ जूनको अभी चिनी पहुँचे चौबीस ही दिन हुये थे, कि ऊपर चलनेका

निश्चय करना पड़ा। यद्यपि अभी यहाँ वर्षामें भीगने का डर नहीं है, तो भी वर्षामें पहिले ही तिब्बतकी सीमातक हो आनेकी आवश्यकता थी। सोचा, जब जाना ही है, तो हो आना चाहिए। तहसीलदारसाहबने यात्राका प्रबन्ध करके बाद भी ध्यान रखते रहे, कि कष्ट न हो। वैसे वह भी उधर ही जा रहे थे, किन्तु उन्हें अपना सरकारी काम करते जाना था, इसलिए उनका और घुमक्कड़का क्या साथ? मेरे साथ थे पुण्यसागर। एक-वैद्यने बहुत जोर देकर कहा था—"हम आपकी सेवामें चलेंगे", किन्तु जो चौबीसों घंटे नशेमें चूर रहे, उसे अपनी बात पूरा करनेका ध्यान कहाँसे रहेगा?

यद्यपि एक दिन पूर्व ही घोड़ा अगले पड़ावके लिये मँगा लिया गया था, किन्तु अगला पड़ाव ६ मील आगे पङ्गीतकका ही है, और मुझे पाँच मील रोज तो टहलना ठहरा। मैंने घोड़ेको नहीं लिया। सामान दो भरियों (बेगारू) पर भेजा और हम दोनों चल पड़े। एक तरह कह सकते हैं, आध मील पहिले आध मील पीछे छोड़कर सारा मार्ग देवदार-बनसे होकर जाता है। चलते-चलते गाँवके नातिदूर हम पंगो खड्डुमें पहुँचे। यहाँ कुछ दूर उतराई है। पास ही पास दो खड्डोंका संगम है, जिनमें दूसरेके पुलको हिमानी बहा ले गई। अस्थायी पुल बन गया है। हिमानी-प्रवाह लाखों टन बर्फका कारवाँ होता है, जो महादानवकी भाँति जोरकी गर्जना करते चलता है। उसके मार्गमें वृक्ष चरचर टूटते, शिलायें तड़तड़ फूटती भीषण कांडकी दूरतक सूचना देती हैं। उससे भी जबर्दस्त होता है, हिमानीपातके आगे-आगे चलता झंझा-वात, जो मन-दस-मनकी चीजोंको फूँकसे तिनकेकी भाँति उड़ाता चलता है। मत किसीका घर किसीका गाँव हिमानीके मार्गमें पड़े। आम तौरसे हिमानीके अपने निश्चित मार्ग होते हैं, अर्थात् बड़े-बड़े नाले और खड्डु, जिनके खोदनेमें हिमानीका भी काफी हाथ होता है। जिस साल हिमवृष्टि अधिक होती है, पहाड़ोंसे टूटे लाखों करोड़ों टनके बर्फका काफिला मनमाना रास्ता बना लेता है। कितनों ही पर भयानक आफ़त आ जाती है। यदि कहीं सोयेमें काफिला आ पड़ा, तो लोगोंको भागनेकी भी फुर्सत नहीं मिलती। पिछले साल कई बड़े-बड़े ग्लेशियर और कुछ तो नई जगहोंपर आए। पंगी खड्डुका हिम-प्रवाह था तो भारी, किन्तु खड्डु भी बहुत चौड़ी है। उसे बस-सड़कके पुल और कुछ पनचक्कियों (घराटों) को ही ध्वंस

करनेका मौका मिला। अब घराटोंमें कितने ही तैयार होकर चल रहे हैं। एक लोहार परिवार अपना घराट बनानेमें लगा था। काम अभी शुरू ही हुआ था, किन्तु लौटते समय वह करीब तैयार हो चुका था। लोहार भ्रातृद्वय, सम्मिलित पत्नी, एक सयानी लड़की और एक लड़का, जान पड़ता था, घर सूना करके चले आए थे। साथ ही सोनारीके सारे हथियार हथभाथी आदि भी मौजूद थे। हमने थोड़ी देर वहाँ विश्राम किया, छोटे भाईको कानकी चाँदीकी बालियाँ बनाते देखा। यहाँ कानोंमें दस-दस बीस-बीस बालियोंका गुच्छा लटकाया जाता है। कान भला क्या उन्हें सँभाल सकता, बालियाँ सूतमें पिरोई बालोंके सहारे लटकती रहती हैं।

खड्ड पारकर चढ़ाई थी। पञ्जीके सारे घर एक ही जगह नहीं हैं। डाक-बँगला अगले टोलेके ऊपर है—बँगला क्या प्रासाद कहना चाहिए। चार बहुत ही बड़े-बड़े कमरे हैं और देवदारकी धरन इतनी मोटी हैं, जिनसे जान पड़ता है, बनानेवालोंने हजार वर्षका ख्याल करके इसे बनाया है। बने भी आधी शताब्दी हो गई। बंगला साफसुथरा है। आसपास समतल भूमि भी पर्याप्त है। बूढ़े चौकीदारको दो पीढ़ी हो गए चौकीदारी करते। भूमि इसीके बापकी थी। सरकारने जमीन खरीदनी चाही। खेतवालेने कहा—मैं दाम नहीं लूँगा, बस चौकीदारी हमारे घरमें आनुवंशिक रहे। ३०-३२ रुपए मासिक घर बैठे कम नहीं हैं, और फिर काम भी रोज-रोज नहीं, महीनेमें कहीं दो-एक भूले-भटके मुसाफिर आ जाते हैं। हाँ, जिस समय हिमाचल प्रदेशके इस अंचलमें मेंवोंकी उपज प्रधान हो जायगी, और उनके यातायातके लिए आवश्यक मोटर-सड़क भी नजदीकतक चली आयेगी, तो इधर सैलानी नरनारी बहुतायतसे आने लगेंगे उस समय इस बँगलेका सदुपयोग हो सकेगा। चाय-टोस्ट-आमलेटका कलेवा, फिर भोजन और बयालूका जब पूरा प्रबन्ध हो जायेगा, तो इस ८६५० फुटकी ऊँचाईके स्वच्छ वायुमण्डलको कौन जल्दी छोड़ना चाहेगा।

पी० डब्लू० डी० के इञ्जीनियर साहब अभी ऊपर गये थे। उन्हें पहुँचानेके लिए अपने हल्केकी सीमापर यहाँ तक आये सड़क-इन्सपेक्टर बाबू लक्ष्मीनन्द अभी यहीं ठहरे थे। चौकीदारने दौड़-धूपकर कहींसे खट्टा मट्ठा पैदा किया। भोजनकी इच्छा नहीं थी, फलोंके पकनेमें काफी देर थी। बेगारू यहाँ बदले गये।

अगले पड़ावके लिए गदहा मिल गया, इसलिए बेगारूकी आवश्यकता नहीं रही। प्रति बेगारूको प्रतिमील दो आना मजूरी मिली है, जो अजकल मँहगाईके दिनोंमें पर्याप्त नहीं कही जा सकती, उसे तीन आना प्रति मील कर देना चाहिए। लेकिन "बेगारू" नाम बहुत खटकता है, इसमें कुछ परवशता भी अवश्य छिपी है, किन्तु इस प्रथाके हटानेपर यात्रियोंको इधर तभी बुलाया जा सकता है, जब कि पी० डब्लू० डी० इस कामके लिए स्थायी नौकर रखे, जैसे कि डाक-विभागने रख रक्खे हैं। इसकेलिए स्थायी कुलियोंकी आवश्यकता होगी। बेगारू यहाँ अधिकतर स्त्रियाँ होती हैं। सभी कामोंमें आप यहाँ स्त्रियोंको ही जुटी पायेंगे। खेतीमें पुरुषका काम है, हल चला देना भर, नहीं तो कुदालका काम स्त्रियाँ करती हैं, निकाई, कटाई, ढुलाई सभी उन्हींके जिम्मे हैं। सभी भाइयोंकी सम्मिलित पत्नी होती है, इसका यह अर्थ नहीं कि यहाँ बहुपत्निता नहीं है। एकसे अधिक पत्नियाँ बहुत लोगोंने रक्खी हैं। पति लोग कहते हैं—क्या करें, घरका काम नहीं चलता। डाक्टर ठाकुरसिंहकी दो ही पत्नियाँ हैं। एक पत्नी घरपर रहती है और दूसरी अस्पतालपर साथमें। अस्पतालवाली पत्नी ने दो जुड़वा कन्यायें जना। कह रहे थे—इनमेंसे एक लड़का होता! यह घरका काम क्या करेंगी।" उनका यह कहना गलत था। किन्नरमें पुरुष स्त्रीके बराबर काम कहीं नहीं करता। सारी गिरस्ती स्त्रीपर रहती है। धर्मानन्द पहिले तहसील-में लिपिक (मुहर्रिर) थे, अब बहुत बूढ़े हैं। शरीरमें हड्डियाँ-हड्डियाँ हैं, बदनका कपड़ा फट जानेतक धोया नहीं जाता, और वही अवस्था हाथ-मुँहकी है। भला उन्हें देखकर कोई विश्वास भी कर सकता है, कि "धरमानन्दकी तीन मेंहरी। एक कूटे एक पीसे एक भाँग रगरी।" भाँग तो नहीं रगड़ी जाती, किन्तु दोपहर बाद धरमानन्द शायद कभी ही नशेमें झूमते न मिलें। नीचे गाँवसे लेकर तीन मील ऊपर कंडे तकके खेतोंका सारा काम तीनों बीबियाँ करती हैं। तब भी डाक्टर ठाकुरसिंहको शिकायत! हाँ लड़कियोंके दूसरेके घरमें जानेका डर है, किन्तु उसकी भी दवा अपने हाथ में है, भिक्षुणी (चोमो) बना दो, और हर घरमें एकाध भिक्षुणी देखी जाती हैं। लड़के और क्या पुरुषारथ करेंगे?

हम चलनेको हुये। मेटने कहा—"घोड़ा आ गया है, किन्तु उसका

किराया ? लामा करमापाने रारङ् तकका पाँच रुपया दिया था, आपके लिए एक रुपया छोड़ देंगे, चार रुपया दे दें।" २३ मीलका बीस रुपया मैं एक बार दे चुका हूँ, इसलिए साढ़े सात मीलका चार रुपया बहुत बात नहीं थी, किन्तु उसके एहसान जतानेका ढंग मुझे बुरा लगा। मैंने कहा—"मुझे घोड़ा नहीं चाहिये।" सुन लिया था, रास्ता बहुत कठिन नहीं है। चले आगे। रास्ता अन्तके दो मीलको छोड़ अच्छा रहा।

रारङ् पहुँचते-पहुँचते बहुत थक गये। रारङ् गाँव ८६०० फुटकी ऊँचाईपर शिमलासे १५२वें मीलपर है। गाँव कुछ साल पहिले जल गया। अब फिर बसा है। कई मकान तो दूरसे देखनेपर महाप्रासाद जैसे जान पड़ते हैं। चिनीकी भाँति यहाँ भी पड़ाव नहीं है, न डाक-बँगला ही। ठहरनेके लिये जंगल-विभाग या पी० डब्लू० डी० के साधारण घर हैं। हमारा सामान और साथ चलनेवाला तहसीलका चपरासी पहिले ही जंगलातके घरमें पहुँच चुके थे, यद्यपि पी० डब्लू० डी०के कमरे उससे अधिक नये और साफ थे। शाम आ चुकी थी और हवा चल रही थी। जिससे सर्दी अधिक मालूम होती थी। रारङ्में हवाकी, खासकर जाड़ोंमें, आम शिकायत रहती है। जंगल विभाग कुछ अधिक ध्यान रखता होगा, यह आशा थी, किन्तु घरकी एक धरन किसी समय भी किसी यात्री के सिरपर गिर सकती है। मालूम होता है, जबतक धरन गिर नहीं जायेगी, तबतक मरम्मत करनेका नाम नहीं लिया जायेगा। आखिर भारतीय परिपाटी भी यही तो है!

सरकारी या सरकार-सहायता-प्राप्त यात्रियोंके आरामके लिये कनौरमें और शायद सारे बुशहरमें रवाज है, कि उनके आते ही मेट (चारस) खाद्य लकड़ी-पानीका प्रबन्ध करे, गाँववाले बारी-बारीसे एक आदमीको चौकापानी करने के लिये दें। यह सब सेवा अनिच्छापूर्वक ली जाती है, जो बिहारकी जमींदारियोंके रवाजको याद दिलाती है। यह रवाज तोड़ने होंगे और जितनी जल्दी टूट जायें, उतना ही अच्छा। यद्यपि ऐसा होनेपर कनौरमें यात्रा करना और कठिन हो जायेगा। किन्तु लोगोंके कष्टोंका भी हमें ध्यान देना ही, होगा। कुछ अफसर तो अपने साथ बहुत-सा सामान मांस, फल रखनेकी जालीदार संदूकें और सारा घर लेकर चलते हैं, जिसके लिये पंद्रह-बीस बेगारू लेने पड़ते हैं। बेगारूका

तीन आने प्रति मील तो जरूर हो जाना चाहिये, जिससे लोग अनावश्यक सामानको साथ न ले चलें।

पुण्यसागर साथ थे वह आवश्यकताओंके बारेमें जानते थे और खाना ठीक समयपर तैयार कर देते थे। बेगारूके बारेमें मैंने कह दिया था—हिसाबसे पारिश्रमिक दिया करो और फुटकर पैसा लौटाया मत करो।

रारङ् पुराना गाँव है, भोटभाषी इसे "शा" के नामसे पुकारते हैं। यहाँ के हर गाँवके ऐसे दो-दो, तीन-तीन नाम होते हैं और अँग्रेजी नक्शे तथा कागज-पत्रमें बिगड़कर सबसे अवांछनीय नाम लिखे मिलते हैं। भौगोलिक स्थानोंके वही नाम स्वीकार किये जाने चाहिये, जो स्थानीय भाषाके हों, दूसरी जगहके रहनेवालोंको क्या अधिकार है, कि नामोंको बदल दें। यहाँ किन्नर-देशके मुद्रित नामोंको उनके स्थानीय नामोंसे मिलाकर देखिये (स्थानोंके तिब्बती नाम भी ऐतिहासिक महत्त्वके हैं, इसलिये हम यहाँ उन्हें भी दे रहे हैं)—

लिखितनाम	हमस्कद	तिब्बतीय	स्थानीय
रंगोरी	रङ् गोर		(हमस्कद् जैसा)
सुङ्रा	ग्रोस्नम्		"
पौंडा	पावङ्		"
कंगोस	को-ग्रोस्नम्		"
निचार	नल् चे		"
पानवी	पानङ्	पानङ्	"
भावा	वङ्पो		"
कटगाँव	ग्रामङ्		"
क्रवा	क्रबे		"
शङ्-गो	शाङो		"
रोक्-चूङ्	रोक्टङ्		"
काचूङ्	काटङ्		"
कम्बा	च्चि-कम्बा		"
गरसू	मर्-शू		"

लिखितनाम	हमस्कद्	तिब्बतीय	स्थानीय
कम्बा	ते-कम्बा		हमूस्कद जैसा
रुपी	रुप्पी		,,
मुरु	स्पुरा		,,
ख्योंचा	ख्युवा		,,
कूट	कूटङ्		,,
क्याउ	क्यावे		,,
गान्वी	गन्-थिङ्		,,
फंचा	फांचे		,,
रगनी	म्येलम्	मिलम्	,,
जानी	याना		,,
पूनङ्	पुनङ्		,,
किल्बा	किल्बा	किलिम् पक्	,,
कनई	कोने	कोने	,,
सपनी	दा-पङ्	दापङ्	,,
बटोरी	व-टो-रिङ्	व-टो-रिङ्	,,
ब्रुये	ब्रु-श्रङ्	ब्रु-श्रङ्	,,
शोश्रङ	शोश्रङ्	शोश्रङ्	,,
चान्सू	चा-सङ्	चा-सङ्	,,
कामरू	मोने	स्मोन्	,,
सङ्ला	सङ्-ला	सङ्-ला	,,
बट्सेरी	बट्-से-रिङ्	,,	,,
रकूचम्	रक्-छुम्	रकछुम्	,,
मेबर	मे-बर्	मे-बँर्	,,
बारङ्	बारङ्	बा-रङ्	,,
प्वारी	पोर्	पोर्	,,
पूर्बणी	पुन्-नम्	पुन्-नम्	,,
रिस्-पा	रिस्-पा	रिब्-दङ्	,,

लिखितनाम	हमस्कद्	तिब्बतीय	स्थानीय
ठंगी	ठ-ङे	शाङ्	हम्स्कद जैसा
मोरङ्	स्गि-नम्		,,
पू	स्पू	स्पू	पुरिङ् (कनम्)
खब्-नम्ग्या	खब्नम्-ग्या	खब्-नम्ग्या	ह० जै०
ग्यावङ्	ग्याबुङ्	ग्याबुङ्	,,
तलिङ्-रूशू-कोलङ्	,,		,,
सुन्नम्	सुन्नम्	सुङ्-नम्	सुन्नम्
रोपा	,,	रो-पा	ह० जै०
श्यासू	श्यासो	श्यप्-पा	,,
लब्रङ्	लब्-रङ्	क्यप्-पा	,,
कनम्	क-नम्	क-नम्	,,
स्पिलो		पिल्-पा	,,
लिप्पा	लित्पा	लिद्	लितिङ्
असरङ्	असरङ्	अ-छु-रङ्	ह० जै०
जंगी	जंङ्	ग्यङ्-पा	जङ्-रम्
अकूपा	अकूपा	अकूपा	अकूपा
रारङ्	रारङ्	शा	ह० जै०
पंगी	पङ्	पङ्	,,
तेलंगी	तेले		(हम्कद् वत्)
कोठी	कोशू-टिङ्-पे		ह० जै०
ख्वांगी	ख्वङ्		ह० जै०
दुनी	दुने		,,
चिनी	चिने	ग्यल्-स-चिने	,,
ख्वारंगी	ख्वारिङ्		,,
रोगी	रोगे		,,
यूला	यूला		,,
मीरु	मिर्-थिङ् (मि-थिङ्)	,,	,,

लिखितनाम	हमस्कद्	तिब्बतीय	स्थानीय
उदुनी	उरने (उरा)	"	"
चगांव	ठो-लङ्	"	"

पुराना गाँव होने पर भी रारङ् में कोई पुरानी चीज देखने में नहीं आती। लोग पुराने चिन्होंके बारेमें पूछने पर गाँवके नीचे एक पत्थर को बतलाते हैं। सतलुज पार रिब्बामें महान् भाषान्तरकार रिन-छेन्-जङ-पो (रत्नभद्र, ग्यारहवीं सदी)ने एक सुन्दर विहार बनाया। गाँव वालेके मनमें पाप बसा, और सोचा यदि यह भिक्षु जीवित रहा, तो और ऐसे विहार बनायेगा, इसलिये इसका काम यहीं तमाम कर देना चाहिये। रत्नभद्रको मालूम हो गया, हथियार लाने का बहाना करके वह छत पर पहुँच गया, और वहाँ से जो छलाँग मारी, तो सतलज इस पार रारङ्में जा कूदा। आज भी उस पत्थर पर महान् भाषान्तर के गिरनेकी जगह गढ़ा बना है। भला इससे बढ़कर उक्त घटनाके ऐतिहासिक होने का क्या प्रमाण चाहिये?

गाँवमें दो सिद्ध रहते हैं, जिनमें छोटा तो मिलने नहीं आया, किन्तु बड़े-बड़े प्रेमसे मिलने आये। वह कई सालतक तिब्बत के खम् प्रदेशमें रह योग-समाधि, तंत्र-मन्त्र सीखते रहे। लौटकर अपने गाँवमें आये। महासिद्ध संस्कृत शिक्षित आदमी मालूम हुए। उनका कहना था, कि यहाँके लोग बौद्ध धर्मका नाम भी नहीं जानते थे, मेरे दादाने आकर यहां धर्म की स्थापना की। यह धारणा भ्रान्त है। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं, कि उनके दादा गाँवमें गुरुकी तरह माने जाते थे। दूसरे दिन गाँवमें गये। तीन पीढ़ी पहले सारा गाँव आगसे जल गया था, और उसे फिरसे बसाया गया। उसी समय विहार (बौद्धमन्दिर) का भी पुनर्निर्माण हुआ।

प्रस्थान करते समय सोचा, जरा गाँवके देवताके मंदिरको भी देख लें। देवताका मंदिर भी आग की लपटसे नहीं बच सका था, फिर ऐसे देवताके प्रति क्या श्रद्धा हो सकती थी! देवताके हातेमें जब घूम रहा था, उसी समय पैर जरा औघट पड़ा और कोई नस तिर्छी हो गई। चलनेमें दर्द होने लगा। देवता जरूर मुस्कुरा रहा होगा—जो और देवताओंमें श्रद्धाहीन बनो। किन्तु जब कोई कच्चा गोंइयाँ हो, तब न बातमें आवे। हाँ, पहिले रास्ता समतलसा जानकर

मेरा विचार हुआ था, पैदल ही जंगी जानेका किन्तु अब असमंजसमें पड़ गया। कहीं रास्तेमें ही नाव न डूबने लगे। इसी बीच तहसीलदार साहबका पत्र आ गया। उन्होंने पंगीमें आकर मेरे पैदल जानेकी खबर सुनी, नम्बरदारके नाम ताकीदी पत्र लिखा। बूढ़ा नम्बरदार अच्छा आदमी था। उसका घोड़ा भी अच्छा था, उधर देवताने पैरको बेकार सा बना ही दिया था,लाचार घोड़ा लेना पड़ा।

आजकी यात्रा सिर्फ सात मीलकी थी। रास्तेके अधिकांश भागमें देवदार और उससे भी अधिक न्योजाके वृक्ष थे। फसल और बाग अच्छे थे। दो तीन मील जाने पर रास्तेसे डेढ़ मील नीचे अकूपा गाँव दिखाई पड़ा। अकूपाकी करुण-कहानी मैं पहिले ही सुन चुका था। रास्तेसे अपनी आँखों देखा। बाग के वृक्ष सूख चुके हैं, खेत परती पड़े हैं। अकूपाका जलस्रोत सूख गया है। घर अब भी भव्य अट्टालिकासे दीखते थे, लोग भी सूत भर धारसे शाम-सबेरे आनेवाले जलसे तथा अपनी भेड़ बकरियोंकी लदाई पर पूर्वजोंका घर छोड़ना नहीं चाहते, किन्तु कितने दिनोंतक?

रास्ता पहाड़के ऊपरी भाग से चल रहा था, किन्तु इतना समतल था कि कहीं घोड़े से उतरना नहीं पड़ा। आगे सतलुज एकदम बाईं ओर घूम गई है, यहाँ सड़क भी एक पहाड़ी वाहीं (धार) को पार करती है। फिर जंगीतक न्योजों-देवदारोंकी शीतल-स्निग्ध छाया है। डाकबँगला भी देवदार वृक्षोंसे ढँका है। बँगला अच्छा है, किन्तु अब वह शिकारी साहबोंका नहीं रहा, इसलिये उपेक्षासे देखा जाने लगा है। यदि ध्यान नहीं दिया गया, तो कुछ सालों में खराब हो जायेगा। बँगले के साथके मकान अभी गिरने लगे हैं। असबाब तो प्रायः सारे बँगलोंमें नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। यद्यपि चौकीदारों की माकूल तनखाह है, किन्तु उन्हें अपने घरके कामसे ही जान पड़ता है, फुर्सत नहीं। हम दोपहरको पहुँचे थे। चपरासी इन्तजाम करनेके लिये पहिले ही आया था। किन्तु मालूम हुआ, वह बेगारुओंको लिये दिये जंगलातके क्वार्टरमें चला गया है। पुण्यसागरने दौड़-धूप की। चौकीदार आया और बँगला खुला।

चौकीदार वैसे होशियार तथा अच्छा आदमी है। उसे किसी तरह भनक लग गई, कि मैं किन्नर देश की अभिवृद्धि चाहता हूँ, और ऊपर सरकारको इसके बारेमें लिखभी रहा हूँ। उसने हर चीजको दिखलाना चाहा। शाम को इसके

लिये जंगी गाँवमें जाना पड़ा। जंगीकी भूमि बहुत उर्वर है। वहाँ जितने खेत और बाग हैं उनसे कई गुने और अधिक तैयार हो सकते हैं, यदि पानी की कमी दूर हो जाये। १६१८-१६ ई० में यहाँ भूकम्प आया, जिससे एक बड़ा चश्मा लुप्त हो गया और पानी बहुत कम रह गया। कितने ही खेत छोड़ देने पड़े। इस साल तो पिछले जाड़े की अतिहिमवृष्टिसे चश्मे पानी कुछ अधिक आ रहा है, नहीं तो गाँववालों की विपता और बढ़ी होती। लेकिन अबकी सालकी भाँति ४-५ फीठ बर्फ हर साल थोड़े ही पड़ती रहेंगी। चौकीदार कहता था—"हमारी जमीन बहुत अच्छी। सारा पर्वत-गात्र देवदार-न्योजाके जंगलसे ढँका है। यहाँकभी हिमानी (ग्लेशियर) नहीं आती, लेकिन पानीकेलिये क्या किया जाये?" पानी बिना अक्पा उजड़ रहा है, रारङ् और जंगीकी अवस्था वहाँतक नहीं पहुँची है, किन्तु कष्ट बहुत है। मैंने गाँवमें कई घरोंको खाली देखा कुछ तो गिर रहे हैं, उनकी धरनें नंगी लटक रही हैं। देवताका सुन्दर मन्दिर कितने ही वर्षों पूर्व बहुत साधसे बनवाया गया था, किन्तु अब उससे उदासी बरस रही थी। दो-तिहाई कोली गाँव छोड़कर भाग गये। कनेतोंके भी दर्जनसे ऊपर परिवार कुल्लू चम्बा, टिहरी, जम्मूमें चले गये। यह वह स्थान है, जहाँके अखरोट, खूबानी, चूली, बेमी, नासपाती, सेब, अंगूर, आलूचा आदि फल बहुत मीठे होते हैं, और आजसे दस बीसगुने अधिक पैदा किये जा सकते हैं। कभी यहाँ के लोग अपने यहाँके अंगूरोंको लेकर च्निर्नी में अनाज बदलनेके लिये जाया करते थे। मैंने अब भी बागों में अंगूरी बेलें देखीं। "देवता क्यों नहीं कुछ करता" —पूछने पर चौकीदारने कहा—वह असमर्थ है। चौकीदारके कथनानुसार लिप्पा की खड्डसे नहर लाई जा सकती है, जिससे अक्पाका भी उद्धार किया जा सकता है, रारङ् की भी समृद्धि बढ़ाई जा सकती है। किन्तु यह छोटा काम नहीं है, जिसे कि गाँववाले कर सकें।

जंगी सतलुज से काफी ऊँचाई पर है। यहाँसे सामने नदी पार मोरङ् गाँव और उसके नीचे वहाँ का दुर्ग है। कह रहे थे, इसे पांडवोंने बनाया। वह "समंदर" धार को फेर देना चाहते थे, किन्तु सफल नहीं हुये। पहाड़ोंसे आये गहरे नालेको एक टेकरीको घेरते देख कर यह कल्पना उठी होगी। लकड़ी-पत्थर का "पांडवोंका किला" इसी टेकरीपर बना है।

जंगी ग्राम अवश्य पुराना होगा, किन्तु कोई पुरातन-सामग्री नहीं मिलती। कुछ दूर एक निर्जनसी गुफामें मिट्टीके बने छोटे-छोटे पूजा-स्तूप मिले हैं। चौकीदारने ऐसे चार पूजामंडल दिखलाये, जिनमें दोमें कुटिलाक्षरमें लेख था—एक धारणी और दूसरा "ये धर्मा हेतुप्रभाव...।" दोमें भोटिया अक्षर थे, जिनमेंसे एकमें मोटाक्षरमें "ये धर्मा..." था। जान पड़ता है, वहाँ पासमें कोई बौद्ध विहार था। कुटिलाक्षर ग्यारहवीं सदीमें व्यवहृत होता था, अतः इन पूजामंडलोंका साँचा कमसे कम ग्यारहवीं सदीमें बनाया गया होगा। इन पुरातन गाँवोंके गर्भमें न जाने क्या-क्या सामग्री छिपी हुई है। किन्तु, उनकी प्राप्ति और सरक्षा तो तभी हो सकती है, जब यहाँ लक्ष्मी और सरस्वतीका निवास हो।

६ प्रागैतिहासिक समाधियाँ

सबेरे दूध-रोटी खाकर पड़ाव छोड़नेका अब नियम-सा बन गया था। यद्यपि जोतिसियोंके अनुसार यात्रापर दूध वर्जित है। आज तो हम तिब्बत-हिन्दुस्तान सड़क छोड़ बीहड़ पगडंडी पकड़ने जा रहे थे। तीन मीलतक सड़कसे जाकर लिप्पा खड्डकी उतराईसे पहिले ही रास्ता बाँयेंसे ऊपरकी ओर चला। यहाँवाले इसे रास्ता भले ही कहें, हम तो पगडंडी भी नहीं कह सकते, यह सीधा अजपथ था। घोड़ी भलेमानस मिली थी। चढ़ाईका श्रम मालूम नहीं हो रहा था, किन्तु कितनी ही जगह लोगोंके कहते रहनेपर भी मैं उतर जाता; सोचता, दिलके दर्दसे पैरका दर्द बेहतर है। सचमुच सीधी चढ़ाई कहीं-कहीं शिलापर थी, जिससे घोड़ीका पैर जरा-सा चूका, तो हड्डी-गोड्डीका पता न रहता। सो तो कोई बात नहीं, किन्तु जो कहीं जिन्दगी भरके लिए लुञ्ज-अपाहिज बनके रहना पड़ता तो? सचमुच इधर आनेकेलिए पछता रहा था, किन्तु "अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।" बाईस साल पहिले लदाखसे लौटते समय सुङनम् और फिर कनम्में किसीने लिप्पाके जोतिसी देवारामसे भेंट करनेके लिए कहा था, किन्तु रास्तेके बारेमें जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उसके कारण मैंने लिप्पा जानेका नाम नहीं लिया, हालाँकि हेमिस लामाने जोतिसीके लिए एक अच्छा परिचय-पत्र दिया था, और उस समय तिब्बत और बौद्धधर्मके बारेमें मेरे पास जो ज्ञान था, लामा देवारामसे मिलनेपर मुझे बहुत लाभ होता। सोचने लगा, शायद उस समय मैं आजसे अधिक बुद्धिमान् था।

मैं इस दुस्साहसकेलिए किसीको दोषी नहीं ठहरा सकता था, क्योंकि मैंने स्वयं यह आफत मोल ली थी। कहावत सुनी थी, प्रसवके समय हर एक स्त्री फिर संतान न पैदा करनेकी शपथ खाती है, किन्तु फिर उसी संकटको निमंत्रित करती है। आदमी दूसरेके तजर्बेसे लाभ नहीं उठाता, और स्वयं भी फिर-फिर तजुर्बा करना चाहता है।

मैंने पछताते हुये उस दिनकी दैनंदिनीमें लिखा था "इधर कोई पुरानी चीजकी आशा न थी, न मिली", किन्तु दूसरे ही दिन (१६ जून) "न मिली" लिखना गलत साबित हुआ। दो मील या अधिक चलनेके बाद उतराई आई। रास्ता एक पानीकी धारकी ओर मुड़ा। यहाँ जंगीवालोंके खेत थे। पानीका सुभीता हो और खेतकी सीढ़ियाँ बन सकती हों, तो कौन पहाड़ी किसान जमीनको छोड़ सकता है? कुछ किसान आकर खेत बोनेकी तैयारी कर रहे थे। यहाँ देरसे बर्फ पिघलती है, और ओगला या फाफड़ाकी एक फसल ही हो सकती है। पिछले सालका अतिवृष्टि और अतिहिमपातने खेतोंको कहीं-कहीं धसका दिया था, जिसकेलिए किसानोंको "सीढ़ियाँ" फिरसे बाँधनी पड़ रही थीं। बर्फ-प्रवाहने कहीं-कहीं वृक्षोंको तोड़कर ढकेल दिया था। किसान देवदारकी लकड़ियोंको खेतोंमें जला रहे थे। हम लोग जरा देरकेलिये देवदारकी छायामें सुस्ताने लगे। बर्फका पिघला पानी बहुत शीतल था, किन्तु यहाँ कुछ गर्मी भी मालूम हो रही थी। ग्लुकोसकी थोड़ी फंकी मारकर दो कटोरी जल पिया। आगे घोड़ीकी जरूरत न समझ लौटा दिया, जरूरत पड़नेपर लिप्पाके एक तरुणकी घोड़ी साथ चल रही थी। रास्ता अधिकतर उतराईका रहा, पर कठिनाईमें कोई अंतर नहीं। आगे एक सूखी खड्ड मिली। पिछले जाड़ेके हिमने इस रास्तेमें रेला किया था, और उसने देवदारके बड़े वृक्षोंकी कैसी गत बनाई थी, उसे देखकर ही विश्वास किया जा सकता था। बहुत कम लेटकर अपनी जगहपर थे, नहीं तो कितने ही उखड़कर घसिटते हुये कहींसे कहीं पहुँच गये थे। वैसे होता तो वृक्षोंकेलिए जंगल-विभागसे चिरौरी-बिनती करनी पड़ती, किन्तु गिरे सूखे वृक्ष गाँववालोंके होते। इतने वृक्ष गिरे थे, कि सारा लिप्पा ढो नहीं सकता था। कम साधनवाले लोगोंने तो एक-एक, दो-दो वृक्षोंपर ही संतोष कर लिया, किन्तु कनोरके सबसे धनी जेलदार बंशीलालने दर्जनों वृक्षोंको अपने हाथमें किया था।

अन्तमें एक पर्वत बाही को पार करते ही लिप्पा सामने दिखाई पड़ा। लेकिन उतराई यहाँ सीधी थी, एक बड़ी फिर छोटी नदी पारकर गाँवमें पहुँचना था। यद्यपि एक नहीं दो-दो चपरासी एक दिन आगेसे पहुँचे हुये थे, किन्तु किसीको अकल नहीं आई, कि आगे आकर ठहरनेके स्थानकी सूचना देता। यह आवश्यक था, क्योंकि जहाँ खड़े होकर हम लिप्पा महागाँवकी झाँकी कर रहे थे, उससे दसही कदम उतरकर बाईं ओर जंगलातकी कुटियाका रास्ता था, खटमलपिस्सूसे मुक्त यह स्थान अधिक अनुकूल था। पर, यहाँ ठहरनेके-लिए हमें गाँवसे फिर लौटकर चढ़ाई चढ़के आना पड़ता।

हम लोग कुछ देर ठमके, फिर पुण्यसागर पता लेने नीचेकी ओर जाने लगे। मालूम हुआ लामा सोनम्, डुब्ग्या एक आदमीके साथ गाँवसे निकलकर हमारे रास्तेकी ओर लपके आ रहे हैं। साधारण बुद्धिने बतला दिया, कि हमारे रहनेका प्रबंध गाँवमें हुआ है और वह हमारी अगवानीके लिए आ रहे हैं। हम भी उतरने लगे। बड़ी धारापर एक अच्छा पुल है। उसे पारकर सरायसे मकानके सामनेसे स्तूपसे द्वारके भीतरसे पार हो छोटी धाराको पार हुये। छोटी धारापर कितनी ही पनचक्कियाँ लगी हुई हैं। लामा सोनम् डुब्ग्या पहिले ही पुलके पास पहुँच गये थे। दूसरी धारा पार करते ही लिप्पाके खेत और गाँव शुरू होते हैं। हमारे ठहरनेका प्रबंध गुंबा (विहार) में हुआ था, और वह आधे पहाड़की ऊँचाईपर थी। यदि पैदल चलकर वहाँ आतिथ्य स्वीकार करना होता, तो निश्चय ही बहुत मधुर नहीं लगता। ऊपर जानेकेलिए घोड़ेको सामने रखते लामाने कहा—जरा चढ़ाई है, घोड़ेपर चलें। इससे अच्छी बात क्या हो सकती थी? लिप्पामें पानीकी इफ़ात है, कमसे कम इस महीने या इस वर्षमें तो जरूर; क्योंकि पिछली साल मेघदेवता बहुत उदार रहे। बाहर तो नहीं किन्तु गाँवके भीतर घुसकर जब ऊपरकी ओर बढ़ने लगे, तो सोचता था, घोड़ी लुढ़ककर सवारको लिए दिये नीचे क्यों नहीं जाती। किन्तु, यहाँके बच्चोंकी भाँति बछेड़े भी तो इन्हीं रास्तोंपर खेला करते हैं। लिप्पावाले मानो गौरीशंकर-अभियानकेलिए अपने बच्चोंको तैयार किया करते हैं, नहीं तो इतनी खड़ी पगडंडियाँ नहीं रखते। खैर, आसपास घर थे, घोड़ोंके पैरोंपर भी मेरा विश्वास बढ़ता जा रहा था, इसलिए ठेठ गुंबाके द्वारतक मैं सवार होकर पहुँचा।

गुंबाको लामा देवारामने बनवाया, पिता-पुत्रने मिलकर उसे पूर्णताको पहुँचाया। देवारामका नाम सारे तिब्बतमें मशहूर है। सोनम् डुब्ग्याका जन्म हुआ, स्त्री मर गई, तो देवाराम विरागी हो तिब्बत भाग गये। वहाँ कई साल रहे। उन्होंने जोतिसकी पढ़ाई खास तौरसे की। घर लौटे, किन्तु फिर ब्याह नहीं किया। तिब्बत में पहिले भी पंचांग बना करते थे। ल्हासाका राजजोतिसी एक ओर पंचांगके एक-एक पृष्ठ को तैयार करता, दूसरी ओर बढ़ई उसे अखरोटकी लकड़ीपर उलटा खोदता जाता। पंचांग खोद कर तैयार हो जाने पर लकड़ीसे जितनी कापियाँ छापनी होतीं छाप ली जातीं। खोदी लकड़ी एक साल काम आती। यदि साठ वर्षतक प्रतीक्षा करने को मिलता, तो जरूर उससे फिर काम लिया जा सकता, किन्तु वहाँ पर पीढ़ी दर पीढ़ीके जोतिसी कहाँ हैं। देवाराम ने सोचा, क्यों न मैं एक पंचांग निकालूँ। उन्होंने अपने समयके काशीके लिथोमें छपे पंचाँगों को देखा था। उन्होंने नया भोटिया पंचांग तैयार कर लिथोमें छपाना शुरू किया। ल्हासाके छपे पंचांगमें लगता था हाथका बना महँगा कागज, लकड़ी पर खुदा महँगा ब्लाक और लिथो था सस्ता। हाँ, देवाराम अपनी इच्छानुसारी संख्यामें पंचांगोंको जब चाहें तब नहीं छाप सकते थे; उन्हें दिल्ली या किसी दूसरे शहर के प्रेसमें एक ही बार पूरी संख्यामें छपवाना पड़ता था, चाहे उनमें कुछ न भी बिकें। किन्तु साथ ही उनका पंचांग सस्ता था। वह आधे दामपर ल्हासावाले पंचांगसे कहीं अधिक अच्छा पंचांग देने लगे। प्रचार बहुत जल्द बढ़ गया। असलमें ग्राहकों की दिक्कत नहीं थी, दिक्कत थी उनके पास पहुँचाने की, क्योंकि भोट देशमें डाकघर दो ही चार जगह हैं, और वह भी विश्वसनीय नहीं। देवारामने अपने आदमियों द्वारा सिलीगोडी-कलिम्पोङ् होते पंचांगोंको ल्हासा, टशीलुन्पो, ग्यांची आदिमें पहुँचाया। उन्होंने काफी पैसा कमाया। आज उन्हें मरे कई साल हो गये, किन्तु उनका पंचांग अब भी उनके लड़के सोनम् डुब्ग्या निकाल रहे हैं। पहिले पंचांग का दाम बारह आना था, अब दो रुपया हो गया है। बनारसमें इनसे कहीं बड़े पंचांग तिहाई दामपर मिलते हैं। लोग इतने छोटे तथा महँगे पंचांग को क्यों खरीदते हैं? किन्तु तिब्बतमें प्रतियोगिता तब न हो, जब कि कोई देवाराम पंचांग निकाले। इस साल भी चार हजार प्रतियाँ छापीं

गईं। लामाको बेचने का तरद्दुद नहीं है, किसी दूसरे आदमीने सारी प्रतियोंके बेंचनेका ठीका ले लिया है।

देवाराम जोतिसी थे, लामा (धर्मगुरु) भी थे। उन्होंने पैसा भी खूब कमाया, किन्तु उन्हें पैसा बटोरनेका लोभ नहीं था। उन्होंने गुंबा बनाना शुरू किया, किन्तु उसे अपने जीवनमें नहीं पूरा कर सके। पुत्र चाहे पिताकी योग्यता न रखता हो, किन्तु पिताके आरंभ किये कामको पूरा करने या जारी रखनेके लिये उतनी योग्यताकी आवश्यकता भी नहीं है। हाँ, उनमें श्रद्धा वैसी ही है। यद्यपि भोट-भाषा-भाषी हैं, न पढ़नेकेलिये भोट देश गये, किन्तु वह भोट-भाषा खूब जानते हैं। पिताने आधे गाँवके ऊपर जमीन बराबर करके गुंबा बनाना शुरू किया। गुंबामें परिक्रमाके साथ दो बड़े-बड़े जुड़वा मन्दिर हैं, जिनमें एक बुद्ध शाक्य मुनिका, और दूसरा आगे आनेवाले बुद्ध मैत्रेयका है। मैत्रेयके मन्दिरके भीतर ही भारतीय ग्रन्थोंके दोनों विशाल संग्रहों—कंजूर, तंजूर—के रखनेके लिये सुन्दर पुस्तकाधानियाँ रखी गई हैं। कंजूर आ चुका है, वह नरथङ्के पुराने ब्लाकका दुःपाठ्य नहीं, बल्कि ल्हासाका नया सुपाठ्य है। ल्हासासे भारतीय रेलों द्वारा शिमला और वहाँ से ढाई-ढाई सेरकी १०३ पोथियोंको यहाँ लाने में काफी श्रम और धन व्यय हुआ होगा। तंजूरमें २२५ पोथियाँ हैं। उसके लिये ५ हजार खर्च हो चुका है, और वह चीन सीमापर अवस्थित तेर्गी गुंबासे मध्य-तिब्बत पहुँच चुका है, लेकिन लिप्चा पहुँचनेमें अभी और समय और धन लगेगा। यदि सस्ता चाहते, तो आसानीसे नरथनेका कंजूर-तंजूर मँगा लेते, लेकिन वह सिर्फ पूजा करने भरकेलिये होते, उन्हें पढ़ा नहीं जा सकता था, इसलिये समझदार पिता-पुत्रोंने दोनों संग्रहोंके सर्वश्रेष्ठ छापे मँगवाये। वैसे ल्हासाका नया कंजूर सुपाठ्य और अधिक सुन्दर भी है।

मैं गलती में पड़ गया और जल्दी के कारण पहिली यात्रामें ल्हासासे लौटते समय नरथङ्के कंजूर-तंजूरको साथ लाया। पछता रहा था और सोच रहा था, कैसे तेर्गीके कंजूर-तंजूरको लाया जाये। दूसरी यात्रामें तेर्गीका कंजूर मिल गया। मैंने आव देखा न ताव, ल्हासा में उधार रुपया लेकर उसे खरीद लिया। पटना पहुँचने पर बहुतेरी कोशिश की, युनिवर्सिटीवालों से

गिड़गिड़ाया, अधिकारियोंके पास मेरे मित्र जायसवालजीने भी कोशिश की, किन्तु डेढ़ हजार रुपये न मिले। "धोबी बसि के का करै दीगंबर के गाँव" अंतमें मैंने कलकत्ता विश्वविद्यालयको लिखा रतनको कौन पारखी छोड़ता है। वहाँसे दौड़े-दौड़े डाक्टर प्रबोधचन्द्र बागची आये। खैर, उसके कलकत्ता पहुँच जानेसे मुझे अफसोस नहीं हुआ, वहाँ उसके उपयोग करनेवाले तो हैं। किसी समय विद्यालयोंमें शिरोमणि हमारे नालन्दा-विक्रमशिलाके विहार आज कहाँ हैं? तिब्बतसे लाई पुस्तकोंमें नरथङ्का कंजूर तंजूर ही सालोंतक विहार-अनुसंधान-सभा (पटना) में पड़ा रहा। अंतमें उसी तरह उतावलेपनके साथ रंगून विश्वविद्यालयमें शीघ्र कंजूर-तंजूर मँगा देनेकेलिये कहा। मैंने लिख दिया—यहाँ तैयार हैं, किन्तु यदि सुपाठ्य चाहते हैं, तो कुछ समय प्रतीक्षा कीजिए। तुरन्त भेज देनेका आग्रह हुआ। मेरी तो बला टली, अफसोस यही हो रहा था, कि क्यों न कुछ साल पहिले यह बात हुई। खैर रुपये आ गये। कुछ ही समय बाद ल्हासाका नया कंजूर बनकर तैयार हुआ। मैंने तुरन्त मँगा लिया फिर कुछ वर्षों की प्रतीक्षाके बाद तेर्गीका तंजूर भी मिल गया। दोनों महान् संग्रह—जिनमें साढ़े पाँच हजारसे अधिक भारतीय ग्रन्थोंके अनुवाद हैं और पंचानवे सैकड़ा ऐसे ग्रंथ हैं, जिनके मूल भारतीय भाषा-से लुप्त हो चुके हैं—अब पटना जयसवाल प्रतिष्ठान मौजूद हैं। हाँ, अभी पटनाने इनके उपयोग करनेवाले विद्वानों को नहीं पैदा किया, न प्रयत्न किया। लामा देवारामके पुत्रने भी मेरे जैसे दोनों संग्रहोंका प्रबन्ध किया है।

गुंबामें मुझे मैत्रेयनाथके मंदिरमें ठहराया गया। मंदिर काफी लम्बा-चौड़ा है, और उसे चित्रित करने और सजानेमें काफी कलात्मक सुरुचिका परिचय दिया गया है। मूर्तियाँ, आलमारियाँ सुन्दर हैं, भित्तिचित्र बनवानेमें कला और परंपराका बहुत ध्यान रक्खा गया है। इसकेलिये वह स्वयं सारनाथ (बनारस) गये। वहाँ मूलगंधकुटीमें बड़े परिश्रमसे बनाये जापानी चित्रकारोंके भित्तिचित्रको देखा, उनकी तस्वीरें प्राप्त कीं। फिर लौटकर लदाखके एक कुशल चित्रकारसे उन्हें चित्रित कराया। तिब्बती कला अब बहुत रूढ़िग्रस्त हो गई है, किन्तु इस चित्रकारने काफी सफलतापूर्वक सारनाथके चित्रोंको अंकित किया है। दिन भर तो मुझे अच्छा ही अच्छा लगा, किन्तु रातको जब

पिस्सुओंने शरीरमें आग लगानी शुरू की, तो नींद कहाँ ? अभी अगले दिन भी यहाँसे आसन हटाना मेरे हाथ में न था। लामाने मध्यान्ह-भोजन अपने घरमें ले जाकर कराया, जो गुंबासे और ऊपर था। लामा की दो स्त्रियाँ हैं, संख्या बहुत अधिक नहीं हैं। जब पहिलीसे पुत्र-लाभ नहीं हुआ, तो दूसरीको ब्याहा, लामा देवारामका वंश तो आगे चलाना था। सोंनम् डुबग्या साठसे ऊपरके हैं, उनका लड़का चिनीमें मिडलमें पढ़ रहा है।

खाना खा ही चुका था, कि बाजेकी आवाज और गीतका स्वर कानोंमें आया। पूछनेपर मालूम हुआ, आज कंजूरकी शोभायात्रा है। छतपरसे झाँका तो देखा गाँवके नरनारी पीठपर एक-एक पोथी कंजूरकी रखे, बाजे और गीतके साथ सारे गाँवकी परिक्रमा कर रहे हैं। सनातनधर्म और आर्यसमाजके प्रचारके यौवनके समय वेदभगवान्‌की सवारी निकलती थी, किन्तु उस समय भी इतनी श्रद्धा नहीं देखी थी, कि लोग अपनी अपनी पीठपर एक-एक वेद लादे नगर-यात्रा कर रहे हों। और यहाँ कंजूरकी एक-एक पोथी देवदारकी मोटी दुहरी पट्टिकाओंमें बँधी तीन पंसेरीसे क्या कम होगी, लोग उसे उठाये चल रहे थे। इस शोभायात्राको इसलिये किया जा रहा था, कि गाँवमें रातबिरात घुस आई अलाय-बलाय भाग जाये। महाक्रान्तिसे पूर्व रूसमें भी बाइबिलकी शोभा-यात्रा निकाली जाती थी, जब ग्रामीण देखते थे कि मेघ पानी देनेमें हीला-हवाला कर रहे हैं। बुखारामें जब बोलशेविकोंका भारी खतरा हो गया, तो मुल्ला लोगों ने "सही बुखरी" (इस्लामिक स्मृति) की पीठपर लादकर नगर-परिक्रमा की, समझा गया इसके बाद नगरपर आक्रमण करने-वाले लाल नास्तिकोंके गोली-गोलों और उससे भी शक्तिशाली वचन-गोलोंका कोई असर नहीं होगा।

मैं कोठेसे जल्दी-जल्दी उतरकर नीचे आया, क्योंकि यात्राको नजदीकसे देखना चाहता था। गुंबामें पहुँचते-पहुँचते वहाँसे बहुतसे आदमी बाहर निकल चुके थे, किन्तु अब भी वहाँ दस-बीस मौजूद थे। अधिकांश तरुण-तरुणियाँ थीं, शायद उन्हीं में श्रद्धा अधिक थी। पीठपर बोझा लिये गाते-बजाते चलना ऐसी सीधी चढ़ाईवाले रास्तेमें उन्हींके बूतेकी बात थी। सब खूब बनेठने थे, मेला था। एकाध प्रौढ़वयस्क स्त्री शमलानुमा पुरानी टोपी

पहिने थी। शमलेवाले पुरुष भी एकाध दिखाई पड़े। सभी स्त्री-पुरुषोंके सिरपर टोपीनुमा उलटा कनटोप था, जिसकी मेखलामें लाल मखमल चमक रहा था। सभीकी टोपियोंके उलटे कनपटोंमें सफेद फूलोंके गुच्छे भी लटके हुये थे। किन्नर-किन्नरियाँ फूलके बड़े शौकीन होते हैं। फूल मौजूद हो और फूलोंका गुच्छा उनकी टोपियोंमें न लगे, यह हो नहीं सकता। मेरे कहनेपर लोग रुक गये, मैंने शोभा यात्रियोंके फोटो लिए। मालूम हुआ, मेला थोड़ी देरमें कंजूर देवालयपर लगेगा। वैसे कंजूर तो इस गुंबामें भी था, किन्तु पुराना कंजूर-ल्हाखङ् नीचे गाँवसे बाहर था। यह अच्छा ही किया था, नहीं तो छ साल पहिले जब गाँवमें आग लगी, तो कंजूर-ल्हाखङ् स्वाहा हो गया होता, कंजूरकी पोथियाँ भूतों-प्रेतोंको गाँवसे भले ही भगा सकती हों, किन्तु वह आगसे अपनी रक्षा नहीं कर सकतीं।

शामको कंजूर-ल्हाखङ् की ओर चले। दो जगह गाँव की "सड़क" सीधे पाताल का रास्ता थी। एक जगह तो मैंने हिम्मतसे काम लिया, किन्तु दूसरी जगह लाजशरम छोड़ पैरोंकी मददकेलिये हाथोंको भी जमीनपर पहुँचाया। अब मालूम हुआ, अज पथके अभियानिक कहाँ तैयार किये जाते हैं। इन लोगोंमें शिक्षा हो, संस्कृति पूरी मात्रामें सन्निविष्ट हो, जीवनकी निश्चिन्तता हो, फिर एक नहीं सौ एवेरेस्ट् विजयकी जयमाला हमारे देशके गलेमें पड़ी रखी समझो। कंजूर-ल्हाखङ्की सारी छत सजे-धजे नरनारियोंसे भरी थी, बाहर बगलके आँगनमें ढाई हाथ ऊँचे बेंचोंके ऊपर १०३ पवित्र पोथियोंकी छल्ली सजाई हुई थी। अभी उसके एक कोनेमें दस-एक तरुण नाच रहे थे, वह कुछ गा भी रहे थे। पास में बैठी बदइनें डफको और कोली ढोल और मुँहके बाजोंको बजा रहे थे। नाच जमी नहीं थी। खैर, मेरे विचारसे तो वह अन्ततक नहीं जमी। यदि किन्नर लोगोंका यही नाच है, जिसे मैंने देखा, तो कहना पड़ेगा, उनमें नृत्यकलाका कभी प्रवेश हुआ ही नहीं। जान पड़ता था, तरुण डर रहे थे, कि कहीं पेटका पानी न हिल जाये। नृत्यका अर्थ है, कलापूर्ण व्यायाम—कठिन व्यायाम, और यहाँ व्यायाम कहाँ था? थोड़ी देरतक खड़ा होकर देखता रहा, आग्रह हुआ मैं चलकर छतपर कुरसीके ऊपर बैठूँ।

जरूर मैं कुछ देरसे पहुँचा, और यज्ञारंभको नहीं देख सका। कंजूर

ल्हाखङ्का (देवालय) हो या कोई ल्हाखङ्, और उसमें कोई जमीन जायदाद न हो, यह कैसे हो सकता है, क्योंकि ल्हाखङ्के सालमें पर्व दिन आते हैं, उस समय भक्तोंमें प्रसाद बाँटना पड़ता है। नीचेकी तरह किन्नरके देवता सिर्फ "ल" अक्षर नहीं जानते, उनके कोशमें "द" अक्षर भी है, तभी तो पर्व दिनमें घरके भीतर किसीका रह जाना मुश्किल है। कुछ लोग प्रसाद बाँट रहे थे—प्रसाद था सत्तूका आध-आध पावका लड्डू (गोला), कलछी भर-भर मदिरा। मदिरा काफी कड़ी जान पड़ती थी, क्योंकि सभीकी आँखें लाल थीं। वही बात स्त्रियोंके बारेमें नहीं कही जा सकती थी। अधिकांश पुरुष इधर-उधर चलते लुढ़क पड़ते थे, जमीन तिर्छी दीवार-सी खड़ी थी, बेकाबू गिरते नहीं तो क्या करते ? स्त्रियाँ, जान पड़ता है, चरणामृत भर पान करती थीं, उन्होंने अपनी शालीनताकी बड़ी कठोरताके साथ रक्षा की। अपवाद थीं बाजा बजाने वाली कुछ बाढ़िने (बढ़इने), किंतु वह भी लुढ़क कर लोगों को हँसनेका मौका नहीं दे रही थीं।

लोगों ने बाल-बच्चोंके साथ घरसे निकल आनेमें भूल नहीं की थी, क्योंकि इधर के भोले-भाले लोगों में यदि किसी के घरमें चोर घुसता, तो भी उसे घरमें एक सूत भी जेवर हाथ न आता। सभी स्त्रियाँ चाँदीके जेवरों से लदी थीं। कानोंसे पाव-पाव भर चाँदीकी बालियों के गुच्छक, कंठमें जंजीरें और मालायें, बाँयें कंधेके नीचे दोरु (पहाड़ी ऊनी साड़ी) को समेट कर बाँधनेवाले हथेली भरके मयूर-चित्रक शोभा दे रहे थे। पीठपर पतली रस्सी की तरह बटे केशोंके लंबे फुँदने पेंडुलीके पास तक लटक रहे थे। फुँदने अधिकतर लाल सूतके थे, किन्तु कुचमें चाँदीके घुँघरू बाँधे हुये थे। साड़ीका चुनाव किन्नरियाँ मध्य-देशिकाओंकी भाँति आगे नहीं पीछे रखती हैं और कोली साड़ीके इस छोरको बुनने में अपनी सारी कला और सारे रंगको खर्च कर देते हैं। छत पर बहुतसी सम्भ्रान्तकुलीन महिलायें भी थीं। जेलदारके घरकी महिलायें चाँदीकी बालियोंके गुच्छकोंकी जगह एक-एक कानमें आठ-दस शुद्ध सोनेकी बालियाँ पहने हुये थीं, उनका गला भी सफेद नहीं पीला था और नाकका एक नथुना चवन्नीभर चौड़े गोल स्वर्ण भूषणसे ढँका था। साथ ही उसके नाकसे तोले भरकी झुलनी भी लटक रही थी या नहीं, इसे नहीं कह

सकता। सोनेके आभूषणों से ही तो धन-सम्पत्तिका पता लग सकता है, दुनियाँ में कौन सा ऐसा देश है, जहाँ इसका प्रदर्शन न किया जाता हो। जेलदारकी महिलाओंमें औरोंसे कुछ और भी भेद थे। मृत जेलदार और उनके भी पिता के समय से वह अपने लिये अकिन्नर-भाषी कनेतोंकी लड़कियाँ लिया करते थे। मूलतः तो सारा हिमाचल किन्नरोंका देश था। अब भी वहाँ के निवासियों में पर्याप्त किन्नर-रक्त है, चाहे वह भाषा कोई भी बोलते हों। हाँ, हम जितना भोट-सीमान्तके नज़दीक पहुँचते जाते हैं, आँखों और चेहरों पर भोट-रक्त अधिक उछलता दिखलाई पड़ता है। कनम्‌के नम्बरदारने कहा था—किन्नरोंके मोटिया या कोची (पहाड़ी हिन्दी भाषाभाषी) के साथ ब्याहसे हुई संतान बहुत सुन्दर होती है। मुझे इसका कोई ज्वलन्त उदाहरण नहीं दीख पड़ा। हाँ, जेलदारकी, स्त्रियोंमें और पुरुषोंके मुखपर दूरसे भी मंगोल मुखमुद्राकी छाप नहीं थी, हालाँकि यहाँ मंगोल आँखकी हल्की रेखा रखनेवाले दर्जनों नरनारी मौजूद थे। लिप्पा-खड्ड (किरङ्-खड्ड) लिप्पा-गंगा कहना चाहिये—ऊपर चार दिनके रास्तेसे आती है, जिससे आगे जोत टपकर आप स्पितीं पहुँच सकते हैं, जहाँ शुद्ध भोटभाषा-भाषी-लोग रहते हैं।

लोग बड़े ध्यानसे नाच देख रहे थे, यह नहीं कहा जा सकता। यद्यपि मैं जरूर अपने सामनेकी हर चीजको ध्यानसे देख रहा था। एक जगह दो-तीन स्त्रियाँ डफ पीट रही थीं, उनके पास एक दर्जन आरक्तमुख तरुण बड़े इतमीनान-से छोटे चक्करमें नाच नहीं टहल रहे थे। पोथियोंकी छल्लीकी दूसरी ओर लामा सोनम् डुब्ग्या निम्न-आसनपर बैठे कंजूरकी एक पोथी रखे बैठे थे, और नरनारी बालवृद्ध उनके सामने जा थालीमें पैसा डालें या बिना डाले शिर नवाते। लामा उनके शिर से कंजूरकी पोथी छुवा देते। छतपर बोतलें खनक रही थीं, कितने लोग सिर्फ प्रसादकी मदिरासे संतुष्ट नहीं थे वह उनके गलेको भी सींचनेके लिये पर्याप्त नहीं थी। मदिरा बनाने और पीनेकी यहाँ छूट है।

१६२१ में जब प्रथम स्वराजकी गूँज भारतके कोने-कोने में हुई थी, उस समय गाजीपुरके एक कस्बे सैदपूरके मठके महात्माने आँगनमें गाँजा लगा रखा था। कहते थे—"महात्माजीने सरकारी दूकानसे खरीदकर पीनेको मना कर दिया है, इसीलिये अपने रामने यहीं शंकरकी बूटी लगा रखी है।"

बस यहाँ भी समझिये, वही महात्माजीके प्रथम संदेशकी गूँज आज अट्ठाईस साल बाद भी आ रही है। हाँ, यह जंगी और नीचेकी भाँति द्राक्षावलय-भूमि नहीं है, इसीलिये न अंगूरी लाल शिबू बन सकती है, नहीं उसकी चुवाई सुरा। किन्तु उससे कोई फर्क नहीं आता, जब कि यहाँ के स्थानीय और परस्थानीय पारखियोंके अनुसार बेमी (छोटे आड़ू) की सुरा अंगूरीका भी मुँह मारती है। कुछ भद्रजन मुझसे जरा चलनेका आग्रह कर रहे थे, किन्तु मुझे पिंड छुड़ानेमें दिक्कत नहीं हुई। हाँ, पुण्यसागरके पीछे लोग बहुत पड़े, प्रसाद जो था—किस भगवान का? भगवानका 'कंजूर—बुद्धके वचन—का प्रसाद! तोबा तोबा!! बुद्ध-बचनने तो बल्कि सर्वभक्षी होनेपर भी सुरा-मेरय-मद्यपान से सदाके लिये विरत रहनेमें मेरी बड़ी सहायता की। किंतु मैं उन मुल्लोंमें नहीं हूँ, कि पराई सम्पत्तिको देखकर ईर्ष्याके मारे जला-भुना करते हैं। मालूम नहीं पुण्य-सागरने चरणामृतकी घूँट लेकर पुण्यार्जन किया या नहीं। हाँ, वह महीने भरसे प्रतिदिन दो घंटे मेरे नास्तिक वचनोंको सुन जरूर रहे थे, किंतु साथ ही उनका शाम सबेरे घंटो मंत्र गुनगुनाना कम नहीं हुआ, इसलिये मुझे संदेह था, कि उनपर बचनोंका कोई असर हुआ। न असर हुआ हो, तो मुझे उसका जरा भी पछतावा नहीं होगा, क्योंकि मैं आर्यमहोपदेशक पंडित भडामसिंह नहीं हूँ!

नशेने और असर किया। अखाड़ेके तरुणोंकी संख्या बढ़ी। स्थान अपर्याप्त हो चला। सूर्य भी अस्त-अंचलके पीछे काफी नीचे चले गये किन्तु अभी घंटेभर अँधेरेका डर नहीं था, और यहाँ अंधकार से कोई नहीं डरता था। मैं अपने स्थानसे आधीरातके करीबतक गीत-वाद्यके स्वरको सुनता रहा। जब और नम-स्कार करनेवाले नहीं रहे, तो लामा आसनसे उठे। कंजूर-ल्हाखङ्को काफी पैसे चढ़ गये थे। पुण्यसागर दौड़े लामाकी थालीके पास, उन्हें दस रुपयेके नोटोंके फुटकर रुपये और रेचकियाँ चाहिये थीं। लामा के उठते ही नर-नारियों ने पोथियोंको उठा-उठाकर मन्दिरके भीतर पहुँचाना शुरू किया। दस मिनटमें वहाँ न पोथियाँ थीं न बेंचें। अखाड़ा बिल्कुल साफ था। मदमत्त हाथीकी भाँति झूमते तरुण और बालक तथा प्रौढ़ भी पाँतीमें शामिल होने लगे। तरुणियाँ, प्रौढ़ायें, भी आगे बढ़ रही थीं, और नरनारियों की मंडलिका (वृत्त) बढ़ती जा रही थी। बाजे अब मंडलिकाके बीचमें आकर कुछ अधिक तत्परतासे

किंतु एकही तानमें बज रहे थे। मंडलिका में आधी दर्जन भिक्षुणियाँ (चोमो) भी शामिल थीं। मंडलिका (कायङ्) या गोलपंक्ति स्त्री-पुरुषोंकी एक थी, हाँ स्त्रियाँ उसके एक भाग में थीं और पुरुष दूसरे भागमें। मंडलिकामें आनेवाले नरनारियोंने अपने हाथोंको एक दूसरेके हाथोंमें दे रखा था, नवागन्तुक भी आकर हाथ छुड़ा अपना हाथ थमा वहाँ शामिल हो जाते। बाजा अब जरूर कुछ जोरसे बज रहा था, किंतु मैं जैसे खुलकर होते नृत्य के देखने की प्रतीक्षा कर रहा था; उसका वहाँ कहीं पता न था। लोग हाथों में हाथ दिये आगे-पीछे टहल रहे थे। कुछ तरुणोंने जेलदार पत्नी को भी साग्रह नृत्य का निमन्त्रण दिया, किंतु न जाने क्यों उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। मेरी उपस्थिति तो वहाँ बाधक नहीं थी? मैं सुरामें तो सम्मिलित नहीं हो सकता था, क्योंकि उसका अविरोधी—जहाँ तक मित पानका संबंध है—होते हुये भी, मैं अपने आजीवन मद्यपान-विरतिके रेकार्डको कायम रखना चाहता हूँ उसी तरह जैसे मेरे मित्र भदंत आनन्द अपनी आजीवन घासाहारिता को; किंतु, यदि कहीं नृत्य जानता होता, जिसका कि मुझे अफसोस रहेगा, तो मैं अखाड़े में कूदनेसे बाज न आता और बीच में रोककर भी अहीर-नृत्यके दो हाथ दिखाके रहता। तरुण पाठकोंसे, जिनमें घुमक्कड़ीका बीज गर्भित है, मेरा आग्रह है, कि वह नृत्य सीखना न भूलें, नहीं तो पर्यटनके आधे रससे वंचित होकर वह आजीवन मेरी भाँति पछताते रहेंगे।

यहाँ की नृत्यकलाके चरमरूपको देख लिया अस्त-अचलके पीछे धधकती आग की लालीका अब पता नहीं था, चारों ओर अंधकार अपने राज्यका विस्तार करनेमें लगा था। मैंने पुण्यसागरसे कहा—"चलो रोटी-पानी भी देखना है।" सुफल सत्य के उपलक्ष्यमें होता महोत्सव भी आधी रात जाते-जाते समाप्त हुआ। अबके ग्रामवासियों को अपने नृत्योत्सवमें अधिक आनन्द आया होगा, इसमें संदेह नहीं; क्योंकि इधर दो तीन वर्षोंसे वृष्टि और हिमपात कम हो रहा था, जिससे छोटी खङ्ङु (नदी) का पानी जल्दी सूख जाता था। पानीके अभाव में चूलियों (खूबानियों) के कितने ही वृक्ष सूख चले थे। अबकी सालकी सुवृष्टि और सुपातके कारण अब वृक्ष फिर हरे हो चले थे, फिर लोगों का हृदय क्यों न हरा होता?

यद्यपि लिप्पाके साधारण परिदर्शनसे अधिककी आशा न थी, किन्तु मुझे यहाँ से कनम् जाते समय आई पगडंडीसे भी कठोर मार्गसे जाना था, इसीलिये, एक दिन और जान बचे, वही गनीमत सोचकर एक दिन और यहीं रहनेका निश्चय किया।

* *

अगला दिन (१६ जून) बहुत महत्वपूर्ण दिवस सिद्ध हुआ। उसी दिन मुझे किन्नर देशमें प्राग् बौद्ध या प्राग् मोटकालीन मृतक समाधियाँ मिलीं, जिनका कुछ वर्णन दूसरे प्रकरणमें आया है। मुझे ऐसी समाधियोंके कन्नौरमें होनेके बारे में कहीं पढ़नेका मौका नहीं मिला था। मैं समझता हूँ, किसी दूसरे गवेषकने भी इनके होनेका पता नहीं दिया है। दूसरे दिन दोपहरको लामासे गुम्बाके बारेमें बात हो रही थी। लामाने कहा—'मेरा सम्बन्धी भाई ऊपर—गाँवके सबसे ऊपरी घरके पास—गुम्बा बनानेके लिये भूमि तैयार कर रहा था। वहाँ हड्डियाँ निकल आईं।' मेरे कान खड़े हो गये—कैसी हड्डियाँ? 'यहाँ ख-छे रोम्खङ् (मुसलमान कब्रें) निकला करती हैं।" यहाँ ख-छे (मुसलमान) कहाँ? हड्डियोंके साथ बर्तन तो नहीं निकलते—मैंने पूछा। 'हड्डियोंके साथ बर्तन जरूर निकलते हैं।' तो मुसलमान कब्र हर्गिज नहीं। मेरे कहनेपर लामाने आँख देखी स्त्रीको बुला दिया। बर्तन कई मिले थे, २०, २५ वर्षकी बात है। उसे सारी बातें नहीं याद थीं। मैंने हालमें निकली मृतक समाधिके बारेमें पूछा। मालूम हुआ, एक आदमीके खेतमें कुछ साल पहिले कंकाल निकला था। उसके खेत पर पहुँचे, तो पासके खेतमें उससे भी पीछेकी कब्र निकली मालूम हुई। खेतके मालिक पंजीरामने पाँच छ साल पहिले सारे निचले गाँवके जल जाने पर अपने खेतमें घर बनाना शुरू किया। वहाँ एक बड़ी मृतक समाधि निकल आई। कुदाल साथ लिये मुझे घरमें स्थान देखनेके लिए आग्रह करते देख पंजीराम डरे, कहीं उनके घरमें कुदाल न चलने लगे। उन्होंने खेतके ऊपरी भागको—जिसके पास हम खड़े थे—दिखलाते हुये कहा, एक मास पहिले यहाँ खेतकी मेंड़ (दीवार) ठीक करते समय कब्र निकली थी। वहाँ खुदाई हुई। हड्डी निकली भी। पंजीरामने पैसेका आगम देख एक काँसेका कटोरा, मिट्टीका एक मद्य-कुलुप भी इसी कब्रसे निकला बतलाते दे दिया। हड्डी ऊपरकी कूलके

पानीके पड़नेसे सड़ गई थी, इसलिए उसे लाया नहीं जा सकता। आधी खोपड़ीसे पता लगा, खोपड़ी दीर्घकपाल है, आज कलके किन्नर गोल-कपाल और मध्य-कपाल होते हैं, जिसका अर्थ है भोट (मंगोलिया) रक्तका अधिक संमिश्रण। मालूम हुआ, उस समय लिप्पाके लोगोंमें मंगोल-रक्तका समिश्रण नहीं हुआ था, अर्थात् ईसाकी सातवीं सदीके उत्तरार्धमें भोट-साम्राज्यके पश्चिममें विस्तारके आरम्भ या पहिलेकी समाधि थी। मुर्देके साथ भोजन और मद्य रखनेसे यह भी स्पष्ट है, कि इन लोगों पर अभी बौद्ध-धर्म या नव्य हिन्दू धर्मके कर्म-सिद्धान्तका प्रभाव नहीं पड़ा था।

ऐसी समाधियाँ कनम्, स्पू और भोट-सीमा पर अवस्थित नमूग्या गाँव तक ही नहीं बल्कि, सुङ्नम्, पंगी और कामरु (बस्पा उपत्यका) तक मिलती हैं। सुङ्नमके जेलदार तोब्ग्यारामने बतलाया, कि वहाँ किसी-किसी कंकालके साथ आभूषण भी मिलते हैं। समाधियोंमें मिट्टी बर्तन अधिक मिलते हैं, क्योंकि अधिकांश मुर्दे गरीबोंके होते हैं। पंजीरामने यद्यपि छोटी कब्रसे निकले कह कर दोनों बर्तन दिये थे, किन्तु मुझे सन्देह है, कि इस साधारणसी कब्रमें काँसेका इतना सुन्दर बड़ा कटोरा मिला उससे दस गज हट कर एक बड़ी कब्रमें जिसमें नीचे उतरनेके लिए चार-पाँच पत्थरकी खुड्डियाँ लगी हों—कुछ भी न निकले। दूसरे दिन जेलदार बंसीलालने कहा—मैं खुद कब्र देखने गया था, उसमें चीजें जरूर निकली थीं। मैं समझता हूँ, यह कटोरा बड़ी कब्रका है। और चीजें क्या मिलीं, इसे पंजीराम जानें। सम्भव है, उन चीजोंको पंजीरामने लोहारको देकर गलवा दिया। अस्तु, किसी सामन्त-सर्दारकी समाधि मिलनेपर उसमें आभूषण, सिक्का जैसी चीजें भी मिलेंगी, जिनसे उस समयके इतिहास पर और रोशनी पड़ सकेगी।

लिप्पाको यहाँ वाले लिथङ् और भोट-भाषामें लिद् कहते हैं। यह प्राचीन बस्ती है। आजका गाँव एक खड़ी ढलानवाले पहाड़की जड़से ऊपर तक बसा है। आज वहाँ घरोंकी संख्या सौसे कम है। पुराने समय आबादी और अधिक थी। सारे लिप्पा (किरङ्) खड्डके किनारेके पहाड़ों पर पत्थरोंकी बहुत चुनाई पाई जाती है, जो किसी समय खेत थे। नंगे पहाड़ों पर देवदार वृक्षोंकी पुरानी जड़ें मिलती हैं, अर्थात् तब यह नंगे पहाड़ वृक्षोंसे ढँके थे। खड्ड पर पनचक्कीके

पत्थरके चक्के भी दूर-दूर तक मिलते हैं। गाँवसे पश्चिम छोटी खड्ड पारकर बड़ी खड्डके बायें तटकी पहाड़ी पर एक दुर्ग था, जो आगसे जल गया। आगतो किन्नरकी बस्तियोंका अभिशाप है। लकड़ीका हदसे ज्यादा उपयोग, सो भी देवदारकी लकड़ीका; जो जरासी भी आग लगने पर घी चुपड़े काष्ठकी तरह जलती है। पर्वतस्थ ध्वस्त दुर्गकी भूमिकी खुदाईमें जरूर पुरानी चीजें मिलेंगी। यद्यपि लोग कहते हैं, कि यह किला स्पिती वाले डाकुओंसे रक्षा करनेके लिये बना था, जिसका अर्थ है सौ-दो-सौ वर्ष ही पहिलेकी बात; किन्तु मैं नहीं समझता, मृतक समाधियोंके समय वहाँ शत्रुओंसे रक्षा पानेके लिये किला न रहा होगा। लिप्पा आज भले ही सड़क से दूर एक कोनेमें पड़ा गाँव है, किन्तु यह अवस्था सौ सालसे पुरानी नहीं है। तिब्बत-हिन्दुस्तान-सड़क बनानेसे पूर्व तिब्बतसे आने वाला व्यापारपथ कनम्‌से यहाँ होते असरङ्के डाँडेको पार कर चिनी और आगे जाता था। इसलिये उस समय यह एक महत्वपूर्ण स्थान था। लिप्पा खड्डके ऊपरकी ओर चलकर डांडेको पार करके आदमी स्पिती पहुँचता है, जहाँके डाकुओंकी बातें अब भी लोगोंको याद हैं। यहाँ से चार-पाँच मील पर अवस्थित असरङ् गाँवके लोग मूलतः स्पितीके बतलाये जाते हैं, खाली जगह देखकर वह लिप्पावालोंसे भूमि ले यहाँ बस गये। लिप्पासे तीन-चार दिनमें आदमी स्पिती पहुँच सकता है। लिप्पासे एक रास्ता सीधा सुङ्नम् जाता है, जिससे एक दिनमें वहाँ पहुँच सकते हैं, किन्तु रास्ता बहुत कठिन और सीधी चढ़ाई का है।

जेलदार बंशीलाल बीमार थे, इसलिए मिलने न आ सके थे। पहिलेही दिन शामको उन्होंने भोजनके लिये निमंत्रण दिया था। मैंने प्रस्थानके दिन आनेके लिए कहला भेजा था। चलनेके दिन (१७ जून) सामान बेगारु पर भेज पुण्यसागरके साथ मैं जेलदारके घर पहुँचा। गाँवमें आग इन्हींके घर से लगी थी। कोठे पर देव-मन्दिर था। पुजारी जोकठी (दीप काष्ठ) बालकर मन्दिरमें गया था। जोकठीको वहीं फेंक कर वह नीचे जा सो रहा। आधी रातको होश आया, तो वह दौड़ा-दौड़ा ऊपर पहुँचा। भीतर धुआँ भर गया था। पुजारीने दर्वाजा खोल दिया। बाहर हवा तेज थी, खोलनेके साथ ही वह जोरसे भीतर घुसी। पचासों वर्षसे सूखा देवदार काष्ठ प्रज्वलित हो उठा।

पुस्तोंके धनी जेलदारका घर ही नहीं बल्कि सारा निचला गाँव जलकर भस्म हो गया। नेपाल तराईके गाँवोंमें इस तरह बहुधा आग लग जाया करती है। वहाँके मकान ज्यादातर फूसके हुआ करते हैं। पुराने समयमें जंगलोंकी अधिकतासे नीचेके नगर और गाँव अधिकांश लकड़ीके हुआ करते। पाटलीपुत्र (पटना) के लिये बुद्धने कहा था, उसके तीन शत्रु होंगे, आग, पानी और आपसी फूट। राजगृह नगरमें तो आगकी बला इतनी बढ़ी हुई थी, कि राजाने नियम बना दिया, जिसके घरमें अर्थात् जिसकी असावधानीसे आग पहिले शुरू होगी, उसे नगरसे निकल पर्वतप्राकारके बाहर दक्खिन ओर जाकर बसना होगा। संयोगसे आग राजमहलमें ही पहिले लगी। नियम पालन करते राजाने बाहर निकल कर अपना नया महल और दुर्ग बनाया, जो पीछे नये राजगृहके नामसे दूसरा शहर ही बस गया। जेलदारके यहाँ वैसा कोई नियम नहीं था। जलकर खाक हो जानेपर लोगोंने फिर अपनी पुरानी जगहों पर घर बना लिया। लकड़ी मुफ्त और इफ्रातसे मौजूद थी, सिर्फ श्रमकी आवश्यकता थी। चार-पाँच वर्ष के भीतरही सारे घर बन गये। जेलदारका मकान दूरसे आलीशान मालूम होता है, यद्यपि वही बात भीतरसे नहीं देखी जाती, किन्तु उसे खराब नहीं कह सकते। घरकी छतें बहुत ऊँची नहीं हैं, खिड़कियाँ कम और छोटी हैं, वही बात कोठरियोंकी भी है। किन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये, कि ६ हजार फुटकी सर्दी और हवाके जाड़ोंमें उन्हें मुकाबिला करना पड़ता है।

जेलदार हमें ऊपरी कोठे परके बैठकेपर ले गये। यह बैठकेका बैठका और देवालयका देवालय है। सजावट तिब्बती ढंगकी, और बैठनेके लिये मोटे गद्दे और सामने चायके प्याले आदिके रखनेके लिये सुचित्रित छोटी चौकियाँ (चोकचिताँ) रखी थीं। गद्दीके आसन पर चीनी ढंगका तिब्बतमें बना नफीस कालीन बिछा था। बैठकर बात होने लगी और नमक मक्खनमें बनी पौष्टिक तिब्बती चाय आ पहुँची। चीनी सुन्दर प्याला भी, तिब्बती ढंगसे गंगा-जमुनी बैठकी और ढक्कनके साथ था। कह चुका हूँ, जेलदार बंसीलालका घर सारे किन्नरका सबसे धनी कुल है। इसका परिचय पौन-पौन हाथ ऊँची चाँदीकी मूर्तियाँ सुनहले छत्रों, चाँदीकी डेढ़ हाथ ऊँची मानी (मंत्र जापके यंत्र) से मिल रहा था। उनकी माँ और स्त्रीके कान और कंठ सोनेसे पीले थे। मन्दिरकी

सब पुरानी चीजें नहीं हैं, क्योंकि जलते घरसे बहुत कम सामान निकाल पाये थे। उनका खानदान पुराना है। मैंने पुराने कागज-पत्र देखना चाहा, किन्तु वह सब आगमें दग्ध हो गये थे।

जेलदार बिना भोजन कराये कहाँ जाने देनेवाले थे, यद्यपि मैं चायमें सने सत्तूकी दो तीन पिंडियोंको खाकर चलनेकी सोच रहा था, किंतु उधर पूड़ी, हलवा, तरकारी बन रही थी। बंसीलालजी माँ की ओरसे पहाड़ी हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रके हैं। उनकी पत्नी भी किन्नरी नहीं कोची हैं। इसका प्रभाव भोजन-के ऊपर भी था। चीनीके लिये अभिशप्त होने पर भी मैं हलवेको अछूता नहीं छोड़ सकता था। बंसीलाल तीन भाई हैं, चौथा पहिले मर गया। स्वयं सातवें दर्जे तक पढ़े हैं, मँझला आठवें दर्जे तक, सबसे छोटा नवीं श्रेणीमें रामपुरमें पढ़ रहा है। अभी तीनों भाइयोंको कोई पुत्र नहीं है। सबका पांडव विवाह है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। यदि यह प्रथा घरने मानी न होती, तो इतनी पीढ़ियों तक खेत-धन-मकान बँटकर वह भी साधारण किसान रह गये होते।

१० तिब्बती सीमांतकी ओर

घड़ी तो शिम्ला बनने गई थी, इसलिये ठीक-ठीक नहीं कह सकता, शायद जेलदारके घरमें निकलते निकलते नौ बज गया था। अब फिर अजपथ सामने था, और आये रास्तेसे अधिक लम्बा अधिक ऊँचा। "न आयेसे भय खाओ, सामने आयेका साहसके साथ मुकाबिला करो" सिद्धान्तको मानते हुये मैं घोड़े पर सवार हुआ। घोड़ा भलेमानस था, अजपथमें जैसे-तैसे घोड़े पर सवारी नहीं की जा सकती। यदि कमजोर हुआ और बैठने लगा, तो वहाँ बैठनेकी जगह नहीं, वह फुटबालकी भाँति के केवल लुढ़क भर सकता है, यदि सबल और चपल हुआ, तो भी खैरियत नहीं। घोड़ा दोनों नहीं था। यहाँसे घोड़ेवालेके अतिरिक्त और भी आदमी साथ जा रहे थे। रास्ता लिप्पा-गंगा (किरङ् खुड्) के बायें किन्तु तटसे दूर और ऊपर की ओर जा रहा था। कुछ मील चल कर रास्तेमें लिप्पावालोंकी खेती पड़ी। कुछ फसल हरी और कुछ बोई जा रही थी। वही सर्वव्यापिका चूलीके और कुछ दूसरे फल वृक्ष भी थे। किन्तु, यहाँ फलों पर अधिक ध्यान नहीं था। ध्यान तो कहीं भी अधिक नहीं था। किन्नर-भूमि प्रकृतिकी ओरसे मेवोंकी भूमि बनाई गयी है। अल्प प्रयाससे क्वेटा-काबुल-

के सारे फल यहाँ लग जाते हैं, इसलिये लगा दिये जाते हैं किन्नर लोग सुरा देवीके अनन्य उपसाक हैं, और यह कहना पड़ेगा, कि सुरा बनानेमें नित नये तजर्बे करनेमें भी लासानी। किन्नरने सारे अन्नों और फलोंकी सुरा भभकेसे खींच-कर देखी है। फल पानीमें डालकर रख दिये जाते हैं। जब खमीर उठकर उबलने लगता है, तो चखकर देखते हैं, कि नशा आया या नहीं, फिर भभकेसे भाप बनाकर उसका अर्क खींच लेते हैं। वह बत्तीमें डुबो कर जलानेसे जलने लगता है। डाक्टर ठाकुर सिंह बातूनी मालीकी शिकायत कर रहे थे—वही माली जिसे देख कर पता नहीं लगता; कि वह कार्यारुढ़ माली है या पेंशनप्राप्त। ठाकुर सिंहके पास परासाल के दो-ढाई मन सूखे सेब नास्पाती अब भी मौजूद हैं, जिनका उपयोग सुरा बनानेमें ही होता है। उन्होंने घड़ा बैठा रखा था। उफान आने पर उक्त मालीको चखनेके लिये दिया। माली उन आदमियों में हैं, जिनका नशा ठिलियामें नहीं अपने पेटमें रहता है; कह दिया—खूब नशा है खूब स्वाद है। ठाकुरसिंह वैसे तो नियमसे प्रतिसायं सुराभगवतीका सेवन करते हैं, और "मोरी" की शराब पूरी एक बोतल भी अपर्याप्त होती है, किंतु चूक गये। मालीकी बातपर विश्वासकरके भभका लगा दिया। सुरा आसूत हो गई, चखा तो मालूम हुआ, पूरी तैयार नहीं है। होशियार भी कभी-कभी धोखा खा जाते हैं। खैर, किन्नरोंके सुराके तजर्बे में चारपाँच ही साल पूर्व बेमी (छोटा आड़ू) शामिल हुई और आज यहाँके पारखी उसे शराबोंकी रानी कहते हैं। बेमीका सम्मान अब बहुत बढ़ चला है। चूली (खूबानी) की सुराका तजर्बा उससे पीछे हुआ है, और वह भी सफल, यद्यपि गुणमें वह सबसे पीछे है। अब तो किन्नर कह रहे हैं, कि घरु-जंगली सभी किस्मके फलोंकी शराब निकाली जा सकती है, फल सिर्फ जहरीला नहीं होना चाहिये। मैंने तो कहा फल और अनाजको तो तुम ले ही चुके, न्योजा और देवदारके काष्ठों पर भी क्यों न तजर्बा कर डालो—काष्ठको छोटा-छोटा काट कर या आरेके चीरे चूरन-को पानीमें डाल खमीर तैय्यार करो और फिर भभकेसे खींच लो। देखें, बीज तो डाल दिया है, क्या जाने अंकुर निकल आये। मेरे इस नुस्खेका यही अर्थ है, कि हजारों मन अनाज और मेवा इस तरह बच पाये तो अच्छा।

इस रास्ते वनम् आठ-नौ मीलसे अधिक दूर नहीं है, किन्तु कानमें तो

लड़कपनकी कहावत गूँज रही थी—'बरस दिनके रास्ते जाना, छ महीनेके रास्ते नहीं।' रास्तेमें कई स्थानों पर अनगढ़ पत्थरोंकी सीढ़ियाँ थीं, जहाँ प्रायः मैं घोड़ीसे उतर जाता, यद्यपि साथी कह रहे थे—कोई हर्ज नहीं। मैं चढ़ाईमें भी काफी पैदल चला, तो भी घोड़ीने बड़ी सहायता की। अन्तमें जोत पर पहुँचे, जो ग्यारह हजार फुटसे कम न होगी। वहाँसे दूसरी ओर नीचे दूर लब्रङ् और कनम् दिखलाई दे रहे थे। इधर पर्वत गात्रपर देवदार जातीय वृक्ष अधिक थे। जरा देर विश्राम करके फिर चले। अब घोड़ीका काम नहीं था, किंतु आदमी लब्रङ्से लौटने वाले थे। मनोरम देवदार स्थली थी, किंतु पानीकी बूँद भी कहीं दिखलाई नहीं पड़ती थी। कुछ महीने पूर्व वहाँसे आयेगये पथिकोंके जलाये चूल्हेंके कोयले और राख पड़ी थी। उस वक्त यहाँकी बर्फ पिघल रही होगी, और पानी सुलभ रहा होगा। जूड़ी छाँहमें बस पानीकी ही लालसा थी, किंतु उसके लिये काफी उतरना पड़ा, तब तक वृक्ष लुप्त हो चुके थे। खड्डमें जाकर पीनेके लिए पानी मिला। इससे पूर्व ही हिमानी प्रपातकी ध्वंस-लीलाकी साक्षी बहुतसे टूटे-उखड़े-गिरे वृक्ष दे रहे थे। आगे लब्रङ्का सतमहला दुर्ग आया।

लब्रङ्का शब्दार्थ है लामामहल, या राजमहल, किन्तु यहाँ यह नाम दुर्गका नहीं गाँवका है। लामामहल या लामाका प्रसिद्ध मठ यहाँ कभी रहा हो, इसका तो पता नहीं; हाँ, यह दुर्ग अवश्य राजमहल होनेका सबूत देता है। दुर्ग ऊँचा काफी है, किन्तु उसकी लम्बाई-चौड़ाई बीस-पचीस हाथसे अधिक नहीं है। इसकी दीवारें गढ़े पत्थरों और देवदारके सुघड़ बल्लों से चिनी गई हैं। हर तीन चार पत्थरकी पटियोंके बाद लकड़ी है। दीवारोंमें कुछ-कुछ दूर पर सातों खंडोंमें छोटे-छोटे जुड़वा काष्ठ छिद्र (जोड़े गवाक्ष) हैं जिनसे दुर्गस्थ आदमी तीर या पत्थर फेंकते रहे होंगे। लोग यह नहीं बतला सकते, कि दुर्गको किसने बनाया। इस बातमें यहाँके लोगोंकी स्मृति बहुत दुर्बल है। बूढ़े कहते हैं—राजाका है, अर्थात रामपुरके राजाका; राज्यकी ओरसे जो इसकी मरम्मत होती आ रही है। अब वह भी बन्द है और सातवाँ तल ढंढ-मंड होने लगा है। पूछने पर बतलाया गया, ऊपर थुनथुन् ग्यल्पो देवता रहता है, किन्तु उसकी मूर्ति आदि नहीं है। दुर्गके उपयोगके बारेमें कहा जाता है, जब भोटिया लुटेरे आते, तो लोग घरोंको छोड़ दुर्गमें बन्द हो जाते और भीतरसे तीर और पत्थर

छोड़ते। यह अविश्वासकी बात नहीं है। मोंगिया लुटेरेकी बात ही क्यों उस समय किन्नर लुटेरोंकी भी कमी नहीं थी। नाको (हङ्रङ्) का एक आदमी तिब्बतकी लूटसे ही धनी हो गया था, उसे मरे अधिक दिन नहीं हुये। वह किन्नर तरुणोंको अभियानके लिये भरती करता, उन्हें हथियार खर्च-वर्च देता, फिर बदलेमें लूट कर लाये मालमें से घर बैठे एक-चौथाई बँटा लेता। वैसाही तिब्बत और स्पितीवाले भी करते होंगे।

मुझे तो जान पड़ता है, यह दुर्ग 'ठकरस्' के जमानेकी यादगार है। यदि यह वही मूल इमारत नहीं, तो उसीका संस्कृत रूप है। फिर वही प्रश्न—'ठकरस्' के वंशज अब कहाँ हैं? हर जगह पुराने राजवंशों की दरिद्र संतानें देखी जाती हैं, यहाँ ही क्यों उनका अत्यन्ताभाव? लाहुल (कुल्लू) में ठाकरोंके वशंज मौजूद हैं, आजभी वह टाकर कहे जाते हैं, फिर किन्नर ही में इसका अपवाद क्यों? चाहे लब्रङ्में ठाकरवंश न हो, किन्तु उससे दो-ढाई मील नीचे स्पीलोंमें अबभी एक ठाकर परिवार है। मुन्नम् जेलदार तोब्ग्यारामके कथनानुसार वर्तमान परिवार ठाकर वंशज नहीं, बल्कि ठाकुरके घरका वासी है। जो भी हो, वर्तमान परिवारसे पूर्व वहाँ टाकरके होनेका तो पता लगता है, किन्तु, चिनी, तङ्लिङ् चगाव आदिमें ठाकरोंका नाम तक नहीं मिलता।

लब्रङ्के सबसे पुराने खान्दानके बारेमें पूछने पर ओमङ् सिङ् परिवारका पता लगा, जो निस्संतान हो गया है। किन्नरमें हर घरका नाम होता है, वैसे ही जैसे तिब्बतमें, किन्तु कितनी ही बार लोगोंने बहुपतिकता धर्मका प्रत्याख्यान किया, जिससे उस घरसे हुये कई गृहोंका नाम एक मिलता है। दुर्गके पास ग्राम देवताका पत्थरका मंदिर है। किन्नरमें देवताओंके मंदिर अधिकांश काष्ठकी छत और काष्ठमिश्रित दीवारवाले होते हैं, यहाँका देवता सक्कंशू इसका अपवाद रखता है। मन्दिरसे नीचेके मकानमें एक तरुण था, जिसे चिनी पोशाक पहिना दी जाती, तो कोई उसे पहचान न पाता। उसे इशारेसे पास आनेके लिये कहा। तरुण मेट्रिक तक पढ़ा था। उसने बुलाने पर बुरा नहीं माना, मैं भी क्षमाप्रार्थी हुआ। उसने भी लब्रङ्के इतिहास पर कोई प्रकाश नहीं डाला। लब्रङ् गाँव बड़ा है। साठ कनैत, दस कोली और पाँच लोहार परिवार रहते हैं। काफी खेत हैं, किन्तु सबके पास नहीं, कोली-बढ़ई अधिकतर हाथकी मेहनत पर

गुजारा करते हैं। दूसरों की भी समृद्धि खेतीके अतिरिक्त भोटके व्यापार पर है। इनकी भेड़-बकरियाँ चारेकी कमीके कारण जाड़ेमें नीचे चली जाती हैं—कनौरकी एक लाख भेड़ बकरियोंमें दो-तिहाईकी यही हालत है। तरुणकी शिक्षाका भी उपयोग बस गर्मियोंमें तिब्बतमें व्यापार और जाड़ोंमें नीचे भेड़-बकरीकी चराईमें होता है। एक दिन कनम्का एक तरुण चिनीमें रास्तेमें मिला था। वह मेट्रिक पास, ट्रेनिंग पास, पोस्टमास्टरीका काम सीखे था, किंतु नौकरी छोड़ अब अपनी भेड़ोंके साथ रहता था। कहता था—"२२ रुपया मासमें कैसे गुजर-बसर हो। मैंने कहा, मुझे अपने गाँवके स्कूलमें रख दो, कि मैं कुछ घरका भी काम करके गुजारा कर सकूँ किन्तु उसे भी स्वीकार नहीं किया गया, लाचार हो इस्तीफा देना पड़ा।" ऐसे तरुणोंने शिक्षा प्राप्त कर अपना और अपने देशका क्या उपकार किया? किन्तु इसकेलिये उनको दोषी नहीं ठहराया जा सकता, आखिर पेट बाँधकर कौन काम कर सकता है?

दुर्गसे नीचे गाँवमें गये। चश्मेके नीचे कुंड और ऊपर गणेश जी महाराजकी मूर्ति अंकित देखी। ब्राह्मण-धर्मका लामाधर्मको पछाड़नेका प्रयास! आगे खेतोंके किनारे-किनारे उतरते हुए फिर हिन्दुस्तान-तिब्बत-सड़क पर पहुँच गये, जो कनम् खड्डमें ऊपर की ओर जा रही थी। खड्डका पुल गिर-सा रहा था, इसलिये उसकी बगलमें अस्थायी पुल बना दिया गया था। पुल पार कर हम कनम्की सीमामें खेतोंके किनारे-किनारे कुछ दूर चढ़कर गाँवसे पहिले ही पी० डब्लू० डी० डाकबँगलेमें पहुँच गये। चपरासी पहिले ही पहुँच चुका था। बंगलेके चौकीदार हैं गांवके नम्बरदार और कनौरके बड़े धनिकोंमें से एक। उनके बड़े भाई सड़क-इन्सपेक्टर बाबू बेलीराममे १९२६ में मेरा परिचय हुआ था। बेलीराम की मृत्यु कई साल पहिले हो गई। उनके भाई नम्बरदार घरमें थे। उनका लड़का बँगले में मिला, और मेरे आते ही बँगले में ठहरने का पास मांगा। कही चुका हूँ, "सारे बँगले जंगल विभागके हैं", मुझे यह भ्रमहो गया था, और पंजाबकी पी० डब्लू० डी० से पास नहीं लिया। मैंने कहा पास नहीं है। न जाने क्यों तरुण चौकीदार-पुत्रने बंगला खोलनेमें रुकावट नहीं पैदा की। कनम् महत्वपूर्ण स्थान है मैंने उसे अच्छी तरह देखनेका काम लौटते समयके लिये रखा, इसलिये उसके बारेमें कुछ और लिखना भी तब तकके लिये स्थगित करता हूँ।

१८जूनको दिन चढ़ आने पर हम आगे चले। कनम् सतलजकी धारासे बहुत ऊपर बसा है और सड़क उससे भी ऊपर होकर जाती है। कितनी ही दूर तक सड़क और ऊपरकी ओर चली, यद्यपि इसके लिये श्यासों खड्डुमें उसे बहुत उतराई पार करनी पड़ी। बीचके एक सूखे नाले में सड़ककेलिये ठोस जमीन पानेकेलिये ऐसे करना जरूरी था। नाले से आगे रास्ता अच्छा रहा। श्यासो पुल पर पहुँचनेसे पहिलेके दो मील घूम-घुमौआ उतराईके थे। धूप तेज थी। कनम् ६४७० फीट ऊँचाई पर है, और उतराई से पहिलेकी सड़क अधिकतर १०,००० फीट पर जाती है। धूप असह्य मालूम हो रही थी, मैं पछता रहा था, क्यों हैट साथ लाकर शिमला छोड़ आया।

पिछली यात्रामें श्यासो खड्डुसे आगे तिब्बत-हिन्दुस्तान-सड़क नहीं गई थी। खड्डुका नया लोहे का पुल भी पीछे बना। आगे स्पू और नम्ग्या तक सड़क १६२७ में बनी। किन्तु अभी हमें स्पूकी ओर जाना नहीं था। मैं तो पहिले स्पू और नम्ग्या ही जाना चाहता था, किन्तु पुण्यसागरने कह दिया, "स्पूके लिये बेगारु और घोड़ा सीधे नहीं मिलेगा", यद्यपि यह बात गलत थी। कहने पर वह मिल सकते थे। यदि मैं उस दिन स्पूकी ओर चला गया होता, तो लौटती बार सुङ् नम् जरूर जाता। खैर, हम पुल पार हो ऊपरकी ओर मुड़े। अब सड़क नहीं ग्रामीण रास्ता था। जाड़ोंकी बर्फ रास्तों को खराब कर देती है। यहाँके लोगोंके लिये तो कोई बात नहीं, वह तो ऐसे रास्ते को दुर्गम नहीं कहते, जहाँ बकरीका बच्चा चला जाता है। भाग्य कह लीजिये या तहसीलदार साहेबका तुरन्त होने वाला दौरा कारण था,जिससे दो-तीन गाँवोंके नर नारी—अधिकतर नारियाँ—सड़क बनाने में लगे थे। पत्थर नीचे लुढ़काये जा रहे थे, और रास्ते को पाटपूटकर हाथ भर चौड़ा बनाया जा रहा था। ऊपर श्यासो तक रास्ता ठीक हो चुका था। हमें दो ही एक फर्लांग बिना बने रास्ते से चलना पड़ा। आगे दो मील श्यासो गाँव में पहुँचने तक चढ़ाई ही चढ़ाई थी, किन्तु भयंकर नहीं। वैसे कनम्के बाद ही से पहाड़ोंसे वृक्ष लुप्त होने लगे थे, किन्तु यहाँ तो नग्नताका राज्य—तिब्बतका दृश्य—था। हाँ, परलेपारके पर्वत पर कहीं-कहीं ऊपरकी ओर पद्म, न्योजा या देवदारके कृशगात्र वृक्ष दिखलाई पड़ते थे। आधेसे अधिक मार्ग को पैदल पारकर घोड़ेपर सवार हो दोपहर होते-होते हम श्यासों गाँवमें पहुँचे।

लकड़ीकी कमीका प्रभाव घरोंपर दिखाई पड़ रहा था। वहाँ लकड़ियोंकी जगह अधिकतर अनगढ़ पत्थर दिखलाई पड़ रहे थे। तहसीलो चपरासी पिछले ही दिन यहाँ पहुँच चुका था। वह बीस बरसका होने पर भी १४ बरसका छोकरा मालूम होता था, उसके रहने न रहने से कोई अन्तर नहीं पड़ता था।

जब सड़क स्पू नम्ग्या नहीं गई थी, तो यहाँ डाकबँगला था। बँगलेका समान लकड़ी और दर्वाजे-खिड़कियाँ उठकर नम्ग्य चली गईं, किन्तु दो तीन कोठरियोंका एक घर अब भी मौजूद है। उसकी अवस्था देखनेसे जान पड़ता है, उसे गिरने के लिये छोड़ दिया गया है। जाड़ोंमें लोग अपनी भेड़ बकरियाँ उसके भीतर बाँधते हैं, चारों ओर गंदगीका राज्य, वर्षोंसे मरम्मत नहीं हुई। आखिर ऐसी इमारत बनवानेमें चार-पाँच हजार रुपया खर्च होगा। कई समृद्ध गावोंका रास्ता इधरसे जाता है, जिनमें सुङ्नम अपने गुदमों, पट्टुओं और पट्टियोंके लिये ही नहीं अंगूरोंके लिये भी सदियोंसे प्रसिद्ध रहा और आगे हिमाचलके फलप्रधान होने पर यहाँके उद्योगपरायण लोगोंकी मेहनतसे वह फिर महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करेगा। फिर ऐसे सरकारी मकानकी उपयोगिता से कौन इनकारी हो सकता है ? श्यासों चाहे दस ही घरोंका गाँव हो, किन्तु है तो गाँव, जिसे अनिवार्य शिक्षाके समय स्कूलकी आवश्यकता होगी, फिर इस बने घरकी उपेक्षा क्यों ?

हम गाँवसे बाहर उक्त मकानके पास कूल (कुल्या) के किनारे छायामें बैठ गये। बेगारु पहिले चले आये थे। घोड़ा और बेगारु यहाँ न लौटने वाले थे। मालूम हुआ, ऊपरसे आया घोड़ा तैयार है और बेगारू भी। मिलनेवाले घोड़ेका गुन मालूम हो गया होता, तो चार मील और कनम् वाले घोड़ेको ले जाकर हम सुङ्नम् पहुँच जाते, किन्तु जान पड़ता है, सुङ्नमके लोग जितना मेरे आनेके-लिये उत्सुक थे, वहाँका देवता उतना ही बाधाके लिये उतारू था। बेगारोंको मजूरी दी गई। बेगारु अधिकतर कोली होते हैं, यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं, कि कनेत बेगार नहीं करते। वह होती भी हैं अधिकतर स्त्रियाँ। दोनों बेगारु कोली थे, एक षोडशी और एक पुरुष। किन्नरियोंका कण्ठ चाहे जितना सुन्दर-मधुर हो, किन्तु यहाँ सौंदर्यकी बहुत कमी है, और यहाँ थी, एक कोली (अछूत) दुहिता, जिसे मैं सारे किन्नरकी जनपद-कल्याणी कह सकता था। उसका रंग

गोरा, नाक उन्नत, चेहरा संतुलित, आँखें बड़ी, ओठ पतले थे। ऐसे ही रत्नोंके-लिये ब्राह्मण महर्षियोंने फतवा दिया था—"स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि"।

बेगारु गये हमारे लिये छाछ आया। गर्मीमें वह और मधुर लगा। थोड़ी देर विश्रामके बाद हम सुङ्नमकी ओर चले। सुङ्नम् चारही मील था, सोचा दो घण्टेमें वहाँ होंगे। गाँवके पास की छोटी खड्डुके पार हुये। चढ़ाई शुरू हुई। घोड़ा लाया गया। पहिले पहिल उसपर चढ़ना था, इसलिये अच्छी जगहमें ही चढ़ना मैंने पंसद किया। पीठपर सवार होते ही घोड़ा कूदने लगा। भला ऐसे घोड़ेपर बिना मरम्मत किये रास्तेमें चढ़ना क्या आत्महत्यासे कम था? लोगोंने घोड़ेको पकड़ा और मैं सहीसलामत नीचे उतर आया। तै किया, पैदल चलने-का। चढ़ाई ही चढ़ाई और कठिन सीधीसी चढ़ाई, धूप सामनेकी, थकावट अलग। ऊपरसे लौटते समय सीधी उतराईका ख्याल, सबने मिलकर दिमाग में खिचड़ी पकानी शुरु की— सुङ्नममें क्या धरा है, एक बार तो तुम वहाँ हो भी आये हो, व्यर्थ की बला मोल लेनी कहाँकी बुद्धमानी? एक मील तक खिचड़ी पकती रही। बेगारू आगे बढ़ते जा रहे थे, निर्णय देरतक रोका नहीं जा सकता था। पुण्यसागर बहुत दूर नहीं थे, उन्हें पुकार कर कहा—"सुङ्नम यात्रा स्थगित, बेगारुओंको श्यासो लौटनेके लिये कहो, एक बात।" मैं पीछे लौट पड़ा।

रास्ता कठिन जरूर था, किन्तु लिप्पाके आगे पीछेका रास्ता भी इससे अच्छा न था। यदि कई कारण एकत्रित न हो गये होते, तो सुङ्नम् पहुँच जाता। खैर, अबतो लौट पड़ा था। गाँवके पास पहुँचकर प्रतीक्षा करने लगा। साथवाले भी आगये। श्यासो-बिस्ट (श्यासो-वजीर) का घर बड़ा था, उसकी छत भी चौड़ी थी, मैंने वहाँ डेरा देना पसन्द किया, किन्तु तब तक चपरासी और गाँवके मेट (चारस्) ने एक कुटियामें ले जाकर डेरा गिरा दिया। श्यासो दस घरका छोटा गाँव ही नहीं है, बल्कि उसकी सूरतसे दरिद्रता बरसती है, जिसका मलिनतासे चोली-दामनका साथ है। मलिनता तो खैर उतनी असह्य वस्तु नहीं थी, आखिर मैं कई बार तिब्बतकी मार खा चुका हूँ, किन्तु मलिनता जहाँ हो, हो नहीं सकता वहाँ पिस्सू-खटमल प्रचुर परिमाणमें न हों। दोनोंकी मारको अपुन आजतक बर्दास्त नहीं कर सके—कायरता कह लीजिये। जितने

साथी थे, जान पड़ता है सभी पिस्सू-खटमल जातिके दलाल थे। मैंने पुण्यसागर-से कहा—विस्टकी छतके पास डेरा लगवाओ, जिसमें दुश्मनोंके आक्रमणके समय रातको छतपर भागा जा सके।

श्यासो—श्यासो-विस्ट अभी बीस साल पहिले तक बहुत धनाढ्य परिवार था। किसी समय नन्तारामके पुत्र इन्दरदासका जमाना चमका हुआ था। वह पढ़े-लिखे होशियार आदमी थे। पढ़े-लिखेका अर्थ अँग्रेजी-फारसी पढ़ा-लिखा नहीं समझिये। सौ साल पहिले मामूली टाँकरी (गुप्त लिपिसे निकली पहाड़ोंकी पुरानी लिपि) लिख-पढ़ लेना भी विद्याका ओर समझा जाता था। उस समय बुशहर-राज्यके हर इलाकेमें विस्ट या वजीर होते थे, जिनका बचन वहाँके लोगोंके लिये कानून था। आमदनीका क्या पूछना है ? ऊपरसे तिब्बतका व्यापार भी था। इन्द्रदासने खूब सम्पत्ति पैदा की, श्यासो खड्डके गाँवोंमें ही नहीं डांडेपर हङ्रङ्में भी। सुङ्नम्से और ऊपर ग्याबोङ् गाँवमें तो रामपुरके तत्कालीन राजप्रासादको भी मात करनेवाला मकान बनवाया—वहाँ देवदारोंका दुख नहीं है। इन्दरदासका समय बहुत ऐशजैशमें बीता, राज-दर्बारमें सम्मान और प्रजामें रोब था। उनके पुत्र चरनदासने घरकी लक्ष्मीको अक्षुण्ण रखा, यद्यपि बेताजकी बादशाहीका जमाना अब लद चुका था, चिनीकी तहसीलदारीने विस्ट और 'मुखियों' के अधिकार छीन लिये थे। चरनदासके चार पुत्र हुये, जिनमें दो मर चुके हैं, दो पागल हैं; संसारचंद ग्याबोङ्के 'महल' में रहता है, और अमरनाथ अपनी माँ और सम्मिलित पत्नीके साथ यहाँ श्यासोंमें बापदादों-के घरमें।

यद्यपि श्यासोमें लकड़ीका ठाला है, किन्तु इन्दरदासके जमानेका मकान है, इसलिये काफी बड़ा है। हवेलीके पास कई बखार, बाहरी कोठरियाँ भी हैं। छतके पास उसीके समतल तीन कोठरियोंवाले बाहिर घरके ओसारेमें हमने आसन लगवाया। यद्यपि श्रीहीन घरमें आगंतुकोंके अधिकतर ठहरनेकी संभावना नहीं थी, जिसका अर्थ था पिस्सुओं-खटमलोंकी भी कम संभावना; क्योंकि वह यहाँ उपवास पर तो रह नहीं सकते थे। तो भी हमने मौका आजाने पर छतपर भाग निकलनेकी सोचकर वहाँ डेरा दिया था—'अग्रसोची सदा सुखी।'

पुण्यसागर खाना बनानेमें लगे। दिन काफी था। मैं छतपर गया। देखा

चरनदास-पुत्र बिस्ट अमरनाथ नीचे दुतल्लेके आँगनमें खड़े हैं। बातसे जान पड़ा, कुछ पढ़े-लिखे आदमी हैं। नीचे उतरे, विस्टका पारिवारिक मन्दिर देखना था—पुराने खानदानोंमें पुरानी चीजें जमा हो जाती हैं, उन्हें देखनेके ख्यालसे। विस्टने द्वार खोल दिया। मिट्टी-पीतलके देवी-देवताओंसे कोठरी भरी पड़ी थी और तेल-मैल-गन्दगीका कोई ठिकाना नहीं। कुछ तिब्बती पुस्तकें भी थीं। किन्तु कोई महत्व रखने वाली चीज हमें दिखलाई नहीं पड़ी। अमरनाथमें उससमय झल्लापन (पागलपन) नहीं था, प्रकृतिस्थ की तरह बात कर रहे थे; हाँ, कभी-कभी बेपर्वाहीकी हँसी हँस देते थे, जो अधिकतर अपने दुर्दिनोंकी बातचीतके समय ही। कह रहे थे; मेरा भाई ग्याबोङ्में 'झल्ला' हो गया है। सबसे झगड़ता है। मेरेसे भी झगड़ता है। यहाँ नहीं आता, न स्त्री (दोनोंकी सम्मिलित पत्नी) को ही मानता है। नौकर भी कोई उसके पास नहीं टिकता। खाना ? अपने बनाता है। (अमरनाथ सबसे छोटे ४८ सालके हैं, संसारचंद पचपनके करीब हैं)। खेत परती पड़े हैं, बड़े-बड़े खेत हैं। लोगोंको जोतने नहीं देता। झल्ला है ना, समझानेसे भी नहीं समझता। कहता है—जोतने वाले कब्जा कर लेंगे। चूलियोंके वृक्ष सूख रहे हैं। महल (जिसे इन्दरदासने राजाकी देई—कन्या-ब्याह कर लानेके लिये बनाया था) जाड़ोंमें छतसे बर्फ न फेंकने और वर्षामें मिट्टी न डालनेसे टूट रहा है। दीवार मजबूत है, इसलिये अभी टिका हुआ है।

अमरनाथ अपनी बात भी बतला रहे थे। जमीन तो काफी है, किन्तु जोतनेवाले देना नहीं चाहते। दूरकी जमीनोंपर पटवारीको दे-दिवाकर लोगोंने कब्जा भी कर लिया है। यद्यपि अमरनाथ कभी-कभी प्रकृतिस्थ भी हो जाते हैं, और पत्नी तथा माता तो सर्वथा प्रकृतिस्थ हैं, तो भी साधनोंके अभावसे घर यहाँ भी बेमरम्मत है। गाँवकी खड्डमें इस साल बहुत हिमवृष्टिसे काफी बाढ़ आई थी। पिछले कई सालोंसे हिम और वर्षाके कम पड़नेसे पानी सूख जाता, जिससे खेती नष्ट हो जाती रही, कितने फलदार वृक्षभी सूख गये। पत्नी और माता यहाँ देख-भाल करके किसी तरह गुजारा भरका अनाज जमा कर लेती हैं। इस परिवारको गुजारा भर ही तो चाहिये। उसके आगे-पीछे है कौन ? पत्नी पचासके करीब पहुँच गई है। पागलोंके परिवारमें सन्तान न हो, यही अच्छा।

पागलोंकी संख्या बढ़ाने से लाभ ? इन्दरदासके वंशका चिराग बुझनेवाला है, उसके लिये शोक और संवेदना प्रकट करनेकी आवश्यकता नहीं; किन्तु इन जीवित प्राणियोंके प्रति सहानुभूति हो आनी स्वाभाविक है। अमरनाथ जाड़ेमें पासके खड्डमें होकर जाते ग्लेसियरकी निष्ठुरताके बारेमें कहते हुये हँस पड़े—'इसे क्या मजा मिलता है, जो छत परके तीन स्तूपोंको ढकेलकर गिरा देता है।' छत पर आजाता है क्या ?—'नहीं, छतपर नहीं आता, आता तो घर थोड़ेही बचता।' ग्लेसियर हहास बाँधकर चलता है, उसके आगे-आगे प्रचंड हवा चलती है, उसने इस साल छतके (पूजा) स्तूपोंको गिरा दिया। विस्ट-परिवारकी सहयोगिनी एक गूँगी (लाटी)-बहिरी है, जो कुरूपताकी प्रतियोगितामें शायद सारे किन्नर देशमें प्रथम आयेगी, किन्तु वह इस अस्तोन्मुख परिवारके लिये भारी अवलंब है। वह रहनेवाली डाँडेपार हङ्रङ्की है, किन्तु कई सालोंसे इस परिवारकी बन गई है। मोटा-झोटा खाना, फटा-पुराना कपड़ा बस और क्या चाहिये ? आयु उसकी भी विस्ट-पत्नीके समान है।

११ भारतका सीमांती गाँव

शामको ही मालूम हो गया था, बारीका हफ्ता बीत गया, कलके लिये बेगारू यहाँसे नहीं, सुङ्नम् और आगेसे आवेंगे। चार-पाँच मील दूरके बेगारू और घोड़ेकी आशा दोपहरके पहिले क्या पूरी हो सकती थी। मैंने बहुत जोर लगाया, कि इसी गाँवके बेगारू चले चलें, आखिर कल भी तो वह सुङ्नम् जा रहे थे ? किन्तु नियम-निर्मुक्त होके बेगार कौन करनेके लिये तैय्यार ? वस्तुतः इसे बेगार भी नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि दस मील स्पू तक पहुँचनेके लिये उन्हें सवा-सवा रुपये मजूरी मिलती। बेगारकी प्रतीक्षामें दोपहर तक यहाँ ठहर कर फिर धूपमें दस मील दौड़नेके लिये मैं तैयार नहीं था। १६ जूनको सवेरे ही मैं चल पड़ा। पुण्यसागर और चपरासीको कह दिया, कि बेगारूके आने पर रवाना होवें; घोड़ा आये तो यहींसे लौटा दें। सुङ्नम् निवासी जेलदार तोब्ग्याराम मिलने पर अफसोस प्रकट करते हुये कह रहे थे, कि हम लोग बड़ी लालसासे प्रतीक्षा कर रहे थे। तोब्ग्याराम २६ साल पहिले सुङ्नम् डाँडेके पार अपनी खेती (हङ्गो) में मुझे मिले थे। मैं तो भूल गया था, किन्तु उन्हें याद था।

सबेरेके समय ठंडे-ठंडेमें मैं नीचे उतरने लगा। श्यासो-पुल तक पहुँचनेमें देर नहीं लगी। अब १६२७ में बनी सड़कपर चल रहा था। तिब्बत-हिंदुस्तान-सड़कका सबसे पिछला भाग होनेसे इंजीनियर लाला रामचंद्रने इसे बहुत कौशलसे बनाया, चढ़ाई-उतराईको बहुत अधिक होने नहीं दिया। सड़क नदीसे बहुत ऊँचे उठने नहीं पाती। कुछ दूर जाने पर सड़क रेगिस्तानके एक क्षुद्र खंडसे जाती दिखलाई पड़ी। मैंने समझा बालू ऊपरके पहाड़से गिरा होगा, किन्तु पीछे मालूम हुआ, यह पवन-देवताका काम है। जो लाख मन बालू कहींसे उठाकर यहाँ ला धरते हैं। बालू हटाया जाता है, और वह फिरसे यहाँ धर दिया जाता है। और आगे बढ़ने पर पी० डब्लू० डी० के एस-डी-ओ-(उपविभागीय अधिकारी) इंजीनियर कपूरसाहेब सदलबल आ रहे थे। इनके साथ ओवर्सियर, सड़क-इंसपेक्टरके अतिरिक्त एक दो और भद्र पुरुष थे। बेगारू बीससे क्या कम होंगे। चिनींमें सड़क पर उनसे भेंट हो चुकी थी। नमग्या तक अपने वार्षिक दौरेको पूरा करके वह वापस लौट रहे थे। साहेब-सलामी कुशल-प्रश्न हुआ। कनमूके चौकीदारकी बात याद करके कहा—मैं पी० डब्लू० डी० का पास नहीं ला सका। उन्होंने कहा—पासतो मुख्यकार्यकारी इंजीनियर देते हैं, किन्तु मैं बंगालके चौकीदारको कह दूँगा।

आगे चलनेपर जाड़ोंमें लुढ़ककर आई लाखों मनकी हिमानी रास्तेमें मिली। मिट्टी मिली बर्फपर पत्थरोंके टुकड़े पड़े थे, जिसपर आदमियों और पशुओंने रास्ता बनाया था। नीचे गलित जल बह रहा था, किन्तु सारी हिम-राशिको गलनेके लिये अभी कई हफ्ते चाहिये थे। कुछ ही दिनों पहिले यह हिमानी कई पशुओंकी बलि ले चुकी है। एक खच्चर तो उसी आदमीका मरा, जिसने लौटती बार मेरे लिये कनम् तक का किराया किया था। ऐसे स्थानोंके लिये रास्ता तुरन्त बनानेको स्थायी मजूर हैं, किंतु वह हर समय ऐसे खतरेकी जगहभी मौजूद नहीं रहते। हिमानीके किनारे गलकर हर रोज छोरोंपर तीन-चार हाथ सीधे खड़े हो जाते हैं, जिन्हें ढलवाँ करनेकी जरूरत होती है। कभी किनारे बाहरसे दृढ़ किन्तु भीतरसे गलकर पोले हो गये रहते हैं। ऐसे ही समय बेचारे खच्चरवालेने अपने एक खच्चर—चार-पाँच सौ रुपयेके माल—को खोया। ऐसी हिमानी आदमीके लिये खतरनाक हैं, न जाने कहाँ वह

गलकर पोली हो गई हो, और आपके पैर पड़ते ही वह लिये-दिये चार पोरिसा नीचे ले जाये, फिर तबतकके लिये हिम-समाधि, जब तक हिमानी गलकर आपके शवको पथिकोंके देखने लायक न बना दे।

खतरा तो जीवनमें पग-पगपर है ही, किंतु यहाँ तो एक पूरा काफिला आध ही घण्टा पहिले यहाँसे गुजरा था। मैं अकेले रास्ता नाप रहा था; और साथ ही पासके नंगे रंगबिरंगे पहाड़ों और उनके भिन्न-भिन्न कोणपर पड़े स्तरोंको देखते मनमें अफसोस कर रहा था—यहाँ विश्वके इतिहासकी पोथी खुली है, लेकिन मेरे लिये 'अंधेके सामने रोना।' पोथीमें कुछ नाम मैंने जरूर पढ़े थे, किन्तु सोदाहरण परिचयके बिना साइंसकी पोथीका पाठ किस काम का? सोच रहा था—पर्यटकके लिये भूगर्भ-शास्त्रका साधारण परिचय अत्यावश्यक है। 'विद्या अनन्त है जीवन सान्त' इसे मैं उचित बहाना नहीं मानता। स्पू अभी पहाड़ीके आड़में था। सड़क समन्दर (सतलुज)-तट छोड़कर बाँई ओर मुड़ी। युगों पूर्व, जब अभी मानवका पृथ्वी पर कहीं पता नहीं था, तब यहाँ ग्लेशियर रहा होगा—सदा चलता ग्लेशियर, उसने लाखों वर्षमें खोद-खोदकर इस पहाड़ी भूमिके दो पार्श्वोंको खड्डोंमें परिणत कर उसे पर्वतश्रेणीसे अलग सा कर दिया। मैं नीचेकी चौड़ा-गहरी सूखी खड्डमें अरबों छोटे-बड़े पाषाण-खंडोंको देखते चल रहा था। वहाँ एक आदमी सीधे उतरता नदी-तटके पासके खेतोंकी ओर जा रहा था, दूसरी ओर एक लोमड़ी—शंकित-चकित निरुद्देश्य सी कावा काटती जा रही थी। लोमड़ी—मुलायम-मूल्यवान्-खालवाली लोमड़ी।

चक्कर काटती किन्तु समतलपर चलती सड़कने पहाड़ी और पर्वत श्रेणीके मिलन-स्थान पर पहुँचाया। वहाँ पाषाणपुंज और झंडियोंका होना आवश्यक था, क्योंकि यह पर्वत-स्कंध पर सड़कका सबसे ऊँचा स्थान था। यहाँ खड़े होकर मैंने स्पूको देखा। वहाँ पहुँचनेमें दो मीलके करीब और रास्ता नापना पड़ा, कुछ चढ़ाईके साथ भी। दोपहरके करीब मैं डाकबँगलेमें पहुँचा। रास्ते भर आज मेघोंने छाया कर रखी थी।

स्पू (खुन्नू—फुगू)—यह विशाल गाँव है। सबसे विशेषता यह है, कि यहाँसे भोट-भाषा शुरू होती है, यद्यपि ऊपरी कनोरके लोगों और यहाँ वालोंके चेहरेमें जमीन-आसमानका भेद नहीं है। वस्तुतः यह भी उसी प्राचीन किन्नर

(शू) वंशके हैं, भोट प्रभाव और रक्तकी अधिकतासे इन्होंने सदियों पूर्व किन्नर-भाषा बिल्कुल छोड़ दी। यहाँ भी भोट साम्राज्य विस्तारके पूर्व लोग वैसे ही अपने मुर्दों को आहार और मद्यके साथ कब्रों में गाड़ते थे, जैसे किन्नर-देशके अन्य स्थानोंमें। भोटभाषाका इतना जबर्दस्त प्रभाव यहाँ आकर बसनेवाले कोंलियों और लोहारों पर भी पड़ा है। कनोरमें अन्यत्रसे आकर पीढ़ियोंसे बस गये तथा पाँच या दस सैकड़ेकी संख्यामें होने पर भी, ये लोग घरमें अपनी भाषा बोलते हैं, जो कि हिन्दीकी बहिन है। किन्तु यहाँके कोली दूसरोंकी भाँति भोट-भाषा बोलते हैं, यद्यपि उनके चेहरे पर शायद ही कभी भोट-मुखमुद्राकी छाप देखी जाती है। यहाँ मेरे लिए भाषाकी समस्या हल होगई थी। जहाँ दूसरी जगह पढ़ेलिखे या नीचे गये व्यक्तियोंसे ही मैं बात-चीत कर सकता था, स्त्रियों-बच्चोंसे बोलनेपर तो दुभाषियाके बिना काम नहीं चल सकता था; वहाँ स्पूमें किसीसे दिल खोलकर भोट-भाषामें बात करना आसान था। पुरुष पोशाकमें सनातनधर्मी नहीं हुआ करते, किन्तु स्त्रियाँ अवश्य प्राचीनता-पक्षपातिनी होती हैं। यहाँकी स्त्रियोंकी पोशाक किन्नरियोंसे सर्वथा भिन्न है। यह दोड़ू (पहाड़ी साड़ी) की जगह लम्बा कुर्ता और पायजामा पहिनती हैं, टोपी भी इनकी उलटे कनटोपकी नहीं बल्कि सीधे तौरसे गोल होती है, कान के पास लटकता कर्णाभरण भी भिन्न प्रकारका होता है। टोपी और प्राचीन आभरण तो पूरी तौरसे अब कुछ वृद्धाओंमें ही पाया जाता है।

बँगलेपर पहुँचने पर सबसे पहिले चौकीदारको पैदा करना था। सौभाग्यसे इंजीनियर महाशयका दल आज ही गया था, इसलिये चमड़े वाली आराम कुर्सी बरांडेमें पड़ी थी, बैठनेकी दिक्कत न थी। भूख अवश्य मालूम हो रही थी, किन्तु उसकेलिये पुण्यसागरके आने तक की प्रतीक्षा करनी थी। बँगला चूलियोंके बागमें बना है, किन्तु चूलियाँ खट्टी और कच्ची थीं। स्पू ६२०० फुटकी ऊँचाई पर बसा है, अर्थात् उतनी ही ऊँचाई पर जितनीकि चिनी, किन्तु कहते हैं, यह चिनीसे गरम है। यहाँ हवा कम चलती अथवा चिनीके पासके सदा हिमाच्छादित शिखरों जैसे पर्वतका अभाव यहाँ की सर्दीको कम करता है। इधर-उधर घूमकर देखने पर कोई आदमी मिला, जिसे मैंने चौकीदार को बुलानेके लिये भेज दिया, और स्वयं एक-दो कच्ची चूलियोंसे मुँह खट्टा करके कुर्सीपर बैठ गया।

स्पूका डाकबँगला १६१३ में बना था अर्थात् उस समय, जब कि अभी यहाँ तक सड़क आनेमें १४ वर्षकी देर थी। बँगलेसे ३५-३६ वर्ष पहिले यहाँ मोरावियन मिश्री रेस्लप-दम्पती पहुँच गये थे। यही दोनों यहाँ नहीं मरे, बल्कि आधे दर्जन दूसरे यूरोपीय मिश्नरी भी यहीं मरे। उनकी अस्तंगतसी समाधियोंके गाथिक अक्षरवाले पत्थर अब भी घरके हातेमें दिखलाई पड़ते हैं, लेकिन वह अब गाँवके नंबरदारकी संपत्ति है। नजाने कब यह उत्कीर्ण पाषाण उसी तरह लुप्त हो जायेंगे, जिस तरह कि कभी यहाँ खड़ा गिरजा। क्या मोरावियन मिश्नरियोंकी चौमुखी सेवाओंका यही प्रतिफल होना चाहिये, कि उनका कोई पदचिह्न तक यहाँ न रहने पावे? उन्होंने यहाँ स्कूल खोला था, जिसमें पढ़े कुछ व्यक्ति अब भी यहाँ मौजूद हैं—यहाँका चौकीदार नमग्यल छेरिङ् एक हैं। वह शिक्षाके साथ बहुत कर्तव्य-परायण व्यक्ति हैं। बहुत कम डाकबंगले इतनी अच्छी हालतमें दिखलाई पड़ते हैं। मिशन १६१३ तक रहा, तब तक यहाँ डाकघर भी रहा, और उन्हींकी उपस्थितिने बल्कि यहाँ डौंबँगला बनवानेकी प्रेरणा दी। वहाँके मिश्नरी जर्मन थे, आज भी लोगोंके पास उनकी कोई-कोई पुस्तकें मौजूद हैं। पादरी मार्कस् एक कुशल बढ़ई थे। उन्होंने बहुतसे आदमियोंको बढ़ईका काम सिखलाया। चौकीदार नमग्यल छेरिङ्ने कृतज्ञता प्रदर्शन करते हुये कहा—उनकी कृपासे हमारे गाँवमें बढ़ईके काम जानने वालोंकी कमी नहीं है। उन्होंने स्वेटर और मोजा बनाना सिखलाया, जो आज भी चल रहा है। उन्होंने ही सेब-नासपाती आदि फलोंके बाग लगाये। यद्यपि मेवा-बागोंको लोगोंने और आगे नहीं बढ़ाया, किन्तु अब भी उनके लगाये वृक्ष यहाँ मौजूद हैं, विशेषकर मार्कस्के बनाये विशाल बँगलेके आँगनके सेब बहुत स्वादिष्ट बतलाये जाते हैं। मार्कस्का बँगला राज्यकी संपत्ति है, अर्थात् हिमाचल-सरकार उसकी मालिक है, किन्तु वह बहुत ही उपेक्षित अवस्थामें है, और अपनी सुपुष्ट स्थूल धरनों तथा सुदृढ़ दीवारोंके भरोसे खड़ा है। किवाड़ों और खिड़कियोंके शीशे अधिकांश टूट चुके हैं। फर्श पर बिछे चौकोर पत्थर भी उखड़नेवाले हैं। मार्कस्के बँगलेके बड़े-बड़े कमरोंमें एक मिडिल स्कूल खोला जा सकता है जिसकी अदूर भविष्यमें आवश्यकता पड़ेगी, किन्तु तब तक शायद यह बंगला नष्टप्राय हो जायेगा, और फिर सरकार बीस हजार लगा कर भी

ऐसा बँगला नहीं बना सकेगी। कृतज्ञता और कृतवेदिता मानवके उत्तम गुण हैं। मोरावियन मिश्नरियोंने बहुत प्रेमसे इस पिछड़े हुये गाँवमें दो पीढ़ीतक काम किया, इसलिये उनकी मधुर-स्मृतिको कायम रखना भी हमारा कर्तव्य है। सोचिये तो, सुदूर जर्मनी से ये लोग यहाँ आकर अपना सारा जीवन दे, रेत पर पदचिन्हकी भाँति मिट गये।

चौकीदार नम्‌ग्यल् छेरिङ्के आनेमें थोड़ी ही देर हुई। उन्होंने छाछ भी पैदा किया, और फिर और चीजोंके जुटानेमें लग गये। मेट आया, और ठाडू (बेगार नौकर) ले आया। हलमंदी (कोलीमुखिया) ईंधनका प्रबन्ध करने गये—हलमंदी नेत्रहीन था, किन्तु रास्ते पर अन्दाजसे चल-फिर सकता था। उसके भाई श्री थरछिन् को पदरियोंने पढ़ाकर योग्य बनाया, और वह आज कई वर्षोंसे भोटभाषा का एक मात्र समाचारपत्र कलिम्पोङ्से निकाल रहे हैं।

जान पड़ता है, श्यासोमें बेगारू उतनी देर करके नहीं आये। उनसे सामान उठवाकर चपरासीको साथ छोड़ पुण्यसागर जल्दीजल्दी चल पड़े और मेरे स्पू पहुँचनेसे ढाई-तीन घंटे बाद आ पहुँचे। नम्‌ग्यल छेरिङ्—विजय दीर्घायु—चपरासीका पूरा नाम था, जिसे संक्षिप्त करके हम विजय या नम्‌ग्यल कह सकते हैं। विजयकी मातृभाषा भोटिया है, अतः भोटिया तो पढ़-लिख सकते ही हैं, साथ ही वह उर्दू भी जानते हैं। साठसे ऊपरकी अवस्था होनेसे वह उर्दूके युगमें पैदा हुये थे। वह बौद्ध ही नहीं बौद्ध-लामा भी हैं। डुक्‌पा सम्प्रदायवाले गृहस्थ लामाको भिक्षु लामासे कम नहीं मानते। यही नहीं उनके चोटीके लामा भी रिग-जिन्-मा (विद्याधरी) या छग्-ग्या-छेन्-मो (महामुद्रा) के रुपमें स्त्री रत्न-का परिग्रह सिद्धिके लिये अनिवार्य समझते हैं। पाठक इसे भोटियोंकी घृणित प्रथा न समझ लें, इसलिये यह कह देना आवश्यक है; कि इसकी बुनियाद भारतमें सरहपा (आठवीं सदी), शबरपा, घंटापा, जलंधरपा (आदिनाथ)। मीनपा, गोरखपा आदि चौरासी सिद्धोंने रखी, जो सभी स्थाई या अस्थाई रूपमें "महामुदरी" के उपासक थे। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि महामुद्राका महात्म्य शाक्त हिन्दुओंमें भी कम नहीं है। विजय स्पूके शिक्षित और बहुश्रुत व्यक्ति हैं। उन्होंने अपने केशोंको सचमुच धूप में नहीं सुखाये—वस्तुतः उनके बाल अभी बहुत थोड़े ही सफेद हैं, जो मंगोल रक्तकी

अधिकताके परिचायक हैं। उनका बचपन मोराविअन पादरियोंके ओजके जमाने में बीता। उस वक्त तो अवश्य ही उन्हें इन छीपा (नास्तिकों) की बहुतसी बातें बुरी लगती रही होंगी; बल्कि अब भी वह विचार सर्वथा बदले नहीं हैं। वह जानते थे, कि मैं बौद्ध हूँ; इसलिये पहिले बड़े उत्साहसे कह रहे थे—पादरियोंने कुछ कोली-लोहार-घर ईसाई बना लिये थे, जिन्हें हमने फिर बौद्ध बना लिया और उनको उनकी जातिमें मिला दिया। एक वालती जातिका मुसल्मान ईसाई हो गया था, उसकी जाति का कोई न होनेसे वह अब भी अलग है, किन्तु रखता है हमारे ही विचारों को। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि मैं पक्षपातांध बौद्ध नहीं हूँ, मैं मोराविअन पादरियोंके शिक्षा-ज्ञान-शिल्प-प्रसार कार्यका प्रशंसक हूँ, तो उन्होंने कहनेके ढंगको बदल दिया, और कभी-कभी तो वह भी उनके कार्यों और तपस्याओं पर विचार करते आर्द्र हो जाते।

हम लोग दो घंटा दिन रहते गाँवकी कुछ दर्शनीय चीजोंको देखने निकले। लोचवा-ल्हखङ् नज़दीक ही था। लोचवा—भाषान्तरकारसे—अभिप्राय महान् भाषान्तरकार रत्नभद्र (रिन्-छेन्-ज़ङ्-पो, ग्यारहवीं सदी) से है। इस ल्हाखङ् (मंदिर) को उसीका बनवाया बतलाया जाता है। मूर्तियाँ पुरानी हैं, इसमें संदेह नहीं। लोचवाकी जन्मभूमि शिपकी के पास यहाँसे दो दिनके ही रास्ते पर है। उसका निवास अधिकतर थो-लिङ् और स्पू-रङ् में रहा, जो भी तिब्बत-के इसी अंचलमें हैं। लोचवाका कार्य-क्षेत्र भी इधरही रहा। स्पू एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसे भोटके लोग कभी-कभी खुन्-फुग्—कनौरका अचल या मुल—भी कहते हैं। यहाँसे लोचवा कई बार गुजरा—काश्मीर पढ़ने इसी रास्ते गया होगा, लौटा भी इसी रास्ते, दुबारा काश्मीर यात्रा भी इसी रास्ते हुई होगी। इसीलिये यहाँ लोचवाने मंदिर बनवा दिया हो, या लोगोंके बनवाये मंदिरकी प्रतिष्ठा कर दी हो, यह अविश्वसनीय नहीं है। मंदिर छोटा सा है, दीवारों और छतोंको तो हर्गिज लोचवाकालीन नहीं कहा जा सकता। मंदिरमें अपने दोनों प्रधान शिष्यों सारिपुत्र और मौद्गल्यायनके साथ शाक्य मुनिकी मृत्तिका-मूर्ति है। थोड़ा नीचे हटकर रखे बोधि-सत्व अवलोकितेश्वर (मिट्टी) और सामने दूसरी ओर एक काष्ठकी बोधिसत्व मूर्ति है। अवलोमितेश्वरको लोगोंने माँ तारा बना रखा है। मैंने कहा—देखो यह स्पष्ट अवलोकितेश्वरी मूर्ति है, इसमें स्तन

नहीं, और बाँये वक्षस्थलपर मृग-लांछन है। विजयने देखकर तुरन्त स्वीकार किया—मृगमुख अवलोकितेश्वरका लांछन जो वहाँ मौजूद था। अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता (भोट-भाषा) की एक हस्तलिखितप्रति भी यहाँ है, जिसके पहिलेके पृष्ठोंमें कई चित्र अंकित थे, जिनमें कुछ भारतीय कलमके मालूम होते हैं। उसके लिये ग्यारहवीं-बारहवीं सदीके होनेकी आवश्यकता नहीं, इधरके पहाड़ोंमें भारतीय कलम बहुत पीछे तक प्रचलित रहीं।

मोरावियन मिशनके घरों और अवशेषोंको देखते गाँवके फोरङ् गङ्-खा टोले (मुख्य-ग्राम) से बाहर खेतोंमें निकले। वहाँ समतल भूमिपर मंदिर देखकर पूँछा। मालूम हुआ, यहाँ दोङ्जुर अर्थात् करोड़ों मंत्रोंसे भरी घुमानेवाली ढोल है। मानी या दोङ्जुराकी प्रथा तिब्बतमें पन्द्रहवीं सदीके बाद आरम्भ हुई, और यहाँ तो और भी पीछे; किन्तु समतलभूमि और केन्द्रीय स्थान पर इस मंदिरकी स्थिति कह रही थी, कि यहाँ पहिले भी जरूर पुराना मंदिर रहा होगा। "नहीं नया है" कहकर मना करते रहने पर भी मैं मंदिरमें गया। गर्भ-मंदिरमें एक बड़ी मानी थी, जिसे श्री थर्छिन्के बड़े भाई बड़ी भक्तिसे घुमा रहे थे। कह रहे थे—बूढ़ा हुआ, आँखें चली गईं, अब इसी तरह कुछ धर्म करते दिन बिता रहा हूँ। विजय लामाने कहा—"कहा न, यहाँ सिर्फ मानी है"। मुझे अब भी विश्वास नहीं हुआ। मैं मानीके पीछे गया। वहाँ दो बोधिसत्व मूर्तियाँ थीं। रिक्त स्थान भी था, जहाँ तीसरी भी मूर्ति रही होगी। मूर्तिकी बनावट पुरानी थी। मूलतः यह मंदिर बोधिसत्व शाक्यमुनिका था अथवा रिग-सुम-गोन्पा (बोधिसत्त्वत्रय अवलोकितेश्वर, मंजुश्री और वज्रपाणि) का। पीछे मानीका मूल्य लामाओंके बाजारमें बढ़ा (आखिर यहाँ के एक बार ढोल घुमानेसे उसमें लिख-कर रखे अरबों मंत्रोंके जापका पुण्य हो जाता है) इसलिये मूल प्रतिमाओंको पीछे डालकर आगे बड़ी मानी खड़ी कर दी गई। विजयको जरूर विश्वास हुआ होगा, कि उन्होंने अपने बाल धूपमें ही सुखाये हैं, क्योंकि वह भी लोकधारणा के शिकार होकर इसी गाँवमें साठ सालके रहते भी न लोचवा-ल्हखङ्के अवलोकितेश्वरको पहचान सके, न दोङ्जुर ल्हखङ्की मूल मूर्तियोंका पता पा सके थे। यहाँ की मूर्तियाँ पुरानी हैं; पर कलाकी दृष्टिसे उत्कृष्ट नहीं हैं।

स्पूको ग्यारहवीं सदी तक पहुँचाने के लिये यह दोनों ल्हाखङ् पर्याप्त हैं।

किन्तु स्पू उससे भी पुराना है—यहाँ भी लिप्पाकी भाँति बर्तनोंवाली मृतक-समाधियाँ बहुत जगह निकलती हैं। अकस्मात् खोदाई करते समय निकलनेवाली कब्रोंको फर्माइशी तौरसे निकला नहीं जा सकता। बहुत पूछ-ताँछ करनेपर एक दूसरे डुक्पा लामाने कब्रसे निकले एक मिट्टीके बर्तनको लाकर रख दिया। वह बनावटमें लिप्पा जैसा सुन्दर नहीं है।

अगले दिन (२० जून) को गाँवके कुछ और स्थानोंमें घूमनेका निश्चय हुआ। स्पू गाँव कई टोलोंमें बसा हुआ है। डाकबँगलेके ऊपर चोमोलिङ् (भट्टा-रिका या रानी द्वीप) है। सबसे ऊपर पहाड़ी पर सम्-तन् लिङ् है, जहाँ डुक्पा गुम्बा है। मुख्य ग्राम फोरङ्-गङ्-खा है। उससे नीचे दोङ्-जुर मंदिरसे आगे वर-छों है, और सबसे नीचे वाला टोला स्तोद्-छो। इनके अतिरिक्त एक टोला खड्डुके पार डाकबँगले आनेवाली सड़कके नीचे है। हम पहिले सन्-तन्-लिङ् (समाधि-द्वीप) में गये। यहाँ डुक्पा सम्प्रदायकी पुरानी गुम्बा बतलाई गई थी, इसलिये पुरानी चीज़ देखनेके प्रलोभनमें गये। अब यह गुम्बा (मठ) नहीं घर है। पिछले साधुने व्याह कर लिया, उसके कच्चे-बच्चे अब यहाँ रहते हैं। मठोंके साधुओं (हिन्दू, बौद्ध, ईसाई चाहे कोई भी धर्मके हों) के आचरण यौन संबंध-नियंत्रणके कारण जितने कुत्सित होते हैं, उसे देखकर ख्याल आता है, परिव्राजकताके साथ यौन-स्वतंत्रता दे दी जाये; किन्तु जब ऐसा होनेसे बच्चे-कच्चेवाले मठोंकी दुर्दशा देखनेमें आती हैं, तो वह औषधि आकर्षक नहीं मालूम होती। तिब्बतने तो रालुङ् (ग्याची—ल्हासा मार्गके पास) मठमें यौन-स्वातंत्र्यका प्रयोग करके देख लिया, वह सफल नहीं रहा। रालुङ्के परिव्राजकको स्वतंत्रता मिली। संतान पैदा होने लगी। प्रत्येक लड़का परिव्राजक और प्रत्येक लड़की परिव्राजिका बना दी जाने लगी संख्या बढ़ते-बढ़ते इन परिव्राजिकाओंका एक गाँव बस गया। मठको संपत्ति-खेत-जीविकाकेलिये अपर्याप्त हो गये। साधारण गृहस्थोंकेलिये रालुङ्का आकर्षण घट गया और पूजाकी आमदनी बन्द हो गई। हाँ, यौन-स्वातन्त्र्यके साथ रालुङ्वालोंने यदि संताननिग्रहका अनिवार्य नियम बनाया होता, तो उनकी संपत्ति अपर्याप्त न होने पाती, और नहीं पूजा की आमदनी बन्द होती।

हम डुक्पा-गुम्बामें पहुँचे। घरमें लड़के-बच्चे थे, छतपर एक कोठरी थी,

यही मंदिरका काम दे रही थी। मंदिर या गुम्बाके नवीन होनेका यह अर्थ नहीं, कि मूर्तियाँ भी नवीन हों। यहाँ कुछ मूर्तियाँ नातिनवीन नातिप्राचीन थीं। ऐसी पीतलकी दो मूर्तियाँ—गोम्बो (देवता), गोम्बो ल्हर्जे (मिला-रेस्पाके शिष्या)—और लकड़ीकी बुद्ध और दूसरी दो मूर्तियोंके फोटो लिये। खच्चरपर चढ़ी एक लकड़ीकी पल्दन-ल्हामोकी मूर्ति भी अच्छी थी। गुम्बासे उतरकर खेतोंमें होते गाँवमें पहुँचे। पट्टियों और बनियानोंके बारेमें कहने पर कितनीही दिखाई गयीं। पादरियोंकी सिखायी स्त्रियोंने बनियान बुननेको आगे बढ़ाया है। यह उनके लिये आसान है। यहाँके लोगों-को चलते-चलते सूत कातनेका अभ्यास तो पहिले ही से था, अब वह चलते-चलते बनियान भी बुन लेते हैं।

गाँवसे निकल दोङ्-जुर मंदिर होते वर्-छो टोलेमें गये। यहाँ भूतपूर्व-नंबरदार देवीचन्दका घर है। रुपयेके बारेमें गोलमाल करनेके इल्जाममें नंबर-दारीसे अलग कर दिये गये हैं। आदमी समझदार हैं। उन्होंने बतलाया था, कि उनके पास पुरानी मूर्तियाँ और पुस्तकें हैं। मैं देखना चाहता था, यद्यपि उनकी शतप्रतिशत बातपर विश्वास करना संभव नहीं था। तूचीके साथ वह पश्चिमी तिब्बतमें घूमे थे। कह रहे थे—तूचीको वहाँ बहुतसे प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थ मिले थे, जिनके चित्रोंको निकालकर भार कम करनेके ख्यालसे उन्होंने ग्रन्थोंको जला दिया। मुझे इस बातपर विश्वास नहीं होता था, चाहे ग्रन्थ कितना ही सुलभ हो, किन्तु प्राचीन प्रतिका मूल्य अपना अलग होता है। देवीचन्द मुझे ढूँढ़ने बँगले गये हुये थे, इसलिए उनकी चीजें नहीं देख सका। उनके घरके पासही बस्तीके बीच एक खाली जगह थी, जहाँ कभी दोन्-डुब फोटाङ् (सिद्धार्थ-प्रासाद) नामका दोतल्ला दुर्ग था। इमारत पुरानी थी, मरम्मत करानी पड़ती थी। किसी तहसीलदारने कुछ साल पहिले उसे तुड़वाकर उसके पत्थरोंसे फोरङ्-गङ् लामें एक पांथशाला बनवा दी।

गाँवके लोगोंसे बात करनेका यहाँ खुला अवसर था। स्त्री-पुरुष किसीके साथ बात करनेमें भाषाकी कठिनाई नहीं थी। हम यहाँ भारतके सबसे पिछड़े पहाड़ी भागमें थे। यहाँके लोगोंको अभी पता नहीं, कि अब अँगरेजोंका राज्य नहीं रहा। उनके लिये रामपुरका राजा भी अभी ज्यों का त्यों है—बूढ़ा राजा मर

गया, नया राजा लड़का है। हिमाचल प्रदेशका इन्हें क्या पता ? वह पूछते—जब अँगरेजका राज्य नहीं है, तो अँगरेज राजाकी तस्वीर नोट पर क्यों है ? नोट से उन्हें हर वक्त काम पड़ता है, इसलिये वह जार्ज-बादशाहकी तस्वीर देखते रहते हैं। यह भ्रम तो चिनीके पढ़ेलिखे लिपिकों (क्लर्कों) को भी हो गया, जब ऊपरसे बादशाहके जन्मदिवसके मनानेकी हिदायत आयी। वस्तुतः इंगलैण्ड का बादशाह हिन्दुस्तानके लिये इंगलैण्डके शासनका प्रतीक है, इस भावको बारीक व्याख्याओंसे नहीं हटाया जा सकता। यहाँ चार-पाँच दिनके रास्ते पर गर्तोकमें गर्मियोंमें भारत सरकारका व्यापार दूत जाया करता है, जिसे "बृटिश ट्रेड एजंट" कहा जाता रहा। विजय उसे आज भी उसी नामसे पुकारते हैं।

मिश्नरियोंके रहनेके समय यहाँ डाकघर था। उन्होंने स्कूल भी खोला था, जिसका मकान अब भी मौजूद है। उनके जाने पर दोनों बन्द हो गये। कुछ साल हुये रियासतने स्कूल फिरसे खोला, किंतु विद्यार्थियोंकी संख्या कम होनेकी शिकायत पर उसे तोड़ दिया गया। आज हजारके करीबकी बस्तीमें कोई स्कूल नहीं। लड़के क्यों कम हुये, इसपर विचार नहीं किया गया, और स्कूल झट तोड़ दिया गया। यहाँके लोगोंकी भाषा भोटिया (तिब्बती) है, जिसमें हिन्दीके शब्द नहीं हैं। शुरू ही से हिन्दी आरंभ करनेपर उनकेलिये बड़ी कठिनाई हो जाती है, ऊपरसे पिछड़ेपनेके कारण यह लोग विद्याके महत्वको नहीं समझते। जब तक इन बातोंका ध्यान नहीं रखा जायगा, स्कूल यहाँ सफल नहीं हो सकते। यहाँके स्कूलोंकी पहिली दोनों श्रेणियोंमें केवल तिब्बती भाषामें पढ़ाई होनी चाहिये। धर्मके ख्यालसे हनूमान चालीसाकी तरहकी पुस्तकें यह लोग भी भोट-भाषामें भूत भगाने या पुण्य कमानेके लिये पढ़ते हैं। यह तिब्बती पढ़ना चाहेंगे, अपनी भाषा होनेसे सरलताके कारण भी वह पहिले दो सालकी सबसे कड़ी मञ्जिलको पार कर जायेंगे। फिर तीसरी श्रेणीमें आप तिब्बती भाषाके साथ हिन्दी रख दीजिये, काम बन जायेगा। मैंने चीफ् कमिश्नर (श्री एन० सी० मेहता) को इसके बारेमें लिखा था, और उन्होंने इसके औचित्यको स्वीकार किया, किन्तु अभी न जाने कब यहाँ स्कूल खुलेगा।

यहाँके स्कूल तोड़कर हङ् गोमें ले गये। वह भी तिब्बती-भाषा-भाषी इलाके (हङ-रङ) में है। इन्सपेक्टर साहब कह रहे थे, वहाँ वाले स्कूल नहीं चाहते।

फिर लड़के कहाँसे आयेंगे। तोड़ दीजिये उसे भी। वह तो पढ़नेकी कठिनाई या अपनी बेवकूफीसे स्कूल नहीं चाहते, और शूवा वाले अपने मतलबसे चाहते हैं, कि ख-बा (भोटिये) अनपढ़ मूर्खजपाट बने रहें। हङ्रङ् का इलाका स्पू—नम्ग्या और सुङ्नमके पहाड़ोंके उस पार स्पिती तक फैला हुआ है। यही नहीं, स्पू-नम्ग्यासे हङ्रङ् स्पिती होते लाहुल, लदाख और जांस्कर तकका सारा भूभाग तिब्बती-भाषा-भाषी है, जिसमें जांस्कर और लदाख तो काश्मीरके अंदर हैं और उनकी समस्या दूसरी है। किन्तु बाकीको पंजाब और हिमाचलमें बांटने का क्या मतलब? खैर, अभी हङ् रङ् की बात कह रहा था। भाषामें स्पू और हङ्रङ् एक है, किन्तु स्पू वालोंको आधी शताब्दी तक मोराविय्न मिश्नरियोंके संपर्कमें आनेका मौका मिला, फिर यह तिब्बतके बणिक्-पथपर है, इस तरह यहाँके लोग उतने पिछड़े नहीं, जितनेकि हङ्रङ् वाले।

हङ्रङ्के गाँव बिलकुल अलग-अलग हैं। वहाँ अज्ञान और भोलापन बहुत है। टीका रघुनाथ सिंहने १८८७ ई० में बुशहर राज्यकी सर्वे कराई। देखा यदि, हङ्रङ् वालोंकी रक्षा नहीं की गई, तो शूवावाले (सुङ्नम्-लिप्पा आदिके किन्नर) उनके सारे खेतोंको खरीद लेंगे। इन लोगोंका तरीका था कर्जा देना—विशेषकर अनाजके रूपमें—और उसका हरसाल ड्योढ़ा-सवाई करके मूल बनाते आगे बढ़ाना, फिर खेत खरीद लेना। खेत खरीदनेका यही साबूत था, कि ऋणी अपने महाजनके सिरमें तेल लगा दे। टीका रघुनाथने कानून बना दिया, कि सर्वेके बादसे हङ्रङ्में खेतोंकी बिक्री नहीं हो सकती। आज आधी सदी हो गई इस नियमको बने, किन्तु इससे वस्तुतः हङ्रङ् वालों-की विपदा नहीं टली। हाँ, शूवा वाले खेत खरीद नहीं सके, किन्तु सारे अच्छे-अच्छे खेत बन्धकके रूपमें अब शूवावालोंके हाथोंमें हैं। वह खेत रेहन लिखवाकर अनाजका मनहुँडा करके उन्हींको जोतनेको दे देते हैं। जहाँ किन्नरके दूसरे भागोंमें प्रति (कच्चा) बीघा मनहुँडा दो मन होता है, वहाँ हङ्रङ् वाले अपने महाजनको ६ मन बीघा देते हैं। शूवाके महाजन तिब्बतके व्यापारी भी हैं। वह इस अनाजमें से कुछ तिब्बतमें ऊन खरीदनेके लिये ले जाते हैं—पहाड़के परलेपार तिब्बत है, और कुछ वह यहीं डेवढ़ा-सवाई पर दे देते हैं। पिछले पचास सालके कागजोंको लेकर देखा जाये, तो मालूम पड़ेगा, किस तरह इन

महाजनोंने हङ्रङ् वालोंको लूटा है। रेहनका यहाँ दस्तावेज नहीं होता, उसे तहसीलदार ऋणीसे पूछकर कागज पर लिख देते हैं। हङ्रङ् वाले नये भी खेत बनाते रहे हैं, किन्तु अन्तमें सबको महाजनके हाथमें रेहन करनेके सिवाय चारा नहीं। कर्जपर जीना फिर भविष्य अंधकारपूर्ण नहीं होगा तो क्या होगा? हिमाचल प्रदेश बन गया है, इसका पता हङ्रङ् वालोंको नहीं है? हाँ, उनके महाजन अभीसे ऊपर कोशिश लगा रहे हैं, कि हङ्रङ् में भी जमीनकी बिक्रीका अधिकार होना चाहिये; क्योंकि वह तो अब रियासत नहीं भारतका अभिन्न अंग है। ये खून चूसनेवाले महाजन एक ओर तो हिमाचल सरकार पर प्रभाव डाल रहे हैं—धनही नहीं उनमें शिक्षा भी अधिक है, इसलिये हर जगह पहुँच सकते हैं। दूसरी ओर वह चाहते हैं, कि हङ्रङ्के एक ही गाँव हङ्गोंमें जो स्कूल है, वह भी टूट जाये; जिसमें उनके भुक्कड़ दास खुलकर साँस न लेने पावें। शूवाके सूदखोरोंके सहभागी कुछ हङ्रङ्यिे भी हैं। क्या भारतमें प्रजाके राज्यका यही अर्थ होता है, जो हङ्रङ्में देखा जा रहा है?

भारतके अत्यन्त पिछड़े इस इलाकेकेलिये करना क्या चाहिये? शिक्षाके बारेमें मैं कह चुका—निम्न प्रारम्भिक शिक्षा केवल भोटिया भाषामें हो, ऊपर हिन्दी भी सम्मिलित कर दी जाये। सरकारको जान लेना चाहिये, कि महाजन हङ्रङ्में शिक्षा-प्रसारको सफल नहीं होने देंगे, और इसीलिये महाजनोंके पिछुओंको हङ्रङ्में अध्यापक नहीं बनना चाहिये। तिब्बती भाषाकी पाठ्य-पुस्तकोंकी कोई कठिनाई नहीं है। मेरी बनाई वर्णमाला और चार पाठ्य-पुस्तकें तथा व्याकरण लदाखमें पढ़ायी जाती हैं, उनसे यहाँ भी काम लिया जा सकता है, या उसी ढंग पर दूसरी पुस्तकें तैय्यार की जा सकती हैं।

दूसरी समस्या खेत-बन्धकी की है। इसके लिये सरकारको एक ऐसे विशेष अधिकारीको जाँच करनेकेलिये नियुक्त करना चाहिये, जिसपर महाजन प्रभाव न डाल सकें। पहिले वह रामपुरमें जा पिछले पचास सालके कागजोंको देखकर कर्जकी रकम और वृद्धिके आँकड़े जमा करें। फिर हङ्रङ् में जाकर लोगोंसे पूछ-पूछकर पता लगायें, कि कर्ज किस तरह बढ़ा और कैसे-कैसे खेत लोगोंके हाथसे निकलते गये। तहसीलदार मंगतरामजी कह रहे थे 'उनकी अवस्था देखकर दया आती है, भूमि अनाजके लिये अत्यन्त उर्वर है, किन्तु वह भूखे

पेट, फटे चीथड़ोंमें घूमते-फिरते हैं, इसेभी वह महाजनकी दया समझते हैं।' अन्तमें इस खूनचुसाईका अन्त करना ही होगा, जिसकेलिये बेहतर है, कि दससाल पहिलेके बन्धकोंको उनको आजतक मिल चुके धनमें चुकता समझ लिया जाये, किन्तु हङ्रङ् नहीं हिमाचलके दूसरे इलाकोंके मनहँडे दर पर, सो भी फसल होने पर ही। सरकारको इस ओर शीघ्र पग उठाना चाहिये, नहीं तो बाहरकी हवा उधर भी लगेगी, और वही झगड़े यहाँ भी पैदा होंगे, जो पासमें विदेशी राज्य (तिब्बत) होनेसे बहुत क्रूर रूप धारण करेंगे।

बाहरकी हवा नहीं, भीतरकी हवा भी जल्दी असर करेगी। दो मास पहिले २१ सालसे अधिक आयुवाले स्त्री-पुरुषोंका नाम लिखकर मतदाता सूची तैयार करनेकेलिये ऊपरसे हुकुम आया था। तहसीलदारको एक-दो बातें साफ मालूम नहीं हुई। आखिर रियासतमें निर्वाचन और मतदाता की बात कौन समझता है ? खास करके अपराधके कारण मताधिकारसे वंचित होनेकी बात उन्हें नहीं समझमें आई। उन्होंने रामपुर लिखा, किन्तु वहाँसे कोई उत्तर ही नहीं आया, अस्पष्ट शब्दावलीके स्पष्ट करनेकी बाततो अलग। उन्होंने फिर और फिर लिखा, किन्तु कोई जवाब नहीं। आज्ञामें लिखा था, हर पक्षमें सूची बनानेकी प्रगतिकी सूचना देते रहो। मैंने एक दिन पूछा—आपके यहाँ मतदाता-सूची बन रही है या नहीं ? उन्होंने सारी बात बतलाई। मैंने कहा—आपकी चिट्ठियाँ रामपुरमें सड़ती होंगी, क्योंकि उनके लिये भी यह "कानूनी प्वाइन्ट" समझना महाकठिन होगा। उधर हिमाचल-सरकार समझती होगी, कि सब जगह सूची बन रही है। निश्चित तिथिके करीब पूछा जायगा। रामपुरवाले आज्ञा भेज देनेकी बात कहके छुट्टी लेलेंगे। आप नाहक अयोग्य साबित होंगे। अपराधके कारण मताधिकारसे वंचित करनेका काम न्यायालयका है। आपके यहाँ न किसी-को मताधिकार था, न किसी को न्यायालयने उससे वंचित किया। आप हर गाँवमें अगले साल २१ वर्षसे अधिकके होनेवाले स्त्री-पुरुषोंकी सूची बनवा डालिये, बस पागल और उन आदमियोंका नाम न लिखवाइये, जो गाँवके निवासी नहीं हैं।" खैर, दो मास तक तहसीलमें सड़नेके बाद आज्ञापत्र कार्यरूपमें परिणत होनेके लिये पटवारियों और नंबरदारोंके पास भेजा गया। अब चिनगारी खुली हवामें आई, देखिये क्या गुल खिलता है ! कहीं-कहीं लालबुझक्कड़ और

कहीं-कहीं खूनचूसक समझायेंगे—हुम् ! २१ सालसे बेशी के पुरुष ? पलटनमें भरती करके लड़ाईपर भेजनेके लिये। और २१ सालसे अधिककी स्त्रियाँ ? "उन्हें भी छीन ले जायेंगे, हमारे यहाँ लड़की ५०) रुपयेमें बिकती (ब्याही जाती) है, उसके सौ तो नीचे जानेपर आसानीसे लग सकते हैं।" फिर कोलाहल, और देवताओंके पास त्राहि-त्राहि। किंतु जनतंत्री भारत तो डरकर इसे छोड़ नहीं सकता। समझना ही पड़ेगा, कि अब शासक भगवानकी ओरसे हमारे ऊपर शासन करनेकेलिये नहीं आयेंगे। पंचायती राज्यके शासक पंच होते हैं, जिन्हें बनाना जनताका काम है। लोगोंको पंच चुनना है इसलिये यह सूची-बंधन। सहस्राब्दियोंसे बन्द अँधेरी कोठरियोंको प्रकाशके आनेमें कौन रोक सकता है ? फिर वह अपने खूनचूसकोंको समझेंगे, और उनके बोझको सहन नहीं कर सकेंगे। इसलिये बेहतर यही है, कि पीढ़ियोंके पापको तुरंत काट दिया जाये।

*　　　*　　　*

नम्ग्या—पहिले तो जान पड़ता था, शायद भारतके अंतिम गाँव नम्ग्यामें जानेका मौका न मिले। घोड़ा मिलनेमें भी दिक्कत हो रही थी, किन्तु हमारे संकल्पमें तहसीदार साहेबका पत्र सहायक हो गया उन्होंने नबंरदारको घोड़ेका प्रबंध करनेकी ताकीद की थी। तहसीलदार साहेबने अपने तजर्बेकार बूढ़े चपरासी देबूरामको भेजा, साथही में डाक भी आई। डाकमें प्रत्येक पत्रका उत्तर देना कहाँ संभव है, और हिंदी भाषा-भाषीका पत्र यदि अंगरेजीमें आया, तो मेरा काम आसान हो जाता है, मैं उत्तर देनेसे बच जाता हूँ।

अगले दिन (२८ जून) को हमने नम्ग्याका रास्ता लिया। नम्ग्या यहाँसे आठ मील (शिमलासे १६४वें मील) पर है। डेढ़ मील बँगलेवाली सड़कसे होकर हम फिर मुख्य सड़कपर आ गये। पहाड़ वही नंगे मादरज़ाद, हाँ "समंदर" के परलेपार कहीं एकाध पञ्चवृक्ष कृशगात्र से दिखाई पड़ते थे। ढाई-तीन मील तक रास्ता अधिकतर नीचेकी ओर चला। आगे १६५ फुट लम्बा लोहेका झूला-पुल मिला। पुलपार डुब्लिङ् (सिद्ध द्वीप) गाँवके खेत थे, यद्यपि गाँव वहाँसे काफी ऊपर है। डुबलिंगसे और (नदीके बहावकी ओर) हटकर डबलिङ् गाँव है, इसलिये साधारण तौरसे लोग इसे डब्लिङ्-डुब्लिङ् कह दिया करते हैं।

नम्ग्यामें डुबलिङके किसी उपासक (भगत) केलिये लिखी गई एक पुस्तक देखी, जिसमें सतलजके लिये लङ्-छेन-छू अर्थात् गज (मुख) नदी लिखा था। ऋषियोंके भूगोलके अनुसार गंधमादन और हिमवान पर्वतोंके बीच अनवतप्तसर (मानसरोवर) है, जिसके चारों ओर चार प्रकारके मुख हैं, जिनमेंसे गंगा गोमुखसे निकलती है, गजमुखसे भी एक नदी निकलती है, जो यही सतलुज है।

पुलसे आगे कुछ दूरतक साधारण रास्ता है, फिर अधिकतर चढ़ाई आती है, जिसका अंत उस मोड़पर होता है, जहाँ पहुँचने पर खूब गाँव दिखलाई पड़ता है खबसे मील-डेढ़मीलपर नम्ग्या आता है। नदी इसपारके चारों गाँव छोटे-छोटे हैं। डुब- लिङ्-डबलिङ् २५ घर, खब् ८ घर, नम्ग्या ३० घर, और नम्ग्यासे पार टशीगङ् ६ घरका नम्ग्या असाधारण हरा-भरा गाँव जान पड़ा। यह इसके खेतोंकी उर्बरता नंगे जवोंके बड़े-बड़े पौधोंसे मलूम हो रही थी। डाकबंला तो चूली-अखरोटके वृक्षो में छिपा हुआ है। स्पू भी नंगे पहाड़ोके बीच खेतों और बागोंका हरा-भरा गाँव है, किन्तु नम्ग्या जैसी हरियाली वहाँ नहीं मलूम हुई। हरियाली और साफ बँगलेने इतना आकृष्ट कर लिया, कि दिल चाहता था, दो चार दिन यहीं रहा जाये। दूध, आटा मिलनेमें कोई दिक्कत नहीं थी, साग-फल अभी दुर्लभ थे। नम्ग्या ६८०० फुटकी ऊँचाई पर बसा है, इसलिये यह न समझिये कि वहाँ चूली अखरोट छोड़ और फल नहीं मिलेंगे। नम्ग्यामें बादाम १, अखरोट १२, चूली ३००, आड़ू ६, वेमी १७, पालू ८ के अतिरिक्त अंगूरकी भी २२ बेलें हैं; यदि सितम्बरमें आप पहुँचें तो, फलोंका दुख नहीं रहेगा। डब्लिङ्में भी ६ अंगूर और १० आड़ूके वृक्ष हैं। हाँ, ये गाँव मेरावियन मिशनके केन्द्र स्पूके समान फलोंके बारेमें सौभाग्यवान् नहीं है, जहाँ कि साधारण फलोंके अतिरिक्त आड़ू ३१, सेव २४, नासपाती १०, अंगूर २८ और आलूचाके १८ वृक्ष हैं। आज यहाँके मेवोंके बाहर जानेका कोई रास्ता नहीं। नम्ग्यासे शिम्ला भेजनेपर रुपया सेर भाड़ा लग जायेगा। जब हम यहाँ आधुनिक यातायातका विकास कर देंगे, तो नम्ग्यातककी भूमि मेवोंकी खान बन जायेगी।

खबके सामने परलेपारसे एक नदी आकर सतलजमें मिलती है। यही

स्पिती नदी है। वैसे स्पिती पहुँचनेके कई रास्ते हैं, लदाखसे रुपशू होकर एक, मनाली (कुल्लू) से दो जोतोंको पारकर दूसरा, वाङ्तू से भावा जोत पारकर तीसरा, लिप्पाखड्ड से जोत पार हो चौथा, श्यासोखड्डसे जोत पार हो पाँचवाँ। किन्तु यह स्पिती नदी ही है, जिसके किनारे बिना जोत पार किये स्पिती पहुँचा जा सकता है। रास्ता सालके अधिकांश भागमें खुला भी रहता है, लेकिन तब, जब कि मुँह पर के खड़े पहाड़ोंको बारूदसे तोड़कर सड़क बना दी जाये। इसे बनाना ही पड़ेगा, इसके बिना हङ्रङ् इलाकेका यातायात ठीक नहीं हो सकता। हङ्रङ् के अंतिम गाँव सुमराके परले पार तो स्पितीका पहला गाँव है। आजकल हङ्रङ् जानेकेलिये सुङ्नमसे जोत पारकर हङ्गो पहुँचा जाता है, नहीं तो रास्ता यहीं नमग्यासे है। नमग्यासे दो मील (शिमलासे १६६वें मील) पर भारत-तिब्बतकी सीमा एक सूखा नाला है। तिब्बतके व्यापारियोंके लाभकेलिये शिप्की तक (७,८ मील और आगे) सड़क बना दी गई। सीमासे इधर ही पुलसे सतलुज पार हो नमग्यासे तीन मील पर टशीगङ् है। टशीगङ् की सीधी चढ़ाई ही मैदानी आदमीकी हिम्मत तोड़ देगी, और यदि मालूम हो कि आगे महापर्वत पारकरके ही हङरङ् के प्रथम गाँव नाकोमें पहुँचा जा सकता है, तो किसको आगे बढ़नेकी हिम्मत होगी? मैं २२ साल पहिले ऊपरसे आरहा था, तो भी जब नाकोके नीचे लोहेके अकेले तारपर रस्सीके सहारे स्पिती नदी पार करनेकेलिये कहा गया, तो प्राण निकलने लगे थे, किन्तु क्या करता? पीछे लदाख लौटकर भारत आना आसान न था। कहा जाता है, एक बार स्पिती तक सड़क बनानेकेलिये कोई योजना भी बनी थी।

नमग्याके खेत और बाग खड्डके इस पार हैं, और गाँव उस पार। गाँवके नज़दीक बहुत कम खेत हैं, इसीलिये नंगे पहाड़ोंकी जड़में वह बड़ा सूखासा मालूम होता है। किन्तु, लोगोंने शताब्दियोंके तजर्बे से देख लिया है, कि वह स्थान हिमानी-पातसे सुरक्षित है। शताब्दियों नहीं सहस्राब्दियोंका तजर्बा कहना चाहिये, क्योंकि लिप्पा-कनम् आदिकी भाँति यहाँ भी बर्तनवाली कब्रें मिलती हैं।

भोजन और विश्रामके बाद बूढ़े चौकीदारके साथ हम गाँव चले। रास्तेमें ही बालकोंकी पल्टन मिली। न जाने वह किस तरफ कूच कर रही थी। स्वतंत्र भारतके अंतिम गाँवके तरुणतम नागरिकोंके फोटो लेनेके लोभको मैं संवरण नहीं

कर सका। फिर हम गाँवमें गये। आगकी बलाने इस गाँवको भी न छोड़ा, हालांकि नंगे पहाड़ोंके कारण यहाँ लकड़ीके उपयोगमें उतनी उदारता नहीं दिखलाई जा सकती। आठ-नौ सालकी बात है। उस समय सोवियत किर्गिजिस्तानके रक्तचूसक और उनकेलग्गू-भग्गू सोवियत शासनके उन्मूलनके लिये अंतिम शक्ति लगा, इस्लामिक जेहादके नामपर हजारों स्त्रीबच्चोंके खूनसे हाथ रंग, सैकड़ों गाँवकों जला कर भी अशरण हो भागे और बेरास्तेके रास्तोंसे चीनी तुर्किस्तान होते तिब्बतमें घुसे। उन्होंने तिब्बतके कई गाँवोंको लूटा, कई प्राचीन मठोंको जलाकर ज्ञार किया, फिर वह शिपकी की ओर बढ़ने लगे। नये हथियारोंसे लैस इन "कजाकों" का मुकाबला निर्धन निर्बल ग्रामीण कैसे करते? लामाकी सरकार दूर ल्हासामें थीं, जहाँ दूत दौड़ानेके लिये भी दो मासकी जरुरत थी। तिब्बतके इलाके के भी बहुतसे नरनारी भागकर नम्ग्यामें आये हुये थे—आखिर वे एक खून एक धर्मके भाई थे। कजाकोंको इस दुर्गम रास्तेसे आना कठिन मालूम हुआ। आखिर नहीं आये और लदाखकी ओर मुड़ गये। वहां काश्मीरकी सेनाको हथियार दे शरण-भिक्षा माँगी। कुछ दिनों काश्मीरमें रह अन्तमें हजारा जिलामें बसकर अब पाकिस्तानके नागरिक बन गये। उनकी संख्या हजारसे अधिक थी।

कजाकोंके प्रहारसे तो नम्ग्या बच गया, किन्तु उसी समय किसी की असावधानीसे आग लग गई। यहांके पवनका क्या पूछना? जब चलता है, तो उनचासों भाइयोंके साथ। नम्ग्याके सारे घर उसके बादके बने हैं। उस समय हमारी सरकारके पुनर्वास-विभागकी तरह दफ्तर से दफ्तर कागज दौड़ानेमें दिन नहीं बिता सकते थे। जाड़ा सिरपर, १० हजार फुट की सर्दी और वर्फको वह उसी तरह सह कर जीते नहीं बच सकते थे, जिस तरह हमारे शरणार्थी आजकी बरसातमें बिता रहे हैं। ऐसे खांडवदाहोंमें न जाने कितनी पुस्तकें, कितनी मूर्तियाँ, कितने चित्र पट कितने बार भस्मसात हुये होंगे। एक घरकी देवकोठरीमें कुछ मूर्तियाँ और पुस्तकें देखनेको मिलीं। चौकीदारने मृतकसमाधियों और उनके बर्तनोंकी बात बतलाई, तो हम भाग्य-परीक्षाके लिये गाँवके ऊपरी कोने पर सड़कसे कुछ ऊपर गये, किन्तु खाली हाथ लौटे। रात को शांत बँगलेमें पिस्सू-खटमल-रहित चारपाई

पर सोये-सोये मैं सोच रहा था। ईसाकी सातवीं सदीका मध्य (६४०-५० ई०)। प्रथम भोट सम्राट स्रोङ्-चन्-गम्बोकी खूँखार बर्बर घुमंतुओंकी सेना पहुँची शिपके पार। नम्ग्याका यह तिब्बती नाम न रहा होगा। इस गाँवके वासी घबड़ा गये होंगे। उस समय उनके भाईबन्द शिपकी पार रहे होंगे,—अभी वहाँ तिब्बती-भाषा नहीं पहुँची थी। उनसे उन्होंने भी सुना होगा, कि कैसे दानवोंसे पाला पड़ने वाला है। किन्तु साथ ही पीछे आनेवाले चिंगितुहानकी की भाँति स्रोङ् चन् भी संदेस पहुँचाता रहा होगा—आज्ञा स्वीकार करनेवाले को अभयदान"। मालूम नहीं प्राचीन नम्ग्या वालोंने भागना पसंद किया, या आज्ञा स्वीकार करना। खैर, कभी तो आज्ञा स्वीकार करनी ही पड़ी होगी, क्योंकि इन ठंडे पहाड़ोंके लोग नीचे की गर्मीसे घबराते थे, और स्रोङ्चन्की सेनाने गिलगित तकके सारे हिमालयको जीत लिया था। फिर जगह-जगह सैनिक चौकियाँ और अपत्नीक भोट-सैनिकोंके लिये स्त्रियोंकी माँग, फिर बौद्ध देवताओं और धर्मके प्रचार लिये भोट-भिक्षु आये। शताब्दियाँ बीत गईं, नम्ग्याका पुराना क्या नाम था, यह भी भूल गया। कब्रमें सोनेवाले आपसमें जो भाषा बोलते थे, वह भी अब यहाँ नहीं रही। अब वह अपनेको भोट-भाषा बोलते भोट-धर्म मानते पाते हैं। क्या यह बात सिर्फ नम्ग्यामें ही हुई। सारी दुनियाँमें मानव-जातिका यही इतिहास है। वह स्थावर वनस्पति नहीं जंगम प्राणी है। घूमना उसका धर्म रहा। जिसने इस धर्मको छोड़ा, वह कूप-मंडूक बना और भवितव्यताके सामने शिर झुका दास या ध्वस्त हुआ।

भारतके अंतिम गाँवको देख चुका, उसकी हरियाली तिब्बतसे आनेवालोंके दिलमें अवश्य कौतूहल पैदा करेगी। जब वह डाकबँगलेको देखेंगे, तो समझेंगे कि आदमीके रहनेकेलिये कैसा स्थान होना चाहिये। किन्तु भारतीय नागरिकोंके घरको देखकर समझ जायेंगे, यह बँगला तो फिरंगियोंने बनवाया था, इसमें भारतका क्या है? हमें इस गाँवको बदलना है, सीमांतके इलाके ढङ्-ढङ् को बदलना है। यहाँ अज्ञान है, किंतु जाति-भेद छुआछूतका भयंकर कोढ़ नहीं है, इनका धर्मभी अपने असली रूपमें उच्चतम आचार और दर्शनका प्रतिपादक है। ज्ञानमय प्रदीपके जलानेकी आवश्यकता है। मैंने बड़ी-बड़ी आशायें बाँधी थीं, सोचा था, स्वतन्त्र भारतका यह पहिला वर्ष है, इसमें अवश्य इस अंधकूप

की ओर ध्यान दिया जायेगा। स्कूल-इंस्पेक्टरने बतलाया, चिनी तहसीलमें सिर्फ एक स्कूल इस साल खोला जायेगा और वह उधर रिब्बामें रहेगा। हङरङ् में हङ्गोका टिमटिमाता स्कूल डगमगा रहा है। स्वतंत्रताकी उषामें ही हङ् रङ् में अंधेर-घुप तो नहीं हो जायेगा? मैंने सोचा, उपेक्षित हिमाचलके इस इलाकेमें कमसे कम पाँच स्कूल और तीन डाकखाने तो तुरन्त खुलें— (१) नमग्या (३० घर), खब (८) घर, टशीगङ् (६ घर), डब्लिङ् डुब्लिङ् (२५ घर) के लिये एक स्कूल डाकघर नमग्यामें, जहाँसे पश्चिमी तिब्बतवाले भी ल्हासाकेलिये अपनी डाक भेजा करेंगे। (२) नाको और मन्लिङ् के १०० घरोंके लिये नाकोमें एक स्कूल और एक डाकघर, (३) चाङो (१०० घर), शेलकर (१५ घर) के और सुम्रा (३५ घर) के लिये एक स्कूल और डाकघर; यहाँ से स्पितीका प्रथम गाँव लारी २० मील पर है, यह डाकघर स्पितीके सबसे नजदीक और सुगम होगा। (४) हङ्गोमें स्कूल है ही, जो अपने २० घरोंके अतिरिक्त लियेके २० तथा चूलिङ्के १० घरोंके लिये भी काम दे सकता है। (५) स्पूमें फिर स्कूल और डाकघर खोलनेकी आवश्यकता है।

२१ जूनको नौ बजे मैं लौटकर स्पू पहुँच गया। घोड़ेका उपयोग केवल नदी पार होकर ही किया। पुण्यसागर और बेगारू पीछे आये। २३, २४ जूनको स्पू-में ही बितानेका निश्चय हुआ। स्पूमें वर्षा सिर्फ १५ इंच होती है, किन्तु जगह आकर्षक मालूम हुई। लौटनेके दिन मंगोल घुमक्कड़से बात हुई। वह किसीके घरमें पूजा-पाठ करते थे। जीविकाका कोई रास्तातो होना चाहिये। ३० साल देश छोड़े हुआ। डेपुङ् (ल्हासा) में तेईस-चौबीस साल बिताकर पाँच-छ सालसे सिद्धचर्यामें लगे हैं। उनसे ल्हासाके मित्रोंके बारेमें मालूम हुआ। गेशे तन्दरकी हत्याकी खबर सुनकर चित्त बहुत खिन्न हुआ। घुमक्कड़ अकेले सिद्धचर्या नहीं कर रहे हैं, बल्कि उनके साथ योगिनी भी है, यह पुण्य-सागरने पीछे बतलाया। भारतकी गर्मीका प्रसाद अबकी ही बार मिल गया था, और दोनोंका सारा शरीर फुंसियोंसे भर गया था, तो भी वह अभी भारत जानेका इरादा रखते हैं।

१२ देवतासे बातचीत

स्पूसे २५ जूनको प्रस्थान किया। १६ मीलका रास्ता था। वैसे बेगार पर

चलते तो श्यासो-खड्ड पर उसे बदलना पड़ता। रपू के खच्चर वाले ने फी घोड़ा पाँच रुपया प्रतिपड़ाव तथा बैठनेकी आधी मजूरी माँगी, जो बिल्कुल वाजिब थी। मैं तो सोच रहा था, यदि लौटते समय मिलता, तो ठानेदार तक ले चलता। श्यासोके पुल तक पैदल ही आया। रास्तेका ग्लेसियर कुछ गला था, किंतु अब भी बहुत था। सड़क वाले मजूर वहाँ मौजूद थे, नहीं तो हमारे खच्चर वालेको एक खच्चर या घोड़ा इस साल और बलि देनी पड़ती। इधर धूप तेज मिली, शरीर जल रहा था। जब कनम् डाकबँगले पर पहुँचे, तो जान पड़ता था लूमें से आ रहे हैं। लेकिन यहाँ लू कहाँ? वस्तुतः नंगे सिरने काम बिगाड़ दिया था। यहाँ पहुँचनेके बाद बूँदाबाँदी होने लगी, वर्षा नहीं, वर्षा तो चिनीमें ही देखनेको मिली। उस दिन बेलीरामके भाई नंबरदार अमरजीत-से—जो बँगले के चौकीदार भी हैं—बातचीत होती रही, और कहीं न जा सके। अगला सारा दिन कनम् देखने के लिये था।

ग्रोसनम्, कनम्, सुङ्नम्, पुनूनम (पूर्वणी), स्गि=नम् (मोरङ्) जैसे गावोंके नामोंके अन्तमें "नम्" का आना कोई विशेष अर्थ रखता है, किन्तु हम्-स्कद् (शू भाषा) में "नम्" का अर्थ है बासी या खराब हुआ, जिसका अर्थ नहीं बैठता। कनम् के बारेमें कहा जाता है, यहाँ गाँव बसते समय पत्थर पर 'क' अक्षर लिखा मिला, इसलिये इसका नाम क-नम् पड़ा। "नम्" का अर्थ पुरानी शूभाषामें गाँव मालूम होता है, और "क" का भी कोई अर्थ रहा होगा (क=तुम, करऽ=लाओ, कोर्=खोदो)। यह ध्यान देनेकी बात है, कि 'नम्'—अन्तवाले सभी गाँव बहुत पुराने हैं। हम अन्यत्र लिख चुके हैं, कि यहाँ एक खेत बनाते समय ३० साल पहिले 'ख-छे-रीम्खङ्' (कब्रें) मिली थीं, जिनमें कंकालोंके साथ मिट्टीके बर्तन भी थे। लड़ाईसे पहिले सड़कको नई जगहसे घुमाया गया, उस वक्त वहाँ कई 'रोम्खङ्' (शव-गृह) निकलीं थीं, परन्तु कंकालों और बर्तनोंको रखनेकी ओर किसीका ध्यान न गया। यदि सड़क-निरीक्षक अपने बलती मुसलमान मजदूरोंसे भी पूछ लेते, तो मालूम हो जाता, कि मुसल्मान कब्रें इस तरह खान-पानके साथ नहीं बनाई जातीं। उन खोपड़ियों और बर्तनोंकी किन्नर-इतिहासके जाननेके लिये कितनी जरूरत है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। मुश्किल है, कि काफी खोदाई करने पर कब्रें इच्छानुसार

निकाली नहीं जा सकतीं, क्योंकि उनका एक स्थान नियत नहीं है। अस्तु, इसमें सन्देह नहीं, कि प्राक्तिब्बतीय प्राग्बौद्धकालीन (सातवीं सदीसे पूर्व) भी कनम्में आदमियोंकी बस्ती थी, और उस समय भी कनम्से लबरङ्के डांडे होकर लिप्पा जानेवाला यही मार्ग था, जहाँ पहाड़ोंके डाँडोंसे आकर सुङ्नम्का मार्ग भी मिल जाता था, और फिर वहाँ से एक मार्ग चिनी होते सतलुजके किनारे-किनारे निर्मंड होकर कुलूत (कुल्लू), चम्बा (ऊपरी चन्द्रभागा) होते कश्मीर जाता, दूसरा नचार, सुङ्रा हो सराहनके आगेकी खड्डुसे दारनघाटा हो, अथवा नोगडी (रामपुरसे आगे) की खड्डुसे सतलुज जल-विभाजक डाँडेको पार हो जमुनाकी शाखा नदियों पब्बर और टौंसके साथ होता एक और डाँडा लाँघते सैया होते कालसीकी मंडीमें पहुँच जाता था। बस्पा-उपत्यका वाले भी सीधे एक जोत पारकर टौंसमें पहुँचते थे। इस प्रचार पश्चिमी तिब्बतसे कश्मीर और 'मध्यमण्डल' के रास्ते कनम्से गुजरते थे। अब भी कनम बहुत बड़ा गाँव है, उसकी हजारके करीब आबादी है।

२६ जूनको हम—मैं और पुण्यसागर—गाँवमें चले। बँगलेके पास ही ऊपरसे जाने वाली कूल गाँवमें गई है। उसके साथ कुछ दूर जाकर हम नीचे उतर पड़े। पहिले कंजूर-ल्हाखङ् और ग्राम-देवता ढलवा को देखना था, तब लबरङ् और ख-छे-ल्हाखङ् गुंबाको। कंजूर-ल्हाखङ् गाँवसे नीचे खेतोंमें बना है। किसने बनवाया, इसका न कोई पत्थर वहाँ लगा है, नहीं किसीको याद है। कहनेवालों की बात मानें, तो वह सतयुगसे इधर का क्या होगा। किन्तु कंजूरकी जो १०३ और तंजूरकी २३५ पोथियाँ यहाँ रखी हैं, वह नरथङ् (मध्य-तिब्बत) की छपी हैं, और यह छापे लकड़ीमें उस समय खोदे जा रहे थे, जब शाहजहाँ आगरेके किलेमें औरंगजेबकी कैद भोग रहा था। आज भी दायकके वंशज हैं, उन्हींके हाथमें प्रबन्ध है। दायकने जहाँ मन्दिर बनवाया, मध्य-तिब्बतसे छपवा-कर कंजूरको तिब्बतके भीतर ही भीतर होते तीन-चार मास में मँगवाया, वहाँ अपना एक बड़ा खेत—जो शायद गाँवका भी सबसे बड़ा खेत है—भी दान चढ़ा दिया। खेत की आमदनीसे पुजारी और सालमें एक बार १०३ पोथियोंके पाठ करनेवाले लामाओंको भोजन-दक्षिणा दी जाती है। चिनीके बाद यहीं कनम्में एक प्राइमरी स्कूल है। स्कूलका घर बनानेमें भला पुण्य कहाँ, कि

उसको कोई अकेले या चन्दा करके बनवाये ! स्कूल इसी मन्दिर (पुस्तकालय) के बरांडे जैसे घरमें लगता है। तहसीलदार या दूसरे किसी अफसरके आने पर उसे खाली करना पड़ता है। अफसरोंकी गाँवमें यही ठिकान जो ठहरी। अध्यापक मकानका रोना रो रहे थे। लड़के बाहर धूपमें जमीनपर बैठकर पढ़ रहे थे।

आगे हम छोटे से टोलेमें गये, जहाँ गाँवके प्रतापी देवता-ढबलाका मन्दिर है। गाँववाले तो उसे किन्नर-देशके सबसे बड़े तीन-चार देवताओंमें मानते हैं। चिनीवालोंका ऐसा ख्याल नहीं है। वह पासके गाँव लब्रङ्के देवता शंक्-कंश्को बड़ा मानते हैं। ढब्लस् धनी देवता है, इसका पता तो उसके मन्दिरकी टीन छत दे रही थी। कथा है, ढब्लस् दूसरे देवताओंकी भाँति देशी टके सेर देवता नहीं हैं। वह लामाओंके देश ठेठ तिब्बतमें ओन् सरक् नामसे प्रसिद्ध थे। अपने शुभ कर्मोंसे सुखावती निर्वाणभूमिमें बुलाये जा रहे थे, किन्तु उन्होंने परानुग्रह-कांक्षया जानेसे इन्कार कर दिया। फिर कौन स्थान कार्यक्षेत्र हो सकता है, यह देखते हुये उन्होंने दिव्यचक्षुसे किन्नर-देशके कनम् ग्रामको अपने योग्य समझा, और गिद्धका रूप लेकर उड़ते हुये यहाँ पहुँचे। लड़के तिनकेका पूला बनाकर उनसे खेल करते थे। किसीने उठाना चाहा, तिनकेका मुट्ठा न उठा। फिर 'भूप सहस दस एकहिं बारा। लगे उठावन टरइ न टारा।' सारा गाँव थक गया। फिर उन्होंने 'छेड़' (देवता बुला) कर पूछा, तो जान पड़ा, यह तो आप रूप देवता हैं।

ढब्ला—जिसे शू-भाषामें ढब्लस् भी कहते हैं—का शब्दार्थ है भिक्षु गुरु। ढब्ला साधारण नहीं धर्मके देवता (छोस्-ल्ह) धर्म-पाल हैं। यह गृहस्थ नहीं भिक्षु हैं। बौद्ध हैं, इसलिये बलि-बकरेके पास नहीं जाते। बुद्ध पूजा लामाओंके सत्कारमें खुलकर पैसा खर्च करते हैं। दूसरे देवताओंकी भाँति कंजूस नहीं हैं। मैं ढब्लाके दर्शनार्थ आया था, किन्तु ढब्ला पाँच दिन पहिले ऊपर सुङ्फुग् मठके वार्षिकोत्सवमें पधारे थे, फिर वहाँ से लौटकर अब ख-छे-ल्ह-खङ्में विराजमान थे। मेरा सौभाग्य था, जो कहीं दूर दुर्गम स्थानमें नहीं बैठ गये। हाँ, देवताओंका क्या ठिकाना—'हज़रते दाग़ जहाँ बैठ गये बैठ गये।'

हम वहाँसे निकलकर बेलीरामकी ससुरालके घरपर पहुँचे। पिछली बार देखा था—उस समय वह विशाल घर था। अपने समयमें यह परिवार

(दोंडुब्) कनौरका सबसे धनी घर था। इस परिवारके कई आदमी शिक्षित भी हुये। बाहरसे अँग्रेजी पढ़कर आये, किन्तु पुरुष तरुण कुछ ही वर्षोंमें मर गये। अब घरमें स्त्रियाँ रह गईं। जिनमें एक प्रौढ़ा बेटी भिक्षुणी और घरकी मालकिन है, दूसरी बेलीराम भ्रातृ पुंजकी पत्नी, उसीका लड़का अब इस घरका भी स्वामी है। कुछ साल पहिले आग लग जानेसे घर जल गया था। थोड़ासा घर बन गया है, बाकी पड़ा घर अभी तीन-चार हाथ ही उठ पाया है। लोहार दीवारके लिये पत्थर गढ़ रहे थे। जुड़ाई करनेवाले पत्थर और लकड़ी मिलाकर जुड़ाई कर रहे थे। काफी बड़ा महल जैसा मकान बन रहा है। खैरियत हुई, जो मकान अलग-अलग था, नहीं तो सारा गाँव जल जाता।

हम लब्रङ्में गये, जो वहाँसे नातिदूर था। रास्तेमें कोलियों के कुछ दरिद्रसे घर मिले, जिनमेंसे एक में पिछली बार बैठकर मैंने जूतेकी मरम्मत कराई थी। लब्रङ् पहुँचते-पहुँचते नम्बरदार अग्रजीत (बेलीरामके भाई) भी आ गये। लब्रङ्-ब्ल-ब्रङ्-ब्ल-म-फो-ब्रङ्का संक्षेप है, जिसका अर्थ है गुरुका प्रसाद। यह कनौरके सबसे बड़े अवतारी लामा लोछेन-रिम्पोछे का निवास-स्थान है। लो-छेन् या महाभाषान्तरकार में सैकड़ों भारतीय ग्रंथोंके अनुवादक रिन्-छेन् जङ्-पो या रत्नभद्र अभि-प्रेत हैं, जिनका जन्म दसवीं सदीके अन्तमें हुआ था। चार-पाँच शताब्दियों तक तो महाभाषान्तरकार निर्वाण प्राप्त हो लुप्त रहे, फिर तिब्बतमें अवतारोंकी बाढ़ आई, और उनका भी अवतार पैदा कर लिया गया। तबसे अब अवतार बराबर हो रहे हैं। नये अवतारको मैंने टशील्हुन्पो (तिब्बत) में दो बार देखा था, तब वह मरियलसे दस-बारह वर्षके लड़के थे। अब तो बाईस-तेईसके हो गये होंगे। मालूम नहीं इन्होंने भी अवतारी लामाओंकी परम्परा पालन करते हुये परममूढ़ाचार्यकी उपाधि स्वीकार की है, या कुछ पढ़ा लिखा है। किन्नर, स्पिती और तिब्बतमें इनके कई मठ और बहुत-सी सम्पत्ति है। माँके गर्भसे बाहर होते ही भगत लोग दण्डवत करने लगते हैं, फिर पढ़ने-लिखनेका क्या काम ? पिछली बार (१६२६ ई०) मैं इसी लब्रङ् की कोठरीमें ठहरा था। उस समय लब्रङ् (गुरुप्रसाद) ढोर बाँधने, साग या घास सुखानेका काम देता था। नीचेका तल तो अब भी बदस्तूर साबिक है, किन्तु ऊपर कुछ व्यवस्था अवश्य है—व्यवस्थाका अर्थ गन्दगीकी कमी हर्गिज नहीं, आखिर

यहाँके लामा लोग शिक्षाके साथ सफाई भी तो तिब्बतसे सीखकर आते हैं। व्यवस्था कैसे हो, २२ साल पहिले लामा मर चुका था, और अभी अवतार पैदा नहीं हुआ था। लब्रङ् छोटासा मकान है, यहाँ कोई पुरानी चीज नहीं है।

हम ख-छे-ल्ह-खङ् गये, जो गाँवके ऊपरी भागमें है। यही यहाँ का मुख्य मठ है। ख छे-ल्ह-खङ् का अर्थ मुसलमान-मन्दिर (मस्जिद) और कश्मीरी मन्दिर दोनों होता है। यहाँके किसी लालबुझक्कड़ने कह दिया—मस्जिदकी जगह पर बननेसे इसका यह नाम पड़ा। बस वही बात दोहराई जाती है। इस इलाके पर न कभी मुसलमानोंकी चढ़ाई हुई, न यहाँ उनका शासन सीधे तौर से रहा, न यहाँ मुसलमान कभी आकर बसे, या यहाँ वाले मुसलमान बनकर रहे। फिर मस्जिद कहाँसे होगी ? हाँ, कश्मीरी मन्दिरकी पूरी सम्भावना है। महाभाषान्तरकार रत्नभद्रने वर्षों कश्मीरमें रह संस्कृत पढ़ी। वह गूगेसे इसी रास्ते कश्मीर गये। कनम् उनकी विचरण भूमिमें था, इसलिये हो सकता है; उन्होंने यहाँ कश्मीरी ढंगका कश्मीरी कलासे सज्जित विहार बनवाया, जिससे यह नाम पड़ा। यह भी हो सकता है, कि भारतके अन्तिम संघराज कश्मीरके महापंडित शाक्य श्रीभद्र भारतसे भागकर तिब्बतमें १० वर्ष रह जब १२१३ ई० में अपनी जन्मभूमिको लौट रहे थे, तो वह कनम् होकर गुजरे और यहाँ उन्होंने एक बिहार बनवाया। शाक्य श्रीभद्रभोटमें ख-छे-पण्छेन् = कश्मीरक महापंडित के नामसे प्रसिद्ध हैं, इसलिये उनके बनवाये बिहारको ख-छे ल्ह-खङ् भी कहा जा सकता है। तीसरी व्याख्या यह भी हो सकती है, कि किसी कश्मीरीने यहाँ बिहार बनवाया। मुसलमानोंको भोटवालोंने कश्मीरियोंके रूपमें ही पहिले-पहिल देखा, इसलिये उन्होंने देशका नाम धर्मको दे दिया, जैसे आज भी उत्तरी भारतके कितने ही गाँव वाले तुर्क शब्द मुसलमानका पर्याय समझते हैं, हालाँकि तुर्क जातिका नाम है जिनमें अधिकांश छठीं सदीमें बौद्ध थे। ल्हासाके मेरे परिचित मुसलमान कादिर भाईने एकबार बड़े गर्वसे कहा था—हमारा एक आदमी ख-छे-पण्-छेन्के नामसे बौद्धोंका बड़ा गुरु हो गुजरा है। मैंने उन्हें समझाया, कि पहिले ख-छेसे मुसलमान नहीं कश्मीरी समझा जाता था। हाँ, तुम्हारे पिता कश्मीरी थे, और शाक्य श्रीभद्र भी, इस प्रकार वह तुम्हारे पितृ-वंशके थे, इसमें संदेह नहीं। यह तो हुई ख-छे-ल्ह-खङ् की व्याख्या। मन्दिर

अवश्य सात-आठ सदियोंसे पहिले बना था, किन्तु आज जो विहार खड़ा है, वह केवल उस पुराने विहारके स्थान पर खड़ा है, वहाँ कोई पुरानी चीज नहीं है। सबसे पीछे आजसे पन्द्रह-बीस साल पहिले टोमो (चुम्बी) गेशे लामाने इस मन्दिरको फिरसे बनवाया, और अपने मठके नक्शेको देकर, जिसका अर्थ है, उन्होंने पुराने नक्शेकी भी इतिश्री कर डाली।

इस विहारके सबसे अन्तिम संस्कारक या निर्माता टोमो गेशे कलिम्पोङ्से ल्हासा जानेके रास्तेमें पड़नेवाली टोमो (चुम्बी) उपत्यका के रहनेवाले एक व्यवहारकुशल लामा थे—अवतारी नहीं थे, किन्तु अब उनका अवतार बन गया है। टोमोमें रहते ही उनकी ख्याति हो गई थी। तिब्बतके नामसे थ्योसोफी और यौगिक चमत्कारकी दूकान चलाने वाले कुछ युरोपीय भी उनको गुरु मानने लगे थे। गेशे किन्नर देशमें आये। साधारण जनताकी तो बात क्या महाराज पदमसिंहकी भी श्रद्धा उनमें बढ़ी। महाराजाके परिवारमें एकाध मृत्यु हो चुकी थी, डाक्टर तपेदिक बतलाते थे, और गुनी लोग ब्रह्मराक्षसका दोष। ब्राह्मणोंकी मन्त्र-विद्या कुण्ठित साबित हुई। महाराजा लामा गुरुओंकी शरणमें पहुँचे। टोमो गेशेके तंत्रमंत्रका असर हुआ। ब्रह्मराक्षस राजमहल छोड़ गया, हाँ अस्थायी तौरसे ही। गेशेके कहनेपर महाराजाने कंजूर-तंजूर भी तिब्बतसे मँगवा लिये, और शायद राजमहलमें रखनेके लिये, जिसमें ब्रह्मराक्षसकी फिर उधर झाँकनेकी हिम्मत न हो। कंजूर-तंजूर के आ जानेपर तो ब्रह्मराक्षस इतना कचकचाकर पड़ा, कि वंशहीको निर्वंश कर डाला। ब्राह्मणोंने कहा—और लामाओं की पोथी मँगवाओ। कंजूर-तजूरको हटाकर लामा-मन्दिरमें भेज दिया गया, जहाँ वह अब भी है। यह है सुनी-सुनाई टोमो-गेशेकी कथा। जहाँ तक रामपुरके राजाका सम्बन्ध है। यह सभी जानते हैं कि रामपुर राज्यवंश तपेदिक-की बलि चढ़ा, खुद पदमसिंह भी उसीसे मरे। मेरे मित्र कह रहे थे, राजमहल यक्ष्माके कीड़ोंसे भरा पड़ा है। वह तो चिनीमें भी कई पत्र मुझे लिख चुके, कि मैं ब्रोस्की बँगलेमें न ठहरूँ। वह समझते थे, यहाँ कई राजवंशिक बीमारीकी अवस्थामें रह चुके हैं। किन्तु इसका यहाँके पुराने निवासियोंको कोई पता नहीं, और इसीलिये मैं भी यहाँ निश्चिन्त ठहरा हुआ हूँ।

टोमो गेशेकी कीर्ति किन्नर बौद्धोंमें बहुत फैली। उनके इशारेपर इतना धन

जमा हो गया, कि ख-छे-ल्हा-खङ् फिरसे बन गया। जिस समय टोमो गेशे कनमूमें थे, उसी समय एक सिंहल गेलोङ (सिंहल भिक्षु) यहाँ आया, किन्तु वह भिक्षु क्या बाकायदा छोटा साधु भी नहीं था। हाँ टुंडा जनरैल बहुतसी हाँड़ियोंका भात खाये हुये था, और शकुन तथा परचित्त ज्ञानकी अद्भुत शक्तिका धनी बना हुआ था। नम्बरदार अगरजीत भी कह रहे थे, उसकी बतलाई बातें बहुत सच निकलती थीं। टुंडा जरनैल तीसरी यात्रामें मुझे तिब्बतमें मिला था। वह बड़ा साहसी घुमक्कड़ था, इसमें संदेह नहीं। वहीं उसने अपनी किन्नर-यात्राकी कई मनोरंजक घटनायें सुनाई। उसे अपनी सिद्धाईका रोब मुझपर डालना नहीं था, इसलिये अपने हथकन्डों को भी बतला रहा था, जिसे साधारण सूझ और व्यवहार-कौशल समझ लीजिये। सिंहला-गेलोङ् कुछ दिनों गेशेके साथ रहा, किन्तु एक जंगलमें दो सिंह, एक म्यानमें दो तलवार कहीं रही हैं? वह यहाँसे उठकर खड्ड पारके गाँव लब्रङ्में जा डटा। उसके चमत्कारसे लोग प्रभावित होने लगे। उसका बनवाया स्तूप वहाँ आज भी मौजूद है। खड्ड आर-पारके दोनों सिद्धोंमें प्रतिद्वंद्विता छिड़ गई। बिहारकी बात है, एक सिद्ध सबेरेके समय चबूतरेपर बैठे दातवन कर रहे थे। दूसरा सिद्ध अपनी दिव्यशक्तिका परिचय देने बाघपर चढ़कर मिलने आया। दातवन करने वाला सिद्ध समझ गया—यह लोगोंको दिखलाना चाहता है, कि मैं बड़ा सिद्ध हूँ। फिर क्या, दातवन वाले सिद्धने चबूतरेसे कहा—'चल, तूभी सिद्धके स्वागतके लिये।' और चबूतरा सचमुच चला। बाघवाला सिद्ध साष्टांग दंडवत् करते जमीनपर गिर पड़ा। लेकिन यहाँ किन्नरमें खड्डके आर-पारके सिद्धोंको वह नौबत नहीं आई। सिंहला गेलोङ् अपने भविष्य-कथनमें बाजी मारे जा रहा था, किंतु वह अकेला था, उसके पास जमात न थी। बिना जमात करामात कहाँ? उस समय और शायद आज भी लब्रङ्के देवता शक्कंशू और कनमूके देवता ढब्ला-में बड़ी अनबन थी। बस एक दूसरेसे गुत्थंगुत्था नहीं करते थे, बाकी सब कुछ हो जाता था। सिंहला गेलोङ् की सिद्धाईको शक्कंशू मान गया था, और ढब्लाके मनमें भी भय-संचार होने लगा था। सिंहला गेलोङ्ने एक दिन दोनों देवताओं को फटकारते हुये कहा—'तुम लोग अपनेको देवता कहते हो। लोगोंकी पूजा खाते हो, लोगोंको रास्ता बतलानेका दम भरते हो, और तुम स्वयं आपसमें

लड़ते हो। शाक्य मुनिकी क्या यही शिक्षा है?' शक्कंशू तो गिड़गिड़ाने लगा—मैं तैयार हूँ, जो गेलोङ् लामा कहेंगे, वही करूँगा। देवताओंसे बातचीत लुक-छिपकर थोड़े ही होती है। ओक्स् (देववाहक)के मुँहसे हुई, देवताके शिरश्चालनके संकेतसे हुई, तो भी; सुननेवाले तो थे ही। बात किसी तरह टोमोगेशेके पास पहुँच गई। टोमोगेशेने सोचा—यदि सिंहला-गेलोङ्ने इन दोनों देवताओंमें मेल करा दिया, तो उसकी सिद्धाई मुझसे बढ़-चढ़कर समझी जायेगी। उन्होंने जल्दी-जल्दी ढब्लासे बातकी, और उसे तीन मासके लिये छम् (ध्यान)में ले गये। ढब्ला तीन मासके लिये छम्में चला गया, अब उतने दिनों उसके साथ बातचीत नहीं हो सकती थी। सिंहलागेलोङ्की सुलह करानेकी बात खटाईमें ही रह गई।

खैर, नम्बरदार अगरजीतके साथ हम ख-छे-ल्ह-खङ्में पहुँचे। आँगनकी तीन तरफ दोतल्ला कोठरियाँ थीं, और चौथी तरफ मन्दिरके प्रबन्धककी कोठरी उन्हीं कोठरियोंमें थी। सूचना पाते ही वह आये और उन्होंने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। बीस साल टशील्हुन्पो मठमें रहे थे। भोटिया सामन्ती वर्गके शालीन संभाषणमें बड़े ही चतुर थे। मन्दिर खोल दिया गया था। वहाँ छोटे आसन पहिले ही बिछे थे। इन्हींपर बैठकर भिक्षु लोग पूजा-पाठ करते हैं। यहीं भोजके समय संघ भी बैठता। एक ऊँचे आसनपर मुझे बैठाया गया। मक्खन-सोडा-नमक मिली चाय और गंगा-जमुनी बैठकीपर रखा नफीस चीनी प्याला भी आ गया। फिर घंटे भरके लिये तो हम तिब्बतमें पहुँच गये।

का-छेन् (महामात्य) हिन्दी नहीं बोल सकते थे, और मैं किन्नर भाषा नहीं जानता था। दोनोंमें तिब्बती चलने लगी। भारतके एक कोने किन्नर ही नहीं यदि सुदूर मंगोलियामें भी मुझे जाना पड़े, तो इसी तरह तिब्बती भाषा सहायक हो सकती है। ख-छे-ल्हा-खङ्-लो-छेन् रिम्पो छेकी गुम्बा है, और का-छेन् लामा की ओरसे प्रबन्धक हैं। प्रथम लो-छेन्-रिम्पोछे यद्यपि गेलुक्पा सम्प्रदायकी स्थापनासे चार सदी पहिले पैदा हुये थे, किन्तु पीछे उनकी गुम्बायें (मठ) और अवतार गेलुक्पा हो गये। गेलुक्पाका अर्थ ही है "भिक्षु-मार्गी", फिर यहाँ भिक्षुओंकी प्रधानता होनी ही चाहिये। का-छेन् भिक्षु हैं। थोड़ी देर बाद एक और "भिक्षु" आ गये। हम दोनोंने एक दूसरेको पहिचान लिया।

१६२६ ई० में जब मैं पहिली बार तिब्बत गया, तभी मेरी इनसे मुलाकात हुई थी, दूसरी यात्रामें भी कितनी ही बार भेंट हुई। पहिली बार तो डेपुङ्में मेरे लिये कोठी दिलानेमें इन्होंने बड़ी सहायता की, यद्यपि दूसरे कारणोंसे मैं डेपुङ् गुम्बामें ठहर नहीं सका। सुखराम यही उनका नाम था, तब अभी पढ़ाई शुरू ही किये हुये थे और अब वह गेशे सुखे—पंडित सुखे थे। दो चार ही साल हुये, वह देश लौटे। मैंने उनके ज्येष्ठ साथीके बारेमें पूछा। उन्होंने कहा—गेशे कल्ज़ङ् (कैसङ्) अब "छोग्-रम्पा" हो गये। छोग्-रम्पा विद्याकी आचार्य जैसी सर्वश्रेष्ठ उपाधि है। किन्तु यह सरकारकी ओरसे नहीं महागुम्पा डेपुङ् की ओरसे दी जाती है, जिसमें सात हजार भिक्षु निवास करते हैं, इसे भोट देशकी नालंदा समझिये। "ल्हा-रम्पा" (आचार्य) की उपाधि भोट सरकार देती है, और कड़ी परीक्षाओंके बाद। उसका सम्मान सर्वोपरि है। मालूम हुआ, ग्याबोङ्के एक भिक्षु ल्हारम्पा भी हैं। वह कुछ साल पहिले जन्म भूमि आये थे, किन्तु फिर भोट लौट गये। यहाँ रहकर क्या करते? पढ़ानेके लिये विद्यार्थी कहाँ मिलते? फिर तो सारा पढ़ा-पढ़ाया धर्मकीर्ति, चंद्रकीर्ति, वसुबन्धु, असंग और गुणप्रभ का दर्शन भूलकर ही रहता न?

गेशे सुखे अब घरबारी हो गये हैं, स्वेच्छासे नहीं बलात्। नजर लड़ गई किसी तरुण भिक्षुणीपर, सन्तान-निग्रह हो नहीं सका, फिर दूसरा रास्ता क्या था? अब तो उन्हें किन्नरमें रहनेपर घरगिरस्थी चलाना ही होगा। और उनकी बीस सालकी पढ़ी विद्या? यदि वह शरङ्के सिद्धका पथ स्वीकार करें, तो थोड़ा बहुत काम दे; किन्तु वह धर्मकीर्तिके तर्कको वर्षों पढ़ते रहे, जिसने चौदह शताब्दियों पूर्व कहा था।

> वेदप्रामाण्यं कस्यचित् कर्तृवादः, स्नाने धर्मेच्छा, जातिवादावलेपः।
> संतापारम्भः पापहानाय चेति, ध्वस्तज्ञानां पंच लिंगानि जाड्ये॥
>
> (प्र० वार्तिक)

अर्थात् (१) वेद (या किसी ग्रन्थ) को (सर्वोपरि) प्रमाण मानना; (२) किसीको (जगत्का) कर्त्ता कहना; (३) (गङ्गा आदि तीर्थोंके) स्नानमें धर्म चाहना; (४) (ऊँचनीच) जातिके विचार का अभिमान, और

(५) पाप मिटानेके लिये (भूख उपवाससे शरीरको) संताप देना, ये पाँचों बुद्धिमारे (आदमियों) की जड़ताके लक्षण हैं।

पुराने मित्रसे इतने दिनों बाद मिलनेपर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसी समय मेरे दिलमें प्रश्न आया—नेगी लामा जैसे भोट-भाषाके अद्वितीय विद्वान् तथा गेशे सुखे, छोग् रम्पा कल्-ज़ङ् और ग्याबोङ् ल्हा-रम्पाकी किन्नर अर्थात् भारतको आवश्यकता नहीं है? उन्होंने सारा जीवन लगाकर भारत की अद्वितीय प्रतिभाओं-के ग्रन्थोंका अध्ययन किया, उन प्रतिभाओंका जिनके बिना काशीमें पढ़ाये जाते सारे शास्त्र अधूरे हैं, और जिनके अधिकांश ग्रन्थ मूलतः संस्कृतमें होनेपर भी अब संस्कृतसे सर्वथा लुप्त हो चुके हैं। उन्हें तिब्बती अनुवादमें ही पढ़ा जा सकता है, जबतक कि उन्हें फिरसे संस्कृत या हिन्दीमें अनूदित नहीं कर दिया जाता। जिस तरह भारतीय चित्रकलाके विकासको समझा नहीं जा सकता, यदि आप अजन्ताके अमर चित्रकारोंकी कृतियोंको छोड़ दें। भारतकी मूर्तिकलाका ज्ञान आपका अपूर्ण रहेगा, यदि आप साँची, भरहुत, धान्यकटक (अमरावती) के मूर्तिशिल्पियोंको पास न आने दें; उसी तरह दिङ्नाग-धर्मकीर्त्ति-नागार्जुन-चंद्रकीर्ति-असंग-वसुबंधुके गंभीर विचारोंके परिचय बिना भारतीय मस्तिष्ककी सर्वोच्च उड़ानको आप नहीं जान सकेंगे। याद रखें, युरोपके सर्वश्रेष्ठ भारतीय दर्शनके पंडित और संस्कृतज्ञ आचार्य श्चेर्बात्स्की धर्मकीर्तिको भारतका कांट कहते थे, और मैं उन्हें कान्ट और हेगेल सम्मिलित। औंधी खोपड़ियोंको कौन इसे समझाये? काशीकी संस्कृत-परीक्षामें जब इन आचार्यों के उपलभ्य ग्रंथ रख गये, तो कूप-मंडूकोंने बावेला मचा दिया। कांग्रेसके मंत्रिपदको छोड़ते ही उनकी बन आई, और परीक्षासे उन ग्रंथोंको निकलवा दिया। वह फिर तब तक परीक्षामें सम्मिलित नहीं किये गये, जब तक युक्तप्रान्तके शिक्षा-विभागकी बागडोर सम्पूर्णानंदजीके हाथमें नहीं आगई। संपूर्णानंदको भारतीय प्रतिभाका साक्षात् परिचय है, इसलिए वह इन प्रतिभाओंके मूल्यको समझते नहीं अनुभव करते हैं, किन्तु क्या हम वही आशा किसी ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरेसे कर सकते हैं? क्षमा कीजिये, आज हमारे भारत-संघका शिक्षा-विभाग ऐसे ही हाथोंमें है। अपने विषयका सबसे अयोग्य आदमी हमारा शिक्षा-मंत्री बनाया गया है। खान अब्दुल गफ्फारखाँने जब सुना, कि बौद्ध विचारधाराके दो अद्वितीय

दार्शनिक असंग और वसुबंधु पठानबंधु थे, तो वह उछल पड़े। कहा—उनके ग्रंथोंको हमारी भाषामें आना चाहिये, उनकी जीवनीपर प्रकाश डालिये। मैंने उस समय इतनाही कहा—दोनोंका जन्म-स्थान पेशावर (पुरुषपुर) था, एक बौद्धोंका प्लातोन् है और दूसरा अरिस्तातिल्। देशकी शिक्षा और संस्कृतिके अध्ययन तथा प्रचारकी गंभीर जिम्मेवारी क्या मौलाना आदजाके कंधोंपर रखने लायक है? वह अरबी मद्रसाके अव्वल मुदर्रिस हो सकते हैं, सफल मुदर्रिस भी हो सकते हैं, अरबी और इस्लामिक शिक्षा-क्रमकी योजना बनानेमें सहायक हो सकते हैं, और मैं यह भी मानता हूँ, कि भारतीय शिक्षा क्रममें उसकेलिए स्थान रहेगा। किन्तु वह संपूर्ण भारतीय शिक्षा और संस्कृतिके अध्ययनका एक बहुत छोटा सा अंग होगा, उतना ही जितना मोहन्‌जोडरोंसे आज तकके कालमें अकबर और औरंगजेब तकका समय। जिस आदमीके मस्तिष्कमें हमारी पचास शताब्दीतक व्याप्त सांस्कृतिक परंपराका नहीं के बराबर ज्ञान है, क्या वही हमारा सबसे योग्य शिक्षा-मंत्री हो सकता है? आप कहेंगे, उनके सहायक डाक्टर ताराचंद जो हैं। क्षमा कीजिये, यहाँ "दैव मिलाई जोड़ी है।" डाक्टर ताराचंद भी साठ शताब्दियोंमेंसे उन्हीं डेढ़ शताब्दियोंके पंडित हैं। किन्नरसे बहककर मैं आजाद और ताराचंदपर पहुँच गया।

किन्नरमें आज ऐसे विद्वान् है, और होते रहे हैं, जिन्होंने एक जीवन लगाकर उन अगाध पांडित्यपूर्ण ग्रंथोंको पढ़ा है, जिनका ज्ञान भारतीय विचार-धाराके इतिहासके जाननेकेलिये आवश्यक है, जिसका अधिकांश संस्कृतसे लुप्त और तिब्बती अनुवादही में प्राप्य हैं। क्या मेरा या किसी भी भारत की प्रतिभासे प्रेम करनेवाले भारतीयका कर्त्तव्य नहीं है, कि सरकारको कहे: किन्नरमें एक ऐसा सरकारी विद्यापीठ स्थापित किया जाये; जहाँ संस्कृतके साथ तिब्बती भाषामें प्राप्य इन ग्रंथोंका उच्च अध्ययन हो, जिससे समय पाकर लुप्त ग्रंथ फिर हमारी भाषामें आवें और भारतीय विद्वानोंमें उनका पठन-पाठन होकर उनकी एकांगिता दूर हो। साथही ऐसे पंडित पैदा हों, जिनकी हमें अपने दौत्य संबंधकेलिये, तिब्बत, चीन, मंगोलिया, कोरिया ही नहीं जापान सारे सुदूरपूर्वमें आवश्यकता होगी, क्योंकि वह बौद्ध साहित्य, दर्शन और इतिहासके पूरे पंडित होंगे। ऐसा विद्यापीठ हमारे भोटभाषाभाषी

भूभाग (कनौर, स्पिती, लाहुल, जांस्कर और लदाख) ही नहीं गढ़वाल, अल्मोड़ाके उत्तरी अंचल तथा शिकम् (दार्जिलिंग) के लिये भी योग्य शिक्षक और प्रबंधक देगा।

कहिये किसे इन बातोंको समझाया जाये ? मौलाना आजाद और डाक्टर ताराचंद को ? वह हिन्दी उर्दू की सहायताका बँटवारा भले कर सकते हैं—यदि हिंदीकेलिये पाँच लाख एक मुश्त दान दिया जाये, तो न्याय यह कहता है कि उर्दू को भी पाँच लाख मिले। यदि हिन्दीको चालीस हजार वार्षिक सहायता दी जाये, तो उर्दूको भी उतनी मिलनी चाहिये, यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके भवनके लिये दिल्लीमें दस एकड़ जमीन दी जाये, तो उर्दू को भी उससे एक अंगुल कम नहीं दी जानी चाहिये। यह है साठ और डेढ़ शताब्दियोंकी धाराकी प्रतिनिधि इन दोनों भाषाओंके बारेमें उनके उज्ज्वल न्यायका ढंग ! क्या इसपर शिक्षा विभागके बारेमें नहीं कहना होगा—"बूड़ा वंश कबीरका, उपजे पूत कमाल।"

हिमाचलप्रदेशके लिये तो अभी खंड-विखंड रखनेकी नीति मालूम होती है। ६ लाख ३६ हजार आबादी (१०,६०० वर्ग मील, ८४ लाख ५८ हजार वार्षिक आय) की २१ छोटी-छोटी रियासतें इकट्ठा करके हिमाचलका एक छोटा सा पुतला खड़ा कर दिया गया है। सारा हिमाचल काली (नेपाल सीमा) से चंद्रभागातक जब अखंड हो जायेगा, तब रोना-रोनेकी जरूरत नहीं होगी। जब सारा हिमाचल मेवा बागों, पनबिजली स्टेशनों, धातु और उनके कारखानों से भर जायेगा, तो हिमाचलके सपूत अपने इस सांस्कृतिक भारको भी सहर्ष उठा लेंगे। किन्तु, इस समय कहनेपर तो यही उपदेश दिया जायेगा—"भारत सरकारके पास विनती कीजिये"। भारत सरकारके कर्णधार "भारतके आविष्कारक" नेहरूजी तो शिक्षा-विभागकी ओर ही जानेका संकेत करेंगे और आगे वही गति होगी, जो भैंसके सामने वीणा बजाने वाले की। मेरी इन पंक्तियोंसे यदि किसी का दिल दुखता हो, तो उसे यह भी समझना चाहिये, कि यह भी पंक्तियाँ नहीं एक दुखी दिलकी आह है। चाहे आज कुछ भी हो, किन्तु मुझे विश्वास है, हिमाचल और भारत अपने कर्त्तव्यको भूल नहीं सकते।

× × × ×

बात के अंतमें ढब्‌ला देवताके बारेमें पूछनेपर मालूम हुआ, वह छतपर विराज रहे हैं। हम उठकर छत पर गये। धूप थी, किन्तु ढब्‌ला तपस्वी हैं, उनके लिये धूप-छाँह सब एक ही है। नंबरदारसे कल ही ढब्‌लासे वार्तालाप करनेकी सलाह हो चुकी थी। ढब्‌लाके तीन-तीन ग्रोक्च (मुखरूपी मनुष्य) हैं, किन्तु एक दिवंगत, एक बालक और एक शिम्लेकी सैरपर। खैर, किन्नरके देवता अग्रसोची होते हैं। वह सिर्फ ग्रोक्चपर ही निर्भर नहीं करते। ग्रोक्च न होनेपर वह गूँगेकी भाँति इशारेसे बात करते हैं—अगल-बगलमें सिर डुलाने का अर्थ है नहीं, प्रश्नकर्त्ताकी ओर शिर झुकानेका अर्थ है "हाँ", ऊपर-नीचे कूदने का अर्थ है "बहुत प्रसन्नताके साथ", हाँ, प्रश्नकर्त्ताकी ओरसे दूसरी तरफ शिर झुकानेका अर्थ है "अरुचि या मुँह मोड़ना।" संकेत स्पष्ट हैं, गूंगे या मौनधारी भी ऐसा ही करते हैं।

किन्नरके सभी देवताओंकी भाँति ढब्‌लाकी भी कोई खास मूर्ति नहीं है। एक चौकोर लकड़ीका ढाँचा है, जिसका ऊपरी भाग कुछ गोल सा है। सारा ढाँचा रेशमी कपड़ोंसे ढँका है। इसी गोलाईपर चारों ओर पाँच या छ चाँदी के चेहरे लगे हैं, और ऊपर से हाथ भरके बिखरे चमरीके रंगे बाल हैं। ढाँचे-के भीतरसे आरपार दो भोज पत्रके लचीले पतले लट्ठे लगे हैं, जिनके शिरोंपर शुद्ध चाँदीके व्याघ्रमुख पहनाये हुये हैं। दोनों लट्ठोंके शिरोंको आपसमें बाँध दिया गया है। दो आदमियोंने दोनों छोरोंमें शिर डाल लट्ठोंको कंधेपर रख देवताको उठाया। दूसरे दो आदमियोंने दोनों बगलमें खड़े हो देवताको सँभाला। कंधेपर उठाते ही लचीले लट्ठे हिले, जिसके साथ देवतामें स्फूर्ति आई। ऊपरकी ओर उठनेपर डेढ़ हाथ व्यासके शिरके बिखरे बाल ऊपर-नीचे उड़ने लगे।

ढब्ला तिब्बतसे आये हैं, इसलिये वह तिब्बतीभाषा भी समझते थे, किन्तु मैंने सीधे बात करना पसंद नहीं किया—कहीं सम्मान प्रदर्शनमें भूल न हो जाये, और मुफ्तमें देवताके कोपका भाजन होना पड़े। मैंने नंबरदार अगरजीत-को अपना दुभाषिया बनाया। ढब्लासे बातचीत किन्नरकी और पाँच बोलियोंको छोड़ वहाँकी सर्वाधिक प्रचलित अर्थात् राष्ट्रभाषा हम-स्कद्‌में ही की जाती है। मैंने सोचा, ढब्ला यहाँ जैसे सर्वाधिक प्रचलित हम्-स्कद्‌के पक्षपाती

हैं, कनम्की स्थानीय बोलीके नहीं; वैसे हो वह सारे भारतके लिये सर्वाधिक प्रचलित हिन्दीके राष्ट्रभाषा होनेका पक्षपाती छोड़ और कुछ नहीं हो सकते। बल्कि नंबरदार अगरजीतने मुझसे हिन्दीमें पूछनेके लिये कहा, किन्तु आदाब-अलकाबकी गलती होनेके डरसे मैंने नंबरदारका ही प्रश्नकर्त्ता बनाया। मैं देवताओंके सामने स्वार्थकी बात चलाना नहीं पसंद करता, और न कोई वैसा प्रश्न रखनेवाला था। कोठी (चिनी) की देवी चंडिकाके चिरकौमार्य और उसके कारण क्रोधाधिक्य और उसीकी वजहसे हर मेलेमें दो चारकी शिर फुटौवल खूनखराबी। मैं चाहता था, यह रुके। साथही लोगोंने बतलाया, चंडिका मांस-शराब बहुत खाती-पीती है। शराबसे मैं परिचित नहीं हूँ, किन्तु मांससे तो मुझे भी परहेज नहीं है, परन्तु मैं यह तो नहीं चाहूँगा कि उसके लिये मेरा घर रक्तपंकिल हो। सबकी दवा मुझे एक ही समझमें आई, कि देवीका व्याह करा दिया जाये। फिर चंडिका तारे किन्नरकी सबसे बड़ी देवी जैसे-तैसे देवता से तो व्याह नहीं कर सकती, बर भी वधूके योग्य होना चाहिये। और दबलासे बढ़कर योग्य वर कौन हो सकता था, जो बहुत बड़ा देवता होते भी बहुत नम्र, शांत और धर्मात्मा है।

देवता हिल रहा था, पास खड़ा आदमी निरंतर घंटी बजा रहा था। अब मेरे शब्दोंको और परिष्कृत भाषामें करके प्रश्नकर्त्ता(नंबरदार) ने हाथ जोड़ कर कहना शुरू किया :

—डंबर साहेब ! आपकी सेवामें काशीके महापंडित राहुलजी नम्रतापूर्वक विनती करना चाहते हैं, गुस्ताखी माफ हो।

शिर ऊपर नीचे उठा अर्थात् "हाँ, कहें"।

—कोठीकी देवी बहुत मनमानी अनीति करती है। बुद्धके धर्मकी अवहेलना करती है। बहुत क्रोधमें रहती है। इसकी वजह से खूनखराबी होती रहती है। कनौरके सारे देवता भगवान् बुद्धके उपदेशको मानते हैं, किन्तु कोठीकी देवी इन्कार करती है। देवी जब तक क्वारी रहेगी, तब तक ऐसा ही होता रहेगा। इसलिये उसका व्याह हो जाना चाहिये।

दबला ऊपर-नीचे खूब उछला, फिर उसने प्रश्नकर्त्ताकी ओर अपना शिर

झुका दिया अर्थात्—'महापंडित बहुत ठीक कहते हैं, कोठीकी देवीका व्याह हो जाना चाहिये।"

—कोठीकी देवी बड़ी देवी है, डंबर साहेब! वह साधारण देवता से व्याह करना कब पसन्द करेगी?

शिर ऊपर-नीचे हिलाकर प्रश्नकर्त्ताकी ओर झुका अर्थात्—"हाँ, कैसे पसंद करेगी?"

—डंबर साहेब! आप सोनेकी मक्खीकी भाँति अमर हैं, हम घासकी भाँति जनमते-मरते हैं। गुस्ताखी माफ करें।

शिर ऊपर नीचे फिर प्रश्नकर्त्ताकी ओर—"हाँ, ठीक है।"

—डंबर साहेब! आप परोपकारके लिये शाक्य मुनिके धर्मकी सेवाके लिये हमारे देशमें विराज रहे हैं।

...—"हाँ, हाँ ठीक है।"

—डंबर साहेब! धर्मके काममें आप सदा तत्पर रहते हैं। अधर्मीको अधर्मके पथसे हटाना धर्मका काम है।

...—"हाँ, ठीक बहुत ठीक।"

—आप जैसे बड़े देवताके साथही व्याह करना कोठीकी देवी पसंद करेगी, आप जैसा देवता ही उस चिर्कुमारी चंडीपर नियंत्रण कर सकेगा।...

शिर बड़े जोरोंसे अगल-बगलमें डोला, जान पड़ा था, देवता गुस्सेमें आकर कहीं नीचे न कूद पड़े। बगलमें खड़े दोनों आदमियोंने उसे सँभाल लिया। इसका अर्थ हुआ—"क्रोधके साथ नहीं, मैं नहीं व्याह करूँगा।"

—डंबर साहेब! क्षमा-क्षमा। महापंडित नहीं जानते आप भिक्षु हैं, आप व्याह नहीं करेंगे। भूलको क्षमा करें।

...—"कोई बात नहीं क्षमा कर दिया।"

—कोठीकी देवीका व्याह हो जाना चाहिये यह तो आपने भी पसंद किया।

...—"हाँ, हाँ"

—तो किसके साथ व्याह हो? शक्कंशूके साथ?

...—"नहीं, वह छोटा देवता है।"

— जंगीके देवताके साथ?

...—"नहीं, छोटा देवता है।"

—रोगीके नारायण, चिनीके नारायण, उरनीके नारायणके साथ ?

...—नहीं वह छोटे देवता हैं, और देवीके संबंधी (भांजे) हैं।

—सुङ्राके महेशू, भावाके महेशू, चगाँवके महेशूके साथ ?

जोरसे शिर अगल बगलमें हिला—"नहीं, नहीं, क्या कह रहे हो, वह देवीके सगे भाई बाणासुरके लड़के हैं।"

—खवांगी, दुनी, पंगी, रारङ्के देवता ?

...—"नहीं नहीं।"

प्रश्नकर्त्ता एकदम नदी कूदकर बस्पा उपत्यकामें पहुँच गया—डंबर साहेब ! और कामरूके बदरीनाथके साथ कैसा रहेगा ?

खूब उछल-उछलकर शिर प्रश्नकर्त्ताकी ओर झुक गया—"बहुत ठीक जोड़ी रहेगी। वह भी राज्यके माफीदार और देवी भी माफीदार।"

—डंबर साहेब ! तो सरकार की राय है न, कि कोठीदेवीका ब्याह बदरीनाथसे हो जाये ?

उछल-उछलकर शिर प्रश्नकर्त्ताकी ओर झुका—"जरूर हो जाना चाहिये। शादी होगी।"

—पंडित राहुलजीने अनुचित बात तो नहीं की ?

...—"नहीं, नहीं। व्याह हो जाना चाहिये।"

—पंडितजी क्षमा माँगते हैं, आपको इतना कष्ट दिया डंबर साहेब !

...—"नहीं, नहीं मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ।"

—और कोई आज्ञा है पंडितजीको, कि बात समाप्तकर दें ?

...—कोई आज्ञा नहीं, बात समाप्त हो गई।

—ताबेदारको कुछ हुकुम देना है ?

...—"हाँ, हाँ, काम है, जरूरी काम है।"

—भंडारका, आपके भंडारका काम है ?

...—हाँ जरूरी काम है, बहुत जरूरी।

—हिसाब-किताब देखनेका काम ना ?

...—हाँ, हाँ, दो-दो सालसे हिसाब नहीं देखा गया। तुम उसके जिम्मेवार हो, हिसाबको तन्देहीसे देखो।

ढब्लाके साथ वार्तालाप समाप्त हुआ। हम बँगलेकी ओर चले। रास्तेमें भिक्षुणियोंका मठ मिला। वैसे भिक्षुणियाँ अधिकतर अपने घरोंमें रहती हैं, किन्तु पूजा-पाठके लिये वह यहाँ आती, कुछ अपनी महन्तानी के साथ यहाँ भी रहती हैं। भिक्षुणियाँ आम किन्नरियोंकी भाँति बड़ी मेहनती होती हैं, घरकी खेती-बारीको सँभाले रहती हैं। सिर्फ खाने-पीनेपर मर-मरके काम करनेवाली इतनी सस्ती दासी कहाँ मिलेगी, इसीलिये यदि वह चाहें, तो अपने श्रमसे अच्छा मठ और मंदिर कायम कर सकती हैं। जंगीमें उन्होंने बहुत अच्छा मंदिर अभी-अभी बनाया है।

नंबरदार अगरजीत देवतासे ससम्मान वार्तालाप करनेके अभ्यस्त हैं। वही ढब्लाके प्रबंधक हैं, इसलिये उन्हें बराबर हिसाब-किताब या दूसरे मामलोंमें देवतासे सलाह लेनी पड़ती है। ढब्ला उत्सवका बहुत प्रेमी है। तिब्बतमें भी भोटिया साहित्यके महान् विद्वान्के तौरपर प्रख्यात लामा तन्-जिन्-ग्यल्-छन (सुङ्नम् नेगी लामा) कनममें पधारे। ढब्ला बाजा-गाजाके साथ स्वागतके लिये गये। वह भोज-भाज उपवन यात्रा आदिके भी बड़े शौकीन हैं। प्रबंधक यदि खर्च अधिक होनेकी ओर संकेत करता है, तो वह नाराज हो जाता है, मैंने पूछा—देवतापर आपका कैसा विश्वास है?

—कभी-कभी नहीं भी विश्वास हो जाता है, किन्तु सोचते हैं, सारे लोग विश्वास कर रहे हैं। फिर झूठके साथ-साथ कोई-कोई बात सच भी निकल आती है। यदि देवताकी बात काटते हैं, तो वह धमकी देता है—"फिर हम गुप्त हो जायेंगे।" इसका भी डर लगता है, पूर्वजोंके समयसे चला आया देवता लुप्त हो जाये, यह ठीक नहीं।

सचमुच यदि किन्नरके देवता गुप्त हो जायें, तो यहाँके सामाजिक जीवनमें इतना बड़ा स्थान रिक्त हो जायेगा, कि लोगोंको जीवन बहुत रूखा लगने लगेगा। देवताका मतलब यहाँ है, हर दूसरे-तीसरे मास नियमित भोज, गाना-नाचना। देवताका अर्थ है समय-समयपर छोटे-बड़े महोत्सव। इन सभीमें नर-

नारी सामूहिक रूपसे सम्मिलित होते हैं। यहाँ सिनेमा नहीं है, मनोविनोदके दूसरे साधन नहीं हैं, फिर देवताओंके इस उपयोगको आप हटा कैसे सकते हैं?

१३ चिनी वापस

चिनी छोड़े दो सप्ताह हो गये थे, यद्यपि डाक स्पू तक बराबर मिलती जाती रही, किन्तु कुछ चिट्ठियोंका जवाब देना था, आये पार्सलोंको भी देखना था, और लौटते समय उसी रास्ते देखनेकी कोई नई चीज नहीं थी, इसलिये सोचा दो दिनमें चिनी पहुँच जाना चाहिये। यदि विश्राम करनेके दिनोंको छोड़ दें, तो नम्ग्यासे ४ दिनमें मैं चिनी पहुँचा, रामपुरसे चार दिनमें चिनी पहुँचा और शिम्लासे दो दिनमें रामपुर अर्थात् शिम्लासे १६६ मीलपर अवस्थित तिब्बती सीमांतपर दस दिनमें आदमी पहुँच सकता है, और बिना अपनेको अधिक कष्ट दिये। यदि पंजाब के प्रधान-इंजीनियरका आज्ञापत्र हो, तो हर दस-बारह मीलपर डाकबँगले हैं, जिनमें आरामसे ठहरते यात्राकी जा सकती है। हाँ, जो सवारीके भरोसे यात्रा करना चाहते हैं, उन्हें निराश होना पड़ेगा। बेहतर यही है, कि कमसे कम सामान (जिसमें उत्तरी भारतके सर्दीके कपड़े तथा चाय-चीनी-मसाला तो रखना ही होगा) के साथ दो आदमीमें एक भारवाहक शिम्लासे ही लेकर यात्रा शुरू करे। मुझे विश्वास है, हिमाचल सरकार मेवा-बागोंके लिये बनी इस भूमिका पूरा विकास करेगी, मोटरकी सड़क नजदीक तक आजायेगी, लोगोंको आकर्षित करनेके लिये यात्रियोंके आरामका अधिक प्रबन्ध करेगी, फिर खाते-पीते सैलानियोंके लिये किन्नर भूमि स्वर्ग बन जायेगी।

२७ जून (रविवार) को जलपानके बाद हम रवाना हुये। बेगारू पहिले चल चुके थे, और चपरासीको तो कल ही जंगी भेज दिया था, जिसमें हमारे पहुँचते ही घोड़ा और बेगारू तैयार मिलें। दो मील घोड़ेपर चढ़नेके बाद लिप्पा-खड्डसे पहिले ही उतराई शुरू हो गई। पैदल चले। चढ़ाईमें घोड़ेपर चढ़ना चाहा, तो खूसट रिकाब टूटकर अलग गिर गई। घोड़ेको आगे ले जाना बेकार था, खैर, चलनेका अभ्यास हो गया था, और दोपहरसे पूर्व हम जंगी पहुँच गये। वहाँ सब सामान तैयार करके चपरासी रारङ् चला गया था। हम भी रवाना हुये, और घोड़ापर सवार होते वक्त जान पड़ा, रारङ् तक आरामसे चलेंगे, किन्तु दो मील ही आगे बढ़े थे, कि घोड़ा बार-बार बैठनेकी कोशिश करने

लगा, सड़क थी इसलिये लुढ़कनेका डर नहीं था, किन्तु ऐसे घोड़ेसे छ मीलकी अगली मञ्जिल कैसे मारी जा सकती थी? उतर पड़े और रारङ् पैदल ही पहुँचना पड़ा। कहीं घोड़ेकी पीठ कटी, कहीं घोड़ा कूदनेवाला, कहीं रिकाब या जीन टूटकर गिरनेवाली, कहीं घोड़ा चलनेसे अधिक लेटनेमें होशियार, घोड़ेपर कनौरकी यात्रा करनेवालोंके लिये क्या-क्या आफत! जान पड़ता है, घोड़ा देनेवाले पूरी तौरसे बेगारू धर्मका पालन करते हैं, या इसे उनकी तोताचश्मी कह लीजिये।

अभी काफी दिन था, जब हम रारङ् पहुँच गये। यदि पहिले से प्रबन्ध कर लिया गया होता, तो आज ही हम पंगी पहुँच जाते। मैं तो ऐसा न करनेकेलिये पछता रहा था, यहाँ फिर उसी जंगलातकी कुटियामें ठहरना पड़ा, और अबकी यहाँ सहस्रसहस्र मक्खियाँ धावा बोल रही थीं। पंगीमें डाकबँगला था, और हर बँगलेकी भाँति वहाँ मक्खियोंके रोकनेकेलिये जालियाँ लगी थीं। बँगलेकी विशालता और स्वच्छताको देखकर मैं मुग्ध हो गया था। यहाँ नई डाक मिली, जिसमें मेहताजीकी भी चिट्ठी थी। उन्होंने मेरे सुझावोंके बारेमें लिखा था "...हम सारे हिमाचलमें फल उत्पादनके विस्तृत आयोजन में लग चुके हैं। हाँ, यातायातकी समस्या सबसे आवश्यक है और हमने उसे अपने हाथमें ले लिया है। क्रय-विक्रय और शीघ्र यातायातकेलिये हमें एक सहकारी (कोपरेटिव) संगठन तैयार करना है। कुछ विशेष महत्वके स्कूलोंमें मालियों, विद्यार्थियोंकी शिक्षाके लिये क्लासों तथा छोटे उद्यानोंका प्रबन्ध करना भी विचाराधीन है।

"जहाँ तक चिनी तहसीलमें डाक्टर भेजनेकी बात है, इसके बारे में मैं कुछ तुरंत करनेकी कोशिश करूँगा। और हिन्दी! वह तो हमारे प्रान्तकी (राज) भाषा बनाई जा चुकी है। कुछ इलाकोंमें तिब्बती भाषा पढ़ानेका आपका सुझाव बहुत लाभदायक है, और मैं उसे हाथमें ले रहा हूँ। यदि आप वहाँ काम चलाऊ तिब्बती जाननेवाले अध्यापक पायें, तो कृपया उनके नामसे मुझे सूचित करें। हम उन्हें तिब्बती सिखानेकेलिये खुशीसे थोड़ासा पारिश्रमिक देंगे। संस्कृतकी पढ़ाई भी विचाराधीन है।

"आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी, कि बुशहर और पास पड़ोस की

भूमिको मिलाकर हमने "महासू" के नामसे एक जिला बना दिया है, हम आशा रखते हैं, कि नातिचिरेण हम बुशहरमें एक फल-अनुसंधान स्टेशन स्थापित कर सकेंगे।

"मैं यह जाननेकेलिये उत्सुक हूँ, कि इस विशेष इलाकेमें यात्रा करते समय आपको कोई पुरातत्विक सामग्री दिखलाई पड़ी..."

पत्र पाकर मुझे प्रसन्नता होनी ही चाहिये, मेरे सुझाव बहरे कानोंमें नहीं पड़े। पत्रका उत्तर मैंने दो दिन बाद (२६ जूनको) चिनीसे भेजा, जो प्रायः निम्न शब्दों में था :

"—सोलह दिनों की यात्रा करके तिब्बत-सीमान्त पर भारतके अन्तिम गाँव नमूग्याको देखकर कलही लौटा। तिब्बती-संस्कृत-अध्ययनकी योजना पर पीछे लिखनेका इरादा रखता हूँ, इस समय कुछ अत्यावश्यक बातोंको ही लिखूँगा—

"(१) रारङ्, अकूपा और जंगी तीनों गाँव पानीके अभावसे 'त्राहि-त्राहि' पुकार रहे हैं। अकूपाको तो उजड़कर भाग जाना चाहिये। पाँच-छ सालसे वहाँके खेत परती पड़े हैं, अखरोट, चूली (छोटी खूबानी) और बेमी (छोटे आड़ू) के वृक्ष सूख चुके हैं। पीनेके पानीकी यह हालत है, कि शाम-सवेरे सूत जैसी पतली चश्मेकी धारा अवलंब है। लोग अपनी भेड़-बकरियोंकी माल ढुलाई या दूर जगह में थोड़े बच गये खेतोंके भरोसे बुरी तरह दिन बिता रहे हैं, पूर्वजोंके समयके घर हैं, इसलिये उन्हें छोड़ना नहीं चाहते। रारङ् और जंगीमें पानीका इतना अभाव तो नहीं है, किन्तु उसकी बहुत कमी हो गई है। ये तीनों गाँव शिम्लासे १५२-१५७ वें मीलके बीच हैं। जंगीसे तीन मील आगे और रारङ्से चार मील पीछे दो बड़ी धारें बहकर सतलजमें गिर रही हैं। डाइनामाइट, सीमेंट, और कुशल इंजीनियरका जहाँ काम हो, वहाँ बेचारे गाँववालोंके हाथ क्या कर सकते हैं ? आप गजकी पुकारकी भाँति इन गाँवोंके आर्तनादको सुन इंजीनियर भेजकर इनका उद्धार कीजिये। लोग शरीर से मेहनत करनेको तैयार हैं। यदि नहर बन गई, तो यह लोग अपने खेतों और बागोंको तिगुना-चौगुना कर सकते हैं।

"(२) कनम् (१७०वाँ मील) और सुङ्नम्से आगे तिब्बती भाषा-भाषी हङ्रङ् इलाका है। यहाँके स्पू (१८६ मील) गाँवमें ७० साल पहिले मोरावियन

मिशनने काम आरंभ किया था, और वह प्रथम विश्वयुद्धके आरंभ तक काम करते रहे। उन्होंने वहाँ स्कूल खोला, फल लगाने और ऊन बुनाईका काम सिखलाया, डाकघर खुलवाया। उनके जानेके बाद डाकघर बन्द, स्कूल भी अब नहीं। सौ घरोंके विशाल गाँवमें पूर्णतया अंधकारका राज्य है। सारे हङ्रङ् इलाकेमें सिर्फ एक स्कूल हङ्गोंमें है। यहाँके निम्न गाँवोंमें तुरंत स्कूल खोलनेकी आवश्यकता है—स्पू, नमृग्या, नाको, चाङो और लियो। कनौर (चिनी तहसील) पिछड़ा भूभाग है, और उसमें भी सबसे पिछड़ा है यह हङ्रङ् का इलाका। यहाँ हिंदीके स्कूल तुरंत सफल नहीं हो सकते, इसलिये आवश्यक है, कि यहाँ के स्कूलोंमें पहिलेकी दो श्रेणियोंमें तिब्बती भाषा पढ़ाई जाये, फिर साथ हिंदी भी। तभी विद्यार्थी फँसाये जा सकते हैं। स्पूके स्कूलको पीछे मिडल कर देना होगा। वहाँ पादरियोंका बनाया एक सुन्दर बँगला है, जो अब सरकारकी सम्पत्ति है। बँगलेकी ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिये, नहीं तो बर्बाद हो जायेगा।...

"(३) हिंदी हिमाचल प्रदेशकी राजभाषा है, किन्तु यहाँके तहसीलदार मुकदमे और दूसरे कारबार उर्दूमें करते हैं, यद्यपि वह हिन्दी अच्छी तरह लिख सकते हैं। जान पड़ता है, उनके पास हिन्दीके बारेमें कोई सूचना नहीं आई है। इसी तरह यहाँके स्कूलमें दूसरे दर्जेसे उर्दू अनिवार्यरूपेण पढ़ाई जा रही है। इन बेचारे विद्यार्थियों के उर्दू किस काम आयेगी? यहाँ तो हिन्दी-के बाद अँग्रेजी द्वितीय भाषाके अतिरिक्त यदि किसीकी इच्छा हो, तो उसे तिब्बती पढ़नेका अवसर देना चाहिये।........तिब्बती प्राइमर और चार रीडर लदाख (कश्मीर) में पढ़ाये जा रहे हैं, उन्हें यहाँ भी काममें लाया जा सकता है।

"(४) यहाँके लोगोंको बहुत कम मालूम है, कि देशमें कितना परिवर्त्तन हो गया है। हिमाचल सरकारको हिंदीमें एक "हिमाचल" पत्र निकालना चाहिये, और......सचित्र सस्ते दामोंमें हर जगह पहुँचाना चाहिये। पत्र पहिले मासिक निकले, फिर साप्ताहिक कर दिया जाये। इन पर्वतीय लोगोंका कलाके प्रति स्वाभाविक प्रेम है। अनपढ़ चित्रोंसे बहुतसी बातें समझ जायेंगे। पत्रकी एक प्रति प्रत्येक गाँवमें अवश्य जानी चाहिये। इसके लिये आपको डाक विभागका भी कान गरम करना होगा, जिसमें वह डाकघर खोलने में अधिक

उदारता दिखलाये (आखिर प्रचार भी सरकारका मुख्य कर्त्तव्य है)। चिनी तहसील के निम्न गाँवोंमें डाकघर खुलने चाहिये (पोस्ट मास्टरका काम स्कूल के अध्यापक कर लेंगे)—उड़नी, जगी, कनम् सुङ्नम्, स्पू, नमग्या, नाको, चाङो, नेसङ्, रिब्बा और कामरू।

"(५) यहाँ पुरातन सामग्री बहुत कम रह गई है। प्रोफेसर तूची की भाँति कितनेहो दूसरे लोग यहाँ आ चुके हैं, ऊपरसे यहाँके काठके घरोंमें अनेकोंबार आग लग चुकी है। कलाकी दृष्टिसे तो नहीं किन्तु पुरातत्त्वकी दृष्टिसे एक महत्त्वपूर्ण चीज प्राप्त हुई है, वह है प्राक्तिब्यतीत या प्रागबौद्ध मृतक समाधियाँ। इन्हें लोग गलतीसे ख-छे-रोम्खङ् (मुसलमानी कब्र) कहते हैं, इसीलिए जान पड़ता है इनका महत्त्व नहीं समझा गया। समय-समयपर घरोंके बनाते और खेतों-सड़कोंको खोदते वक्त जब कोई कब्र निकली, तो लोगोंने खोपड़ोके साथ मिट्टी के बर्त्तनोंको भी फेंक दिया। ऐसी कब्रें लिप्पा, कनम्, स्पू और नमग्या तक मिली हैं।......मुझे लिप्पामें काँसेका एक पूर्ण अर्धगोल बड़ा कटोरा तथा मिट्टीका एक टोटीदार मद्यकुतुप मिला।

आपके पत्रमें "महासू" जिलेका नाम पढ़नेसे पहिलेही मैं यहाँकी भाषाको शू भाषा कहने लगा था। शूभाषा संस्कृत और तिब्बती (भोट) भाषासे भिन्न है, जिसमें "शू" शब्दका अर्थ देवता है। शू कोई प्रागार्यकालीन जाति थी, जिसका सम्मिश्रण आर्य जातिसे हुआ और अंतमें (ईसाकी सातवीं सदीमें) तिब्बतियोंसे संगत हुई। आजकी भाँति अशोकके समय भी यहाँके भेड़-बकरी वाले जाड़ोंमें कालसी (देहरादून) जाया करते थे। संभव है, उस समयकी भी कोई सामग्री भूमिके भीतरसे निकले। इसलिये हिमाचल सरकारको सूचना निकालकर प्रत्येक स्कूल अध्यापक और नंबरदारके पास भेज देना चाहिये, कि ऐसी सामग्री सुरक्षित तौरसे तहसीलदारके पास पहुँचा दी जाये, और तहसीलदारको भी आदेश हो, कि उसे अधिक दाम पर खरीद लें।

"(६) सेब, अंगूर, नासपाती, आलूबुखारा, आलूचा, पिस्ता, बादाम, आड़ू, अखरोट, बेमी, खूबानी, सर्दा, खर्बूजा आदि फल यहाँ पैदा होते हैं, जिनमेंसे बहुतोंके नमूनोंके साथ यहाँके उद्यान व्यवसाय पर तहसीलदार साहबसे अलग नोट लिखवाकर भेजवा रहा हूँ। बस्पा उपत्यकाके किसी चश्मेमें

मिट्टीके तेलकी गंध आती बतलाई जाती है, किसी जगह सीसेके धातु-पाषाण मिलते हैं। अबरख और कोई धातु पाषाण यहाँसे कुछ मीलपर पूर्वणीमें मिलते हैं। इनका नमूना मैं अगली डाकसे आपके पास भेज रहा हूँ।......यहाँके लिये विशेषज्ञ भूगर्भशास्त्री चाहिये।........"

× × × ×

रारङ्की उस कुटियामें बैठे मैं समाचार-पत्र पढ़ने और मक्खियोंके भगानेमें लगा था, उसी समय मेरा ध्यान नीचे दो-सौगजके फासले पर जलते अंगार-पुंज और एकत्रित जन-समूहपर पड़ा। मालूम हुआ रारङ् देवता आया हुआ है। वहाँ उसकेलिये भोजकी तैयारी हो रही है। मेरे जिज्ञासा करनेपर मेटने कहा, मैं भोजका नमूना लाये देता हूँ। वह वहाँसे थाली भरवाकर लाया, जिसमें थे (१) घीमें पका गुड़का हलवा, (२) चूलीके तेलमें पकी मोटी पूड़ियाँ (पोले या बिठूरे), (३-४) मक्खन सहित सत्तूका गोला, (५) फाफड़ (ओगले)का चीला। यहाँका भी देवता बुद्ध-धर्मको मानता है, इसीलिये शायद मांस नहीं था।

चिनी आनेके समयसे ही चूलियाँ (छोटी खूबानी) फली देख रहा था। अब तक उन्हें जब तब पोदीनेके साथ चटनीके लिये इस्तेमाल करता रहा, किन्तु आज पहिली बार यहाँ पकी चूलियाँ खानेको मिलीं। बहुत मीठी थीं, अथवा नव-फल था, इसलिये वैसा मालूम हुआ। अभी गाँवसे तीन हजार फुट नीचे नदीके तटभाग पर चूलियाँ पक रही थीं, क्योंकि वह स्थान अधिक गर्म था। फल और अनाजके पकनेका समय क्रमशः नीचेसे ऊपरकी ओर बढ़ता है।

अगले दिन (२८ जून) सबेरे चाय पीकर मैं चल पड़ा। घोड़े और बेगारूके लिये प्रतीक्षा करनेकी जगह कुछ चंक्रमण ही किया जाये। सारी उतराई पारकर रास्तेपर बीरीवृक्षके नीचेके चश्मेके पास बैठ गया। एक स्त्री पेटके दर्दसे कराह रही थी। मेरा एंड्रूज साल्ट तो बेगारुओंके पास था, और वह अभी जल्दी आनेवाले नहीं थे। स्त्री भेड़-बकरियोंके साथ नीचे जाड़ों में गई थी, इसलिये टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेती थी। दूर देखा, घोड़ा लिये कोई जल्दी-जल्दी आ रहा है। सवार हो नौ बजेसे पहिले ही पंगी पहुँच गया। पंगीका पुराना

मेट मौजूद था। "घोड़ा नहीं आदमी नहीं" कह रहा था। अब तो ६ मील की बात थी और खड्डुमें हल्की चढ़ाई डेढ़मीलसे अधिक नहीं थी। मैं क्यों पर्वाह करने लगा? थोड़ी देर विश्राम करनेके बाद चल पड़ा। पंगी (कोजंग) गंगामें पहुँचते-पहुँचते देखा, मेट भी घोड़ा पकड़े पहुँच रहा है। अब भी कह रहा था—घोड़ा लौटाने वाला नहीं आया, क्या करूँगा मैं ही चला चलूँगा। किन्तु वहाँसे कोलीको चिनी जाना था, इसलिये मेटको आनेकी जरूरत नहीं पड़ी। मैं दोपहर होनेसे पहिले ही बँगलेपर पहुँच गया।

चिट्ठियाँ और समाचार पत्र तो बराबर मेरे पास पहुँचते रहे, किन्तु मैंने पार्सलोंको यहीं रख छोड़नेके लिये कह रखा था। वह कई थे। श्री निवासजीने मेरी उपलभ्य सारी पुस्तकों और मसालेकी बोतलके साथ चाय, साबुन, मांस-मछलीके टिन भेज दिये थे। मांसके टिनको खरीदते समय देख भी नहीं लिया क्या है, खैर, यहाँ सर्वभक्षी जो ठहरे इसलिये दोनों टीन अकारथ नहीं गये। ३०, ३२ पुस्तकें (अपनी) मँगवाकर पछता रहा था, क्योंकि यहाँके लोगों अर्थात् अध्यापकों—में अध्ययनका कोई शौक न था। मैं उन्हें स्कूलको मुफ्त देना चाहता था, किन्तु पुस्तक का दान भी तो वहाँ देना चाहिये, जहाँ उसका कोई सदुपयोग हो। इन पुस्तकोंको यदि किसीने पढ़ा, तो रेंजर पंडित देवदत्त शर्मा और उनकी बहिन तथा पत्नी ने। रामपुरमें अवश्य पुस्तकोंके प्रेमी हैं, किन्तु दस पंद्रह सेरकी पुस्तकोंको बरसात में फिर सँभालकर रामपुर ले जानेकी समस्या है, जिसे अभी (२२ जुलाई) तक मैं हल नहीं कर सका। श्रीनिवासके अतिरिक्त 'कमलेश'जी (पद्मसिंह शर्मा, आगरा)ने भी डेढ़ सेरके करीब मसाला भेज दिया। मैंने पाव-डेढ़ पावकेलिये लिखा था, और वह समझे होंगे, मैं अब हिमाचलमें गोड़ तोड़कर जम गया हूँ। ऊपरकी सारी यात्रा मैंने बिना घड़ीके की। घड़ी बिगड़ गई थी, उसे शिमला कुमारी रजनीके पास भेज दिया था। जब तब आँख कलाईपर पहुँच जाती थी, और फिर कहावत याद आ जाती थी 'एक पूतको पूत न कहो...।' लेकिन आदमी घड़ियोंकी दूकान भी तो लिये घूम नहीं सकता। हाँ, इन दिनों आनन्दजीके पास निरन्तर घड़ीकी जोड़ीको देखकर मुझे उनकी होशियारीकी दाद देनी पड़ रही थी। युगोंसे घड़ी लिये घूमनेके बाद सचमुच समयके बारेमें अँधेरेमें रहना अच्छा नहीं मालूम होता।

चिनीमें १६ दिन बाद लौटनेपर कोई बहुत परिवर्त्तन नहीं मालूम होता था। डाक्टर ठाकुरसिंह अब भी उसी तरह दिनमें प्रसन्नमुख और शामके बाद शराबमें डूबकर गम-गलतकर रहे थे। हरे खेतोंमेंसे कितने ही कट गये थे। हवा चलनेपर भी अब सर्दी नहीं मालूम होती थी। दिनको मक्खियों और रातको पिस्सुओंके प्रहारसे दिल परेशान हो रहा था। हाँ, अब साग और फल (खूबानी) से भंडार भरपूर रहने लगा। यह भी एक नई बात हुई। वस्तुतः यदि इस मेवोंके देशमें मेवों और साग-तरकारियोंकी बहार लूटनी हो, तो यहाँ अगस्तके शुरूसे आकर अक्तूबर तक रहना चाहिये। अपुन कहाँ इतने भाग्यशाली हैं। अगस्तके शुरूमें ही यहाँसे कूच करना है, और यद्यपि यहाँ आये थे-सदाकेलिये चिनीको ग्रीष्मनिवास बनाने और लौटते समय विश्वास नहीं, कि चिनीको फिर देखनेका अवसर मिलेगा।

१४ फिर चिनीमें

पहिले सोचा था, जुलाईके अन्ततक चलकर कोटगढ़में अगस्तभर रहा जाये। इसके लिये ऊपर जाते समय डाक्टर भगवानसिंहको पत्र भी लिख चुका था, और उनकी प्रेरणापर श्रीमती अमीरचन्दने एक मासकेलिए अपना बँगला भी देना स्वीकार कर लिया था। किन्तु, फिर विचार बदलना पड़ा, जिसमें कारण रास्तेकी वर्षा, वहाँ करनेके कामका प्रस्तुत न होना था। चिनीमें और ठहरकर मैंने अपने समयको बर्बाद भी नहीं किया। बोलके लिखानेसे मन थोड़ा आलसी हो गया था। मैंने उसे साम-दाम-दंड-विभेदसे काम करनेकेलिये तैयार किया, और उसका फल है यह 'किन्नर देश'। इसका श्रेय सत्यार्थीजीको भी न देना कृतघ्नता होगी। उनके पास यात्राकी प्रथम मंजिल ऊपर जानेसे पहिलेही भेज दी थी, लौटनेपर उनका तार मिला। देखकर हँसी आई। शिमलासे १३६ मील दूर इस जगहकेलिये शिमलामें तार भेजनेसे क्या लाभ? समझा होगा, चिनी शिमलाके आसपास ही कोई जगह होगी। उनके आग्रहको मैंने स्वीकार कर दिमागमें पकते किन्नर इतिहासपर सिंहावलोकन कर डाला। लिखनेमें ही इतनी कठिनाई हो, तो उसकी कापी कौन रखे। लेख भेजे तीसरा सप्ताह बीत रहा है, किन्तु अभी न डाकघरने रसीद भेजी और न सत्यार्थी ही ने। डाकघरोंने तो अब लौटती रसीदका भेजना अनावश्यक मान लिया है। मैं

समझता हूँ, औरोंका भी अनुभव ऐसा ही होगा। सत्यार्थीजीने भी लेख नहीं पाया क्या? अथवा दो एक दूसरे लेखोंकी भाँति यह भी मृत्यु भवनकी सैर करने गया (पीछे प्राप्ति पत्र मिल गया)। सत्यार्थीजीकेलिये तो खत लिखते समय मनने कहा, फिर किन्नरपर एक छोटी सी पुस्तक ही क्यों न लिख दी जाये, यात्रा सफल और सुफल हो जायेगी। मनके मुँहसे बस बात निकल जानेकी देर थी, जीभ पकड़ ली गई, और रविवार छोड़ प्रतिदिन सोलह पृष्ठ लिखनेका व्रत बँध गया।

चिनी लौटकर देखना आवश्यक था, कि मूत्रमें चीनी है या नहीं। दो बार परीक्षा करनेपर अभाव निकला। क्या सचमुच मूजी डायाबीटिस् भाग गया? फूलकर कुप्पा होनेका मन नहीं करता। वैसे शरीरका परिवर्त्तन स्वास्थ्यकी ओर मालूम होता है। हेडमास्टर साहेब (पंडित दौलतरामजी) ने दो मास बाद देखा, तो उन्होंने भी स्वास्थ्य सुधारका साक्ष्य दिया। हाँ, पाचन-शक्ति अवश्य कोमल हो गई है, यदि 'भोजने मात्रज्ञता' सूत्रकी जौ भर भी अवहेलना होती है, तो पेट हड़ताल करनेकी धमकी देने लगता है।

हाँ, चिनी लौटकर एक और परिवर्त्तन देखनेमें आया और वह घरके अन्दर। चूहोंके डरके मारे पुण्यसागर आलू और प्याजकी आलमारीके भीतर बन्द करके गये थे, आने पर उनकी खेती लहलहा रही थी। आलू सारे पौन-पौन बित्ते तक अंकुरित हो गये। प्याजमें कुछही सती साध्वी निकलीं। आलुओंकी तरकारी बनाते भी सवाल हुआ, इन सारे अंकुरित आलुओंका क्या किया जाये। दस सेरसे अधिक ही थे। सोच रहे थे, कहीं दुःस्वादु न हो जायें, इसलिये उनमेंसे कुछको लेकर आधी क्यारी बो दी। पुण्यसागर आश्चर्य करने लगे—क्या यहाँ खानेकेलिए बैठेंगे? मैंने कहा—सारा काम अपनेही खानेकेलिये नहीं करता। जैसे हम दूसरोंके कामसे लाभ उठाते हैं, वैसे ही हमारे कामसे यदि दूसरे लाभ उठायें, तो क्या हरज? प्याजकी हमने पाँच ही सात गाँठें बो दीं। बीज बँधनेकी प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं, जैसेही पत्तियाँ चार-पाँच अंगुलकी होतीं, पुण्यसागर उन्हें नोचकर चटनीमें डाल देते। पहिले चटनीमें चूलीहीका प्रवेश था, अब सेब भी शामिल हो गया। हाँ, अभी सेब कच्चा ही है, यद्यपि उसकी लाली और शोख हो गई है। यहाँ आनेसे पहिले

रामपुरमें ही पता लग गया, कि कनौरमें मधु खूब होती है, और मधुसे चीनीके महँगी होनेके कारण मिलनेका डर नहीं। मधु डायाबेटिसमें हानिकारक नहीं, यह भी फतवा रामपुरमें मिल चुका था, इसलिये मैंने यहाँ आते ही मधु भक्षण और मधु संचयमें तत्परता दिखलानी शुरू की। चन्द ही दिनोंमें मालूम हो गया, सफेद मधु नहीं मिल सकती। उसकी ऋतु नहीं, लाल मिल सकती है। 'उपवास करन्ते सत्तू' मानकर उसीका संचय शुरू किया, हफ्ते-दो-हफ्तेमें तीन सेर जमा हो गया था। इधर मधु भक्षणसे अब ऊब गया। उत्तरापथसे लौटने-पर मधुकी समस्या सामने आई, क्या इसे समेटकर साथ ले चलना होगा। दिमागपर समस्याका हथौड़ा पड़ता है, तो बात सूझ ही जाती है। सुना, ओगले (फाफड़े)के आटेका चीला (चिल्ला) बहुत अच्छा बनता है, और खमीरके बिना तुरन्त घोला, तवेपर रखा, फिर उतारकर खाते गये। नमकीन चीलोंसे मीठे चीलोंके प्रति मेरा पहिलेहीसे पक्षपात था, और रूसमें रहते समय यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई, कि वहाँ मीठे चीलोंका बोलबाला है। सतजुगमें रूसियोंको चीनी और गुड़का क्या पता था? चुकंदरकी चीनी तो सौ डेढ़ सौ वर्षकी चीज है, जो रूसमें और पीछे शुरू हुई। तो पहिले वहाँ चीले कैसे खाये जाते थे? चीलेही क्यों हरएक मीठे भक्ष्यकेलिये वहाँ मधुका उपयोग होता था—"मधुवाता ऋतायते, मधुक्षरंति सिंधवः।" की ही कामना थी। "मैंने पुण्यसागरसे कहा—मधु समस्या हल हो गई।" उन्होंने चकित होकर पूछा—"कैसे।" मैंने कहा—डटकर रोज शामको मधुमिश्रित चीले बनाते जाओ। परिणाम यह हुआ, कि प्रस्थानके १६ दिन रहते ही मधुस्रोत सूख जायेगा।

चिनीमें परिचय तो बहुतोंसे हुआ, किन्तु घनिष्ठता बहुत कमसे बढ़ी। दोष दोनों ओरसे हो सकता है। सबसे नजदीकके तो हैं डाक्टर ठाकुरसिंह। ठाकुरसिंह कुशल कम्पौंडर हैं, लोगोंने उन्हें आनरेरी डाक्टरकी उपाधि दे रखी है, और वस्तुतः वह कई सालोंसे उसी पदसे काम भी कर रहे हैं। जबसे चिनीका अस्पताल डाक्टर-विरहित हुआ। उनके दो रूप हैं एक सूर्योदयके बाद दूसरा सूर्योदयसे पूर्व। शामको नित्य नियमसे वह सुरा देवीका सेवन करते हैं, यद्यपि कभी-कभी जीभ बेकाबू हो जाती है, किन्तु हाथ-पैरको बेकाबू होते मैंने नहीं देखा। जीभ बेकाबू होनेपर भी वह धर्म और सुराके गुण गानपर

लग जाती है। उनका विचार है, ऋषि-महर्षि जिस सोम-रसका पान करते थे, वह सुरा ही है। ठाकुरसिंह सुराके अनन्य भक्त होते भी दर्जन सालसे ऊपर हो गये, जबसे उन्होंने मांसको नहीं छुआ। ठाकुरसिंहके हम्पियाले हम्निवाले कई हैं, जिनमें धर्मानन्दसे थोड़ा-बहुत मेरा भी परिचय हो गया है। हमारी बातचीत अधिकतर दोपहरके आस-पास होती रही है, जब कि वह प्रकृतिस्थ रहते हैं। उमर साठसे ऊपरकी होगी। पहिले तहसीलमें लिपिक थे, अब पेंशन पाते हैं। कहते थे—मैं कभी-कभी जब कोई मित्र आग्रह कर देता है, तो पी लेता हूँ। मैंने कहा—मात्रासे क्यों नहीं पीते? बोले—'उस समय हाथ रोकना मुश्किल हो जाता है।' और हाथ न रोकनेका फल दो तीन दिन पहिले देखनेमें आया। किसी दोस्तके यहाँ पान-गोष्ठी करके आ रहे थे। ऊँची-नीची जमीनमें पैरोंने जवाब दे दिया। गिर पड़े, कनपटी पत्थरसे टकराई, खून बहने लगा। खैरियत हुई, यातायातके रास्तेपर गिरे और किसीकी नजर पड़ गई। ठाकुरसिंह दोस्तोंको लेकर पहुँचे। उठा लाये, कुछ उपचार करनेके बाद होश हुआ। पुण्यसागर पूछ रहे थे, किसी पुस्तकका नाम बतलावें जिसमें मद्यके दोष लिखे हों। मैंने कहा—'किताबें मिल सकती हैं, लेकिन किताबों और उपदेशोंने लोगोंसे शराब नहीं छुड़ाई है। यहाँ किन्नरमें हर महीने हर गाँवमें मद्यपानके लिये कठोर दण्ड लोगोंको मिलते रहते हैं—शिर फूटते हैं, लोग मरणासन्न हो जाते हैं। इससे बढ़कर कोई क्या उपदेश देगा?''

पंडित देवदत्त शर्मा (अमृतसरी) तरुण रेंजर मुझसे एक मास पूर्व अपनी नवविवाहिता पत्नी और बहिनके साथ यहाँ पहुँचे। एक देहरादून कालेजसे आये बहुत समय नहीं हुआ। मेहनती हैं। कठिन पर्वतोंको छाननेमें यहाँ वालोंसे जरा भी पीछे रहनेवाला नहीं। कर्त्तव्यके पाबन्द और अपने निम्न कर्मचारियों-को भी पाबन्द रखना चाहते हैं, डर है कहीं यह मँहगा सौदा न हो जाये—विशेषकर वन-रक्षकों, बनकोंको अनुचित पैसा लेनेसे रोकना। पंजाबके हिन्दुओंने हिन्दीका पठन-पाठन अपनी माँ-बहिनोंको सौंपकर छुट्टी ले ली, किन्तु अब पूर्वी पञ्जाब सरकारने हिन्दी, गुरुमुखीको राजभाषा बना दिया। औरोंकी भाँति शर्माजी भी मजबूर हुये, कि हिन्दी पढ़ें। महीने दो महीनेमें सरकार परीक्षा लेने जा रही है। उन्होंने काफी उन्नति कर ली है। उनकी बहिन और पत्नी तो

मेरी मँगाई पुस्तकोंका खुलकर उपयोग करतो हैं। शर्माजीको भी आदत लग गई और उन्हें नगद लाभ भी मिल रहा है। शर्माजी हैं बड़े मिलनसार, या हम दोनोंको यहाँ आपसमें मिलनेसे मिलनसारीका प्रमाण-पत्र नहीं दिया जा सकता, इस झारखंडमें एक तरहके संस्कृत तथा शिक्षाके तलवाले मिल भी नहीं सकते। वैसे शर्माजी कभी-कभी आ जाते हैं और 'किन्नर देश' से कोई अंश सुनते भी। मैं रविवारकी छुट्टीकी शामको उनके घरका रास्ता ले लेता हूँ। मुझे उनकी बहिन और पत्नी पर तरस आता है। कहाँसे इस जंगलमें पहुँच गईं, जहाँ पर्दा न रखने पर भी कहीं आने-जाने मिलने-जुलनेका अवसर नहीं, चूल्हाशास्त्रका अध्ययन करो, या पुस्तक मिल गई तो उसके पन्ने उलटो।

नेगी ठाकुरसेनके भतीजे तरुण बलवन्तीसिंह यहाँकी एक मात्र दूकानके संचालक हैं। मेरे यहाँ पहुँचने के दिनसे ही उन्होंने हर तरह से मेरी सहायता करनेका प्रयत्न किया और दुर्लभ खाद्य-सामग्री प्रस्तुत की। उनमें दोष यही है, कि यहाँके दूसरे शिक्षितोंकी भाँति मेट्रिक पासकर उन्होंने पुस्तकोंसे बैर कर लिया।

स्कूलके मास्टर बाबू बिहारीलाल, बाबू रामजीदास, बाबू नारायणसिंह, बाबू प्रिय भारत सभी सज्जन हैं, जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, किन्तु जिज्ञासा और पुस्तक-प्रेम किसे कहते हैं, इसे न जाननेमें हरएक एक दूसरेका कान काटता है। इसका यह अर्थ नहीं, किन्नरकी मिट्टीमें ही ऐसी तासीर है। मैंने युक्त प्रान्त और बिहारके अध्यापकोंमें भी ऐसा बहुत देखा है। १६४३में हम निजामाबाद (आजमगढ़) के मिडिल स्कूलमें गये, उसी स्कूलमें जहाँसे मैंने मिडिल पास किया था। मेरे साथ नागार्जुनजी थे, उन्होंने अपने किसी प्रसंगमें हेडमास्टरसे राहुल सांकृत्यायनके बारेमें पूछ दिया। वह क्या जवाब देते। उन्होंने यह नाम कभी नहीं सुना था। नागार्जुनजीको अचरज हुआ, मुझे अचरज नहीं हुआ। सिर्फ यह मालूम हुआ कि १६०६से १६४३के बीच इन ग्रामीण स्कूलोंमें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ।

किन्तु अब मतदाताओंकी सूची तैयार हो रही है। अब सतलुज उसी चाल-से नहीं चलती रहेगी, जैसे सहस्राब्दियोंसे चलती रही। पटवारी रेलसे सैकड़ों

मील दूर दुर्गम हिमाचलके गाँवोंमें घूमकर नाम लिख रहे हैं। लोग चकित हैं, किसी अज्ञात अनिष्टकी सम्भावना देख रहे हैं—क्यों २१ सालसे अधिकके पुरुषोंका नाम लिख रहे हैं ? लड़ाई पर भेजेंगे क्या ? किन्तु साठ सालके बूढ़ोंका नाम क्यों लिख रहे हैं ? और २१ सालसे ज्यादाकी स्त्रियोंका नाम क्यों लिखा जा रहा ? क्यों, उन्हें पकड़-पकड़कर नीचे तो नहीं ले जायेंगे ? क्या जाने कहीं स्त्रियोंका अकाल पड़ा हो ? दाम भी देंगे या मुफ्त ही ? 'आजकल अब माँ-बाप पहिलेकी भाँति बीस-तीसपर लड़कीका सौदा नहीं करते।' खान्दानी घरकी लड़की दो-तीन सौसे कमपर नहीं मिलती। वैसे तो कभी बिना पैसेकी भी चली आती हैं'—धर्मानन्दने कहा था। लेकिन यदि स्त्रियोंको बाहर ले जाना है, तो तरुणियोंका काम होगा, सत्तरी-बहत्तरी बूढ़ियोंके नाम लिखनेका अर्थ क्या ? आज (२२ जुलाई) एक वृद्धने दो घण्टे सिर खपाया। उसे समझाया—राजा गया, अँग्रेज गये, पञ्चायती राज्य कायम हुआ, किन्तु नौकरोंके राज्यको पञ्चायती राज्य नहीं कहा जा सकता। पंचायती राज्यके पंचको २१ वर्षसे अधिक वाले सारे नरनारी चुनेंगे, इसीलिये यह लिखाई हो रही है। दुहरातेरहकर कहनेपर बूढ़ोंको बात समझमें आई और अच्छी तरह।

× × ×

वर्षा यहाँ कम होती है, किंतु कुछ तो होती ही है। उसीके भरोसे लोगों की खेती होती है। बादल तो जून समाप्त होनेके दिन भी कुछ तैरतेसे दिखलाई पड़े और "वृथा वर्षा समुद्रेषु" के अनुसार कभी-कभी सामनेकी कैलाश श्रेणीकी चोटियों (रल्-ङङ्; जेपङ्-रङ्, हा-रङ्) पर बरस भी जाते, किन्तु उसकी आवश्यकता तो खेतोंको होती है, जहाँ फाफड और ओगला सूख रहे हैं। खास-कर कंडे (पर्वतके ऊपरी भाग) की खेती तो मेघदेवताके भरोसे ही होती है, वहाँ कूलोंका पानी नहीं पहुँच सकता। वैसे जूनके अंततक जौ, गेहूँ, मटर कट चुके। मद्रासके चावलोंकी भाँति जान पड़ता है, उनकी कोई ऋतु नहीं होगी—जाड़ोंको छोड़कर, क्योंकि अगस्तके आरम्भमें भी कहीं-कहीं गेहूँ, जौ खड़े थे। फसलमें अनहोनी चीज मक्की भी दिखाई पड़ी, किन्तु सिर्फ एक खेतमें। कहते हैं जाड़ाके पड़ने तक मुश्किलहीसे वह पक पाती है, किन्तु होला तो खाया जा सकता है। आज (३१ जुलाई) मोटी बालोंको देखकर मुँहमें पानी भर आया।

अभी भुट्टे खानेलायक दो सप्ताह बाद होंगे। यह सुननेमें आश्चर्यकी बात होगी, कि कनौरमें कुछही साल पहिले तक आलू सिर्फ घरोंके पासही थोड़ा-थोड़ा बोया जाता था। दूरके खेतोंमें चोरका डर था, इसलिये लोग नहीं बोना चाहते थे। अब वह बात हट गई है, गाँवोंसेदूर कंडोंपर भी आलूके खेत लह-लहाते हैं। आलू जैसी सर्वव्यापक फसल कौन है? और ब्रह्म जिस तरह नरक छोड़ सब जगह बतलाया जाता है, उसी तरह यह नीचे की पानी जमा रहनेवाली भूमिको छोड़ सभी जगह होता है। पैदावारकी दरमें तो दुनियामें कोई फसल उसे मात नहीं कर सकती, अफसोस यही है कि आजके कनौर यात्रियोंको आलू के लिये आधे अगस्त तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, चिर्नीमें रहनेपर तो दो सप्ताह शायद, सैर सपाटा करनेवाले यात्री जब इधर अधिक आने लगेंगे, तो जूनमें तैयार होनेवाले आलू-गोभी भी बोये जायेंगे। फसलको दो चार सप्ताह पहिले तैयार करना अब कौन मुश्किल बात हैं? अभी बस्पा उपत्यकाके एक सज्जनसे बात हो रही थी। वह कह रहे थे,—हमारे यहाँ खेत भी बड़े बड़े हैं और पानी भी काफी (२५ इंच) बरसता है, लेकिन कोशिश करनेपर भी धान नहीं होता, बालें फूट आती हैं, किन्तु दाना नहीं पड़ता। मैंने कहा—इसका अर्थ है दाना पड़नेके समय तक तापमान गिर जाता है, और गर्मीके अभावसे बाल छूछी रह जाती है। खैर वैज्ञानिक ढंगसे संस्कृत (उष्णीकृत) बीज तो अभी हमारे कृषि-कालिजोंमें पढ़नेकी चीज है, किन्तु आप एक काम कर सकते हैं, कमसे कम परीक्षार्थ। लकड़ीकी द्रोणीमें मिट्टी पानी डालकर मई में ही बीज बो दें, धानका बीज बहुत घना बोया जाता है। दिनमें द्रोणीको उठाकर धूपमें रख दीजिये और रातको चूल्हेवाले घरके भीतर। पौधा दिनमें सूर्यके प्रकाशमें ही वायुमंडलसे भोजन ग्रहण करता है, रातको बाहर उसे कोई लेना-देना नहीं। जूनमें बीजको खेतमें रोप दीजिये। देखिये तो। वह बड़े प्रसन्न हुये, और कहने लगे, हम मूलीको इसी तरह लगाया करते हैं। मैंने कहा—देहरादून (बदरीपुर) की बासमतीसे दूसरे नंबरपर रामजवान धानपर परीक्षा कीजिये, यदि सफलता हुई, तो बहुत अच्छी श्रेणीका चावल होगा और बड़ी मटर (कलाय) की भाँति इसकी भी शिमले तक माँग होगी।

४ जुलाईको जब कुछ फुहार सी आई, तो कनौरी किसानोंके दिल हरे हो

गये। यहाँके देवता भी अपनी करामात घोषित करनेकी सोचने लगे। कनोरी देवता कच्चे गोइयाँ नहीं हैं। वह जो कुछ बोलते हैं, संध्या-भाषामें बोलते हैं, जिसमें शब्दोंके दो-दो नहीं चार-चार अर्थ हो सकें। आखिर भारी प्रतीक्षाके बाद ६ जुलाई को वर्षा हुई, लेकिन ओरी चूने भर नहीं सिर्फ धरतीका ओठ भिगोने भर क्योंकि यहाँकी छतें साधारणतया ब्रजकोसलकी भाँति कच्ची मिट्टीकी होती हैं। इतनी वर्षासे यहाँकी भूमिका क्या होता? दूसरे दिन क्या उसी शामको सड़कपर धूल दिखाई पड़ी। मेघोंको लुभाकर लोगोंका दिल दुखानेमें भी मजा आता है। यहाँ मेरे वासस्थानसे जिस तरह वह सतलुजकी धारके ऊपर-ऊपर तैरते जारहे थे, और जिस तरह सफेद बादलोंके बीचसे सूर्य किरण प्रतिबिंबित हिमाच्छादित शिखर झाँक रहे थे, उन्हें देखने और वर्णन करनेकेलिये तो किसी कविके नेत्र और हृदयकी आवश्यकता थी। वहभी यहाँके कृषकोंकी त्राहि-त्राहिमें अपनी सरस्वतीको मुखरित कर सकता, इसमें संदेह है। यहाँ बंगलेके जंगलेसे सप्तरश्मिरंजित हिमशिखरोंको देखनेकी कहाँ फुर्सत थी! मक्खियाँ एक ओरसे आक्रमण कररही थीं, और श्वेत पक्षधारी क्षुद्रमच्छर दूसरी ओरसे अपनी पैनी सूइयाँ चुभा रहे थे। हिमालयके ये क्षुद्र मच्छर सचमुचही आदमीको विह्वल कर देते हैं। आदमीको एक बातसे संतोष होता है, इनमें बुद्धि बहुत कम होती है, और सूई चुभाकर वहीं आसन् जमा लेते हैं, जिससे यदि कलमकी चाल मंद होनेका भय न हो, तो अपने सताने वालेको आप आसानीसे यमलोक पहुँचा सकते हैं। इन रक्तचूसक कीटोंमें सबसे बुरे हैं पिस्सू, जो काटते हैं बहुत जोरसे—जान पड़ता है किसीने चिंगारी लगा दी, और हाथ भी नहीं आते, हाथके उस जगह पहुँचते-पहुँचते नौ-दो ग्यारह, मच्छर, मक्खीसे चादर ओढ़कर आप अपनेको बचा सकते हैं, खटमलसे भी थोड़ा-बहुत बचाव हो सकता है, किन्तु पिस्सुओंसे बचनेका कोई उपाय नहीं। किसीने तो खटमलको ही हिन्दुओंकी त्रिमूर्तिको परास्त करनेवाला बतलाते हुये कहा:—

क्षीराब्धौ हरिः शेते हरः शेते हिमालये।
ब्रह्मा च पंकजे शेते, मन्ये मत्कुणशंकया॥

मैं समझता हूँ, त्रिमूर्ति-विजेता मत्कुण (खटमल) नहीं पिस्सू हैं। आज वह अपराजेय नहीं है, किन्तु उसके लिये घरको बराबर धोते साफ करते रहना

पड़ेगा, फिर भी अपने परिधानोंमें सैकड़ों पिस्सू लेकर घूमने वाले मेहमानोंको घरमें आनेसे आप कैसे रोक सकते हैं ? मैं जूओंसे अपनेको निश्चित समझे बैठा था, क्योंकि हर रविवार तीनबार साबुन लगाकर गर्म जलसे नहाना, और कपड़ोंको साबुन से धुलवा डालना, उनसे रक्षा पानेके लिये पर्याप्त था। किन्तु एक दिन एक श्वेतांग जूँको पिस्सू समझ कर पकड़ ही लिया। कितने भाई कहेंगे, रोज-रोज नहा लेते। रोज नहाना कठिन नहीं, ईंधनकी कमी नहीं, पुण्यसागरजीको जल गर्म करनेमें आलस्य नहीं, और पादरी ब्रोस्कीने अपने बँगलेमें एक छोटा स्नानकोष्टक भी बना छोड़ा है। किन्तु यहाँके तापमानमें रोज-रोज नहाना समयका अपव्यय ही नहीं बेकार भी मालूम होता है। सूर्य-भगवान्‌के दिनको तीनबार साबुन लगाकर गर्म जलसे स्नान करने पर सात दिन तक तो शरीर पर मैलकी तह जमनेका डर नहीं, और बिना साबुन नहानेका मैं पक्षपाती नहीं हूँ। यदि कोई रोज-रोज नहानेकी सार्थकताके लिये साबुन न लगाये, तो मुझे उसकी बुद्धिमानी पर संदेह होगा। हाँ, पुण्य कमानेवालोंकी बात मैं नहीं करता। अपना तो शास्त्र है—गर्म मुल्कमें रोज-रोज नहाना, हो सके तो तैरनेके लिये नदी मिलनेपर गर्मीमें दो बार भी नहाना, किन्तु हिमाचल जैसे बर्फानी देशमें नहानेका यह आग्रह, जहाँ धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूयके प्रधान ऋत्विज धौम्य भी वर्षों नहानेका नाम नहीं लेते थे, और जिनके बालों, देह और कपड़ोंकी असह्य गंदगीको देखकर एकबार युधिष्ठिर दूत भ्रममें पड़ गया था, अपनी आँखों या युधिष्ठिरकी बुद्धिपर। वैसे नित्य नहानेवालेको मैं पापका भागी नहीं बनाता। अड़तीस साल पहिले केदारनाथमें बाबा धर्मदासने जो शिक्षा दी थी, "बच्चा ! यहाँ रोज स्नान करनेकी आवश्यकता नहीं, कैलाशकी हवा स्नान करनेका काम देती है।" अपने रामने तो उसे इतनी कड़ी गाँठसे बाँधा, कि आज भी वह मनसे नहीं उतरती।

हाँ, तो वह जूँ कहाँसे आई ? पता लगा, कपड़ा धोनेवाले सज्जनके पास उसकी कमी नहीं थी।

अंतमें वर्षाकी प्यास जाकर २० जुलाईको बुझी। पहली रात और सारे दिन, फिर दूसरी रात भी वर्षा होती रही और ओरीचुवान। पहले दिन तो हमने वर्षासे टहलनेका व्रत तोड़ दिया। शिमला छोड़नेके बादसे ही यह व्रत

ले लिया कि रोज पाँच मील पैदल चला जाये। आदमी ठोकर खाकर सीखता है, यद्यपि उसमें बुद्धिमानी नहीं है। जैसे आज जीवनके लिए कुछ शारीरिक श्रमकी अनिवार्यता का अनुभव हो रहा है, यदि कहीं एक साल पहिले उसे समझा होता, तो डायाबेटिस्से पाला न पड़ता। बुद्धिजीवियो! सावधान, शरीर चलाना बेकार काम नहीं है।" हाँ, तो वर्षा जब दूसरे दिन भी होती देखी, तो व्रतका स्थगित रखना पसंद नहीं किया, और बरसाती पहिने पुण्यसागरके साथ टहलने निकल पड़े। पीछे तो देखा, वर्षा बराबर व्रत तोड़ना चाहती, किन्तु यहाँ विश्वामित्रका तो व्रत था नहीं। और अब (३१ जुलाईको) तो वर्षासे यहाँके किसान भी ऊब गये हैं, यद्यपि बंद करानेके लिये वह अपने देवताओंको मेघ देवता के पास भेजनेके लिये तैयार नहीं—क्या जाने वर्षा महीनोंके लिये न रुक जाये। किसानोंकी मेघ देवताके विरुद्ध शिकायत बजा है, यह तो मैं एक तटस्थ व्यक्तिके तौर पर कह सकता हूँ। यह चूलियों (खूबा-नियों) के पकनेका समय है और चूलियाँ कनौरवालोंके लिए सब कुछ है। जूनके अन्तसे पकने लगती हैं, और पहाड़की ऊँचाईके अनुसार अगस्त के आरम्भ तक पकती चली जाती हैं। उनका सुनहला और किसी-किसीका सेंदुरिया रंग देखनेमें बहुत सुन्दर और खानेमें भी मधुर—खासकर फसलके पहिले हफ्तेमें—मालूम होता है। फसलके समय लोग डटकर खाते हैं, पथिकोंको पाथेय लेजानेकी आवश्यकता नहीं। है भी बहुत, लोगोंने यद्यपि हालकी गिनती-में ८६,६०० वृक्ष चूलीके लिखाये, लेकिन सभीने कम-कम करके अपने वृक्षोंको बताया। डरने लगे, कहीं टैक्स बढ़ानेका तो यह डौल नहीं। बुशहरमें तो नहीं, किन्तु दूसरी पहाड़ी रियासतोंमें वृक्षोंको गिनकर कर लगाया जाता रहा है, फिर वृक्षोंकी गिनतीसे संदेह होना वाजिब ही ठहरा। फलदार वृक्षोंकी गिनती मैंने तहसीलदार साहेबसे कहकर करवाई, जिसमें वृक्षोंकी संख्या देख-कर सरकार प्रभावित हो और फलोत्पादनकी वृद्धिकेलिये बड़ा और तेज कदम उठाये। लोगोंने वृक्षोंकी संख्या आधा करके बतलाई, तो भी देखिए उन वृक्षोंकी संख्या कितनी है, जिनके फलोंको खरीदनेकेलिए हमें हर साल पाकिस्तानको हजारों गाँठें कपड़े और लाखों मन चीनी आदि देना पड़ेगा। चिनी तहसीलमें उनकी संख्या है—

अंगूर	सेब	नासपाती		आड़ू
६,८११	१०,१८५	१,२५७		२,६३२
आलूचा	खूबानी	बादाम	पिस्ता	अखरोट
७,०७२	७३६	४५१	११	११,६२६

यह तो वह फल हैं, जो नचारतक मोटर आनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, जो सड़क तैयार होते ही हमारे नगरोंमें पट जायँगे। यही नहीं सड़क बनते ही दस सालके भीतर वृक्षकी संख्या दस गुनी हो जायेगी। आज इन फलोंकी फसलके समय कोई कदर नहीं। मेरे टहलनेके रास्तेपर कभी किसीने एक दूकान बनाई, और वृक्षोंके साथ कुछ सेबके वृक्ष लगा दिये, अच्छी जातिके बड़े-बड़े सेब। किन्तु आज सेबोंकी कोई खोज-खबर लेने वाला नहीं। दस मनसे क्या कम सेब होते, किन्तु लड़कोंने नीचेकी डालियोंको साफ कर दिया। इनकी हमारे नगरोंको बड़ी आवश्यकता है, और जिनकी यह कदर है। इनके अतिरिक्त दूसरे फल हैं—चूली (८६,६००), बेमी (१५,१२६), बेसर (६५२), पालू (१२,६६७), और बरजाई (५१२)। बेमी (छोटा) आड़ू है; जिनके कारण कनौर वालोंको अपने अंगूर नीचे भेजनेमें जरा भी पछतावा नहीं होगा। बेमीका शराब शुरू हुये अभी थोड़ा ही समय हुआ है। किन्तु अभीसे पंगी ब्रह्मचारी जैसोंने प्रोपेगंडा शुरू कर दिया है "अंगूरी शराब, इसके सामने कुछ भी नहीं।"

मैं कह रहा था चूली की बात, जिसकी संख्या दो लाखसे कम नहीं होगी, अर्थात् प्रत्येक किन्नरपर पाँच-पाँच पेड़। और चूली फलनेमें बड़ी बेशरम है। प्रति वृक्ष ७-८ मन फलसे क्या कम होता होगा? चूली फलते ही चटनीका काम देती है, जिसकेलिये किन्नरोंको कोई प्रेम नहीं। किन्तु हमारे सैलानी उतने अरसिक नहीं हो सकते। पकनेके समय तो 'त्वमेव माता च पिता' है ही, फिर सुखा कर वह साल भर लोगोंका पोषण करती है। सूखी चूलीकी लपसी, मिल सके तो थोड़ा आटा मिलाकर, अधिकांश किन्नरोंका आहार है। यह वर्षा उसी चूली पर हाथ साफ कर रही है। छतें सुनहली चूलियोंसे, बसन्ती बनी हैं, कितने ही खेतोंको भी उन्होंने सुनहला कर रखा है। जुलाई मासका यह एक सुन्दर दृश्य है, जो दर्शकका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहेगा।

किन्तु यह वर्षा सारा गुड़-गोबर कर रही है। चूलियाँ सूख नहीं पा रही हैं, कुछ दिन और ऐसा ही रहा, तो वह सूर्य किरणोंसे वंचित हो सड़ जायेंगी। फिर साल भरकी जीविका? यह है लोगोंके मनमें भारी चिन्ताका कारण। आदमीने अल्प-विष्ट वाले शुष्क प्रदेशमें अपना निवास बनाया, वहाँकी कितनी ही असुविधाओंको अपनी सुविधामें परिणत कर दिया। अब जब उसमें व्यतिक्रम होने लगता है, तो उसका सारा जीविकोपार्जनका ढाँचा टूटने लगता है। हे मेघ देवता! यदि तुम्हारेमें जरा भी हृदय है, तो अपने बालगोपालोंकी रक्षा करो।

× × × ×

आजकल ब्लेडके जमानेमें हजामत कोई समस्या नहीं, तो भी छठे-छमाहे नाईका मुँह देखना ही पड़ता है। जहाँतक मुँहके बालोंका सम्बन्ध है, वह तो बीसों सालोंसे अपने ही हाथों बनते हैं। जबसे सुना कि अतम छुरा भयंकर बीमारियोंका एक शरीरसे दूसरे शरीरमें इंजेक्शन करता है, तबसे और जी घबराता है। इन पहाड़ोंमें और भी भयके कारण हैं। मैं देख रहा था, पुण्य-सागर और उनके दोस्त मुफ्ती तनखाह लेनेवाले माली—जहाँ तक इस अभागे बागका सम्बन्ध है—कमलानन्दकी दाढ़ी हर दसवें-पन्द्रहवें साफ हो जाती है। हज्जाम जरूर कोई था। मैंने अध्यापकी छोड़ दूकानदारी पर जुटे तरुण नेगी बलवन्तसिंहसे पूछा। उन्होंने कहा—हजामत! हमारे हेडमास्टर साहेब बहुत अच्छी बनाते हैं। मैंने कहा—यदि कष्ट न हो तो रविवारकेलिये कहना। पहिलेसे तै नहीं करा लिया था, किन्तु उस दिन पुण्यसागरसे कह दिया—आज स्नान मध्याह्नमें होगा। बिना स्नान-पूजा किये अन्न न ग्रहण करनेका कभी व्रत था। किन्तु अब तो "निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः", शंकराचार्य थारा बेट्टा जीबे, बड़े मौकेपर काम आते हो। टहल कर आये, तो मास्टर बिहारीलाल बँगलेपर मौजूद और सारे हथियारोंके साथ लैस। छूतका भी डर नहीं। हेडमास्टर साहेब हजामतका व्यवसाय नहीं करते, कि उनका छूरा हर किसीके सिरपर घूमता रहे। जहाँ उसका जरा भी सन्देह रहता है, मैं कैंचीका काम रखता हूँ। मास्टर साहेबने मशीनसे बाल काटा। मैंने पूछा—शान धरानेकेलिये क्या करते हैं? कहा—ऐसे तो उसकी महीनों नहीं वर्षों आवश्य-

कता नहीं पड़ती, क्योंकि मैं अपने हथियारों को किसी दूसरेके हाथमें नहीं देता। मैंने कहा—"लेखनी पुस्तकी नारी परहस्तगता गता" में एक यह भी जोड़ना चाहिये था। मास्टर साहेबको जरूरत पड़नेपर अपने हथियार रामपुर भेजने पड़ते हैं। उन्होंने सारा काम चुस्ती और सफाईसे किया। विश्वास नहीं रह गया नहीं तो कहता "पुरविले जनमका हब्बास।"

समस्यायें इस तरह हल हुआ करती हैं, व्यक्ति ही की नहीं समाज की भी। पहाड़में वैसे भी कम जातियाँ हैं, और किन्नरमें तो जमा-पूँजी दो ही जाति—कनेत और दागी। कनैत छूत और दागी अछूत। कनैत लिखनेमें डर लगता है, कोई मित्र नाराज न हो जायें, क्योंकि अब क्या पिछले राजा पदमसिंहके समय और उनकी आज्ञाके सारे कनैत अपनेको राजपूत लिखाते हैं। कामरूके कनैत ठाकुरसे राजपूत राजा बने वंशके अन्तिम प्रतिनिधिने अपने भाइयोंको भी खींचकर अपनी पंक्तिमें बैठा दिया—दाता उनकी आत्माको शांति दे। दागीमें फिर दो भेद हैं, लोहार और कोली। हिन्दू जातिकी तो यही विशेषता है, कि चाहे कितने ही लांछित स्थानपर रखा गया हो, किन्तु तुम्हें कोई असन्तोष न होगा, यदि तुम्हारेसे भी नीचेकी सीढ़ीपर किसीको बैठा रखा गया हो। लोहारकेलिये किन्नर भाषामें 'डोमङ्' शब्द आता है, जो 'डोम'का ही रूप है। यद्यपि बढ़ईको 'डोमङ्' नहीं 'औरस्' कहा जाता है, किन्तु दोनोंकी रोटी-बेटी एक है, अर्थात् वही कहीं बढ़ई, कहीं लोहार, कहीं सोनार, कहीं ठठेरे, कहीं पथेरेके रूपमें दिखलाई पड़ते हैं। यही नहीं बाजा बजानेका काम भी दागी लोग करते हैं। और बढ़इने तो संगीत-कलाकी आचार्या समझी जाती हैं। अभी कल ही (३० जुलाई) कोठीकी प्रख्यात गायिका हिरुपोंती ("पोती तो बती" है, किन्तु बहुत कोशिश करने पर भी नहीं समझ सका "हिरु" का क्या अर्थ होता है) गीत सुनाने आई थी। किन्नरकंठियाँ प्राचीन कालसे अपने सुकंठकेलिये विख्यात हैं, और अभी भी उन्होंने अपनी उस प्रतिष्ठाको कायम रखा है। मुझे अफ़सोस है, मैंने हिरुपोतीको गानेका मौका न देकर उसे संतुष्ट नहीं किया। लेकिन मुझे गीत सुनना नहीं लिखना था, जिसमें वह पाठकोंके सामने भी पहुँच सके। इसलिये यदि यहाँ कुछ भूल-चूक हुई होगी, तो उसमें पाठक भी सहभागी हैं। कलाकार हिरुपोती बढ़ई कुलकी है।

उसकी दो नाने (फ़ूफी) बनाओ और खइछो (जीवित तीन-बीस दस-साल) विख्यात जन कवयित्रियाँ रही हैं, इसलिये किन्नरके बढ़ईको सिर्फ विश्वकर्मा कहकर टाल न दीजिये।

और कोली ? सबसे अन्तिम सीढ़ी, सबसे निकृष्ट कामोंके धनी, और सबसे अधिक दाने-दानेकेलिये मुहताज। यही वहाँके चमार, मोची, भंगी, जुलाहे, धुनिये, धोबी और सब कुछ हैं। मतलब, जात न होनेसे काम नहीं रुकता। कुछ छोटे-छोटे कामोंकेलिये दार्गा मौजूद हैं। बाकी कामोंको कनैत लोग आपसमें ही बाँट लेते हैं। कुर्मी, काछी (कोइरी), भड़भूँजा, काँदू, माली, पटवा आदि के सारे काम किसीकी बपौती नहीं है, जिसकी मर्जी हो सो करे। मास्टर बिहारी-लालके हाथकी सफाई देखकर कभी मुझे तेहरान याद आता था, जहाँ साधारण सरतराश (शाब्दिक अर्थ शिरश्छेदक) एक हजामतका डेढ़ रुपया ले लेता था, या लंदन जहाँ एक हजाम दिनभरमें मजेमें २५ रुपये पाकिटमें रख सकता था। याद नहीं मैंने मास्टर साहेबसे यह बात कही या नहीं। खैर, यह बात तो अपने घुमक्कड़ शास्त्रमें लिखने जा रहा हूँ। घुमक्कड़ी धर्मको छोड़े बिना चलते-चलते सम्मानपूर्वक रोजी पैदा करनेका यह अच्छा मार्ग है, जिसे हर एक भावी घुमक्कड़को पहिले हीसे सीख रखना चाहिये—सिर्फ दाढ़ी-मूँछ बनाई ही नहीं पूरी सरतराशी। इसका यह अर्थ नहीं, कि मैं हजामको मिलनेवाले पारिश्रमिक का ध्यान रखके यह सब सोच रहा था। मास्टर साहेब अवैतनिक हजाम हैं। इस काममें उन्हें पुण्य भले ही मिल जाता हो, पैसेका वहाँ सवाल नहीं। और पुण्यार्जनका उन्हें काफी अवसर मिल जाता होगा, क्योंकि वह अपने हथियारको दूसरेके हाथमें देते नहीं।

आत्मविस्तार बड़े घाटेकी चीज है, इसलिये "काजीजी दुबले शहरके अंदेशेमें" काजीके इस कामको उपहासास्पद समझा जाता है। यहाँ, इतने दूरके स्थानमें संसारकी आँधी-बयारके आनेका कहाँ मौका ? किन्तु दो-दो दैनिक और हर डाकसे आनेवाले दस-दस पंद्रह-पंद्रह पत्र आखिर ले क्या आते ? हाँ, ठीक है आँधी-बयार ही नहीं लाते थे, यदि वही लाते, तो डाकका रास्ता तोड़ देना असंभव नहीं। मनुष्य अपने व्यक्तित्वको जितना ही फैलाता है, बाहरी घात-प्रतिघात और वृत्त-प्रवृत्तिका उतनाही अधिक प्रभाव उसके ऊपर होता है।

यह पोस्ट या पत्रायन व्यवस्था हर्ष और विषाद दोनों को सुलभ करती है। हर्षकी बातका प्रभाव उतना स्थायी नहीं होता, जितना विषाद की बातका। खैर, उन हर्ष विषादकी बातोंको मैं गिनने नहीं जा रहा हूँ, प्रथम तो वह मेरे पास देरतक ठहरना नहीं चाहते, और चाहें भी तो वहाँ गीतायोग नहीं घुमक्कड़ योग उन्हें ठहरने नहीं देता।

इधर आत्मविस्तार या "दुबले शहरके अंदेशे" का परिणाम यह हुआ है, कि ईजानिब चाहते हैं हिमाचल—विशेषकर किन्नर देश की सारी समस्याओंको ऊपर निकाल लाये। बात असंभव है। इसके लिये कोई सर्वज्ञ पैदा होना चाहिये, जिसका दावा बहुतोंने किया है, किन्तु हुआ आज तक कोई नहीं। तो आत्मविस्तारकी सनकने फलोत्पादन विस्तार पर कलम उठानेकेलिये मजबूर किया। अपने तो तहसीलदार मंगतराम जी जैसे भले मानुसको भी कष्ट में डाला और उन्होंने खामखाह की तनख्वाह खानेवाले पटवारियोंको लगाकर चिनी तहसीलके पेड़ोंको गिनवाया। एक आदमीकी सनकने कितनों को परेशान किया! यहीं तक नहीं गिनती हो जानेके दिनसे तो कितने पेड़वालोंकी नींद हराम हो गई। "टिक्कस तो लगेगा ही क्या जाने चार आना पेड़ लगता है, या आठ आना।" पेड़ गणनासे मालूम हुआ कौन-कौन इलाका आजभी मेवोंका केन्द्र है? निम्नतालिकामें अधिक पेड़वाले गाँवोंको ही दिया गया है, और प्रतिशत सारी तहसीलका है—

तालिका (पृष्ठ १८४)से मालूम पड़ता है, कि सतलुजके दाहिने तटपर रोगीसे तेलंगी, और बायें बारङ्से मोरङ्तकका भूभाग मेवोंके केन्द्र हैं, जो दोनों-ही नदीके आमने-सामने हैं। इस मेवा ज़ारको ऊपरकी और आगे नम्ग्या (सीमांत तक) बढ़ाया जा सकता है, क्योंकि सतलुज रोगीसे हमारी सीमा तक साढ़े पाँचसे साढ़े सात हजार फुट पर ही बहती है। साढ़े-पाँच से नौ हजार फुट ऊँचाईकी भूमि उन सारे मेवोंको पैदा कर सकती है, जो क्वेटा, काबुल, ईरान और मध्य-एसियामें होते हैं, और स्वादमें भी उनसे कम नहीं। मैं समझता था, शायद सदाकेलिये हमें पाकिस्तान की ओर मुँह ताकना पड़ेगा, किन्तु मालूम हुआ, यहाँ सर्दा भी पैदा करके देख लिया गया है (मैंने छोल्टूमें खाया भी)। साधारण खर्बूजे तो मिश्रीके टुकड़े होते हैं। आलू बुखारा होता

अंगूर	सेब	नास्पाती	आड़ू	आलूचा	खूबानी	बादाम	पिस्ता	अखरोट
१ कोठी १६००	कोठी ४००		रारङ् ४१७	कोठी ५०००	रिब्बा १६६	मोरङ् ७२	सुङ्नम् ५	कामरू १३६३
२ रोगी ६३४	तेलंगी ३०००	तेलंगी २००	रिब्बा ३६६	तेलंगी ५००	कोठी १५०	रिब्बा ७१	रोया ३	संङ्ला ११७७
३ तेलंगी ५००	पूर्वणी ६२	ख्वांगी १००	कोठी ३००	पूर्वणी २६१	चगाँव ११६	पूर्वणी ३६	मोरङ २	रिब्बा १०५०
४ रिब्बा ३४८	रिब्बा ५४७	चीनी ७६	पूर्वणी २२६	दुनी २२३	मोरङ् ५८	कोठी ३८	ग्याबोङ् $\frac{1}{11}$ %	चिनी ६६८
५ ख्वांगी ३००	ख्वांगी ५००	दुनी ६३	तेलंगी २००	ख्वांगी २००	ख्वांगी ५०	तेलंगी ३५		रारङ् ६१८
६ रारङ् २२३	चीनी २६६	पूर्वणी ४४	मोरङ् १६२	रिब्बा १७०	पूर्वणी ४६	ख्वांगी १६		कोठी ५००
७ पूर्वणी १५६	पंगी २००	पंगी ४०	खारी १४४	चीनी ८८	तेलंगी ४०	सुङ्नम् १३		तेलंगी ४००
८ चिनी १४३	रोगी १६७		ख्वांगी १००	रोगी $\frac{६५}{६५३६}$		$\frac{२८५}{१३}$%		पूर्वणी ३६७
९ अकूपा ७३	मोरङ् १६६		मीरू ६३	६२%				प्वारी ३७२
१० सुङ्तम् ६०	दुनी १५४		दुनी ६८					वारङ् ३६२
११ दुनी ४८	कामरू १२८		रोगी ६१					रोगी ३३७
१२ रिप्पा ४२	भावा १२२		अकूपा ५१					भावा २५८
१३ मोरङ् ३६	रारङ् ११४		पंगी ४०					चगांव २२६
१४ प्वारी ३८	बारङ् $\frac{१०३}{६१२३}$		स्किब्बा $\frac{४०}{२२४४}$					दुनी २०७
१५ म्प २८	८६%		८५%					ख्वांगी $\frac{२००}{८६६५}$
१६ जंगी २६								७२%

अंगूर

१७ किल्वा २६

१८ खारंगी २६

१९ स्किब्बा २३

२० नमग्या $\frac{२२}{४६५२}$

४७%

ही है। आड़ू तो एक दिन ऐसा मोठा आया था, कि मैं व्याकुल होकर पूछता रहा, वह कहाँका था। शायद किसी देवताने उसे भेज दिया था, क्योंकि आड़ू पकनेमें अभी देर थी। जंगली खट्टा अनार यहाँ होता है, फिर तापमान और अल्प वृष्टिकी अनुकूलता होनेसे कोई कारण नहीं कि* यहाँ बेदाना अनार न पैदा हो—तेलंगीमें बेदाना अंगूर किस्मिस भी पैदा होता है।

फलोंके बारेमें इतनाही कहना है, कि आजकी मौजूदा अंगूर लतायेंही १५००० मन अंगूर और सेवके पेड़ ४० हजार मन सेब पैदा कर सकते हैं, जिनका परिमाण नचारतक मोटर पहुँचतेही दसगुना (डेढ़लाख मन अंगूर और चार लाख सेब) हो जायेगा, और जिस समय नचारसे+चीनी तक रोपवे (रस्सागाड़ी) बन जायेगा, उस समय तो श्रेष्ठ मेवोंके पैदा करनेमें कनौर एसियामें अद्वितीय हो जायेगा। सतलुज और उसकी शाखाओंके तटसे ६००० फुट ऊँचाई तक की दोनों तरफकी तटभूमि १०० मील लम्बी पाँचसे आठ मील तक चौड़ी है। पाँच मील चौड़ाई भी मान लें, तो ५०० वर्गमील भूमि है, जिसमेंसे २०० वर्गमील अनुपयुक्त माननेपर ३०० वर्ग मील कामकी है। इस सारी भूमिको मेवोंके बागसे ढाँका जाना मोटर और रोपवे पर निर्भर करता है। इनपर, पनबिजली स्टेशन और कुछ बड़ा कूलोंपर पचास लाखसे अधिक रुपयेकी जरूरत नहीं होगी, फिर दस-पन्द्रह लाख मन मेवे हर साल कनौरसे लेते जाइये।

यातायातकी बात करते समय वैज्ञानिक यातायातको नहीं भूलना चाहिये। चीनी गाँवसे आधमीलपर सड़कसे थोड़ा नीचे "कत्था-लोट" मैदान है, जो आदर्श हवाई अड्डा बन सकता है, और बहुत थोड़ेसे परिश्रम से। वैसे बस्पा उपत्यकामें भी ऐसे स्थान हैं, किन्तु वह मानसून प्रभाव क्षेत्रसे शून्य नहीं है, जिससे अच्छे किस्मके मेवोंकी वहाँ अधिक संभावना नहीं है। वहाँ

---

* कनौरमें ऊँचाईके अनुसार फल आगेपीछे पकते हैं। फलके शौकीन सैलानियोंके उनके पकनेका समय याद रखना चाहिये अंगूर अगस्त—सितम्बर, सेब अगस्त—सितम्बर, नासपाती (नाख)—सितम्बर, आड़ू—अगस्त—सितम्बर, आलूचा—जुलाई-अगस्त, खूबानी—जूलाई-अगस्त, बादाम—

अँगूर तो होता है, किन्तु फल फट जाते हैं—अधिक वर्षा, अधिक रस। हवाई अड्डे की बात मानसरोवर यात्रा के लिये नहीं कह रहा हूँ—यह मालूम है न कि मानसरोवर से (रण हृद होकर) निकलनेवाली एक मात्र बड़ी नदी यह सतलुज है, और यहाँसे मानसरोवर विमान आसानीसे पहुँच सकता है। किन्तु तिब्बतको लामा और देवता उसके लिये आज्ञा देंगे तब ना। खैर, तिब्बत के लामा और देवता अमर होकर नहीं आये हैं, उनका भी जमाना लद चुका है। यदि चाङ् कैशकको याङ्सीके उत्तरके चीनसे सम्बन्ध तोड़ना पड़ा, जिसके लक्षण स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं, तो तिब्बत को चीनी कमूनिस्टोंके प्रभावमें जानेसे कोई नहीं रोक सकता। बृटैन का न इसमें स्वार्थ है न शक्ति है, न संभव है कि रूसके बढ़ते प्रभाव को देखकर जिस तरह कर्जनने तिब्बतमें सैनिक "मिशन" भेजा था, उसी तरह वह नया मिशन भेजे। भारतीय पूँजीपतियोंको चिंता जरूर हो सकती है, किन्तु हमें आशा नहीं वर्त्तमान भारत सरकार भी अपने उत्तरीय शक्तिशाली पड़ोसी (कोरियाके सीमांतसे लदाखतक विस्तृत) से खामखाह झगड़ा मोल लेगी। नवीन उत्तरीय राष्ट्र हमारे रास्तेमें रोड़ा अटकायेगा, इसकी संभावना नहीं। आशा तो है वह हमारे कैलाश-मानसरोवर यात्रियोंके लिये वैमानिक यात्राका प्रबन्ध खुशीसे कर देगा। कल्पा-लोटका हवाई अड्डा सामरिक महत्व भी रख सकता, किन्तु उसकी उपयोगिता यहाँके आर्थिक विकासके लिये भी बहुत है। यहाँकी गायें बहुत छोटी, बड़ी बकरीसे थोड़ी बड़ी होती हैं, जो यहाँ के घास चारेके देखते ठीक ही हैं, किन्तु भावी किन्नरोंको अधिक घी-दूधकी आवश्यकता होगी। पावभर देनेवाली कामधेन्वा नहीं पाँच सेर दूध देनेवाली गायोंकी आवश्यकता होगी। हमारे विमान बरेली या दूसरे पशु जाति-विकास-प्रतिष्ठानोंसे बड़ी जातिके साड़ोंका वीर्य नालियों को लेकर दो घंटेमें यहाँ पहुँचा सकते हैं, और कृत्रिम गर्भाधान द्वारा यहाँ की गायोंकी

सितम्बर, पिस्ता—सितम्बर, अखरोट—सितम्बर, चूली—जून-जुलाई, बेमी—अगस्त-अक्तूबर, बोसर (छोटी नासपाती)—सितम्बर, पालू (छोटा सेब) सितम्बर अक्तूबर, बेरज़ाई (मीठी गुठली की चूली)—जूलाई, न्योज़ा (चिलगोजा)—सितम्बर-अक्तूबर।

जातियोंमें सुधार नहीं क्रांति पैदा की जा सकती है। इन दुर्गम पहाड़ों.मैं भले खर्च अपेक्षाकृत कम पड़ेगा, इसलिये, तीन घंटे के भीतर चिनीसे युक्तप्रांतें.। किसीभी नगरमें ताजे अंगूरों, सेबों आलू-बुखारोंका आना नागरिकों के लिये कम प्रसन्नताकी बात न होगी। फिर सौ रुपयेके किरायेमें उड़कर काशीसे किन्नर पहुँच जाना यात्रा प्रेमियोंको भी कम आकर्षक न होगा। वह विमान-मार्गको बदरीनाथ के ऊपरसे रखवा सकते हैं, और विमानपरसे हिमाचलके इन महान् देवताओंको प्रणाम या पुष्प-माला चढ़ा सकते हैं। भोट सीमासे ५६ मील पर (विमानसे बल्कि चालीससे भी कम) अवस्थित भारत का यह हवाई अड्डा महत्वपूर्ण होगा, इसमें संदेह नहीं। यह भी स्मरण रहना चाहिये कि यदि अंग्रेज-अमेरिकन साम्राज्यवादियोंकी मनकी रही, और कश्मीरको बँटना पड़ा, तो लदाखका प्रदेश अवश्य ही भारत-संघमें रहेगा। कश्मीरके पश्चिमी भागके हाथमें न रहने पर लदाखका कश्मीरसे जानेवाला मार्ग हमारे लिये बन्द हो जायेगा, उस समय लदाख पहुँचनेके दो ही रास्ते रह जायेंगे, एक कुल्लू से लाहुलहो जिसमें चार विकट जोतें पार करनी पड़ेंगी, अथवा सतलुजकी शाखा स्पिती नदीसे स्पिती जा लदाखको, इसीपर जिसमें "कल्पा-लोट" पड़ेगा।

मेवोंके सिवाय किन्नरमें धातुओंकी भी बहुत संभावना है। वाङ्तूसे मोरङ् तक अब भी न्यारिये सतलुजके बालूको धोकर सोना निकालते हैं। सोनेका धातुपाषाण भारतीय सीमाके भीतर हो, यह असंभव नहीं है। चगाँवमें चाँदीकी खानमें काम होता था, यह भी कथा प्रचलित है। ऊपरी बस्पाके पथसे छित्कुल गाँवके पास कितने ही खनिज पदार्थों की संभावना है, और शायद मिट्टीका तेल भी। वहाँ से लाया काला चूर्ण तो आगपर हरे रंगकी लौ फेंककर जलता, और थोड़ी देरमें आग बुझा देता है। उसमें गंधककी गंध असह्य हो उठती है। कुछ और धातुपाषाण मेरे पास आये हैं, जिनमें से एक पर निकल होने का संदेह है। सीसेका धातु-पाषाण बहुत अच्छा यूला से मिला है।

बस्पा-उपत्यका और उसके निवासियोंका भाग्य भी पलटने वाला है। सतलुज-उपत्यका मेवों और सोनेको ही नहीं और भी कितनी ही धातुओंको देनेवाली है, पूर्वणी अंगूरमें सातवाँ, सेबमें तीसरा, नासपातीमें छठाँ, आड़ूमें चौथा, आलूचामें तीसरा, खूबानी में छठाँ, अखरोटमें जहाँ नवाँ स्थान रखती

है, वहाँ उसके पास ही रंगीन अबरख और धातु (शायद निकल) की भी खान है। सतलुज पार हो लिप्पा (किरङ्) खड्डुमें असरङ् के ऊपर हल्के हरे रंग का चिकना पत्थर मिलता है, जिसे लगाकर लोग पशुओंकी आँखोंके जाला-फूलीको चंगा करते हैं। श्यासो खड्डुमें ऊपर बढ़िये, अंतिम गाँव रोपा मिलैगा। जेलदार तोब्ग्याराम परिश्रम करके वहाँसे ताँबेकी "मिट्टी" लाये। उनका कहना है, सौ साल पहले सराहनके पासके किसी गाँवका एक ठठेरा आया। उसने खानसे तीन मील नीचे ताँबा पिघलानेके कामके लिये झोंपड़े बनवाये। कई साल तक वहींसे ताँबा निकालकर ठठेरा बर्तन बनाता रहा। उस समयके बने बर्तन अब भी उधर कितनेही घरोंमें मौजूद हैं। इन ताँबेके टूटे बर्त्तनोंको आसानी से गलाया जा सकता है, इसीलिये आजकलके कनौरी बर्त्तन बनाने वाले उसे बहुत चाहते हैं। जेलदार तोबग्यारामको ताँबेकी कोशिश में मिट्टीके लिये आया देखकर गाँव वालोंने उन्हें बहुत समझाया कि यह काम मत करो, बुरा होगा, देवताकी नाराजीसे खान बंद हुई है, तुम्हारा अनिष्ट हो जायेगा। नीचेके आदमी आकर यहाँ भर जायेंगे, फिर हम अपनी चूलियोंको भी न खाने पायेंगे। अँग्रेजोंने जाननेकी बहुत कोशिश की, किन्तु हमने पता लगने नहीं दिया इत्यादि। किन्तु तोब्ग्याराम पढ़े-लिखे आदमी हैं, जानते हैं, अब ताँबा अँग्रेजोंके लिये नहीं अपने लोगोंके लाभके लिये निकाला जायेगा। लोगोंके लाभमें भाँजी मारनेवाला देवता कौन है ? जेलदारके कथनानुसार खानपर बहुतसे पत्थर गिरे हुये हैं, किन्तु कुछ परिश्रमसे उसे साफ किया जा सकता है। जो "मिट्टी" उन्होंने लाकर दी है, वह काफी भारी है। रोपाके आसपास ताँबेकी मैल बहुत मिलती है, इसलिये ताँबेकी खानके होनेमें संदेह नहीं। सम्भव है, सराहन-गौरा के बीचके गाँव वाले ठठेरेके आनेसे पहिले भी यहाँ ताँबा निकाला जाता हो, किन्तु निकाला जाता था लकड़ीके कोयलेकी सहायतासे।

किन्नरमें ताँबा, सुरमा, चाँदी, सीसा, मिट्टीके तेल, निकल, जस्ता गंधकके पाये जानेकी संभावना क्या संदेह ?

१५ कोठी देवी महातम

कोठीकी देवीका चंडिका नाम मैंने पहिले ही सुन रखा था, और यह भी

जानता था, कि वह किन्नरकी सबसे जागता देवी हैं। देवताओंका दास मैं भले ही न होऊँ किन्तु देवताओं, विशेषकर उनकी कथाओंका प्रेमी तो मैं जरूर हूँ। यह हो नहीं सकता था, कि दो मील पर रहते भी मैं चंडिकासे भेंट किये बिना किन्नर देशसे बिदा हो जाऊँ। कोठीकी यात्रा और देवीसे भेंटकी बात कहनेसे पहिले देवीके परिचयार्थ चन्द पंक्तियाँ लिख देना जरूरी समझता हूँ। हो सकता है, कहीं पुनरुक्ति हो, किन्तु देवताओंकी कथामें वैसा होना अनिवार्य है, क्योंकि महातम तथा "कोथा" (कथा) सभी श्रुति रूपमें हैं, और श्रुतियोंकी अनेक शाखायें हुआ ही करती हैं।

देवी का जन्म और बाल्यकाल—चंडीका नाम होनेसे आप कोठीकी देवीको "अपर्णां, पार्वती, दुर्गा, मृडानी चंडिकाम्बिका" न समझ लीजिये और न इन्हें पर्वतमें जन्म लेनेसे शिवकी प्रिया समझनेकी गलती कीजिये। सारे हिन्दू जानते हैं, कि लक्ष्मी, पुंश्चली होती हैं, किन्तु पार्वती सदा सती बनी रहती हैं, और चंडिकाका अवैध सम्बन्ध किसी व्यक्तिसे है, जो सदा उसके साथ-साथ रहता है। सारांश यह है कि इस पार्वतीको गौरा पार्वतीसे मिलानेपर आपको सारी भागवत—बोपदेवकी नकली भागवत नहीं असली भागवत अर्थात् देवी भागवत—पर हड़ताल फेरनी पड़ेगी।

कोठीकी देवी चंडिकाका जन्म सुङरा (ग्रोस्नम्) के पासकी ग्वारवाङ् नामक गुफामें अतिपुरातन कालमें हुआ। उनकी सौभाग्यवती माता असुरराज-दुहिता असुरराज-महिषीकी कोख छ और संतानोंसे पवित्र हुई। सातो संतानोंमें ४ बहिनें और तीन भाई थे। बहिनोंमें तीन अन्तर्धान अर्थात् काल-कवलित हो गई, और निष्ठुर जगतने अपने स्वभावके अनुसार उनका नाम तक भुला दिया। समय पाकर तीनों भाई सयाने हुये। बेटीका तो उत्तराधिकार होता नहीं, इसलिये बड़ी बहिन क्या दावा करती? पिताके सुरलोक सिधारनेपर खटपट शुरू हुई। तीनों भाइयोंके नाम थे महेसू—जिसे महेसुर और महेश्वर भी पंडिताई छाँटनेवाले कह देते हैं। हम उन्हें अभी पहाड़ी रीतिके अनुसार बड्डा, माहिला और काँछा कहेंगे। तीनोंके झगड़ोंने उग्र रूप लिया, आखिर जाति भी तो सुंद-उपसुंदकी थी। किन्तु बीचमें कोई मोहिनी नहीं थी। इस झगड़ेको वस्तुतः पत्नियोंके कारण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि तीनों महेसुओंकी

तब क्या अबतक कोई वैध पत्नी नहीं है । बड़ी बहिनने देखा, यह तो बाणा-सुरका वंश उच्छिन्न होना चाहता है—कितने ही श्रुतिधरोंका कहना है, पिताका नाम वाम था, जो कृष्णका समधी भी था । यहाँ एक ऐतिहासिक महत्वकी बात हाथ लगी, जिसके बलपर हम कह सकते हैं, कि देवीका जन्म कलियुगसे पहिले द्वापरके बिलकुल अन्तमें हुआ था, अर्थात् पाँच हजारसे कुछ ही वर्ष पहिले । देवीने भाइयोंको समझाया; वंशनाश मत करो । हालमें हुये कौरव पाँडवकी कलहसे सबक लो । भाइयोंको कुछ होश आया, और बोले—तो बहिन ! तू ही पंच बन जा और जायदादका बँटवारा कर दे ।" बहिनने कष्टको स्वीकार किया ।

भावाके ऊपर घासके मैदानमें अब भी वह चट्टान मौजूद है, जिसपर बैठकर देवीने भाइयोंका बँटवारा किया था । स्थान पहिलेसे ही निश्चित था, देवी पहिले ही पहुँच गई । शायद समय भी पहिले निश्चित हो गया था, जो गोधूलीके आसपास का था—शायद इसलिये कहता हूँ कि यह मेरी उड़ान है, श्रुतिधरने इसे नहीं बतलाया । मेरी उड़ानका कारण यह है कि आगे जो घटना घटित हुई, वह इसी समय संभव है । तीनों असुरपुत्र मदिराके चषक-पर चषक उड़ेलकर रक्ताक्ष, घूर्णितशिर हो गये । झुटपुटेके कारण आसपासकी चीजें उन्हें दिखलाई नहीं पड़ती थीं । तीनों भाइयोंने वंदना की । देवीने आसनसे बिना उठे ही कुछ मुसकुराकर, कुछ अपने मधुर किन्नर कंठसे उन्हें मुग्ध कर दिया । तीनों भाई पासमें बैठ गये । देवीने पिताके राज्यको हाथमें लिया, और उसके तीन टुकड़े कर पीठ स्थान अर्थात् सातो बहिन भाइयोंका जन्म स्थान (नचार सुङ्रा वाले इलाकेको जो काफी कलियुग बीत जानेपर अठारह बीसके नामसे प्रसिद्ध हुआ) बड़े भाईको दे दिया, जिसे उसकी राजधानीके नामपर तबसे सुङ्रा-महेसू या ग्रोस्नम्-महेसू कहा जाने लगा । माहिलाके हिस्सेमें भावा खड्डुका इलाका आया, और वह भावा-महेसू कहा जाने लगा । कांछाको राजग्रामङ्का इलाका मिला, जिसकी राजधानी चगाँव या ठोलङ्के नामपर उसे वहाँका महेसू कहा जाने लगा । तीनों भाई बड़े प्रसन्न हुये । यहाँ यह कह देना चाहिये, कि सुङ्रा महेसूका राज्य मानसून इलाके की घने देवदार बन वाली भूमिमें था, बाकी दोनों भाई मानसून वंचित नग्नप्राय पर्वतों-

केस्वामी बने। उनकी प्रसन्नताको सुरा सुन्दरीने और बढ़ा दिया। वह बहुत बहुत धन्यवाद देते, गिरते-पड़ते अपने निवासको गये। देवी अपने आसनसे तबतक न उठी, जब तक कि तीनों भाई आँखोंसे ओझल नहीं हो गये। फिर उसने अपनी चोटीसेकोई चीज निकाली और चुपकेसे उसे अपने दोड़ू (पहाड़ी ऊनी साड़ी) के भीतर छातीके पास छिपा उड़कर गायब हो गई। उड़कर गायब होना जरूरी था, क्योंकि पैदल दौड़ती, तो उसे महिला और काँछाके राज्यसे गुजरना पड़ता, जहाँ बहुत खतरा था। देवीकी उड़ान चट्टानसे सीधे उत्तर भाव जोतके ऊपरसे आजकलके स्पिती इलाकेपर से पूर्वाभिमुख होकर जरा दक्षिण मुड़ एक बड़े डाँड़ेको पार कर श्यासू खड्डके उपरले अन्तिम ग्राम रोपाको हुई।

देवीने वहाँ बहुत समय निवास नहीं किया, क्योंकि चोटीमें छिपाई चीज-को सँभालना था, और वह चीज थी मार्ती-शोवाल्यङ् या संक्षिप्त नाम शोवा। रोगीसे पंगी खड्डुतकका चीनीवाला इलाका इसी नाम से पुकारा जाता है। देवीके जन्मसे युगों पूर्वसे तब तक यही इलाका द्राक्षी मदिराकेलिये प्रसिद्ध रहा है। आज श्वेतांग म्लेच्छोंके राज्यके समय लाये सेब, आलूचा, नास्पातीका भी वही गढ़ है। इसी इलाके को देवीने बापकी जायदाद बाँटते समय अपनी चोटीके भीतर छिपा लिया था, और बाँटने केलिये गोधूलीका समय निश्चित किया था। तब तो देवी पर भाइयोंको धोखा देनेका भारी अपराध लगता है! इसमें क्या संदेह? इसीलिये तो कोठी देवी सारे किन्नर देशमें "बड़ी चालाक" (बुरे अर्थों में) कही जाती है। एक सज्जनने इसबातको यह कहकर झुठलानेकी कोशिशकी कि तेलंगीका देवता थानिक अपने इलाकेकी देवीके हाथ में सौंपकर अन्तर्धान हो गया। स्पष्ट शब्दों में कहिये तो, थानिक ने आत्महत्या करली। आत्महत्या करना उन देवताओंकेलिये आसान नहीं है, जिनपर आयुका प्रभावही नहीं पड़ता। फिर समाधान यही हो सकता है, कि निराश प्रेमी हो उसे ऐसा करना पड़ा, या शोवाको ऐंठनेकेलिये ऐसा किया गया। यह तो और भी भयंकर लाँछन देवीपर आवेगा। यह बात सोलहों आना झूठी है। बात वही सच है जो पहिले कही गई।

यहाँकी बात यहीं छोड़कर जरा हम देवलोकसे नरलोकमें आयें। यह स्मरण रखना चाहिये, कि आजके किन्नरकी भाँति उस समय भी देवलोक

और नरलोककी कोई सीमा निर्धारित नहीं थी। बँटवारेके समयके आसपास ही चिनीसे एमर्स दसराम नामका एक ठकरस् (ठाकर, छोटा राजा) रहता था। ठाकरानी गर्भवती हुई। झूठकी कमाई खानेवाले और कभी-कभी सच्ची अटकल लगा देनेवाले जोतिसियोंने कहा—"पुत्र होगा, तो कल्याण होगा; पुत्री हुई तो महा अनिष्ट घटित हो सकता है।" संयोग कहिये, हो गई पुत्री। ठाकर घबड़ाया और उसने पैदा होते ही बच्चेको सात पोरिसा जमीनके नीचे गाड़ दिया। देवी तो दो ही मील पर रहती थी, उसे मालूम हो गया। वह झटस जमीनमें सुरंग खोद कर लड़कीको अपने साथ ले गई, ठाकरकी पुत्री आज भी देवीके विमानमें सामनेवाले मुखके नीचे चाँदीके पत्तरकी मूर्तिके रूपमें विद्यमान है, विश्वास न हो तो आकर अपनी आँखों देख लें। देवीको पिताकी नृशंसतासे पुत्रीको बचा लेने भरसे ही संतोष नहीं हुआ। उसे ठाकरस्पर भारी क्रोध आया—देवीके स्वभाव से कहा जा सकता है, कि इस सारे कार्यमें परोपकार बुद्धि ही नहीं काम कर रही थी, बल्कि वह ठाकरको हटाकर शोवाको अपनेलिये अकंटक बनाना चाहती थी—स्मरण रखना चाहिये, देवी उदुंबर (लाल) वर्णा द्राक्षी सुराकी बड़ी प्रेमी है, और इस सुराकेलिये शोवा आज भी प्रसिद्ध है। कुछ मामूली कहा सुनी, दूतों के यातायात और माँगके बाद देवीने ठाकरको अल्टी-मेटम दे दिया, जिससे बचने की शर्त यदि आत्महत्या नहीं तो उससे कुछ ही कम रही होगी। ठाकर आनपर मरनेवाला पुरुष था। उसने भी देवताको प्रसन्न करके वरदान पाया था—वरदान देखनेसे जान पड़ता है, उसके दाता पार्वती द्वितीयाके प्रति भँगेड़ी शंकर ही रहे होंगे। अल्टीमेटम् या अंतिमेत्थम् का समय बीत गया। देवी चढ़ दौड़ी। खबर पाकर ठाकर भी गढ़से उतर आया, और दुर्गसे डेढ़ दो फर्लाङ्ग पर, जहाँ आजकल पनचक्की चल रही है, दोनोंकी मुठभेड़ हो गई। अवश्य देवी साक्षात् दुर्गा बन गई थी। उसके धनुषसे छूटते बाण पार्थशरको झूठा बना रहे थे, उसकी तलवार चलाने की फुर्ती बतला रही थी, कि उसके हाथ संध्या को तुंबाफेरीमें ही चुस्त न थे। उधर दसराम ठाकर भी कच्चा गोइयाँ न था उसने भी बाणपर बाण खड्गपर खड्ग, शूलपर शूल चला देवीको छट्ठीका दूध याद करा दिया। देव पसीने-पसीने हो गई थी, उसका सारा दोड़ू वर्षासे भीगा जैसा मालूम होता था

किन्तु अभी देवीको चिन्ता नहीं हुई थी। उसने लपककर असि चलाई और दसरामका सिर भुट्टेकी भाँति जाकर जमीनपर पड़ा। देवीकीआँखें खिल गईं। उसी समय किसीके ठठाकर हँसनेका शब्द सुनाई दिया। देवीने गिरे शिर परसे नजर हटा कर उधर देखा वहाँ दसराम सही सलामत मौजूद था। जमीन पर गिरे प्रहरणोंको उठाकर देवीपर वह प्रहार करना चाहता था, कि देवीने सजग होकर ताबड़तोड़ बाण चला उसे दसरामके शरीरको छलनी करते हाथकी सफाई दिखलाते हुये दूसरी बार शिरको काट कर गिरा दिया। लेकिन फिर वही बात। शिर काटकर गिराना, ठठाकर हँसते नये शिरका दसरामके धड़-पर आजाना, और फिर युद्ध। आखिर बलकी भी कोई सीमा होती है, चाहे वह देवीके शरीरका ही क्यों न हो। देवीकी हिम्मत टूटने लगी—यह स्त्री-जाति के अपमानकी बात नहीं। दसराम पुरुषदेवताको भी नाकों चने चबवा सकता था। देवीके हाथ पैर फूल चले। समीप था, कि वह दसरामके हाथकी चिरवंदनी हो जाय। फिर वह उसके साथ कैसा बर्ताव करता, कौन जाने? कथा तो है, दसरामके शरीरमें राक्षसकी आत्मा बसती थी। खैर, आगम अँधेरा दिखलाई पड़ने लगा। उसी समय देवीके मस्तिष्कमें बिजलीसी चमकी। उसने प्राणोंके डरसे दूर खड़े होकर तमाशा देखते ख्वाँगी के देवता मरकारिङ से कहा—"कायर क्या तमाशा देख रहा है, इसी हिम्मत पर कायङ् (नृत्य चक्र) में हर समय मेरा हाथ लेना चाहता था। जा, जल्दी दौड़कर मेरे भाइयोंको खबर दे।"

तीनों महेसू उस समय शोवाके सबसे नजदीक वाले भाईकी राजधानी चगाँव (ठोलङ्)में सलाह कर रहे थे। उस दिन गोधूलीको तो उन्हें बहिनकी चालाकी नहीं मालूम हुई, दूसरे दिन जब सबेरे उठे, नशा उतर गया, तब उन्हें मालूम हुआ, कि बहिनने ठग लिया, और ठगा भी वह इलाका जो तीनों भाइयोंको सबसे प्रिय था। अब शिम्बू (अंगूरी लाल मदिरा) कहाँ से मिलैगी? चगाँवमें तीन भाइयोंकी कमीटी इसलिये हो रही थी, कि कैसे शिबूके उद्गम-स्थान शोवाको चालाक चंडिकासे छीना जाये। ये लोग इसी परिणामपर पहुँचे, कि बिना चंडिकाको अन्तर्धान कराये काम नहीं चलैगा। अभी अन्तिम फैसला नहीं हुआ था, कि ख्वांगी देवता हाँफते-हाँफते मीटिंगके स्थान चगाँव महेसूके

बैठकेमें पहुँचा। तीनों भाई मरकरिङ्की यह अवस्था देखकर एक ही साथ बोल उठे—"मरकारू! कहो, खैरियत तो है? क्यों घबड़ाये मालूम होते हो! क्या खबर है!" मरकारिङ्ने इशारेसे कहा, जरा दम ले लेने दो। चगाँव महेसूने झटसे शिवूके अन्तिम कुतुपको चषकमें खाली करके मरकारिङ्के हाथमें दिया। मरकारिङ्ने हाथमें ले उसे एक साँसमें मुँहमें उँड़ेलकर जीभसे ओठ चाटते हुये कहा—"खबर! बहुत बुरी। तुम्हारी बहिन दसराम ठाकरसके हाथमें पड़ने ही वाली है। ठाकरससे घमासान लड़ाई हो रही है। चंडिका सात बार शिर काट चुकी, किन्तु ठाकरसके धड़पर नया सिर जम जाता है...।"

बात पूरी समाप्त न होने पाई थी, कि चगाँव महेसू उठ खड़ा हुआ और बोला—"भाइयो! परनाम, मैं तो चला।" "कहाँ चले," दोनोंने हक्का-बक्का होकर पूछा। "चला बहिनको बचाने।" दोनों भाइयोंमें छोटेको बहुत समझाया—"जाने दो, मरने दो। कहाँ हम उसे मारनेकी तदबीर सोच रहे थे। कहाँ वह अपने आप मारी जा रही है। इससे अच्छी बात हमारे लिए क्या हो सकती है।" किन्तु, कांछाने एक न सुनी और बोला—"मैं तुम्हारे जैसा नीच नहीं हूँ। हमने एक ही माताके स्तन पिये हैं। अपनी सहोदराको इस तरह खतरे में पड़ी देखकर, मेरी गैरत नहीं कहती, कि मैं उसे अधम दसरामके हाथों मरने या बन्दी बनने दूँ।" पकड़नेपर भी कांछा हाथ छुड़ाकर चल दिया। माहिलाने जेठसे कहा—"मैंने कहा न, इसे उस रांड़ने शिवू देनेका लालच दे रखा है।"

देवीके नृत्यसहभागी मरकारिङ्के साथ दौड़ता भागता कांछा महेसू चीनीमें किलेके नीचे उस जगह पहुँचा, जहाँ दसराम और देवी जूझ रहे थे। देवी हाँफ रही थी, तब भी कभी इधर कभी उधर झपट्टा मार रही थी। उसके बिखरे हुये बैंगनी बाल हवामें उड़ रहे थे। उसकी नाककी नथ भी पीपलके पत्तेकी भाँति हिल रही थी। देखने हीसे कांछाको मालूम हो गया, कि चंडिका और देर तक अपने पैरोंपर खड़ी नहीं रह सकती। उसने ध्यानसे देखा, तो मालूम हुआ, दसरामके शिरपर एक भौंरा उड़ रहा है। उसे रहस्य मालूम हो गया। उसने चिल्लाकर कहा—"बहिन शिरके ऊपर देख।" चंडिकाने भँवरेको उड़ते देखा, और एक तीरसे उसे धराशायी कर दिया, दूसरे क्षण दसरामका शिर भी

धरतीपर लोटने लगा, और उसके साथ ही उसका धड़ धमसे गिर कर छटपटानें लगा। रक्तरंजित गात्रा चंडिका दौड़कर भाईके गलेसे लिपट गयी। उसकी आँखोंसे हर्षाश्रु बह चले। दसरामकी पुत्री—जो शत्रुसे जा मिली थी—के मुँहसे करुणा बरस रही थी। उसकी इच्छा होती थी, कि जमीनपर लोटते बापके शिरको उठाकर गोदमें ले ले, लेकिन वह चंडिकाके क्रोधको भी जानती थी—निस्संदेह वह दानवी देवी उस मानवीको कच्चा खा जाती।

यह है संक्षेपमें कोठीकी देवीका जीवन-वृत्त। आज सारा किन्नर देवीसे थरथर काँपता है, मानव ही नहीं देवता भी। किन्नरके बतेरे गाँवोंको तो उसने अपने भाई-भाँजोंसे भर रखा है, यह आपको खइछोकी गीत "पतिष्टोङ्"से मालूम होगा। चंडिकाके सामने पत्ता भी नहीं हिल सकता। वह जहाँ डपटकर कहती है—"जैसे मैंने सात खूँदों और अठारह गढोंको भूनकर रख दिया, वैसेही दशा तुम्हारी करूँगी" तो लोगोंकी सिट्टी गुम हो जाती है। दूसरे देवताओंको चाँदी भी मुश्किलसे मयस्सर होती है, और चंडिका सोनेसे लदी रहती है। वह किन्नरकी सबसे धनी देवता है। रोपामें उसका महल (मन्दिर) बना ही है, शोवाके केन्द्र कोठीमें तो उसका स्थायी निवासही ठहरा। इसके बाद भी उसके सैलसपाटे हुआ करते हैं। कभी-कभी वह दसरामके गढ़ पर आकर शिबू पीती अपने शत्रुके कलेजेपर कोदो दलती है। कभी कश्मीरके दुर्गपर जाकर मेला लगाती है। आजकल (जुलाई १९४८ ई०) इधर भेड़-बकरियोंमें महामारी फैली हुई है। मानवकेलिये जब अस्पताल रहते भी वर्षोंसे यहाँ डाक्टरका पता नहीं, तो "पशुचिकित्सा"की बात कौन करे? छोटे-मोटे देवताओंसें जब बात नहीं हल होती, तो लोग कोठी देवीके पास पहुँचते हैं। "मातासाबने" अभी हुक्म दिया है—मैं सारी बीमारी एकदम दूर कर दूँगी, किन्तु काश्मीरके किलेपर ले चलकर मेरी पूजाका प्रबन्ध करो। पूजा सामग्रीके बारेमें पूछनेपर मालूम हुआ, कि आटा, गुड़, सुरा आदिके अतिरिक्त कुछ बीस बकरें और कुछ बट्टी (दोसेरी) मक्खन चाहिए। भला देवीकी बात कौन खाली जानें दे सकता? सात अगस्तको कश्मीर में भारी मेला लगा। मास्टर नारायन सिंहने यह खबर सुनाते हुये कहा—पूजा तो होगी, किन्तु इतने खाडू (भेड़े) बकरे और इतना मक्खन खर्च हो जायेगा।"

मैंने कहा अर्थात् मांस-मक्खन सतलुजमें फेंक दिया जायेगा ?

सतलुजमें नहीं फेंका जायेगा, लेकिन...

लेकिन क्या ? क्या उसमेंसे बहुत-सा भाग गरीबोंके मुँहमें प्रसाद के रूपमें नहीं जायेगा ?

—जायेगा तो ?

—और खाद्ध मक्खन अधिकतर धनियोंके घरोंसे आयेंगे। उन्हें गरीब भी खालें, तो क्या बुरा ?

इसी समय वहाँ बैठे कविराज और संगीताचार्य मास्टर प्रिय भारत बोल उठे—मास्टर रामजीदासको बलि बहुत बुरी लगती है।

लेकिन देवी तो —मैंने कहा— मास्टर रामजीदासके हाथसे बलि लेनेका आग्रह नहीं करती। जो लोग भेड़-बकरे मारा करते हैं, मारेंगे इसमें मेरे और बाबू रामजीदासके बापका क्या बिगड़ता है ? रामजीदास तो भगत आदमी हैं, मांस नहीं खाते मैं तो सर्वभक्षी हूँ, किन्तु मुझे भी यदि कोई बकरा मारकर खाने-केलिये कहे तो हाथ नहीं उठा सकता।

मास्टर भारतने फिर कहा—लेकिन मास्टर रामजीदास तो हिंसाके सख्त विरोधी हैं।

—क्या लाठीके हाथों हिंसा बंद करना अपना फर्ज समझते हैं ? यह तो और बड़ी हिंसा होगी हाँ, न करनेसे भी काम चलने पर हिंसाको मैं भी नहीं पसंद करता। लेकिन, इन्हीं कनौरके बंदरोंको ही ले लो, इनकी हिंसा करना क्या ठीक नहीं है ?

प्रियभारत—नहीं जी, मास्टर रामजीदास तो नहीं पसंद करेंगे।

—पसंद करने का अर्थ है, यदि अपने हाथसे करना, तो मैं उसकी बात नहीं करता, किन्तु ऐसे हाथ बहुत हैं, जिन्हें कुछ रुपये दे दिये जायें, तो वानरयज्ञ सफल हो जायेगा।

—वानरयज्ञ !

—हाँ, वानरयज्ञ करना होगा, यदि कनौरको बड़े पैमानेपर मेवोंके उद्यानके रूपमें परिणत करना है।

पाठकोंकी जानकारी के लिये कह देना है, कि उन्नीसवीं शताब्दीके आरंभ

से पहिले दूसरे जानवर भले ही रहे हों, लेकिन यहाँ हनूमान् हनूमानियोंका पता नहीं था। ये लालमुहे गर्म मुल्कके प्राणी आज ग्यारह-ग्यारह, बारह-बारह हजार फुट पर झूल रहे हैं। जहाँ तक वृक्ष उगते हैं, वहाँ तक की जमीनपर इन्होंने दावा कर रखा है। सतलुजके लोहेके पुलने तो उनका रास्ता और भी साफ कर दिया है। अब तो वे सुङ्नम् तक फैल गये हैं। जेलदार तोब्ग्यारामसे मालूम हुआ, उनके यहाँ अंगूरकी बागवानी करनी या बढ़ानी लोगोंने छोड़ दी, इस ललमुहीं पल्टनके मारे। रोगी निवासी नेगी सन्तोखदासने भी अबकी बार हाथ-पैर ढीला कर रखा है। सारे भारतका स्वार्थ और दिलचस्पी इस बातमें है, कि कनौर मेवोंका देश बने। तो क्या मास्टर रामजीदासकी अहिंसाका ख्याल करके हम हनूमान सेनाको अपना मेवा-उद्यान ध्वंस करनेका काप सौंपने जा रहे हैं? और फिर यह हनूमानसेना कैसी, जो कनौरमें वर्षोंसे रहकर जनमले और बढ़ कर भी वहाँके किसी सामाजिक नियमको अपनानेके लिये तैयार नहीं। किन्नर लोगोंने पहाड़की कठिनाई, अन्नकी कम उत्पत्ति का ख्याल करके बहुपतिविवाहकी प्रथा चलाई। इसके कारण बहुत सी स्त्रियाँ कुमारी, ज़ोमो या निस्सन्तानी जरूर रह जातीं, किन्तु जनवृद्धि पर अंकुश होनेसे पृथ्वीका भार बढ़ कर दरिद्रता और बढ़ने नहीं पाती। किन्तु हनूमान-सेनाके कोशमें अंकुश-मंकुशका कहीं नाम नहीं है, जिस भद्रमुखीको देखो, एक-एक बच्चा पीठ पर लादे इस डालसे उस डाल पर फुदकती दीख पड़ती है संतान-निग्रहकी बात तो अलग, यहाँ तो संतान-उत्पत्तिकी प्रतियोगिता चल रही है। पचास-साठ सालके भीतर ही कुछ दर्जन आगंतुकोंने बढ़कर आज किन्नरके मनुष्योंकी संख्या पूरी करदी है। कुछ साल और चुपचाप बैठिये, और देखिये एक-एक नरपुत्र पर चार-चार वानर हो जाते हैं, क्या पूर्वजोंने इसीके लिये किन्नरके पर्वतोंको खूँखार प्राणियोंसे छीन कर अपनी बस्ती बसाई थी, कि अन्तमें हनूमान-सेना आकर उसे शान्तिमय तरीकेसे दखल करले। मैंने जोर देते हुये कहा—मैं तो भाई, ऐसी अहिंसाको मानवकी आत्महत्या कहता हूँ। जंगलोंमें कोई हिंसक जंतु भी नहीं रह गये, कि वह इक्के-दुक्के वानर-पुत्रोंको दबोच कर संख्या कम करें। किन्नरके काले भालुओंने मांस खाना तो सीख लिया है, किन्तु वह भी अपने दाँत भेड़-बकरियों और निरीह गायों पर ही साफ करते हैं।

—हाँ, इनकी संख्या कम करने वाले तो कोई जानवर नहीं हैं, कभी-कभी कुत्ते किसीको पकड़ कर कलेऊ कर पाते हैं—बाबू नारायनसिंहने कहा—वह कहाँ हजारमें एक, क्योंकि यह चालाक चतुष्पाद वृत्तोंको छोड़ नंगे पहाड़ोंकी ओर बढ़ते ही नहीं, और वृत्तों पर इनकी सरबर कौन कर सकता है !

—कुत्ते भी जाड़ोंमें एक दोको पकड़ पाते हैं—कविने कहा—क्योंकि ताजी बर्फमें वानर दौड़ नहीं पाते, उनके पैर धँस जाते हैं।

—यह अभी नौसिखिये नये आये हुये हैं। बर्फमें रहना और जीना तो सीख गये ना, फिर बर्फमें दौड़ना भी सीख जायेंगे। इनकी संख्या वृद्धि बिना वानरयज्ञके रोकी नहीं जा सकती।

सचमुच मैं तो मेहता साहेबको लिखूँगा—जन्मेजयने सर्पयज्ञ करके पितृऋणसे उऋण होना चाहा, जिसमें कपट ऋषिके रूपमें सर्पिणीपुत्र आरतीकने आकर विघ्न डाला। लेकिन, आप जन्मेजय परीक्षितसे अधिक शक्तिशाली हैं, क्योंकि आपको जन-कल्याण करना है। आप वानरयज्ञ प्रारंभ करके जरूर पुण्यके भागी हूजिये। यदि उनका गुजराती पुलपुला हृदय नहीं तैयार हुआ, तो भी निराश होनेकी बात नहीं, साल बाद आने वाले जननिर्वाचित हिमाचल-पुत्र मंत्रियोंसे पूरी आशा की जा सकती है, कि वह इस महान् यज्ञको सम्पादन कर किन्नरका उद्धार करेंगे। बस साठ हजार रुपयोंकी आवश्यकता है, प्रति बानरी चार प्रतिबानर दो रुपये।

—बानरीके लिये दूने क्यों ?—किसीने पूछ दिया।

—भाई सारे बानर खतम कर दिये जायें और एक बानर तथा बानरिया बच जाये, तो द्वार बंद नहीं कर सकते, चन्द ही सालोंमें वृद्धिकी गति पूर्ववत् हो जायेगी, चाहे यह रामजीके सेनापति हनूमान के वंशज हों, किन्तु न इन्होंने रामजीका व्रत स्वीकार किया न हनूमानजीका। यदि एक छोड़ सारी बानरियोंको खतम कर दिया जाये और बानर सभी रहें तो संख्या पूर्ति में पीढ़ियाँ लगेंगी।

मेरे श्रोता इस युक्तिसे संतुष्ट मालूम हुये, और बानरोंके आतंकसे मुक्त भले दिनोंकी आशा करने लगे। सौभाग्यवश यहाँ हनूमान दासोंका पता नहीं है, और न आगे ज्यादा आशा है, हालाँकि मोनेरौला तिनफटा का लगाये कामरूमें जमा है, और जब तब कीर्तन करा देता है किन्तु अभी मोनेरौलाकी

सात पीढ़ियाँ कोशिश करते मर जायें, तब भी वह किन्नरोंको हनूमान-भक्त नहीं बना सकतीं। मुझे यही अफसोस है, कि किन्नर कुर्गवासियोंकी भाँति हनूमान भक्त नहीं हैं, नहीं तो एक पंथ दो काज होता। तो भी गोली गँठे तथा शिबू का थोड़ा उदारतापूर्वक प्रबन्ध हो जाये, तो, काफी माईके लाल मिल जायेंगे, जो वानरयज्ञमें आगे बढ़-बढ़ कर हाथ बटायेंगे, और कुछ ही वर्षोंमें यह सुन्दर देश वानर-कंटकसे अकंटक हो जायेगा। मेरे पूछने पर यह भी मालूम हुआ, कि कोली लोगोंको चमड़ा निकालनेमें कोई उज्र नहीं होगा, क्योंकि मिल जानेपर नीचे वाले कोली कलमुहोंका फलाहार कर लेते हैं। फिर क्या, रोमहीन घुटा-घुटाया वानरचर्म दस्तानेके रूपमें लंदन और पेरिसकी सुन्दरियोंको भी मुग्ध कर सकता है।

इति कोठी देवी महातम समापत।

१६ देवी के चरणों में

आखिर २३ जुलाई शुक्रवारका शुभदिन आया। जब कि सबेरे ही सबेरे मैंने देवीके चरणोंमें पहुँचनेका निश्चय पुण्य सागरको सुनाया। इससे पहिले दिन इसलिये निश्चितकर सकता था, कि मैं फोटो लेना चाहता था। केमरा गलेमें डालकर बँगले के बाहर हुआ नहीं, कि सूर्य को बादलोंने ढाँक लिया। पुण्यसागर निराश हो गये। सबेरेकी चहलकदमीके अन्तमें पुण्य-यात्राका निश्चय था। रास्तेमें पुण्यसागर कह रहे थे—अब कैसे कोठी जायेंगे? धूप बिना सचमुच फोटो नहीं लिया जा सकता था। मैंने कल्पाके पास बादलोंका रुख देखकर ताड़ लिया, यह किसकी कारस्तानी है। सतलुज की ओरसे—अर्थात् कोठीकी ओरसे—बादल ठीक उसी तरह फेंके जा रहे थे, जैसे जाड़ों में लड़के मुँहसे भाप छोड़कर खेला करते हैं। किन्तु, यहाँ लड़कोंका मासूम खेल नहीं, बल्कि देवी चंडिका तुली हुई थी मुझे पूर्णतया असफल करनेके लिये मैंने पुण्य-सागर से कह दिया, यदि देवीका हठ है, तो मेरी भी जिद है, हर रोज केमरा लटकाये आऊँगा, अभी पूरे दो सप्ताह रहने हैं। देखें, तो देवी कितने दिनों तक दो-दो घंटे मुँहसे बादल छोड़ती रहती है। आखिर मुँह कभी तो थकैगा, उसी समय बंदा कोठी जा धमकैगा। मैं अपनी बात पुण्यसागरके कानमें नहीं कह रहा था, आसपासके देवदारके जंगलमें कोई देवीका गण हमारी बात सुन

रहा था। उसने सारी खबर देवीको कह सुनाई। देवी ने हट छोड़ दिया और जब ढाई मील जा लौटकर कल्पा पहुँचा; तो सूर्य फिर देवीके फैलाये मेघ जालसे बाहर आ चुके थे। तरुण रेंजर पंडित देवदत्त शर्मासे पहिले ही सलाह हो चुकी थी, कि एक दिन देवीके पास चलना है।

'मैं चाय पीकर गया—चाय तो खैर मैं फीकी सिर्फ काढ़ा पीता हूँ, किन्तु उसके साथ पुण्यसागरकी कृपासे फाफड़के दो मधुमय चीले मिल जाया करते हैं। लेकिन शर्माजी भी चायपर डटने जा रहे थे और ननद-भाभी सावित्री देवी कृष्णदेवी पाकशालामें अपने शास्त्रका कौशल दिखलानेमें लगी थीं। मुझे भी कुछ नाश्ता करनेका आग्रह हुआ। मैं "अधिकस्याधिकं फलं" माननेवाला तो अब नहीं रह गया हूँ, किन्तु सोचा (देवी दर्बार में) जाना है, दो परावठियाँ और भीतर रख ली जायें तो काम आयेंगी। परावठियोंकी मधुरता क्या कहना है? स्त्रियोंको भगवान्ने जिस कामके लिये अपने चारों हाथों से बनाया, यदि वह उसी काममें लग जायें, तो बस वही पारसवाली बात है, छुआ नहीं और लोहा भी सोना। मेरे ऐसा कहनेसे पुण्यसागरको रुष्ट होनेकी जरूरत नहीं, मैं उनके बनाये भोजनकी निन्दा नहीं करता।

खैर, चायपानके बाद पाँच-सात गूजबरियाँ भी खाईं। हम दोनों कोठीकी ओर चले। रास्ता उतराई ही उतराई, अभी तो कुछ नहीं किन्तु लौटते वक्तके ख्यालसे दिल कुछ उतना प्रसन्न नहीं था। मैंने देवी की चालाकीकी बात सुनाई तो शर्मा जी बोले—यदि वहाँ पहुँचने पर उसने फिर मेघजाल फैला दिया? मैंने कहा—"तब मैं अपनी पुस्तकमें लिख दूँगा, कोठी देवी जैसी कुरूपा देवी सारे किन्नर में नहीं है, बस स्त्रियोंमें कुरूपा शिरोमणि श्यासोके बिस्टकी गूँगी नौकरानी देखी और देवियोंमें कोठीकी देवी।" मैं फुसफुसाकर नहीं कह रहा था, इतने ऊँचे स्वरमें बोल रहा था, कि आसपासके बान (ओक) वृक्ष और उनकी आड़में जहाँ-तहाँ छिपे देवी के गण भी सुनलें। मुझे पूरा विश्वास था, कि देवी पूरी तौरसे सजग है। खैर, देवी "चालाक" ठहरी, समझ गई यदि इस निठुर नास्तिकने कहीं लिख मारा, तो उसकी पुस्तक तो चारों खूँट में फैल जायेगी और मैं यहाँ बैठी रहूँगी। दुनिया समझेगी, कोठीकी चंडिका सचमुच कुरूपा है। उसने फिर बादल फैलानेका नाम नहीं लिया। फैलाती भी तो मैं

लेखकके धर्मको छोड़ वैयक्तिक वैमनस्यके कारण अपनी सरस्वतीको असत्पथपर न चलाता। देवीका चेहरा और नुकीली नाक तो सुन्दर है ही, उसके बायें नथनेकी नथपर तो मैं दिलोजानसे फ़िदा हो गया।

रास्तेमें कुछ दूर तक तो हम देवदार और न्योजाके जंगलमें उतरते गये। आज यहाँ जंगल है, किन्तु शताब्दियों पूर्व यहाँ खेत थे। मैंने कहा—मालूम होता है, पहिले यहाँ आजसे अधिक आदमी बसते थे। शर्माजीका कहना था—नहीं, पहिले जंगल काटकर लोग दो-तीन साल खेती करके दूसरी जगह चले जाते थे। मैं सहमत नहीं था—पहिले तो दो तीन सालकी खेतीके लिये इतनी परिश्रमसे बड़े-छोटे पत्थरोंकी दृढ़ दीवारें क्यों जोड़ी जातीं, जो शताब्दियों बाद आज भी खड़ी हैं? दूसरे, कोठी कोई प्राचीन सम्भ्रान्ता नगरी थी, जिसके मील आधमील पर जंगल फूँक अस्थायी खेत नहीं बनाये जा सकते। यह तो खैर इतिहासकी बहस ठहरी, किन्तु आज भी लक्षण मालूम होता है। कुछ वर्षों बाद यहाँ जंगल नहीं फिर खेत भी नहीं मेवों के उद्यान लग जायेंगे। यह स्थान सात हजार फुट पर है जो मीठे मेवोंके लिये अत्युपयुक्त है। रास्ते में हमें आगे खेत भी मिले, बागभी मिले। वृक्ष सुनहली चूलियों से लदे हुए थे। नीचेके वृक्षोंकी चूलियाँ छतों पर सुखाई जा रही थीं। घर-बाग, खेत, बनखड सब बीच-बीचमें बदलते जाते थे। कोठी देवीका वननिवास आया। लकड़ी-पत्थर का तिरछी छतवाला घर था, जिसमें देवी कभी-कभी आकर विराजमान होती हैं। यह देवरक्षित वनखंड है। राजरक्षित वन-खंड में तो आँख बचाकर लोग कुल्हाड़ा भी चला लेते हैं, क्योंकि जंगल विभाग हर जगह कहाँ वनपाल रख सकता है? हमने सैर करते समय एक दिन देखा एक आदमी बहुत पतले-कच्चे देवदारपर कुल्हाड़ा चला रहा है। हमें देखते ही वह दुबक गया। उसे क्या परवाह, कि बीस साल बाद यह कई गुना अधिक और दृढ़ लकड़ी देगा। उसे झोपड़ी बनानेके लिये पतली लकड़ी चाहिये, जो साथही घरसे नातिदूर होना चाहिये। बस वह कुल्हाड़ा चला रहा था। सामाजिक दायित्व जाये चूल्हे भाड़ में समाजके प्रति दायित्वहीनता का उपदेश हम क्यों इन अशिक्षित किन्नरोंको दें, जब कि हमारे शिक्षित करोड़पति सेठ कपड़े, अनाजसे कन्ट्रोल हटतेही समाजके गलेपर निष्ठुरतापूर्वक छुरा चलाने लगे।

हाँ, तो देवरक्षित वनखंड सचमुच पूर्णतया सुरक्षित था, किसकी शामत आई थी, कि देवी चंडिकाके द्वारा रक्षित वनपर कुल्हाड़ा चलाये ? यहाँ कितने ही बानके भी वृक्ष थे। १९१० ई० में जमुनोत्तरी और केदारनाथ के रास्तेमें वानको मैंने देखा था, तबसे हिमालय की सभी यात्राओंमें हिमपातीय स्थलों-पर वृक्षको देखता था, किन्तु यह नहीं मालूम था, कि यहाँ अंग्रेजीका ओक है शर्माजीने श्वेत और भूरे दोनोंका परिचय कराया, पत्तेके निम्नतलके रंगके अंतरसे यह नामभेद है। युरोपका ओक विशाल वृक्ष होता है, हमारे हिमालय का वान न उतना बड़ा होता है; न इसकी लकड़ी उतनी अच्छी होती है। ईसाई धर्मके प्रचारसे पहिले पवित्र ओक युरोपकी एक विशेष चीज थी। उसके पुरातन देवता इसीके नीचे रहा करते थे। हिमालय वासी अपने देवोंमें प्राचीन युरोप से एक अंगुल भी पीछे नहीं हैं। किन्तु उनके देवता वानको पसन्द नहीं करते। वह तो दुनियामें अद्वितीय सुन्दर हिमांचलीय देवदारको ही अपना आवास बनाते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वानके प्रति हिमाचलियोंका प्रेम-भाव नहीं है। भाव बहुत है। वानके पत्ते किनारों पर काँटे लिये गंगाकी तट-भूमिकी भाँति कटे होते हैं। यह जाड़ोंमें भी हरे तथा अपनी टहनियोंपर दृढ़ता पूर्वक खड़े रहते हैं। हिमपातीय जगहोंमें पशुओंका आहार जाड़ोंमें एक बड़ी समस्या होती है, जब कि चारों ओर भूमि हिमाच्छादित हो जाती है। वैसे देवदार, कैल, न्योजाके पत्ते वानसे भी अधिक सदाहरित रहते हैं, किन्तु यह पशुओंकेलिये अखाद्य हैं। और वान, उच्चभूमिक हिमालयका कल्प-वृक्ष है। हर साल हजारों पशुओंके प्राण यही बचाता है। यहाँके गृहस्थ वानका नाम बड़े सम्मान से लेते हैं। मैंने शर्माजीके सहगामी से पूछा—पत्तोंमें किनारेपर काँटे हैं, पशु उन्हें कैसे खाते हैं ? उत्तर मिला—बड़ी खुशी से उनके लिये हरा पत्ता हलवा है, सूखेको नहीं खा सकते। हम लोग पेटभर पत्ते नहीं दे पाते, अंदाज करके देते हैं, जिसमें बर्फ पिघलने के समयतक पत्ते चल जायें।

कोठी पहुँचते-पहुँचते चूली के वृक्ष फलोंसे खाली थे, अब वह छतों पर पड़े सूख रहे थे। आखिर हम कोठी गाँवमें पहुँच गये। मुझे यह भी ख्याल नहीं था, कि कोठी इतना प्राचीन, इतना ऐतिहासिक महत्व का स्थान होगा। पानी की कूल पारकर आगे बढ़े। बाँई ओर एक मंदिर दिखाई दिया। शर्माजीके

सहगामी वनपालने कहा—यह भैरवका मंदिर है, और वह है नीचे देवीका मंदिर। मैंने हल्के दिल से कहा—चलो पहले भैरवसे ही निबट लें। मन्दिर बाहरसे भी उपेक्षित था और भीतर तो और भी। बाहरी बरांडेसे दो पोरसा नीचे पत्थर बिछे आँगनके बीच एक चार-पाँच हाथ गहरा नातिलघु पाषाणबद्ध कुण्ड था। बरांडेसे भीतर मन्दिरमें घुसिये, तो एक परिक्रमा सी थी, जिसके भीतर छोटीसी कोठरी गर्भमन्दिर था। वहाँ दशभुज तथा दो हाथ लम्बी भैरव-जीकी मूर्ति थी, गर्भगृहके बाहरका प्रायः तीन हाथ चौड़ा छ हाथ लम्बा अँधेरा-सा स्थान सरायका काम दे रहा था। सर्वसाधारण यात्री यहाँ टिकनेकी हिम्मत नहीं कर सकते। यहाँ आकर टिकते हैं। भूल-भटककर यहाँ पहुँचे हमारे नीचेके सन्तजन। दो धूनियाँ कुछ ही समय पूर्व वहाँ जली थीं, जिनकी लकड़ी और कोयला अब भी वहाँ मौजूद थे। सन्तजन धूनी लगाकर यहाँ बैठ जाते, और फिर चिलम पर चिलम गाँजा या कंकड़ "लेना हो शंकर, गाँजा ना कंकड़," "कैलाशके राजा दम लगावे तो आजा" कहते चलने लगता। मैं गाँजा कंकड़ का विरोध नहीं करता, घुमक्कड़ोंके लिए कभी-कभी वह आवश्यक हो पड़ता है किन्तु, यहाँ धूनी देखकर मेरा मन जरूर सिहर गया, क्योंकि इनके दो हाथ पर ही भीतर चार लकड़ी और १७ पत्थर की मूर्तियाँ हैं, जो दसवीं सदी के आस-पास की हैं। सारे किन्नर में इतनी प्राचीन मूर्तियाँ मैंने नहीं देखीं, और साथही शताब्दियोंके बौद्ध गणमें यह हैं हर गौरी, सरस्वती आदि ब्राह्मणधर्मी मूर्तियाँ ! गंगोत्रीके रास्तेमें भैरव घाटीसे नीचे जांगलापुलके पासकी एक अच्छी धर्म-शाला धुनी और चिलमपर न्योछावर होगई। वही बला यहाँ पाली जा रही है, यदि कभी आग लग गई, तो इस बहुमूल्य पुरातत्वासामग्रीसे किन्नर और भारत वंचित हो जायेगा। घुमक्कड़ साधुओंके लिये भी कोई स्थान होना चाहिये, यहाँ कि सर्दी में नीचेसे आये सन्त पेड़केनीचे धूनी नहीं रमा सकते। देवी काफी धनी है, उसे चाहिये अपने भक्तोंकेलिये एक घर खाली करा दे, या नया बनवा दे, ताकि इन प्राचीन मूर्तियोंकी रक्षा हो सके। यदि यह न हो, तो इन उपेक्षित मूर्तियोंका स्थान यहाँ नहीं हिमांचल संग्रहालय है।

हाँ, यह मूर्तियाँ सर्वथा उपेक्षित हैं। किन्नर क्या सारे पहाड़ी लोग घोर यथार्थवादी हैं, आखिर "सुर नर मुनिकी येही रीती। स्वारथ लाय करें सब

प्रीती।" वह उसी देवताकी मान-पूजा कर सकते हैं, जो उनके दुखसुखमें सीधे हस्तावलंब दें, सिर्फ विश्वाससे नहीं देवताको स्वयं मुँह या संकेतसे रास्ता बतलाना होगा। भैरवजी और उनके बीस साथी जो यहाँ इस तंग कोठरीमें सहस्राब्दीसे बन्द हैं, वह न मुँहसे बोल सकते हैं, न संकेतसे ही, फिर कनोरों केलिये क्यों न तीन कौड़ीके महँगे हों। वैसे कभी-कभी कोई धूप दे भी जाता है और नीचेके संत—जो कभी ही कभी यहाँ पहुँचते हैं—जब आते हैं, तो भैरव और उनके साथियोंका भाग्य खुल जाता है। किन्तु इस समय सबसे जरूरी प्रश्न है, इस मंदिरका सराय बनाना कब बन्द होगा, कब इन काष्ठ पाषाण-मूर्तियोंके सिरपर कच्चे धागेसे लटकती आगकी तलवारको हटाया जायेगा?

चोरबत्ती हम साथ नहीं लाये थे, और भैरवजीके गर्भगृहमें अँधेरा था। खैर, न्योजेके हीरकी लकड़ी लोग काफी जमा करके रखते हैं, जो मोमबत्त‌ीसे भी तेज जलती है, यद्यपि धुआँ अधिक देता है, तो भी वह सुगंधित होती है। शिरबचा कर हम भीतर घुसे। सामने नानाप्रहरणधारी दशभुज "भैरव"जी महाराज थे। मुझे इनके भैरव होनेमें सन्देह है, यद्यपि इसके लिये यहाँके सारे लोग और पंगी ब्रह्मचारी भी गंगा-तुलसी उठानेकेलिये तैयार हैं। भैरवके साथ कुत्ता तो जरूर होना चाहिए, नेगी संतोखदासके कथनानुसार पहिले कुत्ता था। मुँह कुछ बिगड़ासा है, लेकिन उसकेलिए मानुष्यको दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि यहाँ तक मुस्लिम जहादी कभी नहीं पहुँचे। शायद कालने ऐसा किया, शायद कभी छोटी-मोटी अग्निपरीक्षा हुई, जिसमें भैरवजी खरे उतरे। मुख कुछ विद्रूप बनाया भी गया है, नीचेका शरीर अच्छा है। पैरोंके आभूषणोंसे स्त्रीमूर्ति होनेका सन्देह होता है, लेकिन स्तन नदारद मूर्तिके ऊपर मकरतोरण है, जो चूनेसे पुता देखनेमें पत्थरसा मालूम होता है, किन्तु है काष्ठका। शायद यह मूर्तिके साथका नहीं है। किन्तु इसे अत्यार्वाचीन भी नहीं कहा जा सकता। अर्वाचीन-कालमें ऐसे मकरतोरणके बनानेका रवाज नहीं था। इसपर उत्कीर्ण सजा अति-सुन्दर न होनेपर भी उस कालके मूर्तिशिल्पको प्रकट कर रही थी, जबकि वह अभी ह्रासोन्मुख नहीं हो पायी थी। भैरवकी दस भुजाओंमें दाहिनी ओर वरद-हस्त, खड्ग, शूल, बाँई ओर धनुष, शूल आदि थे।

भैरवजीकी बाईं ओर पीछेकी दीवारोंसे सटाकर बीस मूर्तियाँ रखी हैं। सभी

चूना-पुतो, देखनेमें बिल्कुल पत्थरकीसी। सोच रहा था, फोटो लेनेकी। मैं इतना स्वार्थी नहीं हूँ, कि अपने ही दर्शनका पुण्यलूट सन्तुष्ट हो जाऊँ। मेरी तीर्थयात्रा ऐसी होती है, जिसमें दूसरे भी दरस-परस कर सकें। ऐसी जगहोंपर बहुत आज्ञा स्वीकृति लेनेके भी फेरमें नहीं रहना चाहिये। यदि उठ सके तो बाहर ले चलो और झट गोली दाग दो। छाया केमरेमें आजाये, कोई देखे कोई न देखे, फिर पीछे देखा जायगा। हिलाने-डुलानेपर मालूम हुआ, दो वीणा-पाणि (सरस्वती) तथा दो दूसरी काष्ठमूर्तियाँ हैं। शर्माजीने भी सहायता की, फिर वनपाल भी आगे बढ़ा। चारों मूर्तियाँ बराँडेमें आईं। बाहर दीपककी चौकीपर दीवारके सहारे खड़ी करके मैंने फोटो ले लिये, ठीक उतरा या नहीं, यह तो देवता ही बतला सकते हैं। वामाँके समासीन पार्वती सहित शिवकी मूर्ति पत्थरकी थी, और उसे हिलानेमें नीचे कुछ प्लास्तर टूटता, इसलिये उसे और दूसरी पाषाण-मूर्तियोंको मैंने छोड़ दिया। आखिर आगे आनेवाले समानधर्मियोंके लिये भी तो कुछ रहना चाहिये। पिछली दीवारकी मूर्तियोंमें अधिक खंडित हैं। जान पड़ता है, इस गर्भ मन्दिरमें हरएक चीजपर सफेद पुचारा फेरना धर्म समझा जाता है। फर्श, मकरतोरण, दीवार और दीवारके पासकी मूर्तियाँ सबपर बारबार पुचारा फेरा गया है। मूर्तियोंपर तो वह अंगुल-अंगुल मोटा जम गया है। यदि उन्हें धुलाया जाये, तो शायद किसीपर कोई अक्षर भी दिखलाई पड़े। यदि तीन अक्षर मिल जायें, तो शताब्दीका निश्चय आसानीसे हो सकता है। किन्तु देवता-कालीके स्थान कनौरमें अभी इतना साहस करना मैंने उचित नहीं समझा।

भैरव-मन्दिरके बरांडे या जगमोहनसे बिल्कुल नीचे ही कुंड है। पानी थोड़ासा हटकर है, नहीं तो छलाँग मारी जा सकती थी। बरांडेके पास अंगूरकी बेल चढ़ी हुई थी। अंगूर यहाँका बेशरमा पौधा है, कितना ही दुतकारो, बस चार बूँद जूठे-मीठे पानीपर जम खड़ा होता है, वैसे ही जैसे बिहारमें असाढ़-सावनमें आमकी गुठलियाँ। शर्माजीकी मोरीमें दो हाथकी द्राक्षावेलि खड़ी थी। मैंने पूछा—यहाँ भी अंगूर लगा रहे हैं? उन्हें मेरे प्रश्नपर आश्चर्य हुआ, क्योंकि सामने होते भी कभी उनका उसपर ध्यान नहीं गया था। देखा सचमुच अंगूर है। सचमुच अंगूर यहाँका बेशरमा पौधा है। घरों और गाँवोंके

खंडहरोंमें भी कितनी ही बार अंगूरकी यह निर्लज्जता देखी जाती है—बस कभी-कभी दो बूँद पानी मिल जाना चाहिये, जो दुर्लभ तो है, किन्तु क्वेटाके बराबर नहीं।

कुण्ड पाँडवोंका बनवाया हुआ है। उसमें लगे अनेक विशाल पत्थर ही इसे सिद्ध करते हैं, कि ये भीम छोड़ दूसरेके बूतेके नहीं हैं। पाँडवोंके अज्ञात-वासके सारे बारह वर्ष सिर्फ कनौरमें बीते थे, इसीलिए तो यह द्रौपदियोंकी खान है। पंगी ब्रह्मचारीकी खोजोंके अनुसार यूला, कोठी, कश्मीर (किश्मीर), रारङ्, लब्रङ्, कनम्, कामरू, रिब्बा, मोरङ्, ठंगी, वारङ्, सभी पांडवके अज्ञातवास की जगहें हैं। दूसरे गवेषकका कहना है, मोरङ्में तो उन्होंने सत-लुजकी धारा बदलनी चाही, किन्तु समयने साथ नहीं दिया। समय यदि साथ देता, तो आज सतलुजका रुख पाकिस्तानकी ओर नहीं गंगासागरकी ओर होता। कुण्डमें मछलियाँ बहुत हैं, कोठीकी देवीकी इनपर जितनी निगाह रहती है, उतनी भैरवपर नहीं। कहते हैं, यह मछलियाँ न घटतीं न बढ़तीं उतनीकी उतनी ही बनी रहती हैं। देखा न देवीका चमत्कार! चर्चा चल पड़ी, तो एक सज्जन-ने कहा—सारी मछलियाँ मादा हैं, नर कोई नहीं है। सवाल हुआ—यह कैसा? बतलाया—पहिले एक कोली था, वह समय-समयपर समन्दर (सतलुज)से मछली पकड़कर कुण्डमें डाल दिया करता था, उसको ही विद्या मालूम थी। अर्थात् ऋषियोंकी साइन्स-सम्बन्धी दूसरी भारी-भारी खोजोंकी भाँति वह विद्या भी कोलीकी बेवकूफीके कारण भारतसे चली गई। मैंने उनसे कहा—तब तो नई मछलियाँ डालनेपर दो-चार वर्षमें कुण्ड मछलियोंसे ही भर जायेगा। पुण्यसागरका कहना था—"कुण्डको हरसाल साफ कर दिया जाता है और पेंदीमें भी मिट्टी बालू नहीं रहने पाता, फिर कूलसे ताजा पानी डाल दिया जाता है। मछलियाँ उस समय पकड़कर बर्त्तनमें रख ली जाती हैं। शायद बालू मिट्टीके अभावसे अंडे बेकार हो जाते हैं।" सभी मनीषियोंका इस बारेमें घोर मतभेद है, सच्चाई क्या है, इसे तो कुछ ही हाथ नीचे बैठी "माता सा' ब" ही जानें।

फोटो लेते-लेते ही आधा गाँव जमा हो गया था। अब हम कुण्डसे देवीके मन्दिरकी ओर चले, जो दूर नहीं था। फाटकके बाहर एक काफी लम्बा-चौड़ा

चौकोर खुला आँगन, जिसके बीचमें एक छोटासा चारों ओर खुला काष्ठमंडप था। आँगनके एक कोनेपर फाटकसे दूरकी ओर पत्थरका एक शिखरदार चौकोर गुटका-मन्दिर था। मन्दिरमें लकड़ीकी दर्वजिया जड़ी थी। पूछनेपर मालूम हुआ, भीतर सीतला माई विराज रही हैं, घुटके मरनेकेलिये बैठी हैं; उनकी बुद्धिपर तरस आ रहा था। हाँ, मन्दिरके पास बाहर दो शिललिंग बिलख रहे थे, एक तो अर्घासहित कमसे कम खड़ा तो था, दूसरा अर्घाविहीन जान पड़ता था, देवीके मंदिरकी ओर सष्टांग दंडवत् करते कुछ माँग रहा था, यहाँ ऐसे जड़ देवताओंको कौन फूल-अच्छत देनेकेलिये तैयार है—बेलपत्र तो काशीसे पार्सल मँगाकर ही चढ़ाया जा सकता है, क्योंकि यहाँ देवदारोंके साथ उसकी निभ नहीं सकती। अब पंगी ब्रह्मचारी परमानन्द चैतन्य भी हमारे साथ हो लिये थे, और अपनी गवेषणाओं और तजुर्बोंसे हमें लाभान्वित कर रहे थे।

जान पड़ता है, बेल और पीपलतक ही ब्राह्मणोंके धर्मकी पहुँच है। देव-दारोंतक पहुँचनेमें उसके पंख कट जाते हैं, समुद्रका जल लगते ही वह गल जाता है, यह तो श्रीप्रकाशजीके विलायतसे लौटनेपर काशीकेदिग्गज महोपाध्यायोंकी व्यवस्थासे ही सिद्ध हो गया था। यहाँ चंडिका देवीकी पूजाकेलिये ब्रह्मण होंगे इसकी आशाही नहीं हो सकती थी। फिर उनके ज्ञानसे लाभ उठानेका अवसर कहाँसे मिल सकता था? किंतु उसकी कुछ कमी पंगी ब्रह्मचारी पूरा कर रहे थे। वैसे ब्राह्मणकुलमें पैदा होनेका दावा तो शर्मा और सांकृत्यायन भी कर सकते थे, किन्तु शर्मा श्वेत शालिग्रामके पुजारी और अपने राम उनसे भी बढ़कर सर्वभक्षी। हम अब फाटकके भीतर घुसे। बहुत छोटासा आँगन, यह कायङ् (नृत्यचक्र) केलिये पर्याप्त स्थान नहीं हो सकता था। कायङ्का स्थान बाहरका बड़ा आँगन था, जहाँ चार चक्रमें हजार नरनारी थिरक सकते थे। फाटकके भीतर दाहिनी ओर चंडिका मंदिर और बाँई ओर चंडिकाका कोष्ठागार है। फोटो लेते-लिवाते पुजारी भी आ पहुँचा। वह एकअधेड़कनेत जो साथ ही साथदेवीका ग्रोच्छ (देववाहन) भी था। यह सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई—चलो देवीकी खटोली उठाने की आवश्यकता न होगी, ग्रोच्छके मुँहसे देवी स्वयं बोल देगी। मंदिरकी छतपर छतके अतिरिक्त टीनका छत्रसा भी लगा था।

"मन्दिर कब बना" पूछने पर कितने लोग तो राजा रूदरसिंह का नाम ले रहे थे, लेकिन पंगी ब्रह्मचारीने दृढ़तापूर्वक कहा—पांडवोंने बनाया। ब्रह्मचारीको सबेरे ही सबेरे माईका प्रसाद—मालूम नहीं अंगूरी या बेमीका—मिल गया था, और उनका मुँह लाल हो रहा था। किन्तु ब्रह्मचारी पुराना अखाड़िया ठहरा, उसपर पांचदस चषकका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। तो मंदिर पांडवोंने बनाया, अर्थात् कमसे कम पाँच हजार वर्ष पुराना है, इसकी आधी लकड़ी पत्थरकी दीवारें, देवदारकी कड़ियाँ और किवाड़ सारे ही पांडवों के बनाये हैं।

अबतक पुजारीने द्वार खोल दिया था। दाईं ओर चंडिकाका विमान था और बाईं कोर कालीका। यहाँकी सर्वेसर्वा चंडो ही हैं, काली तो ऐसा ही मुसाहिबी कर रही हैं। चंडीके बड़े मुंडमें कई चेहरे लगे हैं, जिनमें सामनेवाला सोनेका है। कह नहीं सकते शुद्ध सोनेके पतरेका है, या ताँबेपर मुलम्मा किया हुआ। चंडिकासे मैंने मन ही मन कहा—"भई! नत्थ तेरी गजब ढा रही है।" ब्रह्मचारीसे पूछना जरूरी नहीं समझा, नहीं तो कह देते नत्थको द्रौपदीने अपने हाथों देवीको पहनाया। पांडवोंके अज्ञात-प्रवासके प्रताप से कनौरमें द्रोपदियों की कमी नहीं। यहाँ तो द्रोपदी सम्प्रदाय घर-घर माना जाता है। देवी के विमानमें देवी मुंडसे नीचे चाँदीके पत्तरीकी एक मूर्ति लगी थी—यही चीनी ठाकरस दसरामकी पुत्री है।

देवीके दर्शन हुये, कालिकाके भी। अब ढब्लाके भविष्य-कथनका निर्णय कराना था। देवी कोई पाँच वर्षकी बच्ची नहीं थी, कि बिना उसकी स्वीकृतिके उसे किसी ऐरे-गैरे-नत्थूखैरेसे बाँध दिया जाये। मैंने अपने जान होशियारी की, किन्तु देवीने एक न चलने दी। मैंने सोचा—यदि ग्रोच्छ्के मुँहसे पूछूं, तो क्या जाने ग्रोच्छ समझ जाये और ना कर दे, यदि विमानारूढ़ मुंडसे पूछे, तो भुर्जके लचीले लट्ठे लचका खाकर न जाने मुंडको "हाँ" की ओर लटका दे या "नही" की ओर। इसलिये पहिले चिट्ठी डालनी चाहिये। यदि "नहीं" निकल जाये, तो फिर भी एक मौका और पूछनेका रह जायेगा। ओच्छ्के हाथमें लिखकर दो चिट्ठियाँ डलवाईं। जूयेकापता तो थाही, निकला "व्याह नहीं करना"। अब क्या करें? देवी तो जान पड़ता है, अपनी स्वतंत्रताको किसी शर्त और किसी दामपर बेंचनेकेलिये तैयार नहीं। मैंने दूसरी चिट्ठी भी ले ली, और ब्रह्मचारी को अलग

ले जाकर दूसरी चिट्ठी दिलवाते हुये कहा लो, देवी ब्याहकेलिये राजी है, किन्तु अब विमान-उत्थापन या ग्रोच्छ द्वारा एक बार और निश्चय कर लेना चाहिये। अभी तक लोगोंको पता नहीं था, कि देवीसे चिट्ठीमें क्या पूछा गया था। समझते होंगे, यह पंडित दूसरोंकी भाँति दुखसुखकी बातें पूछेगा। उन्हें क्या मालूम, यदि वैसा करना होता, तो आज पंडितका सिंहासन सारी त्रिमूर्ति, समूचे देवी-देवताओंके-शिर-पर न होता और तैंतीसो कोटि देवता अल्ला-यहोवा ईश्वर के साथ उसके सामने "त्राहि-त्राहि" की गुहार नहीं करते। लेकिन जब उन्हें ब्याहकी बात मालूम हुई, तो सबका और ग्रौच्छ+पुजारीका मत्था और ठनका। देवता बुलानेकी बात कहनेपर ग्रौच्छने कहा—बिना देवीकी आज्ञाके वह नहीं हो सकता। आज्ञा लेनेके लिये विमान उठानेवाले आदमी वहाँ नहीं थे—विमानको जैसी-तैसी जोड़ी नहीं उठा सकती। पड़ गया मामला खटाई में। मैंने तहसीलके पेंशनर मुहर्रिर (लिपिक) सत्तर सालकी आयुमें भी तीन-तीन प्रौढ़ाओंके पति धर्मानन्दसे इसके बारेमें कहा—वह देवीके कारदार हैं। धर्मानन्द हाथ जोड़ने लगे—क्षमा कीजिये। आपको तो कुछ नहीं होगा, हम बाल-बच्चेदार आदमी हैं। मैंने भी सोचा—मुझे क्या पड़ी है, मैंने तो सोचा बुशाहरमें राजाका अंत हुआ, देवताओंका अंत भी बहुत दूर नहीं दिखलाई पड़ता, बेचारी देवी चिरकुमारी है, उसने दुनियाका खट्टा-मीठा खुलकर देखा नहीं। एक तकिये पर दो सिर हो जायें, तो क्या जाने इसका कुछ काम बन जाये। लेकिन "विनाशकाले विपरीत बुद्धि" को कौन रोक सकता है?

× × ×

कोठीमें बीते तीन-चार घंटे बहुत कार्यव्यासक्तिके थे। लौटते समय मस्तिष्क में तूफान उठने लगा, और वह क्षणिक तूफान नहीं था। देवी से मुझे कुछ लेना देना नहीं था, सवाल था भैरव जी और उनके साथियोंका। यह यहाँ कहाँसे आये? किसने इन्हें बनाया? इस घोर स्वार्थी देव-पूजक देशमें यह परमार्थी अचल देव मंडली कहाँसे आफँसी? सचमुच यहाँ मिट्टी-पत्थर-धातु काष्ठके पूर्ण शरीरवाले देवताओंकी कोई माँग नहीं। सौदा वहीं जाता है, जहाँ उसकी माँग होती है। यहाँ तो वे ही देवता चल सकते हैं, जो "गंगाछवों" (विमान) पर बैठे नाच सकें, जिसमें उनके अगल-बगल लटकने और ऊपर

नीचे झूलनेके संकेतसे बातचीत की जाये। पुण्यसागर ने कहा—पहलवान जैसे आदमियोंने लट्ठोंको रोककर रखा, किन्तु विमान हिले बिना नहीं रहा। तिपाईसे भूत बुलानेवाले भी ऐसा ही कहते हैं यह सोचते हुये मैं बोला—जरा लचकदार लट्ठा हटाकर देवदार या लोहेके कड़े लट्ठे लगा दो, तब देवी देवता झूलें तो जानूँ। स्वयं झूलना ही है तो क्या जरूरत है दो जनोंके कन्धे पर झूलने की, धरती पर बैठे ही बैठे क्यों नहीं झूलते ? खैर, हटाइये इन बच्चोंकी-सी बातों-को, सवाल तो है, यह मूर्तियाँ यहाँ कैसे आईं ? ब्राह्मण धर्मकी मूर्तियाँ हैं, खाँटी ब्राह्मण धर्मकी, और यह है बौद्ध देश, म्लेछ देश।

मूल किन्नर जातिपर प्रथम खसों का, फिर भोटों का प्रभाव पड़ा। उनके घनिष्ठ सम्पर्कसे बड़े पैमानेपर रक्त-सम्मिश्रण हुआ। वह एक दूसरे के विचारों और भाषाओंसे प्रभावित हुये। आज किन्नर-भाषामें प्रायः ३६ से ६० प्रतिशत मूल किरात भाषा के २५ से ५२ प्रतिशत हिन्दी आर्य शब्द और १४ प्रतिशत तिब्बती शब्द मिलते हैं। हिन्दी आर्यसे सम्बन्ध तीन सहस्राब्दियों का है, किन्तु तिब्बत से घनिष्ठता छ शताब्दियों (सातवीं से तेरहवीं) तक ही थी। इसी समय १४ सैकड़ा तिब्बती शब्द आ पहुँचे। ये शब्द साधारण नहीं हैं। सारी कनौरी गिनती तिब्बती है। "हैं", "नहीं", के शब्द भी तिब्बती भाषाके हैं, जो बतलाते हैं कि भोटका अन्तःप्रवेश कितनी दूर तक हुआ था।

कोठीकी मूर्तियोंका समय क्या हो सकता है ? मूर्तियाँ जिन देवताओंकी हैं, और मूर्तिकला जिस प्रकारकी है, उसे देखते हुये इन्हें गुप्त-कालमें नहीं ले जा सकते। सातवीं से दसवीं सदीतककी तीन सदियाँ ही हैं, जब कि कनौर पर भोट का जबर्दस्त प्रभाव पड़ा, उसीका परिणाम है कनौरी भाषा के १४ सैकड़ा भोटिया शब्द मूर्तियों के बनवाने वाले स्वामी दो-चार गाँवके क्षुद्र ठाकरस् नहीं हो सकते। उस समय कोठी समृद्ध नगरी या छोटी-मोटी राजधानी रही होगी, जहाँ ब्राह्मण-धर्म इतना शक्तिशाली था, कि उसने भोट साम्राज्य और संस्कृतिके समुद्रमें एक सुदृढ़ दुर्ग बनाया। युक्तियुक्त यही बात मालूम होती है, कि यह मूर्तियाँ तब बनाई गईं, जब तिब्बती प्रभाव अभी यहाँ आया नहीं था, या आकर निर्बल हो गया था। पहिली अवस्थामें वह काल ईसाकी सातवीं सदीके पूर्वार्ध

हो सकता है, अर्थात् वाण और हर्षका काल या मौखरिवंशका समय; दूसरी अवस्थामें वह दसवीं सदी हो सकता है, जब स्रोङ्चन् द्वारा स्थापित साम्राज्य (६१७-६०२ ई०) ध्वस्त होने लगा और अभी उसके वंशज स्क्यिद्-दे-ञिमा-गोन् (६८३ ई०) ने पश्चिमी तिब्बतमें एक अलग राज्य स्थापित नहीं कर लिया था। भोटसाम्राज्यके ध्वंसके बाद, यहाँ कोई ब्राह्मणधर्मी शासक वंश आ पहुँचा। उस समय किन्नर के सबसे समीपका पड़ोसी राज्य था, कनौजका गुर्जर-प्रतिहार वंश, जिसके सिंहासनपर दसवीं सदीके प्रथम तीन चरणोंमें भोज (द्वितीय), प्रथम महि, (विनायक) पाल (६१४-४१), द्वितीय महेंद्रपाल (६४५-४८ई०) देवपाल (६४८-५३), विनायकपाल द्वितीय (६५३-५४), महिपाल द्वितीय (६५४-५५), वत्सराज द्वितीय (६५५-६६०), विजयपाल (६६०-१०१८ई०) बैठे थे। प्रथम महिपाल प्रबल प्रतिहार शासक था, हो सकता है, उसने अपने उत्तरी पड़ोसी साम्राज्य की निर्बलतासे लाभ उठाया हो। इसमें तो संदेह ही नहीं कि आजकी भाँति उस समयके भी किन्नर अपनी भेड़-बकरियों को सर्दियोंमें देहरादूनके जिलेमें ले जाते थे और उनके द्वारा हिमाचलके इस अंचलकी कोई बात कन्नौजसे छिपी नहीं थी।

संक्षेपमें हम कह सकते हैं, कि मूर्तियोंका समय तो कन्नौजके मौखरियों (छठीं सदी)—हर्ष (सातवीं सदी पूर्वार्ध) का समय हो सकता है, अथवा प्रतिहारवंशी प्रथम महिपाल-विजयपालका समय यह बात भी ध्यान रखनेकी है, कि कोठीसे दस मीलपर वस्पाकी घाटीसे एक ही डाँडा पार करके हम भागीरथी की उपत्यकामें पहुँच जाते हैं, जहाँ उत्तरकाशी (बारहाट)में मौखरि-हर्षकालीन (लिपि के अनुसार) अभिलेख अष्ट धातुके एक विशाल त्रिशूल (शक्ति) की जड़ में खुदा हुआ है, और वहीं पश्चिमी भोट राजवंशी शासक नागराज (ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्ध) द्वारा बनवाई पीतलकी सुन्दर और बड़ी बुद्धप्रतिमा भी मौजूद है। यह शक्ति उस समयका प्रतिनिधित्व करती है, जब अभी पश्चिमी हिमालय और पश्चिमी तिब्बतमें भी भोटका साम्राजीय और जातीय विस्तार नहीं हुआ था। तो मूर्ति होगी उस समयकी, जब स्रोङ्चन-वंशज क्यिद-दे-ञीमा-गोन् (६८३) ने फिर अपने वंशके पश्चिमी तिब्बत और पश्चिमी हिमाचलके भी कितने ही भागका शासक बना दिया था। राजनीतिक परिस्थितिपर ध्यान रखते हुये हम

कोठीकी मूर्तियोंको दसवीं सदीकी मान सकते हैं, यह संभावना अधिक है, यदि हम केवल मूर्तिकौशल पर विचार करते हैं। अन्तिम निर्णय तो किसी अभिलेख के मिलनेपर ही किया जा सकता, जिसका मिलना असम्भव नहीं है।

तिब्बती प्रभुत्व के दोनों काल (६४०-६०२ ई० और ६८३-१३०० ई०) में किन्नरपर ब्राह्मण-प्रभावकी प्रबलताकी संभावना क्यों नहीं हो सकती, यह प्रश्न उठ सकता है। संभावना बिल्कुल नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु एक ही समय ब्राह्मण प्रभुत्व और भोट प्रभुत्व दोनों प्रबल रूपसे नहीं रह सकते थे। हम देखते हैं, किन्नर-भाषा अतएव जाति पर तिब्बती गिनती और १४ प्रतिशत शब्दोंके रूपमें भोटाका प्रबल प्रभाव पड़ा है, जो उसी समय हो सकता है, जबकि ब्राह्मण-प्रभुत्व उतना प्रबल न रहा हो। कोठीका शासक ब्राह्मणधर्मी अभोटवंशी भोट-राज्य का सामन्त भी हो सकता है, क्योंकि भोट-राजा पक्के बौद्ध होते भी दूसरे धर्मों के ध्वंसक न थे। किन्तु, फिर वही प्रश्न होता है—ब्राह्मण प्रभावके सबल रहते समय भोट भाषाका इतना गहरा प्रभाव किन्नर भाषापर कैसे पड़ा ?

कोठीकी मूर्तियोंने भारी ऐतिहासिक समस्या खड़ी कर दी, इसमें संदेह नहीं, जिसकी हल्की कुन्जी भी वहीं से मिलेगी, जबकि यहाँ लोग विद्या और धन दोनों से समृद्ध हो जायेंगे, और उन्हें स्वयं अपने वास्तविक इतिहासकी जिज्ञासाके प्रति प्रेम होगा। यह तो निर्विवाद है, कि कोठी जिसको किन्नर भाषामें कोष्ठङ्पे (प्रासादपुर) कहते हैं, प्राचीन हिमाचलके महत्वपूर्ण नगरोंमें थी। उस समय यहाँकी बस्ती और जनसंख्या भी अधिक रही होगी। इसी ओर आज जंगलमें दूरतक फैले प्राचीन खेतोंकी दीवारें भी संकेत करती हैं। हालके आँकड़ों और पुरानी कथाओं से सिद्ध है, कि शोवा (जिसके बीचमें कोठी है) शिबू (लाल-अंगूरी मदिरा) का केन्द्र रहता आया है। यहाँ की देशज काली छोटी द्राक्षा आज भी खानेमें अधिक मीठी और स्वादिष्ट होती है। पाटलिपुत्रके प्रथम प्रभुत्व (मौर्यवंश) के समय तो कापिशायनी (काबुली) द्राक्षी मदिरा भी अपने घर की थी, किन्तु कान्य-कुब्जके प्रभुत्व-कालमें नजदीकमें सबसे सुवर्ण और स्वादिष्ट भी द्राक्षी मदिरा शोवा की ही थी। इसमें किसे संदेह हो सकता है, कि किन्नर अजपाल उस समय जाड़ोंमें कालसी या हरिद्वार जाते वक्त अपनी

बकरियोंपर उदुंवरवर्णा सुराके चर्मकुतुप भी ले जाते थे, जिसकी कान्यकुब्जके राजप्रासादों और सामन्त प्रसादोंमें खासी माँग थी। अंग्रेजी शासनकालमें यहाँ आनेवाले अंग्रेज शासकोंको बराबर शिबू भेंट की जाती थी, और कितनोंने उसकी प्रशंसा भी करी, किन्तु वह नहीं चाहते थे कि शिबू विलायतसे आने-वाली अंगूरी शराब का जरा भी स्थान ले।

कोठी और शोवा के दिन कभी बहुत अच्छे थे। उस समय चिनीका क्या स्थान रहा होगा? चिनी है तो दो ही मीलपर कोठीसे, किन्तु है वह बहुत ठंडा स्थान। अपनी जैसी ऊँचाईके कनौरके दूसरे सभी स्थानोंसे चिनी अतिशीतल है, जिसका कारण है उसका खुली जगहमें होना और सामने सनातन हिमाच्छादित कैलाशशिखर श्रेणी से टकराकर हवाका आना। जाड़ोंकी सर्दीसे बचने-हीकेलिये स्कूल को किलेके स्थानसे हटाकर कल्पाकी ओर ले जानेका निश्चय किया गया है। अब तो सारे सरकारी दफ्तरोंको कोठी लाया जाने वाला है, और मोटर सड़क भी पहुँचना चाहती है। आशा है नई जगहमें स्कूल बनाते समय इस बातका ध्यान रखा जायेगा, कि कल्पामें विमानावतरणकी आवश्यकता होगी और उसे समतल बड़े खेतोंमें वही बनाया जा सकेगा। स्कूल अपेक्षाकृत असमतल भूमिमें भी तितल-द्वितल एकतलके जोड़से काफी लम्बा-चौड़ा बनाया जा सकता है। चिनी अधिक सर्द है, वहाँके निवासी भी चिनीके जाड़ेको पसन्द नहीं करते, तो भी चिनी प्राचीनकालसे ही सैनिक महत्वका स्थान रही होगी। उसका किला—जिसका नाम ही अब रह गया है—एक स्वाभाविक पहाड़ी टीलेपर अवस्थित था, जिसकी चारों ओर ढलाँव और सिर्फ उत्तरकी ओर लगाव था। वहाँ बहुत बड़ा किला नहीं बनाया जा सकता था, तो भी उस समयकेलिये वह एक अच्छा उपयुक्त दुर्ग था। शायद इस दुर्गका निर्माण स्रोङ्चन वंशके कालमें हुआ जिसके कुछ सम्राट् माताकी ओरसे चीनी थे, वह चीनके अधीन नहीं थे; तो भी चीनसे तिब्बत और महाचीनसे मुख्य चीनका परिचय देना, जान पड़ता है, भारतकी काफी पुरानी परम्परा है—ब्राह्मण तांत्रिक भोटके तंत्राचारको "चीनाचार" कहा करते थे। इस प्रकार भोटराजकीय दुर्गको "चीन दुर्ग" कहा जाने लगा। यहीं भोटिया शासक भी रहता था, इसलिये भोटिया लोग उसे "ग्यलूस (राजधानी) चीने"

कहने लगे। चीनी, चिनी या चिने नामकरणका यही कारण मालूम होता है।

भोट साम्राज्य के एक दुर्गस्थान होने से चिनी का महत्व कितना ही बड़ा हो, और अपेक्षाकृत अधिक सर्द मुल्कके रहनेवाले भोट सैनिकशासक वहाँकी सर्दी से भले ही असंतुष्ट न रहे हों; किन्तु यह आशा नहीं की जा सकती कि कोठी उस कालमें भी उपेक्षित रही होगी। कोठी गर्म स्थलमें है, किन्तु उसकी गर्मीकी लोग शिकायत नहीं करते, जैसी कि उससे भी नीचे सतलुजके तटभाग (नेवल)की करते हैं। अभोट शासनकालके शासक अवश्य कोठीको ही पसंद करते रहे होंगे, जैसे कि आजके लोग करते हैं। उस समय "कोष्ठङ्", प्रासाद या कोठे अधिक रहे होंगे, इसलिये शायद अनेक किन्नर गाँवोंकी भाँति "पे" लगाकर इसे "कोष्ठङ्पे" बना दिया गया। कोठी यह पहाड़ी भाषाभाषियोंका नामकरण है। ऐसा प्रायः प्रत्येक किन्नर ग्राम के नामके साथ किया गया है, जिसमें अंग्रेजोंने अपने उच्चारण और दूषित लिपिको डालकर उसे और चौपट कर दिया। नये भारतको अंग्रेजोंके नामकरणको तो हरगिज न स्वीकार करना होगा, साथ ही यह भी विचार करना होगा, कि नामकरणका अधिकार अस्थानीय निवासियोंको है, या बाटके बटोहियोंको। यदि अस्थानीय निवासियोंके नामकरणके उचित अधिकारको स्वीकार किया गया, तो कोठीको लिखना होगा "कोष्ठङ् पे" सुङ्राको "ग्रोस्नम्" कामरूको "मोने" मोरङ्को "स्गिनम्"...। देहरादूनका भारतीय माप-कार्यालय कबतक अंग्रेजोंकी परम्पराको अपने भूचित्रों में ढोता रहेगा? क्या हम राष्ट्रलिपि नागरीमें अंग्रेजीके भ्रष्ट उच्चारणको उतारकर उसे स्थायित्व दें? अक्सफोर्ड-केम्ब्रिज-लन्दनके चेलोंको उसका आग्रह जरूर रहेगा, किन्तु नवीन भारतका निर्माण उनके बूतेसे परेकी बात है। नवीन भारतसे आशा करनी चाहिये, कि हमारे सारे भूचित्रोंमें सारे नाम स्थानीय उच्चारण के अनुसार होंगे, हमारे भूगोलमें भी इसी नियमका पालन होगा, और अंग्रेजी भ्रष्ट उच्चारणका शिकार हो रूसियोंकी भाँति काली-कातासे हुये कलकत्ताका कलकुत्ता बनानेकी भूल न करनी होगी।

१७ देवीका मेला

किन्नर-देशमें अबके साल बकरियोंकी महामारी आई। बीमारी मई माससे

ही आरम्भ हुई। अजपथके यात्रियोंकेलिये बकरी जीविका का साधन होनेसे उसका नाश भारी आघात है। बीमारी कैसे होती है, इसका पता तो विशेषज्ञ ही लगा सकते हैं। लेकिन यहाँ विशेषज्ञ क्या साधारण प्राणि-डाक्टर भी नहीं है। क्या जब आदमियोंका ही डाक्टर सालोंसे नहीं है, तो पशुओंके डाक्टरकी बात क्या करनी? लोगोंके सबसे बड़ा सहारा देवता हैं। ऐसे ही समय देवताओं की पाँचो घीमे हुआ करती हैं। क्षतिका अन्दाजा इसीसे लगाया जा सकता है, कि पंगी गाँवके सौ घरोंके पास दस हजारके करीब बकरियाँ हैं, जिनमें से २५० बकरियाँ कुछ ही सप्ताहके भीतर मर गईं। जब बीमारी शोवा इलाकेमें पहुँची तो लोग कोठीकी चंडिकाकी शरणमें गये। चंडिकाने कहा मुझे* कश्मीरमें ले चलकर खूब पूजा चढ़ाओ, मैं महामारीको भगा दूँगी। चंडिकाने प्रत्येक घरसे एक-एक बकरा माँगा। अच्छे बकरेका दाम आजकल चालीस-पचास रुपया है। लेकिन जब महामारी इस तरह बकरोंकी बलि ले रही है, तो एक देवीको ही दे दिया, तो क्या क्षति? ऊपरसे चंडिकाने बड़ी उदारता दिखलाई, कहा—बकरेको मारकर मुट्ठीभर मांस दे बाकीसब अपने घरले जाओ। मेले और पर्वकी बात तो आगे आवेगी, पहिले मेलेके पहिलेकी बातें सुनिये।

यह मेला सदा लगनेवाला मेला नहीं है। वह तो अभी कुछ दिनों बाद लगेगा। चंडिकाके उस मेलेमें और भी कितने ही देवता आया करते हैं। आजकल चिनीके देवता नरेनस (नारायण) और चंडिकाका बिगाड़ हो गया है। यह बिगाड़ पिछले साल हुआ। उसी वार्षिक मेलेकी बात है। चिनी नरेनसका भाई रोगी नरेनस् अपने किसी कामके बहाने पहिले ही देवीके यहाँ कोटीमें पहुँचा। कई रातें भी देवीके साथ काटीं। देवी जब उत्सवके लिये चिनी आई, तो वह भी साथ-साथ चिनी पहुँचा। चिनीके किलेपर स्कूल के आँगनमें देवता जमा हुये। पहिले नाच हुआ, इसमें भी रोगी नरेनस् देवीसे सटेसटे रहा। चिनी नरेनस् को जलन तो हुई, किन्तु उसने उस समय अपनेको रोका। नाचके बाद तीनों देवताओंके बैठनेका समय हुआ। प्रथाके अनुसार देवीकी बगलमें चिनी नरेनस्का स्थान होता है, किन्तु रोगी नरेनस्ने वह स्थान ग्रहण किया। देवी

---

* चीनी के दो मीलपर एक जगह है।

इस अन्यायको देखती रही। उसने इसकेलिये डाँटा नहीं। चिनी नरेनस् अब भी खूनका घूँट पीकर रह गया।

चिनी नरेनस्को कुछ कामके बारेमें बात करनी थी। रीतिके अनुसार दो देवताओंकी बातके समय और देवताओंको हट जाना चाहिये। रोगी नरेनस् हट तो गया, किन्तु अभी बात समाप्त नहीं हुई थी, कि बीचमें ही वह दोनों देवताओंके भीतर घुस आया। शायद वह समझ रहा था, चिनी देवता स्थान छीनना चाहता है। उसने सोचा, देवीकी बगलमें बैठने का हक चिनी नरेनस्को सदाकेलिये नहीं मिला है। देवीकी मर्जी है, चाहे जिसे अपने पास बैठने दे। देवता कितनी बेवकूफी कर रहे थे। जरासी बातकेलिये झगड़नेकी क्या बात है? हो सकता है देवीका मन चिनी नरेनस्को बगलमें नाचने-बैठनेसे उकता गया हो कोई दोनोंके आजन्म सम्बन्धकी बात भी नहीं थी, किन्नरके सभी देवी-देवता स्थायी सम्बन्धके विरोधी हैं। हो सकता है चिनी नरेनस् दशाब्दियों या शताब्दियोंसे देवीके पास बैठनेका आनन्द लेता हो, किन्तु देवशास्त्रमें उससे कोई स्थायी अधिकार नहीं होता—देवता केवल मुक्त-प्रेमके पक्षपाती होते हैं। मान लीजिये बड़ा नरेनस् अधिकार रखता हो, किन्तु क्या भाभीमें छोटे भाईका हक नहीं होता, विशेषकर कनौरमें जहाँ पंडित-विवाह धर्मानुमोदित प्रथा है। "देवताओंमें यह प्रथा नहीं चलती" यह तर्क रहने दीजिये। यह देवता मानवके आरंभ-कालके प्राणी हैं, जब अभी कोई व्यवस्था तैयार नहीं हुई थी। दोनों नरेनस्का देवीके साथ जो सम्बन्ध है, क्या उसमें आजकलका सुन्द-उपसुन्द-न्याय घट सकता? छोटे नरेनस् की गुस्ताखी यदि मानें, कि उसने बड़े भाईके स्थानको अनुचित तौरसे दखल किया; तो, क्षमा कीजिये आपकी देवीभी दूधकी धुली नहीं रह गई है, किस तरह उसने भाइयोंके कलहको रोका था? चिनी नरेनस्का देवीके मेलके बायकाट तक उतर आना, और अपने भक्तोंको पाँच रुपया जुर्मानाकी धमकी देनेका अर्थ ही है, कि वह छोटे भाईपर ही नाराज नहीं हुआ, बल्कि देवीपर भी उसके पक्षपात-पूर्ण व्यवहारके कारण रुष्ट हो गया है। सालभर हो गये, अभी सुलहका कोई डौल दिखलाई नहीं पड़ता।

पाठकोंको जिज्ञासा होगी, कि देवताओंमें इतनी कहा-सुनी कैसे हो जाती है। बात ठीक है, इतनी शीघ्रतासे सारी बात हो जाना देवता के शिरश्चालनसे

नहीं हो सकता। ऐसे समय देवता अपने प्रोत्त (देववाहन) पर आकर उनके मुँहसे बोलते हैं, और इस तरह सारा वार्तालाप चुटकी बजाते हो जाता है।

प्रियभारतजी गायक और कवि हैं, यह पहिले कह आये हैं। आज (६ अगस्त) वह सबेरेके टहलनेमें शामिल हो गये थे और आत्मा-परमात्माके खंडनकी बातोंको इतनी दिलचस्पीसे सुन रहे थे, मानो सभी बातें उनके अन्तस्तलमें धँसती जा रही हैं। अन्तमें उन्होंने सङ्लाके बड़े देवता "बारोबीर" की बात सुनाई। वह लड़कोंको परीक्षा में पास कराता है, युद्धमें जीत कराता है। बीमारी अच्छा नहीं कर सकता, हाँ नाराज होनेपर बीमार जरूर करा सकता है। प्रियभारतजी सङ्लामें तीन साल अध्यापक रह चुके हैं, इसलिये बारोबीर के बारेमें जो बातें उन्होंने मालूम कीं, वह सुनीसुनाई नहीं, वैयक्तिक अनुभव पर निर्भर है। मैंने अपने स्वभावके अनुसार बारोबीरको दो-तीन खरीखोटी सुनाई, तो प्रियभारतका चेहरा खिल उठा। उन्होंने कौशलके साथ घुमा-फिरा कर बारोबीर की परीक्षाके लिए कहा। बारोबीर साङ्ला गाँवसे पहिले, पुलको भी पार करनेसे पहिले ही जंगलमें एक विशाल देवदार वृक्षपर रहता है। यद्यपि वह काफी बड़ा देवता है, किन्तु उसका चेहरोंसे सजा मुँड और नचौआ विमान नहीं है। मुझे मालूम हुआ, देवता गाँवसे बाहर किसी वृक्ष पर रहता है, इसलिए यदि मैं उसकी परीक्षा लेनेकेलिये गुस्ताखी भी करूँ, तो कोई देखनेवाला नहीं रहेगा। देवतासे भी अधिक खतरनाक उनके दास होते हैं, इसलिये उनसे सावधानी रखनेकी बड़ी आवश्यकता होती है। जंगलमें भक्त नहीं होंगे, यह निश्चय जानकर मैंने प्रियव्रतसे कहा—मैं तुम्हारे बारोबीरको सुनाकर पाँचबार अपने डंडे और जूतेको जमीन पर पटक कर कहूँगा, यह पाँच-पाँच तेरे सिर पर, यदि जरा भी शक्ति हो, तो आ मेरे साथ भुगत ले। मैं तीन दिन साङ्लामें रहूँगा। प्रियभारतको बहुत प्रसन्न होते देखकर मैंने कहा—मैं बारोबीरसे यह भी कह दूँगा, कि सारी बात प्रियभारतने बतलाई और उन्हीं के ललकारने पर मैं तेरी चाँदको अपने डण्डेसे गंजी कर रहा हूँ। यह सुनते ही प्रियभारत के चेहरेका रङ्ग बदल गया। कहने लगे—मैं आपसे विनती करता हूँ, मेरा नाम न कहियेगा, वह देवता बड़ा जालिम है।

प्रियभारतको और बातोंमें चाहे कितना ही मतभेद रहा हो, किंतु इसमें वह

भी सहमत थे, कि देवीने बकरीको मारकर घर ले जानेकेलिए कहा, यह ठीक नहीं किया। मैंने कहा—बल्कि देवीको कहना चाहिए था—जो अपने बकरेका चोटी भर मांस खायेगा, उसे मैं खा जाऊँगी। फिर सभी सौ से ऊपर बलि चढ़नेवाले बकरे प्रसाद रूपमें बँट जाते, खबर सुनकर लोगोंकी भीड़ भी खूब जमा होतो और गरीबोंके पल्ले भी कुछ-कुछ पड़ जाता।

× × ×

मैं तो समझता था, देवीकी विशेष पूजा मेरे जानेके बाद शुरू होगी, लेकिन जब मालूम हुआ, कि वह ७ अगस्तको होनेवाली है, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता और उतावलापन भी हुआ। सुना देवी ११ बजे कश्मीर पहुँच जायेगी। मैं पुण्यसागरके साथ १२ बजे वहाँ पहुँच गया। अभी पूजा-स्थानमें किसीका पता नहीं था। कश्मीर चीनी से दो ढाई मील पर सड़कसे नीचेकी ओर आगे चढ़ी एक पहाड़ी टेकरी पर है, जिस पर किसी समय चीनीके ठाकरका एक छोटासा दुर्ग था। दुर्ग कबका नहीं ध्वस्त हो गया ? पिछली शताब्दी के अन्त में किसी अंग्रेज ने वहाँ एक छोटा सा बङ्गला बनाया था, उसकी भी अब दीवारें ही रह गई हैं। देवी के लिए एक छोटी मढ़ी और खुला आँगन है। हम वहाँ खड़े होकर नीचे कोठीकी ओर देखने लगे—शायद दूर कहीं चण्डिकाकी सवारी आ रही हो, लेकिन न कहीं सवारीका पता था, न बाजे और नरसिंहेका। पासमें नीचे कश्मीर गाँवके आधे दर्जन परिवारों में अवश्य कुछ अधिक तत्परता दिखाई दे रही थी। शामकेलिये तरुणियाँ और प्रौढ़ायें तैयारी कर रही थीं। उन्हें कायङ् (नृत्यमण्डली) में सम्मिलित होना था। कायङ् और मेला हो, फिर भी कोई वयस्क व्यक्ति घरमें रहना चाहे, यह किन्नर-देशमें कहाँ सम्भव है ? कितनी ही छतों पर कपड़े सूख रहे थे। आज नया अच्छा दोड़ू और चदरियासे बंठिनें सजनेवाली थीं। सारा आभूषण सन्दूकसे शरीर पर आजाने वाला था। किन्नर में चोरी की आदत अभी कम है, लेकिन चोरको ताले पड़े घरोंमें से आभूषण और अच्छे वस्त्र तो नहीं मिल सकते। कश्मीरकी टेकरीके नीचे एक ओर पहाड़ दीवारसा खड़ा है; बाकी ओर कहीं कुछ खेत और वृक्ष हैं। एकाध जगह धुआँ भी उठता दिखलाई पड़ा, जिसे देखकर हमें विश्वास हो गया, कि मेला होगा जरूर। घंटे भरके भीतर पाँच-सात बलि-पशु भी आ पहुँचे। बकरियों

की महामारी हटानेकेलिये पूजा हो रही थी, फिर भेड़ें क्यों बलि चढ़नेकेलिये आ रहे थे ?

दो घंटे पूरी प्रतीक्षा करनेके बाद नीचे दूर बाजेकी आवाज सुनाई दी। देवी कोठीसे रवाना हो चुकी थी, इसमें सन्देह नहीं। कुछ समय और बीतने पर देवीका गंगा-छवो (विमान) आता दिखलाई पड़ा। आगे-आगे नगाड़ा, रोशनचौकी, भेरी और नरसिंहा बज रहे थे, फिर देवीके कारदार, तब देवी और पीछेसे दर्शक-मंडली। कश्मीर गाँवके पास पहुँचने पर नरनारियोंने देवी सा' बका अभिनन्दन किया। फिर सवारी कठिन मार्गसे दुर्गपर आई। विमानके लचीले दंडे देवीको उछाल रहे थे और जबतब बैंगनी रँगसे रँगे देवीके चमरके केश खड़े हो जाते थे। अन्तमें देवी अपने स्थान पर पहुँचीं।

किन्नरके देवताओंका कोई भी काम उनसे बिना पूछे नहीं होता। देवी अब भी अपने दोनों बाहनोंके कन्धों पर रहना चाहती हैं या नीचे उतरना चाहती हैं, आँगनमें बैठना चाहती हैं या मढ़ीके भीतर आदि-आदि सभी बातें देवीसे पूछी गईं। देवीने पहिले आँगनमें थोड़ा टहलनेका विचार प्रकट किया। टहलनेके बाद बाहर बैठीं। मुझे भी इस वक्त फोटो लेनेका मौका मिला, लेकिन देवीने बराबर बाधा डाली, जिसमें कि मैं उसकी मनमोहनी नथका फोटो न उतार सकूँ। देवीने मुझे तत्पर देखकर यह भी कहा—"पंडित मेरी परीक्षा लेने आया है।" देवी इस बातमें भूल कर रही थी। पंडित देवताओंका परीक्षक होनेसे बहुत ऊपर उठ गया है।

एक घण्टा और बीता। तब तक लोग और बलिके पशु भी आकर जमा हो गये। देवी कुछ क्रोधी और कड़े मिजाजकी जरूर हैं, किन्तु वह इन्साफ भी पसन्द करती हैं। सौसे ऊपर बकरीवालों पर उसने एक पशु लगाया था और सौसे कम वालों पर कई घर मिलकर एक पशु। कुल सौसे अधिक पशु आये थे। साढ़े तीन बजे, जब बलिदान शुरू हुआ, तो स्त्रियाँ बहुत कम दीख पड़ती थीं। समस्या थी पशुओंको काटेगा कौन ? कोई स्वेच्छापूर्वक अपनी सेवाओंको अर्पित नहीं कर रहा था। देवीने हुकुम दिया, कि प्रत्येक गाँवसे एक-एक बधिक लिये जायँ। जबर्दस्ती भरती थी। तीनों बधिकोंके गलेमें देवीका प्रसाद हरे रेशमकी रूमाल बाँधी गई। उन्होंने लम्बे डंडेका खाँड़ा हाथोंमें सँभाला।

बलिका आरम्भ कैलास वाली दिशासे हुआ। पहिले पाँच बकरे कैलाशवासी महादेवको दिये गये। देवीके स्वभावसे लोग परिचित हैं, इसलिये कोई उसे फुसलानेकी कोशिश नहीं करता। सभी बलि-पशु तगड़े थे। बलिकर्ममें तीन आदमियोंकी आवश्यकता थी। एक सींगमें रस्सी बाँधकर अपनी ओर खींचता था, दूसरा आदमी पिछले दोनों पैरोंको उठाये रखता, जिसमें पशु अपनी जगहसे हिल न सके, फिर तीसरा आदमी साधकर खंड़ेको गर्दन पर छपसे मारता। प्रायः एक ही प्रहारमें गर्दन सिरसे अलग जा गिरती थी। सारे शरीरका संचालक शिर जहाँ तुरन्त निर्जीव पड़ जाता, वहाँ धड़ कई मिनटों तक छटपटाता रहता। छटपटाना क्या पीड़ाका द्योतक था? मैं समझता हूँ वहाँ छटपटानेका पीड़ासे कोई सम्बन्ध नहीं था; क्योंकि पीड़ा अनुभव करने वाला शिर अलग गिर कर निश्चिन्त बैठा था। आँगनकी चारों सीमाओंमें चार स्थानों पर प्रदक्षिणाक्रमेण बलि दी जाने लगी। माता साथ घूम-घूमकर झूम-झूमकर एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जातीं और छपछपकर पाँच पशु काट दिये जाते। दर्शकोंके चेहरों पर बड़ी प्रसन्नता थी, किसीके मुख पर ग्लानिका चिह्न नहीं था। मैं भागना चाहता था, किन्तु लेखक-धर्म बाध्य कर रहा था, कि कमसे कम एक बलि महोत्सवको तो आद्योपान्त देख लूँ छोटे-छोटे लड़के लेटकर विमान-वाहकोंके नीचेसे तमाशा देख रहे थे। गिरते धड़ोंसे निकलते खूनके फौवारेसे कपड़े रंगे जा रहे थे, जूते तो रक्तकर्दम में सनही गये थे। पहिली बार चारों जगहों पर बलिदान हो जानेके बाद, फिर उन्हें उसी स्थान पर दुहराया जाने लगा। देखकर चित्त खिन्न होता था। तड़पती लोथोंके ऊपर चार-चार छ-छ जीवित पशु बलिकी प्रतीक्षामें खड़े थे! मारना था, मारते; किन्तु इस तरहकी क्रूरताकी क्या आवश्यकता? लेकिन वहाँ समझावें किसको? बलिमें जहाँ गर्दनें काटी जा रही थीं, वहाँ साथ ही दो टोटीदार बर्तनोंसे सुरा और गुड़के रसकी धार भी बराबर बध्य-स्थान पर डाली जा रही थी। यह धारका रवाज काशीसे किन्नर देश तक लगातार चला आया है।

एक घण्टेमें बलिकर्म समाप्त हुआ। देवी मढ़ीके भीतर पधारी। लोग अपने-अपने धड़ों और शिरोंको सँभालने लगे। हुकुम मिलते ही आँगन पशुओंसे खाली हो गया, किन्तु खूनकी कीचड़ अब भी वहाँ मौजूद थी। लोगों-

मेंसे कुछ तो अपनी बलियोंको पीठ पर लाद अपने घरोंकी ओर ले चले, और कुछ वहीं पकानेकी तैयारी करने लगे। पासमें बहती कुल्यामें उन्हें धोया जाने लगा और घण्टे भरसे अधिक तक उसका शुद्ध स्फटिक सदृश जल रक्त हो गया।

पाँच बजे देवीसे पूछने पर उसने रातको भी यहीं रहनेका निश्चय प्रकट किया। इसी समय आँगनमें कायङ् आरम्भ हुआ। अब स्त्रियाँ काफी आ चुकी थीं। थोड़ी देर मैंने किन्नर-नृत्यको देखा, किन्तु कुछ तो घंटा भर पहिले समाप्त हुये भीषण कांडसे चित्त खिन्न था, और दूसरे किन्नर-नृत्य कोई नृत्य नहीं मालूम होता। वहाँ स्त्री-पुरुषोंके पैर भले ही एक साथ उठते हों, किन्तु न उसमें कोई श्रम है, न सजीविता। भीषण कांड देखकर लौटते समय रास्तेमें देखा, तरुण-तरुणियाँ झुण्डके झुण्ड कश्मीरकी ओर जा रही हैं। आज रात भर नृत्य और पान चलने वाला था।

१८ चिनीसे प्रस्थान

६ अगस्त (१६४८) को प्रस्थान करनेका निश्चय बहुत पहलेसे कर लिया था। सवारीकी जरूरत नहीं थी और भारवाहकोंके लिये चार दिन पहिले पूरन भगतसे कह दिया गया था। किसको पता था, कि इतने पर भी विघ्न-बाधा आन उपस्थित होगी। दस बजे तक प्रतीक्षा करनेके बाद जब कोई भारवाहक आता दिखलाई नहीं पड़ा, तो चिन्ता होने लगी। नीचे तहसीलमें जाकर पूछनेपर मालूम हुआ, कि भारवाहकोंके प्रबन्धक हलमन्दीको कोई सूचना नहीं दी गई। बारी थी रोगीवालों की। प्रस्थान स्थगित करना सम्भव नहीं था, क्योंकि रास्तेमें तीन जगह भारवाहकोंको समयपर आने के लिये सूचना दे दी गई थी। वहाँके भारवाहकोंको सिर्फ सतलुज तट तक पाँच-एक मील जाना था। हलमन्दीने विश्वास दिलाया, कि भारवाहक ठीक करके सामान पहुँचवा देगा। पुण्यसागर को हमने सामानके साथ आनेकेलिये छोड़ दिया। एक बार फिर मैं स्कूलके अध्यापकोंके साथ ठकरसके किले पर गया। मैंने उस दिन खोदाई करके एक हाथ भर मोटी कोयले और राखकी तह निकाली थी। देखा उसे दूर तक खोदकर पत्थरोंको निकाल लिया गया है। सुरक्षित पुरातत्व-स्मारक तो है नहीं, फिर लोग खोदकर अपने कामकी चीज़ें निकालें नहीं तो क्या करें! हाँ, हमें एक लोहेका

बाणफल मिला। बाणविद्याका युद्ध इन पहाड़ोंपर बहुत पीछे तक लड़ा जाता रहा।

दोपहरके समय मैं कोठीकी ओर चला। वहाँ के कुंडकी मूर्तिको देखना चाहता था। मास्टर रामजीदास और मास्टर नारायणसिंह भी साथ थे। रविवार के कारण स्कूल आज बन्द था। आध मील उतरने पर एक कटोरेसी जगह मिली, जहाँ पुरानी दीवारोंके चिह्न मौजूद थे। कहते हैं यहाँ ठाकुर शिकार खेलनेके लिये आया करता था। यह शिकारगाह नहीं, ठाकुरका एक निवास-स्थान रहा होगा। सीधे कोठी पहुँचे।

"पांडव निर्मित" कुण्डके पश्चिमी तटसे काम था। हम सीधे उसके पश्चिमी तट पर पहुँचे, जहाँ दो मकर-मुख जलप्रणालियोंसे पानी गिरता रहता है। उत्तरी प्रणालीके पास दो फुट लम्बी एक पत्थर की मूर्ति खड़ी मिली, जिसे देखते ही आँखें चमक उठीं। मूर्ति छायामें है और फोटो-फोकस करनेकेलिये और पीछे हटनेपर पांडवकुण्डमें डुबकी लगानेका डर था, जो अगस्त होनेपर भी बर्फ जैसे जलमें प्रियकर नहीं हो सकता था। फोटो उतर आया, लेकिन मूर्तिका सौंदर्य उसमें नहीं उतर पाया। मूर्तिका तालमान सातगुनाके करीब है। अर्थात् शरीरके अवयवोंका संतुलन स्वाभाविक है। इतनी सुन्दर पाषाणमूर्ति नचन्तू देवताओंके देशमें कहाँसे आई।

मैंने मूर्तिको ध्यानसे देखना आरम्भ किया। मूर्ति खंडित है। लेकिन धर्मान्धताके हाथों नहीं। सम्भव है मकान गिर गया, या काष्ठ-मंडपमें आग लग गई, जिससे मूर्तिकी यह अवस्था हुई। किसकी मूर्ति है? इसे सहसा कहना कठिन था। कुछ और बारीकीसे देखनेपर मालूम हुआ, कि मूर्तिके चार हाथ थे, जिनमें तीन टूट चुके हैं। चौथे हाथमें खंडित ढाल जैसी कोई चीज मालूम होती है। यह बाईं ओर का उपरला हाथ है। मूर्तिकी बगलमें नीचेकी ओर दोनों तरफ छ-छ पार्षद, जिनमें स्त्री मूर्तियाँ भी हैं। दाहिनी ओर पाँचवें पार्षद मूर्ति के नीचे नन्दीकी मूर्ति है, जो शिरके लुप्त होनेपर भी अपने ककुदसे पहचानी जा सकती हैं। हाँ, तो यह चतुर्भुज शिवकी मूर्ति है। शिरके पास बाईं ओर गणेश महराज भी विराजमान हो अपने पिताजी के पक्षमें साक्ष्य दे रहे थे। शिरकी बाईं बगलकी अर्धासना मूर्ति शायद कार्तिकेयकी थी, किन्तु उसके लिये

मैं शपथ नहीं उठा सकता। मूर्तिके शिरपर जटामुकुट है, जो शिवजी महाराजके पक्षमें गवाही दे रहा था। शिरके पीछे फुल्ल अष्टदल कमलाकार प्रभामण्डल था। प्रभामंडलके शिर पर उड्डीयमान किन्नरयुगल हाथमें माला लिये हुये थे, जिनके पास पंक्तिसे दूसरे छ मालाधर खड़े थे। मैं मूर्तिके ध्यानमें मग्न नीचे बगलमें पड़े पत्थरको यों ही हटाने लगा। वहाँ एक और छोटासा पत्थर मिला। देखा तो उसमें हाथमें माला लिये उड्डीयमान किन्नर-मिथुन और कमलाकार प्रभामण्डलका अंश स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है।

मास्टर रामजीदास और मास्टर नारायण सिंहके अतिरिक्त कोठीके अन्य गण्यमान्य सज्जन भी वहाँ एकत्रित हो गये थे। उनके चेहरोंको देखनेसे मालूम होता था, कि पंच पांडवों द्वारा स्थापित पांडवकुण्ड की इस मूर्तिके बारेमें वह पंडितजीकी राय जानना चाहते हैं? मैंने भी अपनी मौन समाधिको भंग करना आवश्यक समझा, और कहना शुरू किया—आप लोग भी देव-ताओंसे बात किया करते हैं, लेकिन आपके देवता बहुतसी झूठी-सच्ची बातें करते हैं। मैं आपके गाँवमें मौजूद इस देवतासे वार्तालाप करता रहा। यह और कोई देवता नहीं, साक्षात् शिवजी महाराज हैं।

हजार वर्षसे कुछ ही साल कम हुआ, जब राज्यक्रान्ति के कारण एक राजा कन्नौज से भाग कर यहाँ कोठीमें आया। उसके साथ लोगबाग भी थे। उसने अपने लिये यहाँ महल बनवाया, जो देवी के मन्दिर के पास ही था। उसीने यह कुण्ड बनवाया, और कुण्डके ऊपर एक सुन्दर मन्दिर भी। मन्दिरके भीतर दो भव्य मूर्तियाँ शिव और पार्वती की स्थापित कीं। शिवकी मूर्ति यही है और पार्वतीकी मूर्ति के ऊपरी भागका छोटासा खंड बच रहा है। राजाके समय मन्दिर में अच्छी तरह पूजा-पाठ होता था। राजाका खर्च बहुत अधिक था, जिसका बोझा उठाना लोगोंकेलिए मुश्किल हो रहा था। उधर भोट में नया राज्य स्थापित हो गया था, उसने यहाँ के लोगों को भड़काया, सहायता भी दी। राजाके घरमें आग लगा दी गई। वह प्राण लेकर भागा। शिव पार्वतीका मंदिर भी उस आगसे नहीं बच पाया। शिवजी अपने तीन हाथों को गवाँकर इस तरह पड़े हुए हैं और पार्वतीजीका कहीं पता नहीं।

कुण्डसे एक बार फिर हम भैरव मन्दिरमें गये। भैरवकी दस भुजाओं में

दाहिनी ओर बरद हस्त, खड्ग, कुन्त, शूल आदि हैं और बाईं ओर धनुष आदि। यहाँकी मोटी मिट्टीकी तह वाले फर्शके भीतर न जानें कौन-कौन सी चीजें पड़ी हैं। हमने एक जगह अंगुलीसे जरा सी मिट्टी हटाकर अर्घासहित पीतलके शिवलिङ्गको साँस लेने लायक किया। फिर देवीके बाहरी आँगनमें पत्थरके छोटेसे मन्दिरके पास गये। यहाँके हाथ-हाथ भरके दो पाषाण लिङ्गोंमें एक अर्घासहित है और इसी लिङ्ग पर लकुलीश शैव-संप्रदायका उर्ध्व-शिश्न उत्कीर्ण है। यह और भी इस बातका प्रमाण है, कि इन चीजोंका सम्बन्ध गुर्जर-प्रतिहार वंशसे है। गुर्जरप्रतिहार काल में लकुलीश सम्प्रदाय बहुत प्रबल था।

फिर देवीके मन्दिरमें पहुँचे। पता लगा, देवी के भण्डार में कोई सतयुगका उत्कीर्ण काष्ठफलक है। लोगोंके बहुत दौड़ लगाने पर प्रबन्धक महाशय ने दिखलाना स्वीकार किया। और वह सतयुग की चीज क्या थी? किसी हस्त-लिखित भोटिया पोथीके ऊपर बाँधनेकी लकड़ीकी एक पटिया! पुस्तक अष्ट-सहस्रिका प्रज्ञापारमिताकी थी। अखरोटकी लकड़ीपर बेलबूटे और मूर्तियाँ बहुत बारीकीसे उत्कीर्ण की गईं हैं। भीतरी भागमें अबभी कहीं-कहीं सुनहला रंग है, जिससे मालूम होता है, कि पहिले पट्टीकी सारी मूर्तियों पर सोना फिरा हुआ था। जान पड़ता है किसीने इसे देखकर समझा, कि सारी पट्टी नहीं तो उसका आधा अवश्य सोनेका है, और इसलिये तिब्बतके किसी मठ या घरसे यह पट्टी उड़ाई गई और एक कोना तोड़कर देखा भी गया।

मैंने देखा कि आज देवीके आह्वका कहीं पता नहीं। कल कश्मीर में देवी की रक्तलीलाको देखकर मैं कुछ जलाभुना बैठा था और देवी को खरीखरी बातें सुनाना चाहता था। आधी कोठी उमड़ आई थी। मैं कनौरसे आत्मीयता अनुभव करता हूँ, कोई आश्चर्य नहीं, यदि वह भी मेरे बारेमें विशेष भाव रखते हों। मैंने एक छोटा सा व्याख्यान देवीकेलिए झाड़ डाला—मैं आप लोगोंसे यह नहीं कहता कि जैसे अपने राजा पदमसिंहके वंशको राजसे हटा दिया, वैसे देवीको भी विदा कर दें। लेकिन देवीको अब समझबूझ कर काम करना चाहिए। देवीको सब लोग बहुत होशियार बतलाते हैं, किन्तु कल जो इसने काम किया, वह बिल्कुल होशियारी का काम नहीं था। भीड़ भड़क्का

और बाजे-गाजेके साथ एक जगह बकरे काटे जा रहे हैं, दूसरी तीसरी और चौथी जगह काटे जा रहे हैं। कटे बकरोंके ऊपर जिन्दे बकरे खड़े किए जा रहे हैं। और देवी कूद-कूद कर कटवा रही है। बाहरी दुनिया के लोग देखेंगे, तो क्या कहेंगे ? यही कहेंगे ना, कि हिन्दुस्तानके लोग जङ्गली हैं। देवी भारतकी नाक कटवाना चाहती है। भारतकी नाक कटेगी, तो कनौरकी नाक कटेगी, कनौरकी नाक कटेगी तो भारतकी नाक कटेगी।

श्रोताओंमें से कई बोल उठे—नहीं पण्डित जी, अब ऐसा नहीं होगा। मैंने कहा—ऐसा ही न होनेकेलिए तो मैं देवीसे कह रहा हूँ। क्या मैं जानता नहीं, ग्रोच्च यहाँसे इसीलिये खिसक गया, कि देवीसे बातचीत न हो सके। लेकिन देवीके कानमें रुई थोड़े ही पड़ी है। मैं तो देवी ही को सुना रहा हूँ, और आप लोगों को भी कह रहा हूँ। अब हमारा देश अँग्रेजोंका गुलाम नहीं है। देशकी इज्जतकी रक्षा करना एक-एक आदमीका कर्तव्य है। जिस तरह कल देवीने खूनका खिलवाड़ खेला, जिसके कि मैंने कई फोटो लिये, उसीको लेजाकर विदेशी हमारे देशको जङ्गली साबित करेंगे। जिसके मारे हमारे देशको जङ्गली बनना पड़े, ऐसी देवीको लेकर हमें क्या करना ! तबतो हम कहेंगे कि इस देवीको भी वहीं जाने दो, जहाँ रामपुरका राजा गया।

दो-एक मुखिया बोल उठे—नहीं पण्डित जी, अब ऐसा नहीं होगा।

मैं यह नहीं कहता कि देवी मांस न खाये, शराब न पिये। शराब तो मैं नहीं पीता, किन्तु मांस खुद खाता हूँ। किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं, कि मैं बाजा बजाते नाच-नाच कर खून का फाग खेलूँ। देवी अपने भक्तोंको हुकुम दे सकती है, कि कहीं आड़की जगह में ले जाकर भेड़ बकरीको मारें और मांसमें घी मसाला डालकर देवीको खूब पेट भर खिलावें।

मैं अपना व्याख्यान समाप्त ही करने जा रहा था, कि कोई पूछ बैठा—बीस वर्षसे अधिकके लोगोंका पटवारी लोग नाम क्यों लिख रहे हैं ?

मैंने हँसते हुए कहा—कनौर लोग इतने होशियार होते हैं, और आप लोग इतना भी नहीं समझते ? पाकिस्तानसे लड़ाई लगी हुई है।

—लड़ाई पर जानेकेलिये—किसी ने कहा।

—आपने यही समझा होगा न ! खैर आप समझते होंगे, बीस-पचीसकी

कनौरियाँ भी कन्धे पर बन्दूक धरके लड़ने जायँगी। लेकिन सत्तर वर्षके दादा-दादियोंका नाम क्यों लिखा आरहा है ?

इसीसे तो सन्देह होता है।

इस पर मुझे उन्हें समझाना पड़ा, कि राजारानीका राज्य गया। अब हमारे देशमें पंचायती राज स्थापित हो रहा है। आपकी रायसे पंच चुने जायेंगे, इसीलिये यह नाम लिखा जा रहा है।

कोठीमें काफी देर हो गई। चिनीके मास्टरद्वय चिनीकी तरफ गये और मैं नीचेकी तरफ चला।

× × ×

यात्रीको ठोक पीटकर वैद्यराज बनना पड़ता है। मैं नया ही नया डायाबेटिसके रोगमें दीक्षित हुआ हूँ, जिसके लिए कुछ दवाइयाँ साथमें ले चलनी जरूरी हैं। उस दिन "डाक्टर" ठाकुरसिंहने एक मरणोन्मुख रोगीकी बात कही, तो मुझे स्मरण आया, कि मेरे पास दो शीशियाँ पेन्सिलिन्की हैं। यह भी मालूम हुआ कि व्याधि वात रोगकी है। न मैं विधानके अनुसार पेन्सिलीन्का इन्जेक्शन दे सकता था न ठाकुरसिंह। उधर रोगी बाबू श्यामाचरण छ दिनोंसे बेहोश मौतकी घड़ियाँ गिन रहे थे। कम्पौन्डर ठाकुरसिंह इन्जेक्शन देना तो जानते थे, किन्तु उन्होंने पेन्सिलिन्का नाम पहिलेपहल मुझसे ही सुना। मैंने ढङ्ग बतलाकर उन्हें एक शीशी दी। तीन-तीन घण्टे बाद पर सुई देते तीसरी सुई देनेके समय श्यामाचरणने आँख खोली और कहा—क्यों मेरे शरीरमें सुई चुभो रहे हो। अब इन्जेक्शन दिये छ दिन हो गये थे। श्यामाचरण अति निर्बल थे, किन्तु जीवित थे। मैंने ठाकुरसिंहको दूसरी शीशी भी इन्जेक्शन देनेकेलिए दे दी। दाम पूछने पर मैंने कहा—पुण्य। श्यामाचरण और उनके घर वालों का आग्रह था, कि मैं उनके यहाँ होता जाऊँ। थोड़ासा रास्तेसे हटना जरूर था, लेकिन रास्ता उतराईका था। उनके बहनोई मुझे लिवानेकेलिये आये थे। रास्तेमें थोड़ी बूँदा-बाँदी भी हुई। थोड़ी देरमें हम ख्वाँगी गाँवमें पहुँच गये। रोगीको देखा, बहुत निर्बल। घरवाले समझते होंगे, दवाईका काम है ताकत भी देना। मैंने उनसे कहा—बकरीका दूध, अण्डेकी सफेदी अब तो पूरा अन्डा भी, अंगूरका रस और चूजे

का सूए मात्राके अनुसार देते जाओ, तभी शरीरमें शक्ति आयेगी। पेन्सिलिन् का काम था बैरी व्याधिको रोक देना, लेकिन शक्तिकेलिये शक्तिप्रद आहारकी आवश्यकता है।

ख्वाँगीसे मैं सतलुज के झूलेकी ओर चला। अभी भी उतराई बहुत थी। इधर मक्कीकी खेती अच्छी होती है। खेतोंके आगे जाने पर बोन (ओक)का जंगल आया। जाड़ोंमें बानके पत्तेही पशुओंके सबसे बड़ा सहारा है। इसलिये खेतोंकी तरह वृक्षोंके लिये भी झगड़ा हो सकता है, यदि ठीक तरहसे उनकी व्यवस्था न की जाय। कुछ दूर और चलकर सड़क आगई, और मैंने साथ आने वाले सज्जनोंको लौटा दिया।

सतलुज पार करनेके लिये झूला है। इसे आप लक्ष्मण-झूला न समझिये। एक मोटासा लोहेका तार नदीके दोनों कूलों पर दबाकर ताना हुआ है। तारके ऊपर लोहेकी एक गड़ारी है, जिस पर बड़े तराजूका एक पल्ला जैसा टँगा है। पल्ले पर आदमी बैठ जाता है। पल्लेके सिर पर एक लंबी रस्सी बँधी है, जो नदीके आर-पार पहुँचती है। दोनों किनारों पर दो आदमी बराबर रहते हैं, उनका काम है रस्सीसे खींचकर यात्रीको आर-पार करना। मैं भी पल्ले पर जाकर बैठा और ज़रा देरमें हहास करके बहती शतद्रुकी धाराके ऊपर अधरमें टँग गया। नई बात होती, तो शायद मुझे डर लगता, किन्तु मैं ऐसी स्थितिसे वर्षों पहिले गुजर चुका था।

पार पहुँचने पर पूरन भगतजी अंगूरकी टोकरी लिये हुये मिले। पता लगा, पुण्यसागर सामान लिवाये बहुत पहिले जा चुके हैं। अभी हम पौने छ हजार फुटकी ऊँचाई पर थे, लेकिन एकाएक साढ़े तीन हजार फुट उतरकर आये थे, इससे गर्मी बहुत मालूम होती थी। पुराणोंमें देवताओंको बहुत बेपरवाहीसे जब नहीं तब धरती पर उतार लिया जाता है और ख्याल नहीं किया जाता, कि जब मील-दो-मील नीचे उतरनेमें यह हालत होती है, तो योजनों उतरने पर उनकी कैसी दुर्दशा होती होगी?

अब हमारा रास्ता नदी तटसे होते ऊपरकी ओर था। रास्तेमें तङ्लिङ्के खेत आये। तङ्लिङ्में कभी एक अच्छा खासा गाँव था, जहाँ एक ठाकर रहा करता था। कामरूके ठाकरने इसे ध्वस्त किया। जान पड़ता है, उसी समय

गाँव भी ध्वस्त हो गया। तङ्लिङ्के खेत अब पोआरी वालोंके हाथमें हैं। इनमें दो फसल मजेसे होती है, जल्दी वाली तीन फसल हो सकती हैं। घंटे भरमें हम शोङ्-ठङ् पहुँच गये।

शोङ्-ठङ् कोई गाँव नहीं है। गाँव बारङ् दो-तीन मील ऊपर है। शोङ्-ठङ्में जंगल-विभाग डाकबँगला है। बँगलेके बहुत नजदीक ही सतलुज बहती है। नदी पार पहाड़ विकराल दीवारकी तरह खड़ा है, जिसमें शंखवर्ण विशाल शेषनाग विराजमान हैं। शायद किसी समय गरुड़ महाराजने झपट्टा मारा, जिससे फण कुछ कुचलसी गई, अन्यथा वह हजारों हाथ लम्बे शेषनाग हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। मुश्किल यह है, कि शेष भगवानकी पूजा नदीके इस पारसे ही की जा सकती है, उस पार जानेकी न सतलज आज्ञा दे सकती हैं, और न विशाल पार्वत्य प्राकार। मैं सोच रहा था, ऐसे प्रत्यक्ष शेष भगवानके भक्त जरूर होने चाहिये। पता लगा, डाकबँगलेके चौकीदारका शिर दर्द करने लगता है, अगर एक दिन भी पूजा करनेमें भूल कर दे।

हाँ, संयोग कहिये, महीनों पहिले मैंने ८ अगस्तको शोङ्-ठङ्में ठहरनेका जब निश्चय किया था, तब इसका ख्याल भी नहीं आया था, कि सहायक-वन-रक्षक ढिलन महोदय भी उसी दिन शोङ्-ठङ्में रहेंगे। पाँच हजार सात सौ फुट-की ऊँचाई पर शोङ्-ठङ्का डाकबँगला बहुत अच्छी जगह है। तरकारीकी क्या-रियाँ और फलोंकेलिये बाग बहुत अधिक नहीं तो कम भी नहा हैं। बँगला छोटा है, जिसमें दो कमरे हैं। आदमी गुजारा करना चाहें, तो एक कमरेमें चार आदमी भी कर सकते हैं, अन्यथा चारमें एकका भी गुजारा नहीं हो सकता। ढिलन महाशयने मेरे लिये एक कमरा दे दिया, मुझे संकोच जरूर हुआ, किन्तु तीन-तीन जगह भारवाहकोंके तैयार रखनेका प्रबन्ध किया जा चुका था और आगे साङ्लामें भी खबर दे चुका था, इसलिये प्रोग्राममें परिवर्तन करना बहुतसे आदमियोंको कष्टमें डालना था खैर, एक रात की बात थी।

जंगल-विभागके दो व्यक्तियोंके अधिक संपर्कमें आनेका अबके बार मुझे मौका मिला-एक चिनाके रेंजर श्री देवदत्तशर्मा और दूसरे विभागीय वन-अधिकारी ढिलन महाशय। दोनों अपने कामसे मुस्तैद और मेहनती मालूम हुये। मैं जब शोङ्-ठङ्में पहुँचा, तो ढिलन महाशय जंगल देखने गये थे और

सूर्यास्तके बाद लौटे। वह अपने साथ विशेष प्रकारके स्फटिकके दाने लाये, जो कहीं यहीं आस-पासमें होता है। उनका भी कहना था, कि खनिज पदार्थोंके बारेमें यहाँ गम्भीरतासे कोई अनुसंधान नहीं हुआ, और फलोंको स्थानीय जल-वायुके अनुकूल उत्पादन करने की ओर वैज्ञानिक ढंगका उपयोग जैसा चाहिए, वैसा नहीं किया गया।

हम कुछ दिनोंसे ही पहुँच गये थे, और चढ़ाई की यात्रा न होनेसे थके भी न थे। बँगलेसे टहलते ज़रा खेतोंकी ओर चले। खेतमें वारङ्की किन्नरियाँ निकाई कर रही थीं। हमें पास आया देख, उन्होंने अपनी खुरपियाँ सामने फेंक दीं, जिसका अर्थ है—पानके लिये आप कुछ पैसा दीजिये। वहाँ तीन या चार तरुण बन्ठिनें थीं। मैंने एक रुपया सामने रखते हुये कहा—किन्तु तुम्हें एक "गितङ" गाना होगा। किन्नरियोंको गानेमें कब संकोच होने लगा? उन्होंने अपने मधुर कण्ठसे 'चुनीलाल डागङ'का गीत गाया। वारङ् नंबरदारके भाईसे बातचल पड़ी कोठी-की देवीके प्रेमकी। कोठीकी देवीने किस तरह रोगीके नेरनसको लेकर चिनीके नेरेनसको नाराज किया और ब्याह करनेसे इन्कार कर दिया। यह कहने पर, नंबरदारके भाईने कहा—'देवीकी यह पुरानी आदत है, कब वह किसीके बन्धनमें रहना चाहेंगी? उस समय ब्रेलिंगीके केसरनन्दका दादा माथस् (प्रबन्धक) था। कोठीकी देवी उस पर मुग्ध थी और रोज काला दाड़ू पहनकर रातको माथसके घर जाया करती। माथसकी पत्नीने कई दिन देखा। एक दिन वह झगड़ पड़ी। माथस् गाली देने लगा—"तुम दोनों राँडें मेरा जान खाना चाहती हो"। किन्नरके देवी-देवताओंमें वह सभी निर्बलतायें पाई जाती हैं; जो मनुष्योंमें होती हैं।

मैं वारङ्के नीचे शोङ्ठङ्में ठहरा था, क्या हो सकता था कि मुझे रघुवर न याद आता? रघुवरका जन्मस्थान यही वारङ् था। स्कूलमें पाँच-छ श्रेणी तक पढ़कर यह तिब्बत भाग गया, और वहाँ दस-बारह साल तक तिब्बती भाषामें न्यायशास्त्र पढ़ता रहा। पहिली बार तिब्बतमें जानेपर टशील्हुन्पो विहारमें मेरा रघुवरसे परिचय हुआ। उसके बादकी तीन यात्राओंमें बराबर उससे भेंट होती रही और वह हमारे काममें बड़ी सहायता करता था।

वह पुस्तक पढ़ने ही में कुशल नहीं था, बल्कि बहुत अच्छा व्यावहारिक ज्ञान

रखता था। मेरे साथ-साथ रहते कुछ आदर्शवादी और बुद्धिवादी भी हो गया। वह बड़ी उमंगें लेकर कनौर लौटा। लेकिन मठके चिरनियम्त्रित जीवनसे मुक्त होते ही एकबार बहावमें बह गया, और कुछ समय तक तो मदिरा और मदिरे, क्षणाका एकान्त सेवन ही उसका कार्य रह गया। यह ढंग ज्यादा दिन तक नहीं चलता, किन्तु सम्हलनेसे पहिले ही उसके दिन पूरे हो गये और रघुवर तरुणाई-में अपनी योग्यतासे कनौरको लाभ पहुचाये बिना चल बसा। आज कनौरको रघुवर की आवश्यकता थी। उसने प्राचीन पोथियोंको पढ़ा था, किन्तु उसका दिमाग आजकी समस्याओंको समझनेमें सक्षम था। किन्नरके निवासमें मुझे न जाने कितनी बार रघुवर याद आया। उसका हँसमुख चेहरा और जिन्दादिली बारबार आँखोंके समाने प्रतिबिम्बित हो उठती।

१६ साङ्लामें

जलपानके बाद पौने आठ बजे पुण्यसागर और मैं शोङ्ठङ् से रवाना हुआ। हम प्रयागके रास्तेमें थे, किन्तु हमें सीधे नहीं जाना था। चलते-चलाते पढ़ते-पढ़ाते ख्याल आया, बस्पा उपत्यकाको भी देख लेना चाहिये। बस्पा नदी सतलुजकी शाखा है, किन्तु काफी बड़ी है। इसके ऊपरी भाग और गंगा-भागीरथीके बीच में केवल एक पर्वत श्रेणी है, जिसे पारकर आदमी हरशिल या सुखीचट्टीमें पहुँच सकता है। मुझे इस पर्वतश्रेणीको पारकर भागीरथीके किनारे जानेकी इच्छा नहीं थी, मैं देखना चाहता था, साङ्लाके पास बस्पाकी विस्तृत उपत्यका और रामपुरकी ऐतिहासिक राजधानी कामरूको। आशा थी, कामरू से कुछ ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होगी।

हमारा रास्ता अधिक चढ़ाई-उतराई का नहीं था। थोड़ी दूर आगे जानेपर सतलुज पार नदी-तट हरियालीसे ढँका दिखलाई पड़ा। पुण्यसागरने कहा—यह है रोगाके अंगूरोंकी बेलें। मैं लकड़ीके ठाठपर चढ़ाई उन बेलोंको बड़े गौरसे देखने लगा। मैं उनके छोटे काले अंगूरोंको कई दिनोंसे खाता रहा, वह सुस्वादु सुमधुर और सुगन्धी हैं। इसके साथ मैं यह भी जानता था, कि ये अंगूर कहीं बाहर से लाकर नहीं लगाये गये, यह किन्नरके परम स्वदेशी अंगूर हैं। फिर मैं सोचने लगा—आस पासके गाँवोंसे ये रोगाके अंगूर इतने मीठे क्यों होते हैं? अंगूरोंकी भूमि छ हजार फुटसे नीचे होनेके कारण काफी गरम है। यहाँ सूरजके

उगनेके थोड़ीही देर बाद धूप आ जाती है और बहुत अधिक समय तक रहती है। हवा भी यहाँ उतनी तीव्र नहीं होती। यह बातें है, जो मानसूनहीन आस-पास की शुष्क भूमिसे इस भूमिमें विशेष हैं, जिसके कारण रोगीका अंगूर इतना मीठा होता है। इन अंगूरोंसे मीठे अंगूर चाहे दूसरी जगहोंमें पैदा न किये जायँ, किन्तु वैज्ञानिक प्रयोगसे वहाँके लिये नई तरहके मीठे अंगूर बनाये जा सकते हैं। ढिलन महाशय बतला रहे थे, कि पहिलेपहल क्वेटाका सत्रह सैकड़ा चीनी वाला मीठा अंगूर मान्टगामरीमें लाया गया, तो खट्टा हो गया। पीछे तजर्बे से एक नये प्रकार का अंगूर तैयार किया गया, जिसमें पचीस सैकड़ा चीनी थी। रोगीकी जमीन या उसकी जैसी जमीनका भी अभी पूरी तौर से उपयोग नहीं किया गया है। किन्तु वह तो तभी होगा, जबकि यहाँसे फलोंकीनिकासीके लिये यातायात का प्रबन्ध होगा।

ढाई घंटा या सात मीलसे अधिक चलनेके बाद हम सतलुज छोड़ बस्पाकी ओर मुड़े। थोड़ी दूर आगे एक पुल पार हो बायें तटसे ऊपर चढ़ने लगे। साङ्ला यहाँसे ११ मील है। भारवाहक हमसे भी पहिले चले थे, किन्तु अब हम उनके साथ हो लिये थे। सपिनीके नम्बरदार नेगी अमीरचन्द रास्तेमें मिल गये। आदमियोंकी बदली अभी तीन मील आगे ब्रूयेमें होनेवाली थी। नम्बर-दारने फलोंकी माला पहनाई। वह बड़े प्रेमसे घरकी बनी एक बोतल शराब लाये थे। उन्हें यह जानकर बहुत खेद हुआ, कि मदिरा मेरे लिये अभिशापित है। अंगूर सेब हमारे पास काफी थे। ब्रूयेके मेटने दूध भी तैयार कर रक्खा था, क्योंकि तहसीलका चपरासी दो दिन पहिलेसे ही आया हुआ था।

सपिनीको कनौर भाषामें रोपङ् कहते हैं। सपिनीके देवता नागस् की प्रशंसा पहिले थोड़ीसी सुन चुका था, किन्तु वह दूसरे-गाँववालों की सुनीसुनाई बात थी, और उसमें नागस्की महिमा हेठी करनेकी कोशिश की गई थी। नेगी अमीरचन्द अपने नागस्के गुणको जानते हैं। वह तीन ही दिन पहिलेकी बात कह रहे थे, जब कि नागस्ने एक जादू करनेवालेको पकड़ा दिया था, और दीवारमेंसे खोपड़ीभी निकलवा दी थी। मैंने कहा—मकानके भीतर सपिनी नागस्के जल जानेकी बात क्या है?

नम्बरदारने बतलाया—यह चार पुश्त पहिलेकी बात है। हमारे नागका राज

ब्रूयेसे रमनी तक है। सतलुजके इस पार इधरका इलाका उसीका होता है। लेकिन चगाँवमहेसूने उसे जबर्दस्ती दखल कर लिया है। उस साल नागस अपने राज्यमें पूजा लेने चला, लोग उसका हर गाँवमें स्वागत करते थे। रमनीका देवता जब्लू नरेस् उसकी पेशवाईमें था। वह अपने दलबल सहित जानी गाँवमें पहुँचा। रातको वहीं गन्द्राप् देवताके मन्दिरमें विश्राम करना था। नागस्ने मन्दिरमें जानेसे इन्कार किया, किन्तु उसकी बात न मानकर उसे उसी मन्दिरमें ठहराया गया। रातको आग लग गई। मन्दिर तो अधिकतर लकड़ीके होते ही हैं, मन्दिरके साथ देवता भी जल गये।

नम्बरदारने बात समाप्त करते हुये कहा— इससे देवताओंका क्या बिगड़ता है, वे तो अमर हैं। केवल चेहरा, लकड़ीका ढाँचा, कपड़ालत्ता जल गया। चगाँवके महेसूने हमारे देवताका मजाक करते हुये कहा था—"वह देखो मच्छर आरहा है।" इसपर नागस्ने ऐसा पत्थर गिराया कि चगाँवमहेसूका मुँह बिगड़ गया। सपिनी नागस्का सम्मान अपने राज्य (सपिनी) ब्रूये, किल्बा, पनङ्, जानी और रमनी तक ही सीमित नहीं है, बल्कि किन्नरके अन्तिम गाँव रोपा तकमें इसकी आवभगत होती है। कुछ ही साल पहिले शोवा (चिनी इलाका)में देवता लोग कोशिश करके हार गये किन्तु वर्षा नहीं हुई; तब सपिनी नागस्ने बीड़ा उठाया और वर्षा कराके छोड़ा।

मैंने कहा—तब सपिनी नागस् कोई साधारण नाग नहीं है।

—हाँ पंडितजी, एक बार एक नीचेके साधू महात्मा आये थे, उन्होंने भी यही कहा था, कि यह तो आपरूप शेषनाग हैं।

× × × ×

ब्रूयेसे नये भारवाहकों पर सामान आगे भेजा। हमने कुछ देर पेट पूजा की, थोड़ा सामान यहाँ के जंगल विभागकी कुटिया में भी रखवा दिया, फिर साङ्लाकेलिये रवाना हुये। नम्बरदार अमीरचन्दनेघोड़ा अच्छा दिया था, लेकिन मैंने उसपर केवल दो फर्लाङ्ग सवारीकी। यद्यपि रास्ता काफी चढ़ाई का था, किन्तु मैं अब उससे डरनेवाला नहीं था। इधर चिनीकी अपेक्षा वर्षा अधिक होती है, हरियाली भी अधिक, देवदारु जातीय वृक्षोंके जंगल तो बहुत हैं ही। सतलुजके संगमसे तेरह मील ऊपर साङ्ला (८५०० फुट) बसा है,

अर्थात् इतनी दूरीमें, बस्पा प्रायः तीन हजार फुट ऊँची उठी है। यह तो बस्पा की धार देखनेसे भी साफ मालूम होता था। अगस्त, वर्षा का महीना है, यह यहाँ याद आया जब रास्तेमें हमें भीगना पड़ा। वैसे दो गाँव बीच में हैं, किन्तु वे हमारे रास्तेपर नहीं थे। बस्पाकी चौड़ी उपत्यका तो हमें तभी दिखलाई पड़ी, जब एक नाहीको पार कर सामने कामरू दुर्ग और साङ्ला गाँव दीख पड़े।

पौने पाँच बजे हम डाक-बँगलेमें पहुँच गये। बँगला पहिले है, गाँव नदी पार है। यह जंगल विभाग का विशाल बँगला चिनी के बँगले की तरह बना है, और ऐसा प्रबन्ध किया गया है, कि तीन-चार साहब आराम से ठहर सकें। तकलीफ यहाँ तथा कुछ दूसरे जंगल विभागके बँगलोंमें यही है, कि वहाँ पाखाने का कोई प्रबन्ध नहीं। बड़े साहब लोग अपना भंगी अपने साथ लाया करते थे, किन्तु वही आशा हरएक यात्रीसे नहीं हो सकती। हाँ, हरएक यात्रीकेलिये ये बँगले हैं भी नहीं। ये आलीशान बँगले अंग्रेज प्रभुओंके सैर-शिकारके लिये बनाये गये थे। साङ्ला रोहू मछलीकेलिये प्रसिद्ध है—शिकारका मौसम अक्तू-बरसे शुरू होता। साहब बहादुर लोग गये, अब तो इन बँगलोंको खाली होने के समय दूसरे भारतीय यात्रियों के लिये खोल देना चाहिये। भंगी-के प्रबन्ध करनेकी आवश्यकता नहीं चिनीके ब्रूस्की बँगलेमें बहुत कम खर्च और सफाई के साथ पाखानेका इन्तिजाम किया गया, वैसा ही यहाँ भी हो सकता है।

× × ×

साङ्ला २२७ घरोंका एक बहुत बड़ा गाँव है। मैं यहाँ बँगलेमें ठहरकर रोहूका शिकार करने नहीं आया था। मेरे आनेकी खबर पहिले ही से मालूम थी, किन्तु न शामको ही कोई मिलने आया; न सबेरे आठ बजे तक ही किसी-के दर्शन हुये। बेमुरौवत कहनेसे क्या लाभ, मुझे अपने कामसे काम था। सबेरे आठ बजे चपरासीको लेकर चल पड़ा। थोड़ी सी उतराई, एक लकड़ीका पुल, फिर थोड़ीसी चढ़ाई, आगे साङ्ला गाँव था। गली-कूचे, नाले-नालियाँ सभीको लोगोंने पाखाना बना दिया था। ऊपर से बरसात का दिन। खैरियत यही थी, कि हम दिन में चल रहे थे। इतनी गन्दगी न जंगीमें थी, न स्पूमें,

बौद्ध और ब्राह्मण सभ्यताका अन्तर ! ब्राह्मण पाखानेको महानिषिद्ध समझते हैं ना !! यह गंदगीका रोग भारत के सिर्फ इसी एक गाँवमें नहीं है, यह असह्य है और इसका उपाय करना होगा। उपाय है घर-घर में सन्डासवाला लकड़ीका-पाखाना। गाँवमें छोटे-बड़े बेरिङ्-नागस् नामके दो देवता हैं। बड़ा देवता पहिले यहाँसे दो दिनके रास्तेपर पर्वतपृष्ठ पर अवस्थित एक बड़े सरोवरमें रहता था, जहाँसे वह अपने आप उड़कर यहाँ चला आया। दोनों देवताओं के अलग-अलग ग्रोच्छ (देववाहन) हैं। देवता, कमसेकम बड़ा देवता, बहुत धनी है, यह तो उसके नये बनते आलीशान मन्दिरसे ही मालूम हो रहा था। मन्दिरमें लकड़ीका काम बारीकीसे हो रहा था। साङ्लाके २२७, घरोंमें ६३ कोली ४ लोहार और तीन बढ़ईके हैं, लेकिन देवताके फल-फलहार बल-बलिदान और दूसरी चीजोंमें बहुत कमही अछूत समझे जाने वाले ७० परिवारोंको मिलता है, और मर-मरके पत्थर लकड़ी ढोनेमें सबसे अधिक उन्हींको जोता जाता है। अभी यहाँके बड़ी जातिवाले समझते हैं, कि मन्दिर और उसकी संपत्ति पर उन्हीं का अक्षुण्ण अधिकार रहेगा। लेकिन, मुझे तो कामरूसे विशेष मतलब था।

कामरू—साङ्लासे कामरू एक ही मील है, और जमीन ऊँची-नीची होने पर भी रास्ता बराबर है। कामरूको किन्नर भाषामें मोने कहते हैं। आधे रास्तेमें ही मोने रौला मिला। पहिले वह अपनी गुफामें ले गया। गाँवसे बाहर एक बड़े पत्थरके नीचेकी गुहा कुछ मिट्टी खोदकर दीवार खड़ी करके कुटियाके रूपमें परिणत कर दी गई है। मोनेरौला का यहाँ चूल्हा-चौका भी है, यहीं पोथी-पत्रा भी, यहीं सत्संग और रामानुजी संदेशका प्रचार भी होता है।

वहाँ से हम गाँवकी ओर चले। रास्तेमें बाढ़की भीषणलीला के चिह्न देखे। कुछ ही दिनों पहिले ऊपर कहीं हिमबन्ध या मेघ टूट पड़ा, और वहाँसे विकराल दानव नीचेकी ओर बड़े-बड़े पत्थरोंको लुढ़काते चला। गाँवकी छोटी धाराके किनारे लगी पनचक्कियों को कहाँसे कहाँ बहा ले गया। घरोंको तो नुकसान नहीं हुआ, क्योंकि हिमाचलके लोग शताब्दियोंके अनुभवसे सुरक्षित जगहों पर ही मकान खड़ा करते हैं, किन्तु खेतोंकी मेड़ोंको तोड़कर और उनमें बालू पाट कर उसने बुरी तौरसे हानि पहुँचाई। बाढ़ रातमें आई, नहीं तो प्राण हानि भी होती। आगे तथा गाँवके समीप पानीय कुण्ड आये, जो अच्छे पत्थरों

से बँधे हुये थे, इसलिये इनके बसाने वाले पाण्डवोंको छोड़ दूसरा कौन हो सकता था। हम गाँवके भीतर बद्रीनाथके आँगनमें पहुँचे। सारा गाँव वहाँ पहिलेसे ही एकत्रित था, किन्तु केवल पंडित राहुलके स्वागतके लिये नहीं, किन्नरके और गाँवोंकी तरह कामरू भी वानर सेना से परास्त था। कोई चारा न देखकर आज लोग बदरीनाथके दरबार में जमा हुये थे। मुझे कामरू छोड़ने पर यह बात मालूम हुई, नहीं तो मैं उन्हें वानर-यज्ञकी विधि बतलाता, कोई देवी-देवता कनौरको वानरों से नहीं बचा सकता, चाहे वानर यज्ञ करो या कनौर-छोड़कर भाग जाओ। वहाँ कुछ शिक्षित लोग भी थे, लज्जा आई या न जाने क्या, उन्होंने उस प्रोग्रामको स्थगित कर दिया और सभा स्वागतकारिणी में परिणत हो गई।

बैठकका स्थान मन्दिरका सभामण्डप रक्खा गया, लेकिन मन्दिर की देहली के भीतर कोई बिना कमर में कमरबन्द बाँधे नहीं जा सकता। मैंने अपने पैन्टकी चमड़ेकी पेटी दिखलाकर कहा—यह है कमरबन्द। लेकिन उतने से देवता मानने वाले नहीं थे। मेरे कोटके ऊपर एक ऊनी कमरबन्द बाँधा गया, फिर मैं सभामण्डप के भीतर गया। मन्दिर के भीतर नाचने वाले दो विमान थे, जिनमें एक बदरीनाथका था दूसरा कल्यानसिंहका। कल्यानसिंह राजा पदमसिंहसे १० पीढ़ी पहिले गद्दी पर बैठे थे, और उन्हें विष देकर मार डाला गया था। शायद उनका और भी महत्व रहा हो, अर्थात् वह कामरूके प्रथम राजाओंमेंसे रहे हों, जिससे कि उन्हें देव-पद मिला। यहाँ के मन्दिरोंमें और होता ही क्या है, सिवाय इस डोली-खटोली जैसे विमान के।

बैठ जाने पर मन्दिर के अधिकारियों का परिचय दिया जाने लगा—नेगी श्यामसुन्दरदास (मास्टर बिहारीदासके भाई) और नेगी बुजुकसेन् तो मन्दिर के दो माथस् (महता) या प्रबन्धक हैं। तीन ग्रोक्स जिनके मुँहसे बद्रीनाथ बात करते हैं, यह हैं पुरनजीत (अवसर-प्राप्त), पालूराम और सुन्दरसेन। पुजारेस् (पुजारी) हैं जवानदास। कारदार—गंगाराम और गोकरनदास। कैतस (कायस्थ) हरिमनदास। दूसरे कारदार हैं—नेगी बदरीबर, श्यामसुख, देवलाल और किशनगोपाल। फाल्गुनमें बदरीनाथ का एक विशेष महोत्सव होता है, जिसके लिये दो विशेष कारदार बनाये जाते हैं। उन्हें "चोखेस" (शुद्ध) कहते

हैं, चोखेस् (चोखा) लोगों की वेशभूषा विचित्र होती है। उनके पैरोंमें तिब्बत का बकरी का जूता, सिरमौर (नाहन) का चूड़ीदार पायजामा, शरीर पर सफेद ऊन का गढ़वाली चोगा, शिरपर दिल्ली की छज्जेदार पगड़ी और साथ ही वह सूत का जनेऊ भी पहनते हैं—यहाँ जनेऊ पहिनने का रिवाज नहीं है। पूछने पर यह भी पता लगा, कि गद्दी पर बैठने के समय राजा धोती पहिना करता था, पाजामा नहीं। चोखेस् लोग तीन दिन तक किसी से अपना शरीर नहीं छुआते, फिर कैलाश (झूठे कैलाश) से आती गं-गारङ् धार में स्नान कर गाँव की ओर आते हैं। आधी दूर से लोग बाजा-गाजा और बड़े समारोह के साथ उनकी अगवानी करते हैं। फिर चोखेस् लोग कामरू दुर्गमें जाकर वहाँ से आठ थानापतियों (आठ मूर्तियों) को उठाते हैं। यह मूर्तियाँ दूसरे समय नहीं देखी जा सकतीं। यह धातुकी मूर्तियाँ हैं, जिनमें से सात हाथभरसे कुछ कम ऊँची हैं और आठवीं आठ अंगुलकी है। परम्परा यह भी बतलाती है कि कभी वह पश्चिमी तिब्बत के थोलिङ् विहार में थीं, जहाँ से जोत पार करके छितकुल के रास्ते यहाँ पहुँची। मूर्तियों का देखना तो मेरे लिये सम्भव नहीं था, लेकिन जान पड़ता है, यह आठों थानापती या इनमें से अधिकांश बौद्ध मूर्तियाँ हैं। यह भी सुननेमें आता है, कि इनमें से कितनोंके ऊपर अभिलेख है। मूर्तियाँ ऐतिहासिक महत्त्व की हैं, इसमें सन्देह नहीं।

मोने और साङ्लाके सामने विस्तृत उपत्यका है, जिसका मुँह मोने से जरा नीचे जाकर सँकरा हो जाता है, यह स्पष्ट ही है, कि अति पुरातन युगमें यहाँ एक विशाल झील या ग्लेशियर रहा होगा। फिर पहाड़ तोड़कर अवरुद्ध जलने अपना मार्ग बनाया। लेकिन यह मनुष्यके अस्तित्वमें आनेके समयकी बात नहीं। मोनेवाले कहते रहे कि पहिले यहाँ बहुत भारी सरोवर था, लोग अपनी छतपरसे बाल्टी डालकर पानी निकाल लिया करते थे। तब चाँद, सूर्यने अपना तेज दिखा सरोवरके पानीको सुखा दिया।

बदरीनाथके मोने पहुँचनेके बारेमें बतला रहे थे, कि तीन भाई द्वारकासे चले। जेठा बदरिकाश्रममें पहुँचा और वहाँसे शिव पार्वतीको कैलाशमें देख कर वहीं तपस्या करने लगा। उसका नाम तपी था। मंझला अनपूरना टेहरीका राजा बना। छोटा राजपूरना (या देवपूरना) आकर यहाँ बैठा।

किन्नर भाषामें बस्पा-नदीको बस्पा-गारङ् कहते हैं। पहिले मोनेमें एक ठाकुर था और साङ्लामें मुखोविश्नान नामक ठाकुर रहता था। मोनेका ठाकुर या उसके वंशका नाम पार्यूदन था, जिसका अर्थ "पाषाण-पर"। सपनी और अूयेके बीच बारी ठकरस् था, और चोलिङ् तङ्लिङ्में भी अलग-अलग ठाकर थे। चिनीका एमरच ठाकुर बहुत तगड़ा था। मोने के ठाकुरने अपने दिग्विजयका आरंभ साङ्लासे किया और वीरता से नहीं धोखेसे उसका सर्वनाश किया। मोने कामरू के कुन्थङ् परिवारकी लड़की मुखोविश्नानकी स्त्री थी। उसको अपनी रायमें मिलाया गया, सलाह हुई, कि दिनमें जब भोजनोपरांत ठाकर सो जाये, उस समय वह आकर काली झण्डी दिखला दे—सफेद झंडी जागनेका चिह्न थी। काली झंडी दिखलाई गई, और मोने ठाकर अपने दुश्मनपर चढ़ दौड़ा। साङ्लाकी पराजय हुई।

बदरीनाथ मनुष्य भी हैं देवता भी हैं। उनके मझले भाई ही ने टेहरी-गढ़वालका राज्य स्थापित नहीं किया, बल्कि मोने बदरीनाथने भी पार्यूदन्को हटाकर यहाँ अपनी गद्दी स्थापित की। मोनेमें आज भी मौजूद किला उन्हींका बनवाया हुआ है। देवताओंकी कथा बड़ी मनोरञ्जक होती है, लेकिन इतिहासमें उसे ले बैठने पर कभी-कभी बड़ी गड़बड़ी होती है। हो सकता है कामरूके प्रथम विजेता ही को बदरीनाथ का सांकेतिक नाम दे दिया गया हो। मोनेके किलेके बनानेमें कहते हैं, सभी विजित ठाकुरोंके किलोंकी लकड़ी और पत्थरका उपयोग किया गया—पत्थरको विशेष तौरसे बारङ्से लाया बतलाया जाता है। जान पड़ता है, एमर्च (चिनी ठाकुर) को हरानेमें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा था। उससे लड़नेकेलिये यमुनाकी शाखा-नदी टौंसके तटवर्ती फतेहपर्वतसे बहुतसे परिवार मँगाये गये थे। उन्हें जोतनेकेलिये ब्यारङ् हलोटीका खेत, रहनेकेलिये सेरियाङ् कोठी और पशुचारणके लिये चापरा कंडा दिया गया था। इन्हींकी सहायतासे एमर्चको खतम किया गया। परम्परा बतलाती है, कि बाणासुरको खतम करके बदरीनाथने सराहनको परदुमसिंहको दिया। आगे छानबेवीं पीढ़ीमें छतरसिंह हुये, जो राजधानीको यहाँ से हटाकर सराहन या शोणितपुर ले गये।

बदरीनाथका दर्बार समाप्त कर ऊपर किले पर गये। इसे किन्नरभाषामें

मोने-प्रा या मोने-गोरङ् कहते हैं। भूतल पर यह २४ हाथ लम्बा और २४ हाथ चौड़ा है, नीचे वहाँ तक ठोस है, जहाँकी सीढ़ी लगती है, ऊपर पाँच तल्ले हैं। प्रथम तलपर पाँच घर हैं—गोदाम, स्नान-कोष्ठक, पानीघर, रसोई और कोठा। जब सारे किलेका घेरा ६६ हाथ है, तो कोठरियाँ कितनी छोटी होंगी, यह स्वयं अनुमान किया जा सकता है। दूसरे तलके तीन कमरोंमें सबसे छोटा खाली, फिर एक बड़ा पूजागृह है, और तीसरा वह कमरा है, जहाँ आठों थाना-पतियोंके बीचमें राजगद्दी रक्खी है। तीसरे तल पर पाँच कमरे हैं, जिनमें एक कभी नहीं खोला जाता, दूसरेमें सैकड़ों भेड़-बकरियाँ काटी जाती हैं, जबकि हर तीसरे वर्ष सराहनसे भीमा-काली यहाँ पधारती हैं। (पधरावनी बड़े खर्चकी चीज है। हिमाचल सरकारने खरच कम कर दिया है, अब भीमा-कालीका पधारना संदिग्ध है)। तीसरे कमरेमें बलिपशुका प्रोक्षण किया जाता है। चौथेमें भीमा-काली बैठती हैं। पाँचवें कमरेमें राजा का सामान—हथियार, कवच, बारूद, सीसा आदि रखा हुआ है। चौथे तलके कमरोंमें सबसे बड़ा दर्बार-हाल, दूसरा रनिवास, तीसरा स्नान कोष्ठक, चौथा बड़ा रसोई-घर फिर एक पानी-घर भी। पाँचवाँ तल सबसे अंतिम और सबसे ऊपर है, जहाँ एक छोटीसी कोठरी है, जिसमें बटकुला देवता निवास करता है।

इसी किलेके भीतर राजाके रहने, खाने, काम करनेका सारा प्रबन्ध था। उस समय वह कितने थोड़ेमें काम चला लेते थे। इच्छा तो जरूर भीतर जाकर देखने की थी, किन्तु लोगोंको बुद्धू बनाकर रखनेकेलिये राजाओं के बनाये नियम मूढ़ विश्वासका रूप धारण कर चुके हैं। राजतन्त्रसे संबद्ध इन मूढ़-विश्वासोंको सुरक्षित रखना दूसरे समय हिमाचल प्रदेशकेलिये खतरेकी बात होती, किन्तु अब किसमें हिम्मत है, कि प्रजाके शासनको हटा फिर राजाको लाकर गद्दी पर बैठाये। यह मैं कहूँगा, कि बुशहरके कितने ही पुराने राजदर्बारी अब भी यही समझते हैं, कि बालिग होने पर टीकासाहब (युवराज) अपने बाप-दादोंकी गद्दी सम्हालेंगे। किलेमें बाहरके आदमीके जानेका तो सवाल ही नहीं उठता, वहाँके लोग भी जब भीतर जाते हैं, तो कमरमें कमरबन्दके अतिरिक्त उन्हें शिरपर शमलानुमा काली टोपी लगानी पड़ती है। किलेके बाहर एक छोटासा हाता है, फिर कोठार-भंडारकी कितनी ही कोठरियाँ।

मुझे किलेके भीतरके कागजपत्रोंके देखने की बड़ी इच्छा थी। पुराने समय में लिखा-पढ़ी भोजपत्र पर हुआ करती थी और अक्षर टाँकरा (अर्थात् गुप्तलिपिसे सीधी निकली एकलिपि) जान पड़ता है। पुराने कागज-पत्रको सम्हालकर नहीं रक्खा गया, साठ-सत्तर सालके पहिलेके लेख सुरक्षित नहीं हैं। उस समय मुझे विश्वास था, कि सराहनमें पुराने कागज-पत्र बहुत मिलेंगे, इसलिये मैंने ज्यादा जोर भी नहीं दिया।

यहाँ मैं मोने-गोरङ् के कुछ कागजोंकी बात करता हूँ।

हर तीसरे साल मोनेके बदरीनाथ गढ़वाली बदरीनाथ से भेंट करने के लिये जाया करते थे। जब तक नीचेके साधू-महात्माओं, सेठ-सेठानियों ने धावा नहीं बोल दिया, तब तक गढ़वाल वाले बदरीनाथ और मोनेके बदरीनाथमें उतना ही अन्तर था, जितना बड़े भाई और छोटे भाईमें। हर तीसरे साल बाजे-गाजे के साथ मोने बदरीनाथ बड़े बदरीनाथ के पास पहुँचते। वहाँ एक सिंहासन पर बैठाकर उनकी पूजा की जाती। सम्वत् १९३२ (सन १८७५ ई०) में इसीके बारेमें बुशहर के राजा शमशेर सिंह ने निम्न चिट्ठी लिखी थी—

"सोसती स्री महासी बद्रीस , परचारजा राओल परसोतमजी स्री महास्री परमबटारक स्री महाराज-धिराज स्री महरजे स्री समसेर सिंघेपए लगणा पहुँचे। इहाँके समाचार बले हैं। ताहके बले चाहिये। उप्रंत इहसे हमारे गदीका देवताको सन रूपी बदरीनाथजी मारफत नेगी रोणबद्र व चोबदार हीरामनके साथ बद्रीजीको बेजे गए, सो देवतेजीका संगार पहेनाकर संगसन उप्र बटलाके पुजा मानता इच्छी तरा करणा, बद उसके मारफत नेगी रोणबद्रकी देवताजीको वेज देणा, आइंदे सुब (।) पत्र लिखते रहेणा। सं० १९३८ हड गते २७ सुब' खतकी नकल है राजासहेबकी तरफसे बद्री छेनके ओलजीको।

यहाँके बदरीनाथकी गढ़वाली बदरीनाथके पास ले जानेका हुकुम देते हुये राजा शमशेरसिंहने लिखा था—

"स्री महास्री परमबटारक श्री महाराजदिरज श्री महाराज स्री समसेर सिंघे देवने बचने (।) कमरू देवते-बद्रीनाथजीके करदारन नेगी रोणबद्र से ही अन्त रामरम बचने बोल्या उप्रन्त जो की बद्रीनाथजी अबके बद्री जानेका हुकुम फरमावते होगा (।) सो देवतेजीकी मरजी-हुकुम माफक देवताजी बद्री छेत्रमें बेसक

ले जाणा (।) व मूजब रकमके बद्री क्षेत्रमें पुजाकर देखी और सरकारी तरफसे देवतेजीका रकम खरच अज तक मिला करती, सो अववी रखम-वूजव देवतेकी खरच सरकारसे मिल जाएगी (।) तुमने रखमवमुजब खरच लगा देखी (।) तुमको सरकारसे मुजरे मिलेंगे (।) सं १६३२ रोह ३१ लिख्या हुकुम परमाण (।) सुभ"।

कामरूके बदरीनाथ राजा शमशेरसिंहकी चिट्ठीमें "क्रसन" (कृष्ण) रूपी कहे गये हैं। लेकिन उन्हींके पास अपने सं १६२६ (सन्१८६६ ई०)के पत्रमें बदरीनाथके रावल पुरुषोत्तम शर्माने कमरू बदरीनाथको बौद्ध रूपी लिखा है। पत्रकी मूलप्रति यहाँ सुरक्षित है। उसका कुछ अंश निम्न प्रकार है—"स्वस्ति श्रीमद्बदरीनाथाराधनसमादितसमस्त सद्वस्तुविलासेषु शौर्यौदार्यगाम्भीर्यसौजन्याद्यनेकगुणगणग्रामेषु दयादाक्षिण्यमाधुर्ययुतक्षात्रमण्डलमुकुटलसत्पादारविन्देषु दानशौंडश्रीमन्महाराजधिराजपरमभट्टारक श्री श्री श्री श्री श्रीसमसेरसिंहवर्मकल्पद्रुम कल्पेषुइतस्स्वस्ति [श्रीकृष्ण] चरण परिचर्यापरायणान्तःकरणरावलोपनामपुरुषोत्तशर्मविहिताशिवां राशयः समुल्लसंतुतराम (।) तत्रभवतो प्रतिशमीहामहे (।) प्रवृत्तिस्तु भाषया (।) आगे द्वापरांते जो बौद्धरूप श्री बदरीनाथ द्वारकासे इहाँ आयके पूजा-भोगके अर्थ तहाँ राजगद्दीमें प्राप्त हो रहा है, यात्रार्थ वह मूर्ति तपसिल···"

दोनों पत्रोंको देखनेसे पता लगता है, कि सम्वत् १६२६ श्रावण सुदी २ चन्द्रवासर तक कामरूके बदरीनाथ जहाँ बौद्ध रूपी (बुद्धरूप) थे, वहाँ सं० १६३२में वह कृष्ण रूपी बन गये, और फिर तो सं० १६५६ (सन् १६०२ ई०) भाद्रवदि १० को रावलके पास पत्र लिखते हुये शमशेर कहते हैं—"विस्तार समझा जो लेखाकि यहाँसे हमारे गद्दीका देवता कृष्णरूपि बदरीनाथ तहाँ भेजा सो (बदरीनाथ) जीके सिंहासनके ऊपर बैठायके पूजा-मानता अच्छी तरह करना (बदरीनाथ) जीके सिंहासन बैठायके यथाविधिपूर्वक ५ रोज़ तक पूजा · ")

कामरूमें मिले हस्तलेखोंके देखनेसे यह भी पता लगता है, कि सितम्बर १६७५ तक अभी बुशहरके राजा यह निश्चय नहीं कर पाये थे, कि उन्हें रघुवंशी बनना है या चन्द्रवंशी। एक कागजमें लिखा मिला—

नाम रहीस	लकब	मुकामसकूनत
समसेर	राजा	रामपुरसहरण

दूसरे पत्रमें लिखा है—

नाम	जात	उम्र	खासनाम	खानदानी
संसेरसिंह	छत्री	३७	सिघ	रगुवंसी

कामरूमें राजा उगरसिंहसे पहलेका कोई कागज मुझे नहीं मिला। सम्भव है भोजपत्रोंको ढूँढ़ा जाय, तो उससे भी पुराने लेख मिलें। उगरसिंहने सन् १७२१ ई० में पहाड़ी भाषामें अपने कारदारोंको धर्मादे के रुपयेको ठीकसे खरच करनेके बारेमें लिखा था—

"सं ७८ ओं की श्री महसी परमभट्टारक श्री महाराजाधिराज श्री महाराजे श्री उगर सिंघे देवन वंचनी (।) नेगी कावतीन राणाथे समदारी मोहोर छाप लिख दी (।) तिस मधे एह जे भीजी बरसे परनओती बरतदेहे परनओती दे खरच मधे हलचल हो दी थी (।) इदीरे वसते कवरेतरेन रएते के गल बजे एह धरम रकम है (।) इदी मझ हलचल न होए (।) इसते त्री जी बरसे फकपाए थेरे से के रूप १०० परनओती जो देणी रूप १०० बीजादसमीरे खरच रे उबा मझ थे देणी (।) इदी पर हलचल नहीं करणी (।) यह रूप २०० श्री जी बरसे परनओती जो कवरू देव करन प्रन्ते वीस्ट सागरदास व हरसंत दास व नरपत दास वा धनीराम देयाराम पलदन भगत खजंची बाजू केवर बलकिसन पलसर गोल (।) हजूर दे हुकम प्रमाण लिख्या (।) सं ७८ पोह प्र (विष्टे) २३ लिख्या कायथ अवल।"

राजा उगरसिंहकी मोहरके बीचमें "श्री बद्रीनाथ जी सदा सहाय" और बाहरकी परिधि पर उसीको तीन बार दुहराया गया है। एक मोहर पर "बद्रीनाथ जी सहाय" फिर बाहरकी ओर "मुहर छाप रियासत बिसाहर सं १८५१" लिखा है। इस मुहरके बीचवाले वृत्तमें केवल "श्री" लिखा है। यह और पहिली मोहर भी नागरी अक्षरों में है।

कामरू किलेके अधिकारी मेरी सहायता करनेकेलिए तैयार थे, किन्तु कुछ राजवंशिक नियमोंके संकट थे, जिन्होंने धर्मसंकटका रूप ले लिया था। मैं किले के भीतर जा नहीं सकता था और दूसरे उसके भीतर की चीज़ोंके ऐतिहासिक

महत्वको जानते नहीं थे। मैं उनसे पूछकर जिस कागजको लानेकेलिये कहता उसे वे ले आते। यह अंकुश से पानी पिलाना था। वहाँ कई ऐतिहासिक महत्वकी वस्तुएँ हैं, इसमें मुझे सन्देह नहीं। वह वस्तुयें तथा बारूद भी एक ही जगह रक्खी हुई हैं। हिमाचल सरकार द्वारा कामरू दुर्ग रक्षित- स्मारक घोषित किया जाना चाहिये, और सबसे पहिला काम होना चाहिये बारूदको यहाँसे हटाकर दूर रखना। प्रजातन्त्रकी भावना, जिसमें लोगोंमें प्रबल हो, इसके लिए किलेमें अबभी जो सामन्ती नियमोंका बोलबाला है उसे हटाना चाहिये, और इस विषयमें स्थानीय आभिजात्य वर्ग के विरोध पर ध्यान देना चाहिये।

बस्पा-उपत्यका विशेषकर कामरू और सङ्लामें बौद्ध धर्मका प्रभाव कम है और ब्राह्मण-धर्म ओजपर है—जात-पाँत और छुआछूत के फेरमें पड़नेको मैं पतन कहता हूँ। लेकिन अभी भी ब्राह्मण धर्म बहुत भीतर तक घुस नहीं सका है। सारे कनौरमें ब्राह्मण कहीं भी मिलते नहीं। जान पड़ता है कामरूके चन्द्रवंशी-सूर्यवंशी होनेकी लालसाने ब्राह्मण धर्मका यहाँ प्रवेश कराया। नाचनेवाले बदरी नाथके पाससे तो किसी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होनेकी आशा नहीं थी। किलेके बाद यदि कहीं और कुछ मिल सकता था, तो वह बौद्ध मन्दिर था। देखते-दाखते दो बज गये थे। मोने-रौलाने भोजन तैयार करनेकेलिए कह रक्खा था। हम नीचे उतर कर बदरीनाथके भण्डारमें भोजन करने गये और फिर पासही में अवस्थित बुद्ध-मन्दिरमें पहुँचे।

बुद्ध-मन्दिर में मूर्तियोंका क्या पूछना? आधा घर पीतल और दूसरी मूर्तियों से भरा था। किन्तु मेरी आँख तो दौड़ रही थी पुरानी मूर्तियोंकी खोजमें। आखिर एक २२ इञ्च लम्बी चतुर्भुज अवलोकितेश्वरकी मूर्ति वहाँ एक तरफ खड़ी देख पड़ी। मूर्ति-शरीर का अधिक भाग कपड़ेसे ढँका था, किन्तु आँखों पर सदा उज्ज्वल रहनेवाला चाँदीका पानी देखते ही मैं उधर लपका। यह कला छ सात सौ बरस पहिले लुप्त हो गई, फिर सदा अम्लान रौप्यचक्षुका न भारतमें पता लगता न तिब्बत में। मैंने मूर्तिके कपड़े उतरवाये। अतिसुन्दर संतुलित मूर्ति थी। बाईं ओरके दोनों हाथोंमें से उपरलेमें पुस्तक निचलेमें कमल, दाहिनी ओरके उपरलेमें अक्षमाला और निचलेमें वरदहस्त। मूर्ति खड़ी किन्तु त्रिभंगी है। मैंने फोटो लिया, किन्तु अँधेरे घरमें प्रकाश काफी नहीं था

और मेरे पास केमरे में अधिक समय देनेके लिए साधन नहीं था। मैं फोटो नहीं पा सका। मूर्ति देखने से ही मुझे निश्चय हो गया, कि वह बारहवीं-तेरहवीं सदीसे इधर की नहीं हो सकती। मूर्तिके पादपीठमें तीन पाँतियोंका पुराने चतुरस्र भोटाक्षरमें लेख खुदा हुआ था।

"लन्- वित्- ग्यि- य- ब- दस्- पयग्-लेन्-मज्रद्। स्मोन्-ब्लोन्-छे क्लु-मूगोन्-मूछेद- यु- स्रस-क्यिस्- योन्- बदग्- बग्यिस् छे- ऽदस- प स्मोन्- ब्लोन-छे- शेस- ब्चन- ग्यिस्- ब्सोद्-नस-सु रिगस-गसुम- ग्यिस्कु-ब-शेङ्सु बसोल-बस। छे ऽदस - ल- दङ् - मर - यस् - पडि- सेंस-चन-थंद-चद्, स्नब- प-प्यद-बर-ग्युरद्- चिग्।"

इससे पता लगता है, कि मोने (कामरू के किसी महामात्य नागनाथ और उसके परिवारने मोनेके महामात्य ज्ञानीके पुण्यार्थ इस "त्रिजातिक" मूर्तिका निर्माण कराया। "त्रिजातिक" या "त्रिजातिकनाथ" महायान बौद्ध-धर्मके तीन बड़े बोधिसत्वों—अवलोकितेश्वर, मंजुश्री और वज्रपाणिकेलिये आता है। इसका अर्थ हुआ कि इस मूर्तिके साथ ऐसी ही दो और मूर्तियाँ बनाई गईं थीं। मालूम नहीं वह कहीं दूसरी जगह मौजूद हैं या नष्ट हो गईं। यह मूर्ति कला और इतिहास दोनोंकी दृष्टिसे महत्वपूर्ण है। उतनी प्राचीन तथा कलापूर्ण तो नहीं किन्तु अक्षरोत्कीर्ण एक तीन इञ्च (केवल मूर्ति) की बोन्-धर्म की मूर्ति भी वहीं है, जिसपर लिखा है—"ग्यॅल- व- ऽवर- र- ब- न- मूखडि-दों- जें- ल- न- मो"। नम्खादोर्जे नामके किसी धर्म-गुरुकी यह मूर्ति है।

मूर्तियोंके बाद मैंने पुस्तकोंकी ओर ध्यान दिया। नेगी शाम सुन्दरदासके घरसे आई "सुवर्णप्रभास-सूत्र" (भोटभाषा) की हस्तलिखित प्रतिको उठाकर देखा। इसकी आरम्भिक पुष्पिकामें दायक का नाम और परिचय लिखा था, जिससे मालूम हुआ कि राजा "बिर्-दिर् सिंग" के समय सरकारी अधिकारी, असि, असोल ओस्मोल्, रोङ्-मोल आदि ने इस पुस्तकको मोनेमें लिखवाया था। विरदिरसिंग वस्तुतः राजा केहरिसिंहके उत्तराधिकारी विद्या या विजयसिंह*

* भोटिया लेख निम्न प्रकार है—"गु - गे - शङ् - शुङ् - दम् छोस - दर् - ग्नस् - ऽदिर्। द्पग्, मेद् - ब्सोद् - नम्स् - ल्हुन्-ग्रुब- मि- यि - बदग। मङ् - पोंस् - बस्कुर् - बडि-गूदर् - ग्युद्-ब्ल - न - मेद्। रिन - छेन्

का ही बिगड़ा नाम है। विजयसिंह १७ वीं सदीके उत्तरार्ध में मौजूद थे। नेगी शामसुन्दरदास (आयु ५३ वर्ष) अपने पिता कमलानन्द, पितामह किसनदास और प्रपितामह श्यामदास तक ही को जानते हैं, किन्तु उन्हें यह मालूम है कि उनके वंशमें ओस्मोल् नामक पूर्वज हुये थे, जो राजाके बुतुङ्रु (समिति-सदस्य) थे।

कामरूके दूसरे परिवार चङ्कुम्के श्रीकुण्डारामजीके पास एक सुवर्ण-लिखित "अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता" की भोट-पोथी है; जिसे मुझे अगले दिन डाकबँगलेमें देखने का मौका मिला। यह शायद आज तक कनौरमें देखी हस्तलिखित पोथियोंमें सबसे पुरानी है। इसकी पुष्पिकाके देखनेसे पता लगता है, कि इसे सराहनके भूपाल राजा सइपलके समय छितकुल में छु-न† परिवारने लिखवाया। पुस्तकमें जोङ्-ख-पाका भी नाम आया है, जिसका अर्थ है, कि पोथी १४ वीं सदीसे पीछे लिखी गई। सइपलका संस्कृत भूमिश्री अथवा पृथिवीश्री होता है। इस नामका कोई राजा सराहन-वंशमें पिछली १५ पीढ़ियोंमें नहीं हुआ है।

- ब्ज़ङ् - पो - शब्स् - क्यिस् - ब्चग्स्-पऽिग्नस्। युल - ल-द्गे - बचु - ऽजम्स् - पोऽिद्प्यङ्स- युल- मो- न ऽदिर।... ग्नम्स् - सऽि - ब्दग् - पो - ख्रि - दिर् - सि- गि - मदऽऽोग् - न। योन् - गि - ब्दग - पो - अ - सि - दङ्। अ - सोल्-दङ्। अस - मोल् - दङ। रोङ् - मोल् - दङ्। र - मोन् - दङ्। खु - दु - दङ्। दल् - ल्दन् - योनि - ग्यि - ब्दग् - मो - को - फुल् - दङ्। गनस् - सऽि - मङ्नोग् - ग्युर् - ज़ङ् - मो - दङ् स - द्पोन - नि - दङ। स - रो- ज़ि- दङ्। - जे - पुर - दग् - नो - क्यि -दङ्, कोन - तङ् - दङ् - 'अ - ज़ि - दङ् - ब्रि - रोम् - दङ् - धो - ऽदऽ - र - दङ्। धु - रु - दङ्। दगे - स्लोङ् - दङ्। गनल - ऽब्योर - दङ्। दे - नंमस - छोस - फियर-स्तोङ - ङ- ङोम् - मङ्गर - छे।"

† स्तोन - पो - ब्छोस - सुङ्स - दोर्जे - ब्दन - गि - व्यङ्। ख - ब - ब्चन - ल्जोङ्स् - दम् - छोस् - दर - बङ्गिग्नस्। ति - से - मछोद् - तेंन् - दग्र - चोम् - ब्शुग्स् - पऽि- ग्नस्। म - बङ् - ग्यु - मछो - द्ङोस् - ग्रुब् - ख्युस् - क्यि - जिङ्। क्ये - लेग्स् - रिन् - छेन - ब्ज़ङ् पोऽि- शब्स् - क्यि -

कामरूमें रामपुर के राजाओं की एक वंशावली मिली, जिसे मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ। प्रथम पूर्वज प्रदुमनसिंघसे यहाँ यदुवंशी कृष्णपत्र अभिप्रेत हैं। सभी नामों के साथ 'सिंघ' या 'सींघ' लिखा हुआ है—

१ प्रदुमनसिंघ	१३ हरिचरन	२५ मेहर	३७ विसन
२ छुवलसींघ	१४ माक्रमान	२६ सबला	३८ रगुनाथ
३ सेर	१५ मुदई	२७ हामी	३९ देवी
४ कमल	१६ भूप	२८ जवार	४० चरन
५ गुलाब	१७ उमेद	२९ गबरदान	४१ पदेसी
६ बरदेव	१८ हरकरपाल	३० जगबीर	४२ मलबहादर
७ मेहरूप	१९ करपाल	३१ सुरजन	४३ गोपी
८ हरि	२० हरदेव	३२ मदन	४४ गुरबदल
९ सरजीत	२१ सलाब	३३ गोबिन्द	४५ जगत
१० जगबीर	२२ बीमा	३४ प्रीतम	४६ अम्रित
११ रघु	२३ बगज़	३५ गुरदारी	४७ दलबदर
१२ गोपाल	२४ पुरवा	३६ किसन	४८ नेहल

ब्चगस् - पऽि- ग्नस्। ब्लो-ब्सङ-ग्रग्स् - पऽि ब्स्तन् - प - दर् - वङ्गिनस्। छु - छेन - ङ ल - ऽवब् - ग्लङ् - पों - ख - ऽवब् - ग्रम्। छ - यि - ग्यङ्-र - शुङ् - ब्शुङ् - ल्हऽि - ल्जङ्स्। ख्युङ् - जोंङ्स् स्पृ - थो - रिन्-छेन्-ल्हुन् - पोऽि ङोस्। ... गङ् - सम् - ल्हुन् - ग्रुब् - सुस् - मथोङ् - स्मोन्-गन्स्। सो - र - रङ् - न। ग्तम् - सऽि - ब्दग् - पो - ग्र्यल् - पो - सङ्दि्पल्-ग्यि - म्दङ् - ङोग् - न। क्य - लेग्स् - युल - ल - द्गे - ब्चु - ऽर्जम् - पऽि-छिद् - दकुल् - ऽदिर। मि - रिग्स् - खङ्स् - ब्चुन् - छ - नऽ - ग्र्युद्। दङ् - ल्दन - पोन् - ग्यि - बदग् - पो - जों - दगु - दङ् -। रिग् - पऽि - ग्नस् - ल्ङ- प - ल - खस् - पऽि - स्रस - पऽि - छाग् - ग्युर् - सि - चोंन - दङ्। ल्ह - फ्रुग् - ब्शो - नु - ऽद्र - वांऽ - द् ग्रो मोन् - दङ्। ग्र्य - गर् - प् - सङ् - ऽद्र - वऽि - श्र - लो - दङ्। पङ्स् - ल - मे - तोंग - ऽवर - ब - ऽद्र - वऽि - - कल - क्रे - दङ्। स्रस - पोऽि - छोग - ग्युर् - ओ - र्बुन - दङ्।

४९ हरिपद
५० फतेह
५१ अमर
५२ महावद्र
५३ सलार
५४ जगबे
५५ जोगदेयाल
५६ दलब
५७ मदोर
५८ दलीप
५९ जगतंव
६० गुमान
६१ परमोद
६२ महीपर
६३ सरब
६४ सलेही
६५ गोरकोकल
६६ गरदेवर
६७ वारपल
६८ नरमेद
६९ दरजोद
७० दरकोरी
७१ प्रीतम
७२ सागर
७३ रन
७४ धीर जमेहर
७५ मंगल
७६ गोरसी
७७ लखी
७८ परभूभजन
७९ दुमन
८० दनकरीत
८१ दलदीन
८२ परदेउ
८३ मारी
८४ अमलर
८५ दहारी
८६ बसाथ
८७ करम
८८ प्रेम
८९ दस्त
९० चरन
९१ बीरवेसी
९२ केसरी
९३ परजीत
९४ धरम
९५ कमल
९६ छतर
९७ अमर
९८ करल
९९ तपनाथ
१०० सग्रम
१०१ सुरज
१०२ दरमोरत
१०३ नारमल
१०४ जबाला
१०५ ग्वसदल
१०६ अमृत
१०७ सार
१०८ करिसन
१०९ हरि
११० जबर
१११ भूप
११२ कल्यान

"ब्रियन् - पऽि बदग् - मो - पो - ति - दङ्। गनऽ - मऽि ; छोग - ग्युर् - से - मोर - दङ्। ...स्पु - चङ् - दङ् - कोन चोग् - छे - रिङ् - दङ्। मिऽु - रि - दङ्- ह्वो - पो - वसङ् - मो - क्यिद् - दङ् - स - बि - दङ् - हुर् - जे -दङ्- र्गु - नि - ग् मि स् - क्यि् - दोन् - दु - फ्गस् - र्ग्य - स्तोङ् - ब्शेङ् ..." दूसरे पृष्ठ पर कुछ खराब अक्षरोंमें राजा उगरसेनके समय पुस्तककी बिक्रीके बारेमें लिखते हुये कहा है.........र्ग्यल् - पोऽि - फल् - खल् - म्जिस् - थे - ब्शि - शुङ् - खङ् योऽ। ... छोस - र्ग्य - स्तोङ् - ब - पियस्-स्कुल् - खुन् - न - के - ऽदस् - र - नस् - स्त्रोस् - यिन् - नि - ल्ङ - ल - चु - ग्जिस् - स्तोङ् - युल् - ल - र्ग्य - चु - ऽजोम् - र्ग्यल् - छेन् - पो - मो - न्ये - रु - ग्यल् - पो . अ्रु - बुर - सिङ्...स्व्यिन् - ऽत्रस् - दग् - पो - ऽजन् - ग्यो- नोर् - ङ स् - अ - प - मिङ्- पु - च - मिङ् - ऽजु - दस्- दङ् - रम् - स- ग्रिस् - यङ् - खु - गु - मिङ् - नि - ख - कुर - ऽ दस...") भाषा बहुत अशुद्ध है।

११३ केहरी* ११४ विजा 'विजयी' ११५ उदय ११६ रामसिंह
११७रुद्र ११८ उग्र† [मृ० १८११ई०] ११९ महेंद्र†† [मृ०१८५०ई०]
१२० समेसर††† [१९१४ई०] १२१ पदम [मृ० १९४७ई०]

इस वंशावलीपर कुछ कहनेसे पूर्व रामपुरमें प्राप्त दूसरी वंशावलीसे भी कुछ दे देना आवश्यक है। इस वंशावलीमें प्रदुमनसे पदमसिंह तक १३० पीढ़ियाँ गिनाई गई हैं, जिनमें पहलेकी ८४ पीढ़ियाँ निम्न प्रकार हैं—

१ प्रदुमन	१३ गोपाल	२५ सुरमा	३७ किशन
२ अनुरुध	१४ हरिचरन	२६ मेहर	३८ कृष्ण (विसन)
३ जमल	१५ बदामा	२७ जमाल	३९ रघुनाथ
४ नाहर	१६ बुधिपती	२८ गजपति	४० देवी
५ कमाल	१७ भवनी	२९ जवाहर	४१ चरन
६ जगत	१८ रन बादल	३० गवरधन	४२ परमेश्वर
७ बुरिंद	१९ पद्म	३१ जगबरत	४३ दलबादल
८ सुरत	२० गुरबान	३२ सुरग्यान	४४ गजराव
९ नरजे	२१ नरदेव	३३ मदन	४५ गरबादल
१० सरजीत	२२ सूरज	३४ गरजन	४६ जगत
११ जुगेन्द्र	२३ भीम	३५ जबीव	४७ अनिरुद्ध
१२ रघु	२४ सुरमङ्गल	३६ गिरधारी	४८ बलबदुर

*संवत् १६११ (१५५४ ई०) में रामपुर बसाया, १५५६ ई० में तिब्बत से संधि की, १५५९ में दिल्ली दर्बार (अकबर) में गया।

† जन्म संवत् १७९३ (१७३६ ई०) मृत्यु १० आषाढ़ (सौर) संवत् १८-६८ (१८११ ई०)।

†† जन्म १६ कातिक १८६५, मृ० १९ माघ १९०६ (१८५०ई०), महेन्द्र-सिंहके सौतेले भाई मियाँ फतेहसिंह थे, जिनके जनगीत प्रसिद्ध हैं।

††† जन्म २६ आश्विन १८९५, मृत्यु २० श्रावण १९७२ (४ अगस्त १९१४ ई०)।

४६ भगवान	५८ दलीप	६७ नरदल	७६ सुरसेन
५० हरि	५६ अगपति	६८ देव	७७ भभी
५१ अमर	६० तान	६६ दरजोधन	७८ हरिभजन
५२ मदबहार	६१ नरमोह	७० धेनुगज	७६ धनभरत
५३ रणमार	६२ मनोहर	७१ प्रीतम	८० भरत
५४ जगपति	६३ नरदेव	७२ सार	८१ हलसेन
५५ जोगेन्द्रपाल	६४ नरसिंह	७३ रतन	८२ नरदेव
५६ दलपति	६५ गुरुभगत	७४ भजभोर	८३ सार
५७ बुद्धवान	६६ मरधन	७५ मंगल	८४ अमर

और पीछेकी ग्यारह पीढ़ियाँ निम्न प्रकार हैं—

१२० छत्रसिंह	१२३ विजयसिंह	१२६ रुद्रसिंह	१२६ शमशेरसिंह
१२१ कल्याणसिंह	१२४ उदयसिंह	१२७ उग्रसिंह	१३० पदमसिंह
१२२ केहरीसिंह	१२५ रामसिंह	१२८ महेंद्रसिंह	१३१ वीरभद्रसिंह

नीचेकी पीढ़ियाँ दोनों वंशावलियोंकी ठीक मालूम होती हैं। पहिली वंशावलीके गुलाब (५), मुदइ (१५), उमेद (१७), मेहर (२५) हामी (२७), जवा(ह) र (२८), मलबहादुर (४२), दलवदर (४७), फतेह (५१), सलार (५३), गुमान (६०), और दूसरी वंशावलीके कमाल (५), सुग्त (८), रनबादल (=रणबहादुर, (१८), मेहर (२६), जमाल २७), जवाहर (२६), दलबादल (=दलबहादुर), (४३), बलबदुर (४८) जैसे अरबी-फारसी मंगोल नाम बतला रहे हैं, कि जाल बनानेवाला अधिक चतुर नहीं था। भला कलियुगादिमें गुलाब, मुद्दई, उमेद जैसे नाम कैसे रखे जा सकते थे? पहिली वंशावलीमें दहारी (८५) नाम देकर तो चोर अपना हल्कासा परिचय भी दे गया है। "दहारी" और "सुखारी" जैसे नाम भोजपुरी-मैथिली-मगही ही क्षेत्रमें पाये जाते हैं, जहाँ दहार (बाढ़) में पैदा होनेवालेका सुखारी नाम पड़ता है। अवधी-क्षेत्रमें सुखारी दूसरे ही अर्थमें प्रयुक्त होता था, जैसा कि गोस्वामीजीने कहा—"जासु राज प्रिय प्रजा सुखारी।"

हम कामरू दुर्गके एक लिखितम (१८७५ ई०) में राजा शमशेरसिंह को रघुवंशी लिखा देख चुके हैं, और यह वंशावली इस वंशको चन्द्रवंशी

बतलाती है। १८७५ ई० के बाद यह वंश-परिवर्त्तन !! क्या रांवीवाले ब्राह्मणोंकी बात ठीक मानी जाये, कि दक्षिणदेश कंचननगरसे दो भाई दशरथ आये। पदुमनका भाग्य जग गया, वह राजा बना और दशरथकी सन्तान रांवीमें बसकर पुरोहित बनी। हो सकता है, यह कामरू वंशके पहिले की बात हो।

कामरूके नीचे नदीके किनारे बहुतसी समतल भूमि है। विमानावतरण भूमि वहाँ बहुत आसानीसे बनाई जा सकती है—बड़े-बड़े खेत अधिकतर सरकारी हैं। कामरू और साङ्लाके विस्तृत खेतोंको देखकर मैंने समझा, कि यहाँ भी दो फसल जरूर होती होगी। किन्तु नीचेके खेतोंमें दो फसल होती ही नहीं, क्योंकि उनकी बरफ बहुत देरमें पिघलती है। हाँ, गाँवके पासके ऊपरवाले खेतोंमें क्वारमें गेहूँ बो दिया जाये, तो बरफमें दब जानेपर भी गरमीमें फसल जल्दी तैयार हो जाती है, और उसी खेतमें एक फसल और पैदा की जा सकती है। यद्यपि सप्ताह-पूर्व आई भीषण बाढ़ने लोगोंको बहुत भयभीत किया, किन्तु रातमें आनेसे उससे प्राण हानि नहीं हुई और खेतोंकी भी क्षति अपेक्षाकृत कम हुई। कामरूके खेत बहुत ऊपर पहाड़ी कंडे (पर्वतपृष्ठ) तक हैं।

कामरू छोड़ते तक शाम भी नजदीक आगई। हमारे गाँवसे बाहर होते ही बाजा बजा अर्थात् लोगोंने बदरीनाथ को बानर उपद्रवशान्तिके बारेमें आज्ञा लेनेके लिये मन्दिरसे बाहर निकाला।

लौटते समय साङ्लामें मुखोविश्नान ठाकुरके गढ़ पर भी गये, किन्तु वहाँ भूमिके ऊपर उसका कोई चिह्न विद्यमान नहीं है। एक पहाड़ी टीले पर अनाज रखनेकेलिये लोगोंने कुछ बखारें खड़ी कर ली हैं, किसीने एक छोटासा बाग भी घेर लिया है।

हम सीधे बँगलेपर चले आये।

साङ्लामें मैंने पहिले तीन दिन रहनेका विचार किया था, किन्तु अब कोई काम नहीं रह गया था। १२ अगस्तको प्रस्थान करना है, यह चपरासीको मालूम था, किन्तु १० की शामको जो वह लुप्त हुआ, तो फिर पता नहीं लगा। दायित्वहीनताकी तो उसने हद्द कर दी। ब्रूयेसे लाये घोड़ेका जिम्मा उसने लियाः था, अब उसका सम्हालना भी हमारे ऊपर पड़ा।

११ अगस्तको फिर हम साङ्लाकी गन्दो गलियोंमें घुसे। पंमी ब्रह्मचारी

कल ही कैलास-परिक्रमासे लौट आये थे। हम दोनों साथ ही गाँवमें गये। गाँवमें दो बातोंकी धूम मची हुई थी। टेहरीके ब्राह्मण जोतिसी आये थे, और लोग साल भरकी बाकी लगी जन्म-कुण्डलियों को धड़ाधड़ बनवा रहे थे।

एक दूसरी बातकी धूम नहीं घबराहटसी थी, वह थी बन्दूकोंका लिखवाना। मैं समझता हूँ, इस सीमान्त इलाकेमें बन्दूकोंके रखनेमें किसी तरहका नियन्त्रण करना बहुत अविचार-पूर्ण बात होगी। पाँच-छ साल पहिले पश्चिमी तिब्बतमें लूट-मार मचाने वाले किर्गिज़-कजाक़ोंकी कनौरमें घुसनेकी हिम्मत इसीलिये नहीं हुई, कि किन्नर लोग आग्नेय-अस्त्रोंको खुलेतौरसे रख सकते थे। मैंने पुलिसकी ओरसे निकाले-विज्ञापन भी आगे देखे, जिनमें हथियारोंको थानेमें जमा करनेकी बात लिखी थी। बात चलनेपर मेहता साहबने बतलाया, कि हम कनौरमें हथियार रखने पर पाबन्दी नहीं लगाना चाहते। फिर ऐसी गैरजिम्मेवारीकी सूचना क्यों निकाली गई? नीचे के अफ़सर गैरजिम्मेवारी दिखलाया करते हैं। हिमाचल सरकारने हिन्दीको राजभाषा घोषित कर दिया है। श्री मेहताजी जैसे हिन्दी-प्रेमी चाहते हैं, कि हिन्दीमें काम किया जाय, लेकिन एक छोटे अधिकारीने अपने अधिकार क्षेत्रमें हुकुम निकाल दिया, कि उनके पास सारी लिखा-पढ़ी अंग्रेजीमें की जाय। जो आदमी एक बैठकीमें छ-छ घंटे ब्रिज (ताश) खेलता हो, और साथ खेलनेकेलिये घरमें बीबी मौजूद हो; उसे हिन्दी लिखना-पढ़ना सीखनेकी कब फुरसत हो सकती है? वह तो ऐसी आज्ञा निकालेगा ही! मेरी समझमें सीमान्तमें हथियारके संबन्धमें भ्रम पैदा करना अच्छा नहीं। पड़ोसी तिब्बतमें हथियारबन्द डाकू स्वच्छन्द विचर रहे हैं, यदि उन्हें जरा भी किन्नरों की निर्बलताका पता लगा, तो किन्नरके सीमान्ती गाँव भी उनके क्रीड़ा-क्षेत्र बन जायँगे। किन्नरमें हथियार रखनेकी ही छूट नहीं होनी चाहिये, बल्कि सरकारको इस बातका प्रबन्ध करना चाहिये, कि सीमान्तके पासवाले उपत्यकाके दो-दो तीन-तीन गाँवोंमें दस-पन्द्रह नई बन्दूकोंसे कम हथियार न रहें। आरम्भ ही में हथियारके बारेमें जनतामें गलतफहमी फैला देना ठीक नहीं।

ब्रह्मचारीके साथ हम गोल-मन्दिरमें देवीकी मूर्ति देखने गये। यह पीतलकी मामूली मूर्ति है, जो शायद किसी बौद्ध-मन्दिरमें कभी हाथ जोड़े बैठी थी।

नाकमें नथ संभ्रान्त होनेका चिह्न है, लेकिन यह चिह्न बस्पा-उपत्यकामें बहुत पीछे आया होगा। फिर हम देवमन्दिरके पास बुद्ध-मन्दिरमें गये। वहाँ अपने प्रधान शिष्यों सारिपुत्र और मौद्गल्यायनके साथ शाक्यमुनिकी मिट्टीकी मूर्ति है। मूर्तियोंसे निराश होकर मैं पोथियों पर पड़ा। यहाँ अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिताकी एक पुरानी हस्तलिखित प्रति है। यह तीन खण्डोंमें थी, जिनमेंसे दूसरे और तीसरे खण्ड यहाँ मौजूद हैं और पहिला खंड लुप्त हो चुका है। पोथी सचित्र थी, शायद प्रथम खंडमें और अधिक चित्र रहे। ऐसे सुन्दर चित्रों वाली पोथीको भला कौन छोड़ता? क्या रोहूके शिकार करनेवाले किसी साहब बहादुरने उसका शिकार तो नहीं कर लिया? अथवा किसीने चित्रोंको काट कर चार-पाँच सौ बरस पुरानी इस पोथीकी होली कर डाली? हमें अपने ऐतिहासिक महत्वकी वस्तुओंकी रक्षामें और भी सावधानी करनी होगी। मन्दिरके पुजारी बड़े उदार हृदय हैं। उन्होंने तिब्बत के गरुड़पुराण "वर-दोस्-थोस्-ग्रोल्" को जहाँ रक्खा था, वहाँ साथ ही "नासिकेतोपाख्यान" और "गरुड़पुराण" को भी नहीं भूले थे। भोटिया गरुड़-पुराणकी पुष्पिकाके लेख से मालूम* होता है, कि इसे राजा शमशेर सिंहके समय वजीर रनबहादुरने लिखवाया था। निजी घरोंमें ढूँढ़ने पर कामरू और साङ्लामें और भी कुछ पुरानी मूर्तियाँ और पोथियाँ देखी जा सकती हैं।

साङ्ला ब्राह्मण-धर्मका भक्त है, बौद्ध धर्म यहाँ म्रियमाण सा है। देवताओंमें शाक्यमुनि या और भी बौद्ध मूर्तियाँ बेरीनागस् जैसे देवताओंकी सरबर नहीं कर सकतीं। जात-पाँत, छुआ छूतमें ब्राह्मण विश्वविजयी हैं। आजकल स्कूलके मास्टर लोग हिन्दीमें कृष्णलीला कर रहे थे। बेचारोंने नीचेकी कृष्ण-लीलाको देखा नहीं, केवल अपने मनसे पढ़ पढ़ाकर वह कुछ गीत और कुछ अभिनय करते हैं। लीला (या नाटक कहिये), हिन्दी में हो रही थी, मैं देखने नहीं

*"...खिमस गृजिस् - ल्दन् - पर् - छोस् - र्ग्यल् - सं - सेर - सिङ्। मिइ - द्वङ् - फ्युग् - छेन् - पो - दे - ल - ब्स्तोङ्। छोस् - र्ग्यल् - देई - छब - सिङ् - - ब्ग्यस् - ग्युर् - चिग्। ...ल्ह - मि - कुन् - ग्यिस् - म्ङोन् - दु - द्गऽ - ब - स्नङ् - वइ - ब्कऽ - ब्लोन् - नि - रोन - भ - धार - स्तोङ् - ल - स्तोङ्..."

जा सका। पारके बँगलेसे रातको गन्दी गलियों में होकर आना था। लेकिन अभिनयकी बात सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। कभी किन्नरके बड़े ग्रामोंमें नए ढंगके अपने यशस्वी रंगमंच होंगे, जो जनताके सांस्कृतिक तलको ऊँचा करेंगे।

बंगलेके पास ही स्कूल है, जिसमें चार कक्षायें हैं। यह स्कूल भी मोने रौलाकी तपस्याका फल है। स्कूलमें ८३ लड़के पढ़ते हैं और वह तीन मील (बटसेरी और चनूसू) तकसे चलकर आते हैं। हिमाचलमें शिक्षाप्रचार तभी जल्दी हो सकता है, यदि हर चालीस घरवाले गाँवमें एक प्रारम्भिक स्कूल खोल दिया जाय।

२० सराहनको

१२ अगस्तको हमने साङ्लासे प्रस्थान किया। चपरासीका अब भी पता नहीं था। आज १४ मील जाकर किल्वामें रहना था, लेकिन भारवाहक ब्रूये में बदले जाते। हम एक दिन पहिले जा रहे थे, इसलिये ब्रूयेमें भारवाहकोंके तैयार मिलनेकी आशा नहीं हो सकती थी। अतएव १४ मीलके वास्ते प्रत्येकको तीन-तीन रुपये देकर भारवाहक यहाँसे सीधे किल्वाकेलिये किये। पंगी ब्रह्मचारी ब्रूये तक साथ चले, फिर सपनीमें कुछ दिन विहार करने चले गये। मैंने जब कहा, कि सपनी नम्बरदार एक बोतल बत्ती जलने लायक शराब लेकर आया था, तो ब्रह्मचारी बोल उठे—"क्यों नहीं लेलिया, मेरे लिये"? लेकिन मुझे क्या मालूम था, कि साङ्लामें ब्रह्मचारीसे मुलाकात हो जायेगी। सचमुच ही, यदि मालूम हुआ होता, कि मेरे घुमक्कड़ दोस्त मिलने वाले हैं, तो बोतल रख छोड़नेमें मुझे कोई उजुर न होता।

अब हम बस्पा नदीके किनारे-किनारे नीचेकी ओर जा रहे थे, पैर तेजीसे उठें, तो इसमें क्या आश्चर्य? ब्रूये में रक्खे सामानको लेने में कुछ देर थी। पुण्यसागरको छोड़कर मैं आगे बढ़ा। बस्पा की यह उपत्यका साङ्ला और आगे तक बड़ी रमणीक है। हर-शिल और गंगोत्तरीके दृश्य यहाँ और ऊँचे स्तर पर याद आ रहे थे। शोङ्ठङ् जानेवाले पुलको छोड़ते मैं सतलज उपत्यका में आगया। अब भी साढ़े पाँच हजार फुटसे ऊँचेपर थे, लेकिन गर्मी मालूम हो रही थी, और आखिरके कुछ मीलकी चढ़ाईमें वह असह्य भी हो उठी थी। साढ़े आठ बजे मैंने प्रस्थान किया था और दो बजे किल्वा पहुँच गया।

यहाँ जंगल-विभागका बँगला है, जो कुछ ही साल पहिले नया बनाया गया था। बँगला भीतर-बाहर चारों ओरसे बहुत सुन्दर और साफ है, चौकीदार भी मुस्तैद। सफेद अंगूर पककर खतम हो चुके थे और काले अधपके थे। पकने पर भी क्या रोगीके अंगूरों का मुकाबिला करते? हाँ, आड़ू आकारमें भी और स्वादमें भी बहुत अच्छे थे। भूख लगी थी, पता नहीं था, पुण्यसागर कब तक आयेंगे। लेकिन चौकीदारके "फलानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी" ने काम बना दिया। बँगला गाँवसे ऊपर और जंगल-विभाग का अस्पताल उससे कुछ हटकर नीचे है। डाक्टर और कम्पौण्डर दोनों छुट्टी पर थे, मुझे उनसे कोई काम भी नहीं था। गाँवमें देवता के अतिरिक्त एक बुद्ध-मंदिर भी है। पुजारीने बतलाया कि बुद्ध मन्दिर नया है, वहाँ कोई पुरानी चीज नहीं है। "चुन्नीलाल डागडर" गीतकी नायिका जङ्मोपोती किल्बामें ही रहती हैं और अभी तरुणी है। लेकिन मैं गीतके बारेमें अपनी खोजको और बढ़ानेको तैयार न था। मैं गीतकी कवयित्रीकी तरह ज़ङ्मोपोतीको नहीं डाक्टर को, अथवा दोनोंको नहीं तरुणाईको दोषी समझता हूँ। साङ्ला और चिनीके बाद किल्बामें ही स्कूल है, जिसके साथ डाकखाना भी है। इधरके रेंजरका केन्द्र भी यहीं है। इस प्रकार किल्बा काफी महत्त्वपूर्ण स्थान है। फल यहाँ भी सभी तरहके होते हैं, किन्तु अर्धमानसून क्षेत्रमें होने से खास प्रकारके फल विकसित करनेपर ही यहाँ मीठे अंगूर तथा दूसरे मीठे फल पैदा किये जा सकेंगे।

दो-ढाई घंटे बाद पुण्यसागर भी आ पहुँचे।

अगले दिन (१३ अगस्त) हमें पाँच ही मील जाना था, नहीं तो १४ अगस्तके प्रोग्राममें गड़बड़ी होती। सबेरे प्रातराशके बाद हमने प्रस्थान किया और १२ बजे छोल्टू पहुँचे। यह चिनी तहसीलका सबसे नीचेका बँगला समुद्रतटसे ५७५० फुट और सतलजकी धारासे सौ डेढ़ सौ फुट ऊपर है। इधर के जंगलातके डाकबँगलोंमें सबसे बड़ा मेवा बाग यहीं है, खास करके अंगूरकी लतायें वो बहुत दूर तक फैली हुई हैं। नये प्रकारके फलोंके विकासकी तो नहीं कोशिश की गई किन्तु हर तरहके सर्द मुल्कके फलोंके लगानेका तजर्बा यहाँ बहुत किया गया। अंगूरकी फसल खतम हो चुकी थी। सेबकी फसल भी टूट चुकी थी, किन्तु फल-बखारसे निकालकर मालीने खानेके लिये दिये। सेब अच्छे

थे, आड़ू यहाँके और भी मीठे, बहुत बड़े और खूब लाल रंगके अभी भी दरख्तोंपर लगे थे। छोल्टूके खरबूजे और सर्देको भी खाया, दोनों बहुत मीठे थे। नास्पातियाँ भी बहुत मीठी थीं, अर्थात् क्वेटाके मेवोंका यहाँ मुकाबिला किया जा सकता है, यदि थोड़ा साइन्स और अनुसंधानका भी आश्रय लिया जाय।

छोल्टूमें रहने का निश्चय इसीलिये करना पड़ा, कि मैंने सड़क-इन्सपेक्टर बाबू लक्ष्मीनन्दको १४ अगस्तको मिलनेका समय दिया था। ऐसे तो उधर चिनीमें भी कुछ देरसे वर्षा अधिक होने लगी थी, किन्तु बस्पा-उपत्यकामें तो युक्तप्रान्तकी वर्षा याद आ रही थी। यहाँ भी पहुँचनेके बाद वर्षा होने लगी।

छोल्टूका विशाल बाग क्रीड़ोद्यानसा मालूम होता है, विशेषकर एक छोर पर सतलुजकी घर-घर ध्वनि और दूसरी ओर उत्तुंग सरल—देवदारुओं के कारण। यद्यपि मैं स्वभावतः मांसाहारी हूँ, किन्तु फल, मट्ठा और सलाद जैसे हरे सागोंसे मुझे अत्यन्त प्रेम है। यहाँ सलाद भी थी, किन्तु बिना सिरके या खटाईके सलाद कैसी ? मैंने अपने भोजनका अधिक भाग फलोंको बनाया।

यहाँ पर मुझे पाँचवे घुमक्कड़ वैष्णव साधु मिले। घुमक्कड़ भी देवताओं की तरह एक दूसरेकी ईर्ष्यामें मरे जाते हैं। हाँ, यह बात अधिकतर साधु घुमक्कड़ोंमें पाई जाती है, क्योंकि वह साथ-साथ अपनी जीविकाकेलिये दूसरोंको और अपनेको भी भ्रममें डालनेके लिये बहुतसे ढोंग-पाखंड करते रहते हैं। उच्च श्रेणीके घुमक्कड़में कभी अपने घुमक्कड़-भाईके प्रति ईर्ष्या नहीं हो सकती। हमारे घुमक्कड़ सीताराम बनारसके शीतलदास (अस्सी)के अखाड़ेके शिष्य और सहसरामके रहने वाले थे। भारतकी प्रदक्षिणा कर चुके थे, और २५ सालसे अब हिमालयमें विचर रहे थे। कश्मीरमें भी वर्षों रहे और इधरके पहाड़ोंको तो घर ही बना लिया है। हाँ, कुल्लूमें उन्होंने कभी पैर नहीं रक्खा, क्योंकि तरुणाईमें ही किसीने कह दिया था, "जो जाये कुल्लू, हो जाये उल्लू"। पंगी ब्रह्मचारीको भी जानते थे, और मोने रौलाको भी। मोनेरौलाको "मांसाद" कहकर उसे मेरी नजर में गिराना चाहते थे। वह नहीं जानते थे, कि यदि रौला सचमुच ही मांस खा रहा हो, तो मैं उसे बधाई दूँगा। रौलाकी घुमक्कड़ी और स्कूल बनानेकी धुन, दो श्रेष्ठ गुण क्या उसे बड़ा नहीं बनाते ? सीतारामसे

उनकी यात्राका वर्णन सुना। अभी कुछ महीने भावामें रहे थे, अब किलङाका इरादा था। मैंने उन्हें अपने साथ भोजन करनेके लिये निमन्त्रित किया और बड़ी रात तक उनकी बातें सुनता रहा। पिछले ढाई हज़ार वर्षोंमें लाखों साहस-यात्रियोंको हमारे देशने पैदा किया, उनकेलिये न समुद्र अलंघ्य रहे, न गगनचुम्बी पर्वतश्रेणियाँ। लेकिन इन यात्रियोंने अपने अनुभव और ज्ञानको अपने देश-भाइयों के सामने रखने की कोशिश नहीं की। वह आजीवन विचरते रहे और रेतके पदचिन्हकी तरह घूमते ही घूमते कहीं विलीन हो गये। हमारे सीताराम उन्हीं लाखों साहस-यात्रियोंमें हैं, किन्तु अब हमें दूसरी तरह के यात्रियों की आवश्यकता है, जो मूक नहीं वाचाल हों।

भार-वाहकोंको यहाँसे दो ही मील आगे सतलुज पार टापरी तक जाना था, किन्तु वह सबेरे आ जायंगे, इसकी मुझे आशा न थी। सामान सम्हालनेके लिये पुण्यसागर थे ही, मैं सबेरे ही हाथमें डंडा लिये चल पड़ा। सतलुज पर एक अच्छा लोहेका झूला बना है। झूला पारकर टापरी जा मैंने तिब्बत-हिन्दुस्तान-सड़क पकड़ी। तीन महीने पहिले जब मैं इधरसे गया था, तो पर्वत-शरीर सूखासा दिखलाई पड़ता था, किन्तु अब सब जगह हरियाली ही हरियाली थी। आगे नदीपार देवदारके सिलीपरोंको सतलुजमें गिरानेकेलिये आये मजदूर मिले। जंगल-विभाग और सड़क-विभागकोभी किन्नर लोगोंसे यह बराबर शिकायत रही है, कि वह उनके काममें हाथ नहीं बटाते। ६ घंटा काम करनेके लिये डेढ़ रुपया रोज मजूरी मिलने पर वे स्वेच्छा अवकाश ले लिया करते हैं। जंगल-विभागके एक बड़े अंग्रेज अफसरने तो एक बार यह भी सुझाव रक्खा था, कि इनकी भेड़बकरियोंपर भारी टैक्स लगा दिया जाय, जिसमें उनकी संख्या कम हो जाय और लोग जंगल-विभागकी मजूरी करनेकेलिये बाध्य हों। साहब बहादुरको मजूरी अधिक करनेकी जगह यह ढंग अच्छा लगा। यह जरूर ठीक नहीं है, कि किन्नरके अल्प-धान्यमें सम्मिलित होनेकेलिये हजारों दूसरे मुँह आ जायँ। यद्यपि ठेकेदारोंको आज्ञा दो गई है, कि वह बाहरसे अनाज मंगाकर अपने श्रमिकोंको खिलायें, किन्तु मँगानेकी तरद्दुदसे बचनेके लिये वह कितना ही अनाज स्थानीय लोगोंसे अधिक दाम देकर खरीद लेते हैं। किन्नर लोगों को काष्ट-छेदनके काम पर तभी लगाया जा सकता है, जबकि वेतन ड्योढ़ा

दूना किया जाय और खड्डोंसे जगह-जगह बिजली पैदा कर बिजलीके आरे काम में लाये जायँ।

जंगल-विभागके गोदामके पास हमने आदमियों की बहुतसी टोलियाँ देखीं। यह नीचे बिलासपुर-रियासतसे लकड़ी काटनेके लिये आये थे। मैं चढ़ाई चढ़कर डाक-बंगले में पहुँचा। ७ मीलकी मंजिल मार ली थी, सोचा था आज यहीं विश्राम होगा; लेकिन बाबू लक्ष्मीनन्द छुट्टी पर घर जानेवाले थे, दस दिनकी छुट्टीमें एक दिन यहीं बीत जाये, यह ठीक नहीं था। मैंने भी बेगारूके आते ही आगे चलनेकी स्वीकृति दे दी। नचारतक तीन मील की चढ़ाई थी, फिर तो पौंडा पहुँचनेमें कोई कठिनाई नहीं थी।

छाछ और फल मिला, फिर किसानने थोड़े ही समय पहिले पासमें घटी एक दुर्घटनाका वर्णन किया। किसी तरुणकुमारीको दिन-दहाड़े कुछ लोग जबर्दस्ती ले जा रहे थे, तरुणी चिल्ला रही थी। पाठकोंको यह बड़ी भयानक बात मालूम होती होगी, किन्तु मनुबाबाने राक्षस-विवाहको वैध विवाहोंमें गिना है। अर्जुन जब जबर्दस्ती रथपर बैठाकर सुभद्राको ले चले, तो बलरामका नथुना फूलने लगा, किन्तु कृष्णने मुस्कुरा कर बड़े भैयाको शान्त कर दिया। यहाँकेलिये कुमारी पण्यवस्तु है, पण्यको चाहे बलात् उठाइये या सलाहसे, धनीको अपना पैसा मिलना चाहिये, फिर कोई परवाह नहीं। अभी कुमारीको जो लोग पकड़-कर ले गये, वह मूल्य चुकानेमें हीला-हवाला नहीं करेंगे। जहाँ तक पिता-माता के अधिकारका सवाल है, बात स्पष्ट है। आप कहेंगे, लड़कीका भी कोई अधि-कार है? लेकिन भारतके सभ्य कहे जानेवाले खंडमें भी कितने माता-पिता लड़कीके अधिकारको मानते हैं। पुण्यसागर कह रहे थे, कि राजा पदमसिंहने कन्या-अपहरणकेलिये बहुत कड़ा दंड निश्चित कर दिया था, जिसके कारण वह रुक गया था। इसका यह अर्थ हुआ, कि राजाके राज्यके हट जाने पर अब अपहारकोंने अपनेको परम स्वतन्त्र समझ लिया है। मनुबाबा चाहे राक्षस विवाहका विधान करें, लेकिन हमें तो इसे जड़मूलसे लोप कर देना चाहिये और सारी कन्यापहारकमंडली को दस-दस सालकेलिये बड़े घरमें चक्की पीसने केलिये भेज देना चाहिये, साथही उनकी संपत्तिका काफी भाग अर्थ दंडमें ले लेना चाहिये, और ऐसे व्याहको अवैध कर देना चाहिये।

भारवाहकोंकी प्रतीक्षा ही में थे, कि इसी समय चिनी तहसीलदार बाबू मंगतराम भी आ गये। मैंने अपने तीन महीनेकी यात्रामें सहायता करनेके लिये उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद दिया।

यद्यपि कायदेके अनुसार भारवाहकोंको नचार तक पहुँचाना था, किन्तु उन्हें यहाँ तककेलिये ही कहा गया था, इसीलिये वे आगे चलने में आनाकानी करने लगे। कुछ और मजूरी तथा रात्रि-भोजन देने पर वे चलनेकेलिये तैयार हो गये। बरसातने सड़क कहीं-कहीं तोड़ दी थी, किन्तु बुरी तौरसे नहीं। बाबू लक्ष्मीनन्द की घोड़ी सवारी केलिये मिली थी। घोड़ी वही थी, किन्तु अब बहुत मोटी हो गई थी। वह खटखट चढ़ती गई और हम डेढ़ घंटेमें नचार पहुँच गये। चिनी छोड़नेके बादकी डाक यहाँ पड़ी हुई थी। डाक ली, पंगी बाबूने सेव और पेयसे सत्कार किया, और वहाँ से चलकर हम आज ही सात बजे पौंडा डाकबँगलेपर पहुँच गये। पंगीबाबूने सहायता न की होती, तो भारवाहक न मिलनेसे आज नचार ही में रह जाना पड़ता। वाङ्तूके बाद अब हम मानसून-क्षेत्रमें थे और इस साल तो वरषामें मेघ देवता अधिक उदारता दिखला रहे थे, लेकिन आज उन्होंने हमसे छेड़-छाड़ नहीं की।

× × ×

सराहनमें—पौंडासे सराहन दो पड़ाव है अर्थात् बेगारुओंको एक जगह बदलना पड़ता। हमने बा० लक्ष्मीनन्दसे कहा, कि दो आनाकी जगह चार आना प्रतिमील मजूरी दीजिये और भारवाहकोंको यहाँसे सीधे सराहन चलनेके लिये ठीक कीजिये। कुलियोंको पहिले भेज दिया, किन्तु प्रातराश तैयार करने में पाचक-गणने काफी देर कर दी, इसलिये हम साढ़े नौ बजेसे पहिले नहीं चल सके। मीलभर पर ही शोल्डिङ् मिला। जाते समय यहाँ लम्बा तरुणने चाय पिलाई थी। घरोंके अगवाड़े-पिछवाड़े गोबर-मट्टी-मिश्रित एक फुट मोटी कीचड़ थी। चढ़ाईमें सवारी नहीं की, अधिकतर पैदल ही चलते १ बजे चौरा पहुँच गये। पौंडासे २२ साल पहिले सड़क तरंडा होकर ऊपर-ऊपर जाती थी, किन्तु पीछे नीचेसे दूसरा समीपतमका मार्ग निकाल दिया गया। अब तरंडा कौन जायेगा? चौरामें डेढ़ घंटा विश्राम हुआ। चौकीदार साहबने कुछ मीठी नास्पातियाँ भी लाकर दीं—हाँ चौकीदार साहब ही कहना चाहिये, क्योंकि इधरके डाकबँगलों-

में चौकीदारका काम गाँवके नंबरदार या धनी प्रभावशाली आदमीको ही दिया गया है—निस्संदेह यह समुद्रमें वर्षा है, धनीको और धनी बनाने और गरीबों को और गरीब रखने का उपाय।

चौरासे चलकर शामसे बहुत पहिले हम सराहन पहुँच गये। आज किन्नर-सीमा (मन्योटीधार)को पार करते ही वर्षा जोर की होने लगी। सराहनके डाक-बँगलेमें ठहरे, यद्यपि आज्ञापत्र न होनेसे वहाँ ठहरनेका हमारा अधिकार नहीं था।

आज १५ अगस्त सन् १६४८ ई० था। भारतको अंग्रेजोंसे मुक्त हुये ३६५ दिन पूरे हो चुके। स्वतन्त्रता कितनी मधुर वस्तु है और साथ ही कितनी मूल्यवान भी। इसके मूल्यको वे ही समझ सकते हैं, जो परतन्त्र देशके वासी रहते स्वतन्त्र देशोंमें घूम चुके हैं। फिर हमारे देशकी परतन्त्रता केवल अंग्रेजी राज्यकी कालरात्रिके साथ ही नहीं शुरू हुई। वह तबसे आरम्भ हुई, जबसे हमारा देश विदेशियोंका अखाड़ा बन गया। मैं अपने देशकी त्रुटियों, राजनीतिक भूलोंको जानता हूँ, किन्तु जब मैं १५ अगस्त १६४७ ई० को आरम्भ होनेवाले नये युगको देखता हूँ, तो सबको भूल जाता हूँ। ढोंगी, नृशंस, पल्ले दर्जेके स्वार्थी बृटिश शासकोंके प्रति मेरे हृदयमें तभीसे अपार घृणा प्रविष्ट हुई, जबकि मुझे राजनीतिक सुध-बुध आई। अदृश्य डंडेके मारे अंग्रेज भारत छोड़कर भागे, राजी-खुशीसे या दयाभावसे बिल्कुल नहीं। जिस तरह भागती सेना त्यक्तस्थानको ध्वस्त करके जाती है, वही बात अंग्रेजोंने यहाँ की। वह देशके दो भाग करनेसे ही सन्तुष्ट नहीं हुये, बल्कि रियासतोंको भी ऐसा बढ़ावा दे गये, कि भारत और छिन्न-भिन्न हो जाये। वह आशा नहीं रखते थे, कि सभी मुकुटधारी अपने राज्यके स्वतन्त्र प्रभु होंगे, किन्तु वह यह विश्वास जरूर रखते थे, कि पाँच-सात बड़ी रियासतें स्वतन्त्र ट्रान्स-जार्डन बनेंगी। बेविनमंडली तिलमिला रही थी, जब सरदार पटेल इन पाँच सौ मुकुटधारियोंको समझा-बुझाकर प्रजाका डर दिखलाकर भारत-संघमें शामिल कर रहे थे। अंग्रेज टोरियों-को ही नहीं, अंग्रेज "समाजवादियों" को पूरा भरोसा था, कि निजाम उनके काम आयेगा और बृटिश राजमुकुटमें गोलकुंडाका कोहनूर ही नहीं, आसफजाही शासनकी बागडोर भी संबद्ध रहेगी। उन्होंने समझा था, गांधीके चेले नेहरू

और पटेल सिर्फ अहिंसात्मक सत्याग्रह तक ही जायँगे। वह सोच रहे थे, यदि भारत-संघ गांधीके पथसे भ्रष्ट होने लगेगा, तो राष्ट्रसंघमें लेजाकर हिन्दकी फजीहत करेंगे। लेकिन पाँच ही दिनोंमे प्रचंड आँधीकी तरह टूटकर भारतीय सेनाने बेविन चौकड़ीके सभी मंसूबोंको व्यर्थ कर दिया। इन पाँच दिनोंमें भारतके हृदयपर तनी पिस्तौल ही हमने नहीं छीन ली, बल्कि सारे बृटिश शासक भी नंगे हो गये। कडगनने जल्दी-जल्दी हैदराबादकी शिकायतको बिना विशेष पूछताछ किये राष्ट्रसंघ-संसद्की आरम्भिक बैठकमें रख दिया। "समाजवादी" बेविन्ने भारतको सैनिकवादी (आक्रमणकारी) घोषित किया। अर्जन्तींनाके फासिस्ट प्रतिनिधिने भारतको फासिस्त इताली और हैदराबादको अबीसीनिया उद्घोषित किया। इन पाँच दिनोंमें बृटिश रेडियो और वहाँके पत्रोंने भारतके विरुद्ध खुलकर विषवमन किया। उन्होंने इस बातकी भी परवाह नहीं की, कि अगले महीने बृटिश साम्राज्य-परिषद् होने जा रही है, कहीं भारतका संबन्ध इंग्लैन्डसे बिगड़ न जाय। बेविन, कडगन् और बृटेनके रेडियो-प्रचारक बच्चे नहीं हैं। उन्होंने भारतके सौहार्द्रको थोथी चीज और निज़ामकी तानाशाहीको अधिक मूल्यवान् समझा, तभी अपना पैंतरा बदला। वह ट्रान्सजार्डन्की तरह भारतके उदरमें अपना एक अड्डा बनाना चाहते थे, लेकिन बेचारे हताश हुये। निजामने अकिंचन हो पाकिस्तान भागकर शरणार्थी बनना पसन्द नहीं किया और हथियार डाल दिया। क्या अब भी बृटिश-मुकुटसे हमें कोई संबन्ध रखना चाहिये ? क्या अब भी बृटिश साम्राज्यके भीतर रहनेकी बात करना परले दर्जेकी निर्लज्जता नहीं कही जायेगी ? मुझे पूरा विश्वास है, नये विधानमें हमारा देश अपनेको स्वतन्त्र प्रजातन्त्र घोषित करेगा।

१५ अगस्त हमारे इतिहासका सदा स्मरणीय दिन रहेगा। उस दिन अपनी सफलताओं पर मेरा विचार दौड़ रहा था। साल भरमें हमने अपने देशको अधिक संगठित, अधिक बलवान् बनाया, इसमें सन्देह नहीं। और मतभेद चाहे कितना ही हो, किन्तु मैं यह मानता हूँ, कि भीतरी फूट और अंग्रेजोंकी कुटिल चालको विफल करना, और देशको साल भरमें इतना संगठित और सबल बनाना कांग्रेस नेतृत्वका ही काम था। यदि देशकी बागडोर किसी एक या अनेक दूसरे दलोंके हाथमें होती, तो कहीं सूर्य-वंशके झंडेके नीचे भ्रातृसंहार

होता, कहीं जाटस्तानके युद्ध घोष होते, कहीं सिक्खस्तानके। फिर पेशवाशाही और हिन्दूशाहीका स्वप्न देखने वाले बहती गंगामें हाथ धोनेसे बाज न आते। देश-रक्षाके काममें कांग्रेस नेतृत्व सफल हुआ, किन्तु वही बात देशके नव-निर्माणके बारेमें नहीं कही जा सकती ! ✓

फिर मेरा ध्यान गया लदाखकी ओर, जहाँ सिन्धु-उपत्यका, नुब्रा-उपत्यका और जांस्कर-उपत्यकामें पाकिस्तानी धर्मान्ध अल्पसंख्यक निरीह बौद्धों पर जुल्मके पहाड़ ढा रहे हैं। लाहुल यहाँसे दो ही पहाड़ों के पार है और उससे दो दिनमें एक ही पहाड़ पार करने पर आदमी जांस्कर पहुँच जाता है। जांस्करके सैकड़ों बौद्ध गृहस्थों और भिक्षुओंको इन आततायियोंने तलवारके घाट उतारा। नुब्रा और लामायुरूमें भी उन्होंने ऐसा ही किया। मालूम नहीं ११ वीं सदीकी सुन्दरतम भारतीय चित्र कलाकी निधियों अल्ची और सुम्राके विहारोंकी इन्होंने क्या गति बनाई। मरे आदमियोंके स्थानकी पूर्ति नवजात शिशु कर सकते हैं, किन्तु नष्ट होनेपर इन कलानिधियोंकी पूर्ति क्या कभी हो सकेगी ! ११ वीं शताब्दीकी भारतीय चित्र-कलाकेलिये ये दोनों बिहार अजन्ता थे।

फिर मैं कुल्लू-लाहुल-लदाखके रास्ते पर विचार करने लगा। आज लदाखकी रक्षाकेलिये हम सैनिक सहायता इसी रास्तेसे भेज सकते हैं। यह रास्ता पठानकोट, योगेन्द्रनगर, कुल्लू-लाहुल होते जाता है। यदि पाकिस्तानने युद्ध शुरू कर दिया, तो पठानकोट खतरेमें हो जायेगा, और फिर केन्द्रीय भारतसे कश्मीर लदाखका ही संबन्ध विच्छिन्न नहीं हो जायगा, बल्कि कुल्लू-उपत्यका भी कट जायगी। इसकेलिये जरूरी था, कि एक दूसरी सड़क भी तैयार की जाती। ऐसी सड़क आसानीसे बनाई जा सकती है। शिमलासे नारकंडा तक मोटरकी सड़क बनी हुई है। उधर कुल्लू की मोटर सड़क भी बीस-पचीस मील तक बाजारमें आती है। नारकण्डासे साठ-बासठ मीलकी सड़क निकालकर कुल्लू की सड़कसे मिलाया जा सकता है। यह मोटर सड़क सबसे छोटी और अत्यन्त सुरक्षित होगी। वर्तमान सड़क पर भी छोटी आस्टीन गाड़ी एक बार जा चुकी है। सैनिक महत्वके खयालसे अधिक खर्च होने पर भी इस सड़कका बनाया जाना अत्यावश्यक है। साथ ही यह सड़क व्यवहारतः बहुत लाभदायक सिद्ध होगी।

इसके निकलने पर कुल्लू के फलोंकी निकासीमें ही आसानी नहीं हो जायगी, बल्कि सतलुज पारके अनी और उसके पासके इलाकेमें फलोंका एक दूसरा कुल्लू तैयार हो जायेगा। लोग समझ नहीं रहे हैं, जांस्करके बौद्धोंका कतल-आम लाहुलकेलिये खतरेकी घंटी है।

हाँ, तो मैं १५ अगस्तको अपने देशकी सफलताओं और त्रुटियोंपर विचार कर रहा था। आज सारे देशमें स्वतन्त्रतादिवसकी धूम होगी, किन्तु यहाँ पहाड़-में एकदम सुनसान हैं। इन लोगों का इसमें दोष क्या है? यदि पिछले साल भरमें पहिलेसे कोई विशेष परिवर्तन लोगोंने देखा होता तो वे जरूर उत्सव मनाते। पहाड़के लोगोंसे बढ़कर उत्सव-प्रेमी मिलने मुश्किल हैं।

× × ×

सराहनमें मैं एक-दो दिन ठहरना चाहता था। मुझे बहुत आशा थी, कि यहाँ भीमाकालीके मन्दिरसे बहुतसी ऐतिहासिक सामग्री और लिखितम प्राप्त होंगे। बाबू लक्ष्मीनन्दके साथ रहनेके डाकबँगले में जगह तो मिल गई, किन्तु एस० डी० ओ० भी १६ को आनेवाले थे, उनके स्वागत-सत्कारकी तैयारी करनेके लिए नायब तहसीलदार रामपुरसे आये हुये थे। डाक-बँगलेमें दो ही कमरे हैं, एक कमरा आनेवाले मेहमानके लिये अवश्य पर्याप्त नहीं था। पति-पत्नी, दो बच्चे और एकाध संबन्धी भला एक कमरेमें कैसे आ सकते थे? तहसीलदारने मुझे ही कमरा खाली करनेकेलिये कहना चाहा, किन्तु दूसरोंने इसके लिये राय नहीं दी। मुझसे कहते तो मैं जरूर दूसरी जगह चला जाता। सरकारी नौकरों और कारपरदाजोंमें उसी तरहकी हड़बड़ी मची हुई थी, जैसे राजा साहबके आने-पर होता रहा होगा।

कामरूमें ही बढ़ाने भीषण रूप धारण नहीं किया था, बल्कि 'पिछले सप्ताह सराहनमें भी जलप्रलय आगया था। बाजारकी सड़कपर खड्डका पानी बहने लगा था, और कितनी ही दूकानोंमें पानी भर गया था।

अगले दिन मैं सीधे भीमाकालीके मन्दिरकी तरफ गया। बाहरी फाटकपर संवत् १८७१ छोटा संवत् ३५ जेठ प्रविष्टे ३०का लेख है। फाटकके भीतर आँगनमें गये। आँगनमें गोबर बिखराहो होना चाहिये, क्योंकि गाँवकी गायोंको यहाँ बुलाकर सदावर्त दी जाती है। वस्तुतः बिसाहरकी स्वाभिमानी यही भीमा-

काली थी, राजा तो उनका कायथ भर था। भीमाकालीके खजानेमें बहुत धन बताया जाता है, किन्तु राजाकी आज्ञासे ही उसे खोला जा सकता है। राजा पदमसिंहके मरने (१९४७) पर खजाने पर लगी मुहर अब नये राजासाहब जब गद्दीपर बैठेंगे, तभी उसे तोड़कर खजाना खोलनेकी लोग आशा रखते हैं। शायद इन लोगोंको अभी विश्वास नहीं, कि गद्दी सदाके लिए खतम हो गई है। भीमाकाली बहुत धनी है। उसके लिए रामपुर और चिनी तहसीलोंमें मालगुजारी पर चार आना प्रतिरुपया लोगोंसे वसूल किया जाता है। नहीं मालूम अबभी चारआना रुपया वसूल किया जायेगा या नहीं। नेहरू जी हमारी सरकारको धर्मके बारेमें तटस्थ कहते हैं। फिर हिमाचल-सरकार कैसे खेतवालोंसे जबर्दस्ती मालगुजारीके साथ रुपयेपर चारआना वसूल करेगी? रोहड़ू तहसील रुपया नहीं अस्सी मन बहुत बढ़िया चावल प्रतिवर्ष देवीके लिये देता है। (चावल) कमराली, कयाव और बंदा देवीके जागीरी गाँव हैं। देवी की नगद आय प्रतिवर्ष २५०००) और व्यय १६०००) बतलाया गया। हर तीसरे वर्ष विशेष उत्सव होता है, जिसके लिये छ आना रुपया और वसूल किया जाता है।

हम भीतरी फाटकसे एक आँगनमें गये। जब महल नहीं बने थे, तब राजा और उनका रनिवास यहीं रहा करता था। राजा साहब के स्थानापन्न एस-डी-ओ साहबको यदि यहाँ ठहराया जाता, तो जरूर उनका दम घुटने लगता। एक और फाटक पार करनेपर हम देवीके मन्दिरके सामने पहुँचे। देवीके मन्दिरके भीतर तो बिसाहर रियासतमें भी नोगड़ी खडुसे उपर-ऊपरके ही लोग जा सकते हैं, फिर मेरे भीतर जानेकी बात क्या हो सकती थी? बाहर वालोंके दर्शनकेलिए बाहरके द्वार पर सिंहवाहिनी अष्टभुजा देवीकी मूर्ति है। पुजारीने बतलाया, कि भीतर भी इसी तरह की अष्टधातुकी मूर्ति है, हाँ, वह तीन हाथ लम्बी है। मन्दिर कामरूके किलेका ही बड़ा संस्करण समझिये, इसमें पाँच तल हैं। प्रथम तलपर पाँच कोठरियाँ हैं, जिनमेंसे एकमें रुपया रक्खा हुआ है। बाकी कभी-कभी हवन और बलिपशु काटनेके काम आती हैं। दूसरे तलकी चार कोठरियों मेंसे नये मन्दिरके पास वाली कोठरीमें स्वयं देवी रहती है और बाकी तीनमें बर्तन-भण्डार पाठस्थान और शिबू (लालमदिरा) रक्खे जाते हैं। तीसरे तल पर भी चार कोठरियाँ हैं; जिनमें क्रमशः बालिका भगवती (सिंहवाहिनी नहीं),

खजाना (राजा की मोहरसे बन्द), पानी और एक खुला स्थान है। चौथे तलके बड़े कमरेमें मांस पकता है, दूसरेमें छोटा रसोईघर है और तीसरा खाली है। पाँचवाँ तल छतके नीचे खाली है।

देवीके अधिकारियोंमें सर्वोपरि सपनी-निवासी नेगी विद्यानंद पाँच सालसे विस्ट पद पर काम कर रहे हैं। पहिले वे राजके पुलिस विभागमें थे। देवीके विस्टको ३५) रुपया मासिक मिलता है, जबकि ४५) मासिक पर भी कनौरमें मजूर काम करनेकेलिये नहीं मिलते। इनसे पहिले शोवङ्के बरकतदास बीस साल तक विस्ट पद पर रहे। १८१५ में अंग्रेजोंने भी देखा था, कि राजाके दर्बारमें-किन्नरोंका ही प्रभुत्व है। देवीके दर्बारके बारेमें तो यह बात और भी स्पष्ट है, आखिर राजवंश भी तो कनौरसे आया था। विस्टको राजा नियुक्त करता है। बिस्टके नीचे दो कायथ हैं, जिन्हें २५) मासिक मिलता है और आटा यहाँ बारह आना सेर है। एक डंडीदार (भंडारी) है जिसे २५) महीना मिलता है। ११) मासिक पाने वाले दो शिकारू हैं, जिनका काम शिकार करना नहीं बल्कि बकरा-बकरी खरीद कर लाना है। बकरे आजकल चालिस-चालिस, पचास-पचास पर बिक रहे हैं। देवीको प्रतिमास १५, दशहरेमें ६० और चैत नवरात्रमें ३६ बलि-पशुओंकी नियमपूर्वक आवश्यकता होती है। इसके ऊपरसे शुङ्रामेशू और दूसरे देवता बाहरी प्रदक्षिणामें बकरे, सुअर और मुर्गेकी बलि चढ़ाते हैं। दूसरे कर्मचारियोंमें दो प्रोलिया (दरबान) ७) मासिक और भोजन पर, दो कटेक्र (भीतरी द्वारपाल) ७) और भोजन, दो देवफन्यार (माली) १०) और भोजन, एक जलेहरू (कहार) ५) और भोजन, एक शिरकोट बोटिया (श्रीकोट रसोइया) १॥) और भोजन, दो गुर (पुजारी) रावींके ब्राम्हण ३) और भोजन; एक बो-ज्गी (भोजक) जो परमसिंह द्वार स्थापित रघुनाथजीके मन्दिरमें पूजा करता है। यह निरामिषाहारी रहता है और ३) मासिक तथा भोजन पाता है। एक प्रोत (पुरोहित) जिसका काम है, फूल लाना और मन्दिरके भूषणकी रक्षा करना। एक रसिया (बासनपानीका काम करने वाला) ५) और भोजन पाता है। ३) और भोजन पर एक माथी मन्दिरके भीतर झाड़ने बहारनेका काम करता है। एक खड़ेहरी कोलिन केवल भोजन पर मन्दिरसे बाहर झाड़ू-बहारू करती है। एक खसदार देवीका साईस १६) मासिक पाता है। एक प्रोच्छ (देववाहन) और एक

सहायक -ग्रोझ तीन-तीन रुपया पाते हैं, जब देवी उनके शिर पर आती हैं, और उन्हें काम करना पड़ता है, तो उन्हें मन्दिरसे भोजन भी मिलता है। बाजा बजाने वाले तुरी सिर्फ भोजन पर ढेरों पर रहते थे, किन्तु अब सिर्फ एक ही रह गया है। सरकारने खरच जो कम कर दिया है। पुराना मन्दिर अच्छी हालत में है, किन्तु उसी तरहका एक नया मन्दिर भी बनकर तैयार हो गया है। इसे पदमसिंहने अक्षय-कीर्ति प्राप्त करनेकेलिये हाल ही में बनवाया। बाहरी खंडके पास चौथे खंडमें नरसिंहजीका शिखरदार पाषाण मन्दिर है। नरसिंहजी रामपुर चले गये, अब उनकी जगह बदरीनाथजी बिराजमान हैं। इनकी सेवा-पूजाकेलिए भोजन और ३) मासिकपर पुजारी, कुचई (माली ब्राह्मण) और बोटिया तीन जने रहते हैं। बदरीनाथकी पीतलकी मूर्ति कपड़ेसे ढँकी थी। मुझे सन्देह हुआ, मैंने कपड़ा हटवाया, तो वह बुद्धरूपी बदरीनाथ निकले। मन्दिर देख सुनकर मैं विस्टसाहबके कार्यालयमें गया, किन्तु वहाँ दस-बीस सालकी बहियोंके अतिरिक्त कोई कागज नहीं था। मैंने पूछा—मन्दिरका पुराना कागज़पत्र दिखलाइये।

विस्टने प्रकृत स्वरमें कहा—वह तो जल गया।

—जल गया! मन्दिरमें तो आग नहीं लगी, फिर जला कैसे?

—सरदार साहब चैतमें जला गये।

—सरदार साहब जला गये! आप क्या कह रहे हैं?

—हाँ जला गये, जलानेके समय मैं भी था और तहसीलदार देवकीनंद भी।

सच कहूँ, मेरे कानोंको विश्वास नहीं हुआ और आज भी विश्वास करनेका मन नहीं चाहता। पुराने ऐतिहासिक महत्वके कागजों को कोई शिक्षित उत्तरदायी कर्मचारी कैसे जलाने का साहस करेगा? मेहताजीको भी जलानेकी बातका विश्वास नहीं होता, किन्तु कागज गये कहाँ? और सराहनमें जिससे भी मेरी बात हुई, उसने कागजोंके जलाये जानेकी बात कही। दिन भर कागज जलते रहे। गोरखोंने १४० वर्ष पहिले रामपुरमें राजके कागजोंसे होली खेली थी और अब यह दूसरी क्रूर होली खेली गई। यदि किसीने जलाया है, तो उसने देश और संस्कृति पर प्रहार करके अक्षय अपराध किया है, और उसे कठोरतम दण्ड मिलना चाहिये।

लौटकर भोजन करनेके बाद सड़कसे नीचे समीप ही अवस्थित रार्वी ब्राह्मण गाँव में गया। यहाँ चौबीस भरद्वाज, सोलह वाशिष्ठ और बीस कौशल गोत्री आदि-गौड़ ब्राह्मण बसते हैं। किसी समय यहाँ पाँच सौ घर ब्राह्मण थे, और गाँव नीचे दूर तक बसा हुआ था, किन्तु अब घटते-घटते साठ रह गये। आज भी आठ-दस घर निस्सन्तान मरनेसे खाली पड़े हैं। एक पचाससे अधिक वर्ष के संस्कृतज्ञ ब्राह्मण (विष्णु) मिले। उन्होंने बनारस जाकर संस्कृतमें मध्यमा तक पढ़ा था। आदमी कुछ स्पष्टवादीसे मालूम होते थे, या कहिये धाई से ढेक नहीं छिपा करता। वे स्वीकार कर रहे थे, कि हमारे यहाँ सपिण्ड नहीं सगोत्र विवाह भी होता है। भारद्वाज लोग अपनेको दक्षिण देशके काञ्चन (कांची) नगरसे आये परदुमनके भाई दशरथकी सन्तान कहते हैं। मैंने पूछा—तो वह परदुमन कृष्णके पुत्र नहीं थे। फिर तो राजा चन्द्रवंशी नहीं हो सकते।

—हाँ, नहीं थे, यह तो पटियालाके राजाने यहाँके राजाको एकबार पढ़ा दिया, कि आप चन्द्रवंशी हैं।

एक पुरानी परम्परा यह भी है, रावींके भारद्वाजी ब्राह्मण और रामपुरके राजवंश दो सगे भाइयोंकी सन्तानें हैं। मैं उसी मन्दिरके बरामदेमें जाकर बैठा था, जहाँ सतयुगकी पोथी सैकड़ों वेष्ठनोंमें लिपटी कलियुगके अन्त तककेलिये बाँधकर रक्खी गई है। पोथीके बारेमें पूछने पर उक्त पंडितजीने बतलाया— "वह कागज पर लिखी है और फलित ज्योतिष तथा तन्त्र-मन्त्रकी पुस्तक है।" यदि तालपत्र या भोजपत्र पर होती, तो मुझे जरूर न देखनेका अफसोस होता। कागज तेरहवीं सदी और बादमें भारतमें प्रचलित हुआ, यद्यपि कागज बनानेकी छाल यहाँके एक वृक्षमें लाखों वर्षों से मौजूद थी और अब इस छालको रांपा-की तरफ जाकर लोग तिब्बतवालों के लिये कागज बनाते हैं। राँवीमें बड़े विद्वान की आवश्यकता तो शायद कभी नहीं हुई होगी, किन्तु पुरोहिता उनकी जीविका थी, इसलिये विद्याका अभाव कभी नहीं रहा होगा। मैंने कुछ हस्त-लिखित पुस्तकें देखनी चाहीं। यद्यपि मध्यान्हका समय था और लोग इधर-उधर चले गये थे, तब भी कई शिक्षित व्यक्ति मेरे पास आ गये थे, वह मेरी जिज्ञासाकी पूर्तिकेलिये तैयार थे। उन्होंने बतलाया कि पोथियोंके फटी पुरानी हो जाने पर हम लोग उन्हें सतलुजमें बहा दिया करते हैं, इसीलिये कम पोथियां रह

गई हैं। तो भी उन्होंने दो सौ साल तककी पुरानी पोथियाँ दिखलाईं जिनमेंसे एक भागवत एकादशस्कन्ध (दशमस्कन्ध नहीं) का दोहा-चौपाईमें भाषान्तर था, जिसे संवत् १६६२ (तुलसी निर्वाणके बारह साल बाद) में सन्तदास के शिष्य चतुरदासने रचा। डेढ़-दो सौ सालकी एक और पोथी देखी जो पहाड़ी तथा हिन्दी मिली-जुली भाषामें गीतापर लिखी गई है।

लौटकर डाकबँगले आये। एस्. डी. ओ-साहब आ गये थे और विश्राम कर रहे थे। मैं भी अपने कमरेमें विश्राम करने चला गया। तीन-चार बजे बाहर निकला, एस् डी ओ श्री प्रेमराज अपनी पत्नीके साथ बरांडे में ताश खेल रहे थे। उनके खेलमें एक सेकेन्डके लिये भी विघ्न डालना मेरे लिये अनुचित था, किन्तु मैं शिष्टाचारप्रदर्शनकेलिये मरा जा रहा था। मैंने पास जाकर नमस्ते किया। उनके रुखको देखकर मैंने इस बातके लिये भी खैरियत मनाई, कि उन्होंने झुड़ककर इस अनुचित दखलके लिये मुझे फटकारा नहीं। उन्होंने मुँह फेरकर देखा भी नहीं, कि कौन नमस्ते कर रहा है, और वह अपने खेलमें संलग्न रहे।

मैंने अपनेको अपमानित बिल्कुल अनुभव नहीं किया, हाँ लौटकर अपने कमरेमें चला आया—श्री प्रेमराजजीने मुझे पहिले देखा नहीं, किन्तु वह मुझे उसी तरह भली प्रकार जानते हैं, जैसे रामपुरके सारे राज कर्मचारी। यदि जानते भी न हों, तो भी शिक्षा और संस्कृति की माँग है, शिष्टाचार प्रदर्शन करनेकी। कारण ढूँढ़ने-ढूँढ़ते मुझे शिमला तक आने के बाद ही असली बातका पता लगा। श्री प्रेमराज बी० ए० में राजामात्यका स्वच्छ श्वेत रुधिर है। वह चम्बा महाराज्य के महामन्त्री दीवान बहादुर श्रीमाधवरामके पौत्र, दीवानजादा राय साहब अमुकके सुपुत्र हैं और साथ ही काश्मीरके हालके दीवान तथा आजकल पूर्वी-पंजाबके हाईकोर्टके जज श्री मेहरचन्द महाजन के दामाद हैं। स्वयं चम्बामें मजिस्ट्रेट थे, अब बुशहर के कर्ता-धर्ता हैं। भला ऐसे आदमीको बिना आज्ञा पाये "नमस्ते" कहना क्या गुस्ताखी नहीं थी? मैंने दिलमें अपने अपराध को स्वीकार किया, और दिलमें ही स्वीकार कर सकता था, क्योंकि क्षमा याचनाकेलिये जाना दूसरी गुस्ताखी होती।

अब मुझे मालूम हुआकि क्यों उन्होंने चिनी तहसील में हुकुम भेजा था,

कि उनके पास सारी लिखा-पढ़ी अंग्रेजी में करनी चाहिये। हिमाचल सरकार ने यदि हिन्दीको राजभाषा घोषित किया था; तो झखमारा था।

२१ सराहनसे कोटगढ़

१७ अगस्तको प्रोग्रामसे एक दिन पहिले मैं रामपुरकी ओर चला। तीन दिन कम पूरे तीन महीने पुण्यसागर मेरे साथ रहे। उनके कारण मैं सब तरफसे निश्चिन्त हो गया था। खाना-पीना, हिसाब-किताब सब उनके जिम्में था और वह पूरा ध्यान रखते थे, मेरे स्वास्थ्य तथा शरीरका। वह केवल मिडल पास प्रारम्भिक स्कूलके अध्यापक ही नहीं हैं, बल्कि उनमें धर्म और आदर्श का अच्छा संमिश्रण है। संयुक्त विवाह की उनके यहाँ प्रथा है और विवाह विच्छेद भी चलता है। पहिले घुमक्कड़ी पीछे सधुआई देखकर पत्नी चली गई, छोटे भाईने अलग व्याह करके संपत्ति बाँट देनेकेलिये कहा। पुण्यसागर ने कहा —"बाँटनेकी क्या आवश्यकता है, तुम्हीं सब कुछ सँभालो" और उन्होंने घर छोड़ दिया। माता जीवित हैं, इसलिये उससे मिलने जाना चाहते थे, नहीं तो कुछ और आगे तक मेरे साथ आते। आज एक सीधे सादे, सहृदय, निस्स्वार्थ मित्रका साथ छूट रहा था।

नौ बजे मैं सराहनसे चला, कुछ दूर तक पुण्यसागर भी साथ-साथ आये। रास्तेकी अदला-बदली और देरीसे मैंने यहाँसे सीधे रामपुर (२१ मील) के लिये पाँच-पाँच रुपये के तीन भारवाहक कर लिये थे। रास्ता कहीं-कहीं टूटा था, किन्तु बुरी तरह नहीं। मंगलाड-खंड तक उतराई रही, जिसे पिछली बार चढ़नेमें छठी-का दूध याद आ गया था, फिर चढ़ाई शुरू हुई, लेकिन अब ऐसी चढ़ाईसे मैं भय नहीं खाता था। आगे मँझोली गाँव आया। रामपुर की ओर से दो-तीन गूजर आ रहे थे। उनकी भैंसें ऊपर कहीं कण्डेपर चरने गई थीं। करुण स्वरमें कह रहे थे—"पिछले साल झगड़ा हुआ था। यहाँके लोग कहने लगे 'तुम पाकिस्तान चले जाओ, नहीं तो तुम्हें मार डालेंगे।' हमने कहा पाकिस्तानको तो हम जानते नहीं, मारना हो, मार डालो,' अब कंडेकी चराई के लिये धमकाते हैं। बाबू फिर तो झगड़ा नहीं होगा?"

मैंने उन्हें सान्त्वना दी और कहा हमारी सरकार अपने देशमें हिन्दू-

मुसलमान का झगड़ा बर्दाश्त नहीं करेगी। तुम लोगों का कहीं घर है, या सदा घूमते ही रहते हो?

—घर है, जाड़ोंमें नदीके पासके गाँवमें अपनी झोपड़ियोंमें रहते हैं।

—तो तुम लोगोंको अपने गाँवके पटवारीके पास जा मतदाताओं में अपना नाम लिखवा लेना चाहिये। राजारानीका राज गया। अब प्रजा का राज है। तुम्हें पंच चुनना होगा।

उनमें दो पुरुष और एक जवान लड़की थी। सभीके शरीर स्वस्थ रंग साफ, नाक नुकीली और कद ऊँचा था। मैं सोच रहा था, यह हैं गूजर उन्हीं शक घुमन्तुओंकी सन्तान, जो इक्कीस सौ वर्ष पहिले भाग कर भारत आये। इनके सरदारोंने भारतपर सदियों राज किया। कितने ही घुमन्तू जाट-गूजर राजपूतके रूपमें नीचे बस गये, और कुछ आज भी अपने पूर्वजोंकी तरह पशुओंको लेकर घुमन्तूजीवन बिता रहे हैं। भारतमें आकर इन्होंने भारतीय धर्म स्वीकार किया और पीछे कुछ सुभीता देखकर इस्लामको मान लिया। आज वह सुभीता कुभीता हो गया। पहिले पहाड़ोंमें जनसंख्या कम थी, तब कंडों (पहाड़के ऊपरी भागों) को कोई पूछता नहीं था। आदमी बढ़े, धरती एक अंगुल भी न बढ़ी। अब पहाड़ी लोग कंडों पर गूजरोंको देखना नहीं चाहते। इसकेलिये अच्छा बहाना है हिन्दू-मुसलमान का विलगाव। गूजरों की समस्या आर्थिक समस्या है।

रास्तेमें एक जगह भारवाहकोंकी प्रतीक्षा करनी पड़ी, फिर साथके पाथेयको खाकर मैं पाँच बजे रामपुर पहुँच गया। जाते समय गर्मीका महीना था, अब वर्षा अपने यौवन पर थी, जिसने चारों तरफकी हरीतिमाको अपने पूर्ण यौवन पर ला दिया था।

डाकबँगला और अतिथि भवन दोनों ही नगर के बाहर दोनों तरफ काफी दूरपर हैं। मैं रामपुरमें एकान्त-वास करने नहीं आया था, बल्कि कुछ काम करना चाहता था। पंडित दौलतरामसे इस विषयमें पहिले ही बात हो चुकी थी! उन्होंने बिल्कुल शहरके भीतर रेंजर क्वार्टरमें ठहरनेका प्रबन्ध किया था। पता लगते ही श्रीविद्याधर आयुर्वेदालंकार भी आगये और हम आवासमें प्रतिष्ठित हो गये। अखबार और चिट्ठियाँ ढेरकी ढेर थीं। कुछ देर शिष्टाचारकी

बात हुई, भोजन हुआ और मित्र लोग चले गये, फिर लालटेनको सिरहाने रखकर पारायण शुरू किया; किन्तु क्या रात भरमें वह खतम होने वाला था ! एक बजे मैंने लालटेनको बुझाकर सोना चाहा, शरीरको ढाँककर मैं हजारों मच्छरोंसे बच सकता था, लेकिन रामपुर गरम जगह है। चादरसे ढाँकते ही शरीर पसीने-पसीने होने लगा। फिर नीचेसे सहस्रमुख अलगसे छेदने लगे। मैंने चोरबत्ती उठाकर देखा—खटमल अक्षौहिणी चारों ओरसे आक्रमण कर रही थी। अब सोना असंभव था, मैंने लालटेन फिर जलाई और प्रातःकाल तक अखंड पाठ चलता रहा। बीचमें मन यह भी कह रहा था—और रहनेकी क्या आवश्यकता, कल ही चल दो। बातचीतसे पता लग गया था, कि रामपुरसे कामकी सामग्री अधिक मिलनेकी आशा नहीं।

अगले दिन (१८ अगस्त) जब मैंने पंडित दौलतरामजीको अपना निश्चय सुनाया वे हँस पड़े—अर्थात् आप इतने कायर हैं। हाँ, मैं यह स्वीकार करता हूँ, मैंने खटमल, मच्छर, पिस्सू इस त्रिमूर्तिके सामने अपनेको सदा कायर सिद्ध किया, लेकिन पंडित दौलतराम मेरी कायरता पर नहीं हँसे थे। उन्होंने कहा, कि स्कूलमें आजकल छुट्टी है, वहाँ खटमलका नाम नहीं और हवा तथा रोशनीके कारण मच्छर भी कम हैं, मसहरी हमारे पास है। जलपान समाप्त करते-करते हमारा सामान भी नई जगह जाने लगा। पहिले तो जाकर मैं तीन घंटे सबकुछ छोड़कर सोगया। फिर श्री विद्याधरजी के साथ बाजार में निकला। खुदरंग और मोटी पश्मीनेकी दो चादरें यहाँसे पहिले मँगा चुका था, अब एक सफेद चादर लेना चाहता था। रामपुर इधर पश्मीना बुननेका केन्द्र बन गया है। चादरें बारीक बनती हैं, लेकिन कश्मीरकी सफाई और सुन्दरता कहाँ ! हमने पचासों चादरें देखीं, लेकिन कोई ठीक नहीं पड़ी। अगलेदिन विद्याधरजीने कुछ और चादरें दिखलाईं, लेकिन मैंने बेमनसे एक अच्छी चादर ८५) में ले ली।

सराहनमें निराश होनेके बाद रामपुरसे मैं ज्यादा आशा नहीं रखता था। दो तीन छपी पुस्तकें मिलीं, जिनमेंसे एक डाक्टर फॉन डेर स्लीनकी पुस्तक "हिमालयमें चार मासका चक्कर" पढ़ी। इसमें स्थानोंके उच्चांश कई हजार बढ़ा-चढ़ाकर लिखे गये हैं ! मेरेलिये कोई ज्ञातव्य बात नहीं मिली। स्लीन

भूगर्भ-शास्त्री थे, साथही अपनी उच्चजातिके अनुरूप ही साम्राज्यवादी रंगमें खूब गाढ़े रँगे हुये थे। फिर भारत और भारतीयोंके बारेमें उनकी राय जाननेकी विशेष आवश्यकता नहीं। उन्होंने हिमालयको अल्प-अतलस्-काकेशका समवयस्क बतलाया है, यूरेसिया महाद्वीप दक्षिण-पूर्व दिशाकीओर सरकने लगा, जिसमें रुकावट पड़ने पर हिमालय समुद्रके पेटके भीतरसे उसी तरह ऊपर उभड़ा, जैसे योरप और अफ्रीकाके महाभूखंडोंके संघट्टनसे पीरेन्, अतलस्, अल्प आदि। आजभी उत्तरीय भूभागका संसरण धरतीके भीतरही भीतर दाब रहा है, जिसके कारण हिमालय-क्षेत्रमें अधिक भूकंप आते हैं।

स्लीनको भी कनौरकी पशुबलि देखकर बहुत क्षोभ हुआ था और उसने अपने दृष्टिकोणसे लिखा था "इस कांडको देखतेही तुम्हें मालूम होने लगेगा, कि इन अर्धसभ्योंपर धार्मिक पागलपनका भूत सवार हुआ है। और यह याद रखिये कि एकाधही दशाब्दी पहिलेकी बात है, जब यही छुरा इसी ढंगसे मानुष-पुत्रों पर पड़ता था।...साठसे सत्तर धड़ धरतीपर पड़े छटपटा रहे थे। रक्तकी गंध आदमीको बेहोश कर रही थी।"

स्लीन १९२५ ई०में इधर आया था, अर्थात् पिछलीबार मेरे आनेसे एक-साल पहिले। उसका यह कहना गलत है, कि उससे दस-बीस साल पहिले कनौरमें मनुष्य बली होती थी। सराहनमें पिछली शताब्दीके आरम्भतक मनुष्य बलि ज़रूर हुआ करती थी।

रामपुरमें और कुछ बातें मालूम हुईं जिनमें राज्यके संबन्धमें निम्न बातें उल्लेखनीय हैं—

१८०३—१५ तक बुशहरपर गोरखोंका अधिकार रहा। राजा (उगरसिंह) भागकर चगाँव चला गया। गोरखा वङ्तूसे आगे अपना अधिकार नहीं जमा सके।

१ नवम्बर १८१४ ई० को अंग्रेजोंने लखनऊमें गोरखोंके विरुद्ध युद्ध घोषित किया, जिसका अन्त २ दिसम्बर १८१५ ई० को सुगौलीकी सन्धिके साथ हुआ। राजा महेन्दर सिंह घेघेवाले आठ-दस बरसके लड़के थे, जब फ्रि फ्रेजर १८१५ में सराहन पहुँचा था। राजा महेन्दरसिंहके मरनेपर १८५० में उनके पुत्र शमशेरसिंह लड़के ही थे, जब गद्दीपर बैठे। महेन्दरसिंहके बड़े भाई

मियाँ फतेहसिंह, (जन्म १८३७ ई० मृत्यु १८७६ ई०) ने १८५९ में विद्रोह किया था।

१८६५ईमें मोरावियन पादरी ई पीज़ल स्पूमें गये और १८ वर्ष काम करने के बाद १८८३में मरे, फिर पादरी स्कीन वहाँ काम करने लगे और १८९७ में उन्होंने २५ आदमियोंको ईसाई बनाया। १८५० में चर्चमिशनने चिनीमें काम शुरू करना चाहा था, किन्तु अन्तमें मोरावियन पादरी ब्रूस्की मिशन स्थापित करनेमें सफल हुये।

राजा शमशेरसिंह दुर्बल मस्तिष्कके आदमी थे। इनके उत्तराधिकारी टीका रघुनाथसिंहने १८८७--९८ई-में अपने मृत्युतक राज्य कार्य सँभाला और उन्होंने ही १८८९-९० राज्यका परिमाप कराया। उससे पहिले पोआरी वज़ीर रन बहादुरकी बहुत चलती थी। टीका रघुनाथसे उसका झगड़ा होगया और अन्त में रनबहादुरको कैथू 'शिमला'-के जेलमें निस्सन्तान मरना पड़ा। राजके खान-दानी वज़ीर पोआरी, शोबा और कुलहवंशके हुआ करते थे। शोबा वजीरका घर अकपामें था।

पंजाब सरकारकी ओरसे छपे मुख्य कुलोंके वंश-वृक्ष और वंशावलीमें राम पुरका वंशवृक्ष निम्नप्रकार (पृष्ट ३२३) मिलता है—

जेम्स बेली फ्रेज़रने १८१५की अपनी यात्राका वर्णन पुस्तक "हिमाल पर्वत में"* सुन्दर ही नहीं बहुत ही ज्ञानवर्धक किया है। यह उन पुस्तकोंमें है, जिन्होंने १९वीं सदीके आरम्भ और कुछ पहिलेके भारत का बहुतही व्यापक चित्रण किया है। फ्रेज़र जैसे कितने लेखकोंने तो उस समयकी वेशभूषाका रेखाचित्र भी खींचा था। बेलीने निरतके पास न्यारियोंको बालू धोकर सोना निकालते देखा। उसने वज़ीर टीकमदाससे पाषाणशतघ्नीका वर्णन सुनकर लिखा "बिल्कुल ठीक रोमकोंके कतापुल्त (पाषाणपातिका)की भाँति होती है, जो मन दोमनके पत्थरोंको फेंकती है। इसकेलिये रस्सा बहुत मोटा होता है और सौ-सौ आदमी मिलकर एक बड़े वृक्षके सहारे फेंकते हैं।" फ्रेज़रने लिखा है कि राजा उगरसिंहके मरनेपर २२ व्यक्ति सती हुये। जिनमें ३ रानियाँ, १२ अन्तः पुरिकायें, २ वज़ीर और १ चोबदार थे। वह लिखता है कि बुशहरकी स्त्रियाँ

* The Hind Mountain (Lomabon 1820)

अधिक सुन्दर होती हैं, इसलिए बाजारमें यहाँकी दासियोंकी बड़ी माँग है। यहाँ जो आठ-दस तथा बीस-पचीस रुपयोंमें खरीदी जाती हैं, वह पहाड़से नीचे जाकर डेढ़सौ दो-सौ में बिकती हैं।" अर्थात् १८१५ ई० में नीचे और यहाँ दासप्रथा खूब धर्मानुमोदित थी। वह भारतीय दासस्वामियोंकी प्रशंसा करते हुये लिखता है "हिन्दुस्तान-निवासी क्रूर स्वामी नहीं हैं, बल्कि इनके दास बहुत आनन्दके साथ रहते हैं। बहुधा अपने स्वामियोंसे इतने हिलमिल जाते हैं, कि उन्हें छोड़ना नहीं चाहते।"

कनौर लोगोंको फ्रेज़र बड़ी प्रशंसा करते हुये कहता है "कनौर निवासी उससे बिल्कुल भिन्न भाषा बोलते हैं, जो हिमगिरिके दक्षिणपार्श्वमें बोली जाती है, किन्तु साथही यह भी कहा जाता है, कि वह चीन-भूमिक भोटियोंकी भाषासे

भी भिन्न है। कनौरोंके ऊपर तातार (मंगोल) मुखमुद्राकी बहुत गहरी छाप है। वह खुले दिलके तथा स्वभाव-बर्तावमें स्पष्टवादी होते हैं।......वह वीर हैं, परिश्रम और स्वतन्त्रता-प्रेमी होते हैं। वह निष्कपट, नम्र, अतिथिसेवी, ईमानदार और विश्वासपात्र होते हैं।...इसलिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, कि राजा इनपर इतना विश्वास करता है, और राजशक्ति इतनी अधिक इनके हाथोंमें है। राजके बहुतसे मुख्यपरिवार और सरकारके प्रधान-प्रधान पदाधिकारी कनौरवंशके हैं। राजाके वैयक्तिक परिचारक उसी प्रदेशके हैं और सैनिक विशेष करके वहाँहीसे भरती किये जाते हैं।" (पृष्ठ २४४)

× × ×

२० अगस्त तककेलिये मैं यहाँ ठहर गया। आजकल शहरकी बाजार में चहल-पहल कम थी। स्कूलकी लम्बी छुट्टी है। एस० डी० ओ० साहब दौरेपर गये हैं। बरसातके समय लोग बहुत कम दूर-दूर जाते हैं। यह तो मैं ही था जो, इस समयभी यात्रा कर रहा था।

२० अगस्तको पंडित सत्यदेव और मास्टर अनुलालसे भेंट हुई। मास्टर अनुलालको सात सालकी सजा दी गई थी, और यहाँके पुराने अधिकारी, जो अब भी शासन-यन्त्र सम्हाले हुये थे, बहुत निश्चिन्त थे। लेकिन, वह यह नहीं समझ पाते, कि प्रजाके राजमें आँखोंमें धूल झोंककर प्रजासेवकोंको आँखोंका काँटा समझकर दूर फेंका नहीं जा सकता। मैं इस रायसे सहमत था, कि रियासती मशीनको उन्हीं जाकड़ी पुर्जोंसे चलाया जा रहा है, नौकरशाहीकी रफ्तार बदतर हो गई है, और हर काममें वह दीर्घसूत्रता प्रदर्शित करती है। अपनी जान बचानेकेलिये बहानोंकी उसके पास कमी नहीं है। हिमाचल-सरकार स्थापित हो गई है, किन्तु प्रजा-प्रतिनिधियोंका उसके साथ सहयोग नहीं है। प्रजा प्रतिनिधियोंके हाथमें शासनकी बागडोर देनेमें कठिनाई अवश्य है, क्योंकि रियासतोंमें जननिर्वाचित कोई भी संस्था नहीं थी। सरकार प्रजामंडलके कुछ पुराने नेताओंको परामर्शदाता बनाना चाहती है, लेकिन सड़े और बदनाम पुराने रियासती नौकरोंकी आज भी सारी काली करतूतोंका पुचारा वह अपने मुँहपर पुतवानेके लिये तैयार नहीं। वस्तुतः केन्द्रीय सरकारको चाहिये था, कि दूसरी जगहों की तरह यहाँ भी अस्थायी मन्त्रिमंडल बना देती। जन-निर्वाचित राजकीय संस्था कोई भले ही न हो, किन्तु प्रजामंडलने

कई रियासतोंमें काफी संघर्ष किया। उसके तपे-तपाये नेताओंमें ऐसे लोग मौजूद हैं, जो शासनके दायित्वको सम्हाल सकते हैं। उन्होंने जनता के संघर्षका नेतृत्व किया, इसलिये यह कहना ठीक नहीं होगा, कि जनता उनके साथ नहीं है। मैं यह बात सिर्फ बुशहरको लेकर नहीं कह रहा हूँ।

सारे हिमाचल प्रदेशमें नौकरशाही अयोग्यता से जो प्रतिक्रिया होरही है, यह किसी भी सरकारकेलिये अच्छी नहीं। अदालका कुंड टूट गया है, जहाँ से कि गाँवके लोगोंको पीनेका पानी मिला करता था। लिखा-पढ़ी होते कितने ही महीने हो गये, किन्तु कोई लाभ नहीं। लोग कहते हैं—इससे भला तो राजाही का राज था। सामने दोरुपया नज़र रखके अरज़ लगाते, और तुरन्त ओवर्सियर भेजकर कुंडकी मरम्मत करादी जाती। ऐसे कितने ही उदाहरण मौजूद हैं, जिनमें अयोग्य मैट्रिक पास पुराने रियासती नौकर प्रथम श्रेणीके मैजिस्ट्रेट बना दिये गये और बहुत ही लायक तथा ईमानदार व्यक्ति नीचे डाल दिये गये। अभी हिमाचल-सरकार चार महीनेकी है, उसके पूरे संगठन और कार्यपरायण होनेकेलिये इतना समय पर्याप्त नहीं, यह ठीक है, किन्तु जिन ईंटोंसे यह इमारत खड़ी की जा रही है, वह बहुत दूषित और निर्बल है।

स्कूलमें मुझे खटमलों और मच्छरोंसे संघर्ष नहीं करना पड़ा। अधिक समय लोगोंसे बातचीत करने में बीता। रियासतके पुस्तकालय से एक ही दो कामकी पुस्तकें मिल सकीं। ऐतिहासिक सामग्रीकेलिये सभी सराहनकी ओर इशारा कर रहे थे। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई, कि राजाको पेन्शन मिल गई और रानी गर्मियाँ बिताने सराहन चली गई हैं। विधवा राजबहू (लाड़ी साहबा) को १०००) मासिक पेन्शन मिली थी। उन्होंने उजुर किया, कि इतनेमें उनका खर्च नहीं चल सकता। सरकारने उस पर विचार किया और देखा कि एक अकेले व्यक्तिकेलिये हजार रुपया अधिक होते हैं, इसलिये हजारका ८००) कर दिया। सराहनमें मैंने सुना कि किसी वकील साहबको नया आवेदन पत्र तैयार करनेकेलिये कहा गया है। आवेदन-पत्र तैयार करनेमें वकील साहब तो घाटेमें नहीं रहेंगे, लेकिन सरकार फिर सोचनेके लिये मजबूर होगी—क्या जाने नौ हजार ६ सौ रुपया वार्षिक खर्च एक विधवा पुजारिन पर उसे अधिक मालूम हो। सामन्तशाही ठाट अब नहीं चलेगा, इस बातका

बेचारीको पता नहीं, और नाहक वकीलोंमें रुपया बाँट रही है। छोटी रानीनें भी इसी तरह कई हजार रुपया दरबारी चापलूसोंमें बाँटे, कि पेन्शनका आधा रुपया उसके लड़केको मिले, किन्तु बुशहरकेलिये कैसे खास नियम बनाया जा सकता है ?

× × ×

२१ अगस्तको मैंने रामपुर से प्रस्थान किया। मेराखड्डुतक उतराई थी। वहाँतक तो सवारी बेकार थी। किन्तु आगे छ मील ठाणेदार की कड़ी चढ़ाईके-लिये घोड़ा अच्छा समझा और सामानके दो खच्चरों के साथ घोड़ेका इन्तजाम भी कर लिया गया। नौ बजे चलते समय नोगढ़ीके लाला खुशीराम भी साथ हो गये। मन्योटी किन्नरकी सीमा है और नोगढ़ी-खड्ड सराहन-देवीके मन्दिरमें प्रविष्ट होनेवालोंकी सीमा है। लेकिन, नौगढ़ीकी तरफ मेरा ध्यान इस सीमाके कारण आकृष्ट नहीं हुआ। लाला खुशीरामने अपनी सूझ और परिश्रमसे यहाँ एक ऐसा नमूना खड़ा कर दिया है, जो इस बातका प्रमाण है, कि कैसे कम पैसेमें भी हिमाचलका औद्योगीकरण किया जा सकता है। आज जहाँ कई एकड़ोंमें बाग और खेत लहलहा रहे हैं, तथा एक कारखाना चल रहा है; पन्द्रह साल पहिले वहाँ कुछ भी नहीं था। लाला खुशीरामके पिता जंगलोंका ठेका लिया करते थे, किन्तु मरते समय पुत्रोंको आर्थिक कठिनाइयोंमें छोड़ गये। खुशीरामने मामूली हिन्दी-उर्दूके सिवा अधिक पढ़ा भी नहीं था, लेकिन वे मनस्वी तथा परिश्रमी जीव थे। राजासे जमीन ली। पत्थर तोड़ते बटोरते उनके हाथोंमें छाले पड़ गये। वहाँ कुछ खेत तैयार किया। पासके खड्डसे जल ले आये। उनकी उड़ान मामूली पनचक्कियों तक सीमित नहीं रही, उन्होंने कूलको और ऊँची तथा बड़ी करके जलके परिमाण और पतन शक्तिको बढ़ाया। साथ ही उनके दिमागमें योजना भी बढ़ती गई। आज इस जलशक्तिसे दो आटे की चक्कियाँ चल रही हैं, तेल पेलने, चावल कूटने-फटकनेकी मशीनें भी काम कर रही हैं, काष्ट चीरनेकी मशीनें अलग लग गई हैं। साथमें ११० वोल्टका डिनामो बिजली तैयार कर रहा है, किन्तु बिजलीका उपयोग चिराग बालने और रेडियोकी कुछ बैटरियाँ भरनेके सिवा और नहीं। दोनों चक्कियाँ रोज ३५ मन आटा पीस देती हैं। कोल्हू सरसोंके दो और चूली होनेपर चार कनस्टर तेल

पेल देता है। चावल-कूटनी प्रतिदिन ४०५ चावल कूट देती है। यह सारा काम अल्प-वित्त अल्प-साधन होते हुये भी लाला खुशीरामने किया। आज उनकी जायदाद चालीस-पचास हजार की है, जो सब की सब उत्पादनमें लगी हुई है। अभी भी उनका दिमाग थका नहीं है। कह रहे थे, जङ्गलके ठेकेमें फँस गया, यह ख्याल करके कि इकट्ठा कुछ रुपये मिल जायँगे और कारखानेको और आगे बढ़ाऊँगा, किन्तु पिछले सालकी गड़बड़ीमें चिरे-चिराये बल्ले नदीमें डाले नहीं जा सके, रुपया कहाँसे निकलता! मैंने पूछा—यदि पचास हजार रुपये आपको और मिल जायँ, तो आप अपने कारखानेमें क्या-क्या चीजें बढ़ायेंगे?

—मैं तीन हजार रुपये लगाकर कूलके पानीको तिगुना कर दूँगा। दस हजार रुपयेमें दोसौबीस वोल्टका डिनामो और पाँचहजारमें दोसौ बीस वोल्टकी मोटर लगा दूँगा, जिसमें मशीनें पनचक्कीसे नहीं बिजली से चलें। आठ हजारमें ऊन धोने, धुनने, रँगने और पूनीं करनेकी मशीन और पाँच हजारमें ऊन कताईकी मशीन आ जायेगी।

ऊनकी रँगाई और पूनीका प्रबन्ध यदि होजाये और लोग तकलीकी जगह चर्खेसे उसका सूत कातने लगें, तो पहाड़के लोग मालामाल हो जायँ। खुशीरामजीने यह भी बतलाया, कि सभी मशीनें भारतकी बनी मिल सकती हैं, वह विदेशी मशीनोंकी तरह दीर्घजीवी नहीं होतीं किन्तु साथही उनका दाम कम होता है।

भलेही उतनी दीर्घजीवी न हों, किन्तु स्वदेशी मशीनें हमें डालर और पौण्डकी परतन्त्रतासे तो बचा सकती हैं। लाला खुशीरामने एक सफल उद्योगही स्थापित नहीं कर लिया, बल्कि इस बातको भी सिद्ध कर दिया, कि हिमालयके हरएक खड्डपर थोड़ी पूँजी और स्वदेशी मशीनों द्वारा बिजली-चालित कारखाने स्थापित किये जा सकते हैं। यह बिजली रोपवे द्वारा पहाड़के दुर्गम स्थानोंमें यातायातको सुगम और सस्ता बना सकती है। मुझे आशा है, हिमाचल-सरकार आर्थिक सहायता दे लाला खुशीरामको अपनी योजना सफल बनानेमें हाथ बटायेगी और साथही नेगी सन्तोषदास जैसे हिमाचलके कितनेही मनस्वियोंको नोगढ़ीकी तीर्थयात्रा करके वहाँ से सीखनेका मौका देगी। सिर्फ आर्थिक सहायतासे ही काम नहीं चलेगा, सरकारको बिजली और यन्त्र-विद्याकी शिक्षाका भी शीघ्र प्रबन्ध करना होगा।

मैंने कारखाने में जाकर कूलसे गिरते पानीको देखा। दोनों पनचक्कियोंके लिये अलग जलपातनिकायें थीं। पानीकी कमीके कारण चक्कियाँ और मशीनें एक साथ नहीं चलाई जा सकतीं। कूलका सारा पानी एक बड़ी जलपातनिका द्वारा एक बड़े चक्के पर डाला जा रहा था। चक्के का सिर्फ धुरा लोहेका था, बाकी भाग को लकड़ीसे यहाँ के बढ़इयोंने बनाया था। धुरेके दूसरे शिरेपर घुमाऊ पेटीवाला चक्का था। सभी चीज़ें सीधी-सादी थीं, किन्तु देशकेलिये कितनी लाभदायक?

खुशीरामजी उत्साही जीव हैं। उन्होंने छूतछात उठाने के बारेमें आजकल चलरहे आन्दोलन पर कुछ टिप्पणी करते हुये राजनीतिकी तरफ भी पग बढ़ाना चाहा। मैंने समझाया—आप अपने इस कारखाने द्वारा सिर्फ अपनीही भलाई नहीं बल्कि देश की भलाई कर रहे हैं। आप देशका एक उपयोगी दिशामें पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। इसी काममें आगे बढ़ें। राजनीतिक अखाड़ेबाजी आपके कामको खराब कर देगी। उन्होंने मेरी बातको बहुत पसन्द किया।

कारखानेको देखकर पंगी ब्रह्मचारीका दिया लंबा डंडा हाथमें लिये मैं आगे बढ़ा, और नोगडी से चार मील (रामपुर से ८ मील) पर अवस्थित दत्तनगरमें बूँदें पड़ते-पड़ते पहुँचा। हरियालीके विचारसे तो पहाड़ोंमें वर्षा अच्छी है, किन्तु गाँवों में एक ओर कीचड़की सड़ांध उछलती हैं और दूसरी ओर घरोंमें लाख-लाख मक्खियोंका झुण्ड एक-एक जगह बैठा मिलता है। दत्तनगरकी दूकानोंमें तो आधा अधिकार मक्खियोंका था। दत्तनगर कुछ ऐतिहासिक स्थान सा मालूम होता है, किन्तु ऐतिहासिकताके चिह्न देवीके मन्दिरमें अस्तव्यस्त लगे कुछ उत्कीर्ण पत्थर भर हैं। सम्भव है, धरतीके नीचे कुछ और भी चीजें छिपी हों।

दीवार वर्षाके झोकोंका मुकाबिला करते चार मील और चलके मैं निरत पहुँचा। निरतके सूर्यमन्दिरको देखना अत्यावश्यक था। इसे आठवीं शताब्दीका बतलाया जाता है, जिसपर सन्देह करनेको बहुत गुंजाइश नहीं है। चार घर भारद्वाज ब्राह्मण सूर्यभगवानकी पूजा करते हैं, और आदिगौण होते हुये भी मांसाहारी हैं। मन्दिर बहुत बड़ा नहीं है, किन्तु सुन्दर है। गुप्तकालीन शिखरदार मन्दिरोंके आकारका है और सारा पत्थरका बना हुआ है। आसपासकी भूमिसे

मन्दिरका तल बहुत नीचे है, यह भी उसकी प्राचीनताका द्योतक है। पुजारी से फाटक खुलवाकर आँगनमें गया। पहिले मेरी दृष्टि अक्षयवट के नीचे गई। अक्षयवट वह मेरा रक्खा नाम है। पुजारीजीने इतनाही कहा, कि हमारी कितनीही पीढ़ियाँ इस वटवृक्षको इसी रूपमें देखती चली गईं, यह न बढ़ताहै न घटता है। बढ़ेगा कैसे? वह एक चट्टान पर उगा है, जहाँ खाद-जलके लिये बराबर चान्द्रायण चलता रहता है।

अक्षयवटके नीचे पुरानी खंडित मूर्तियाँ थीं, जिन्होंने मेरे ध्यानको अपनी ओर आकर्षित किया। खंडित तो सभी मूर्तियाँ थीं, किन्तु अधिकतर घिसी भी थीं। इनमें वह मूर्तियाँ भी थीं, जो कभी मन्दिरमें स्थापित की गई थीं। इनमें एक ओर लम्बोदर भगवान विद्यमान थे। उनके पासकी द्विभुजमूर्ति तो और भी सुन्दर थी, फिर एक ओर दो बूटधारी सूर्य भी थे, जिनके दोनों हाथोंमें दो सूर्यमुखीके फूल थे। पुजारीजी सूर्यके बूटपर विश्वास करनेके लिये तैयार न थे, यद्यपि आँखोंसे उसे देख रहे थे। हिन्दू जूता पहिने अपने घरमें (घरके गर्भमें) नहीं जा सकता, फिर सूर्य भगवान क्यों ऐसा अतिचार करते हैं? लेकिन उनको क्या मालूम कि बूटधारी सूर्य मूलतः शक-देवता थे, यहाँ आकर उन्हें उसी प्रकार ठोंक-पीटकर हिन्दूदेवता बना दिया गया, जैसे लाखों शकोंको हिन्दू।

मन्दिरके भीतर जगमोहनमें दाखिल हुये। अधोवस्त्र (पैन्ट, पाजामा) पहनकर भीतर जाना निषिद्ध है, किन्तु धोती तो बिस्तरेमें बँधी थी। खैर, भीतर चले ही गये। यहाँ भी कुछ टूटी-फूटी मूर्तियाँ देहलीके पास खड़ी की गई थी; उनमें सूर्यभी थे। गर्भमन्दिरमें पुजारीके सिवा कोई नहीं जा सकता। वहाँ की खड़ी मूर्ति हमें उतनी अच्छी भी नहीं लगी। जान पड़ता है, एकसे अधिक बार यहाँ मूर्तिध्वंसक आये और खंडित मूर्तियों को हटाकर दूसरी भद्दी और भद्दीतर मूर्तियाँ बनवाकर स्थापित की गईं। मंडपके भीतर विष्णु और हरगौरीकी भी मूर्तियाँ थीं और बहुत छोटी भी नहीं थीं। तो क्या सूर्य मन्दिरके अतिरिक्त यहाँ छोटे-मोटे कुछ और भी मन्दिर थे? आँगनमें दूसरी जगहकी खंडित मूर्तियाँ इस बातको और पुष्ट कर रही थीं। सूर्य भगवान फलाहारी हैं, किन्तु बगल के छोटे मन्दिरकी देवीका बलिके बिना काम नहीं चलता। हम मन्दिर

को आठवीं सदीही का मान लेते हैं। उस समय जान पड़ता है, निरत एक विशिष्ट स्थान था। क्या यहाँ कोई पहाड़ी राजाकी राजधानी थी या प्रतिहार-साम्राज्यकी छत्रपी थी? नीचे जानेका रास्ता शिमलासे तो नहीं रहा होगा, फिर तो सतलुजके साथ-साथ जाना होता होगा। आठवीं सदीमें भोट-साम्राज्य बहुत प्रबल था, क्या वह सराहनके आस-पास तक आके रुक गया था? मन्दिर और निरतका इतिहास तो लुप्त हो गया या यहीं भूमिमें निहित है। खशों और शकोंसे सूर्य पूजा जोड़ी जा सकती है, लेकिन इस मन्दिरको शक कालमें नहीं लेजाया जा सकता। आज मन्दिर, पुजारी और गाँव-बस्ती सभी श्रीहीन हैं।

मन्दिरका दर्शन करानेकेलिये पुजारीजीको एक रुपया दक्षिणा दी। दूसरे पंडे लड़केने आकर पूछा—आपने सबकेलिये दक्षिणा दी ना? मैंने कहा—नहीं, मैंने सिर्फ पुजारीको दिया। निरतमें राजकी धर्मशाला और सड़क-विभागका डाकबँगला दोनों हैं। मैंने सराहनके बाद डाकबँगलेमें न जाना तै कर लिया था और साथके पाथेयको जाकर धर्मशालामें खाया। चलते समय देखा, एक आदमी जाल बुन रहा है। पूछनेपर उसने यही बतलाया कि सतलुजमें मछलियाँ मारी जाती हैं, बल्कि सेर-दो-सेर मछली उसके पास मौजूद भी थीं। मछली साथ लिवाये मेहमानीमें जाना मैंने पसन्द नहीं किया, यदि भुनी या तली होती, तो जरूर कुछ लेलिया होता। साईसने सिगरेटकेलिये पैसा माँगा। चौदह-पन्द्रह बरसका लड़का था, मुँहसे फक-फक धूआँ फेंकते चलनेका उसे शौक क्यों न होता। मैंने उसे और खच्चर वालेको भी पैसा देकर जल्दी आनेकेलिये कह रास्ता लिया।

दो-तीन मील जानेपर भेड़ा-खड्ड मिली। यहीं उतराई खतम हुई। यही पुराने बुशहर राज्यकी सीमा है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं, कि सतलुजके मैदानमें उतरने तक इसपार सारा हिमाचल-प्रदेश है। अंग्रेजोंने बीच-बीचमें दो-दो, चार-चार गाँवोंके द्वीप पंजाब-सरकारके हाथमें रक्खे थे, जो अब भी बदस्तूर-साबिक मौजूद हैं। भारत-सरकार ने यह सोचने का कष्ट नहीं उठाया, कि इन द्वीपोंके कारण शासनमें कितनी कठिनाई पड़ती है। लालचंद स्टोक कह रहे थे—ठाणेदारके इलाकेके रास्तेमें खून हो गया। एक आदमी कई

साल पलटनमें नौकरी करनेके बाद कमाई लिये घर जा रहा था, स्थानीय कुछ लोगोंने पैसेकेलिये उसकी हत्या कर दी। पुलिसको अकर्मण्य देखकर वह शिमलामें सुपरिन्टेन्डेन्टसे मिले। कहनेपर सुपरिन्टेन्डेन्टने कुछ करनेमें अनिच्छा प्रकट की—वह हमारे पंजाबमें नहीं है। लालचन्दने जोर देकर कहा—कोटगढ़ और ठाणेदार पंजाबमें हैं, यदि इसके बारेमें आप कोई कार्रवाई नहीं करेंगे, तो स्थानीय बदमाशोंका मन बढ़ जायेगा। लेकिन २६ अगस्त तक तो पुलिस चादर तान कर सोई हुई थी। दूसरे प्रान्तमें द्वीप बनाने का ऐसा ही फल होता है। भारत-सरकारका यह कर्तव्य था, कि हिमाचल प्रदेशको बनाते समय इन द्वीपोंको खतम कर देती।

मैंने मेड़ा-खड्डुको पुलसे पार किया। यहाँसे छ मील ठाणेदार तक चढ़ाई है। आदमीको साढ़े चार हजार फीट ऊपर उठना पड़ता है। पहिले पुलपर फिर थोड़ा ऊपर चढ़कर काफी देर प्रतीक्षा करनी पड़ी, तब कहीं साईस घोड़ा लेकर आया। यात्रामें ऐसी असुविधाओंपर गरम हो जानेको मैं बुद्धिमानी नहीं समझता। मैं घोड़ेपर सवार हुआ और चढ़ाई चढ़ने लगा। मेघ देवताने भी बरसनेकी ठान ली थी। मैं अपने बिस्तर-बन्दपर कंबल रखना चाहता था, किन्तु खच्चरवालेने पाल डालनेकी बात कहकर वैसा करने नहीं दिया। और अब वह बक्स तथा बिस्तरेको खुली वर्षामें भिगोते ला रहा था। सवारीका घोड़ा लँगड़ा किन्तु मजबूत था और उसने चढ़ाईमें कहीं कायरता नहीं दिखलाई। पहाड़ोंकी हरियालीके बारेमें क्या पूछना ! हाँ, अतिवर्षासे कहीं-कहीं खेत ढह गये थे, कितनीही जगह हमें घने कुहरेमें चलना पड़ा, जिसमें दस कदम आगे देखना मुश्किल था। जब कुहरा हटा, तो दूर तक पर्वतके लहलहाते खेत दिखलाई पड़े। सतलुज नीचे बहुत दूर थी, जिसके उसपार कुल्लुकी पर्वत-श्रेणियाँ थीं।

सात बज गया था, जब हम ठाणेदार पहुँचे। मैंने ठाणेदारमें न ठहरकर डाक्टर भगवानसिंहके पास कोटगढ़ जानेका निश्चय किया। ठाणेदारमें डाक बँगलेमें ठहरना पड़ता और अगले दिन फिर सामान ढोनेका प्रबन्ध करना पड़ता। मोटरकी सड़क तक पहुँचने पर पथ-फलक भी बतला रहा था कि कोटगढ़ यहाँसे ढाई मील है। सूर्यास्त हो चला था। रास्ता यदि जरा भी भूलते तो

अँधेरेमें भटकते रहनेका डर था किन्तु मैंने चलना ही निश्चय किया। खच्चर-वाले रास्ता ढूँढ़ लेंगे, इसलिये उनकी परवाह न कर मैं कदम तेज बढ़ाने लगा, किन्तु कितना ही कदम बढ़ाया, अँधेरा होनेसे पहिले कोटगढ़ नहीं पहुँच सका।

डाक्टर भगवानसिंह घरही पर थे और वहाँ मेरी प्रतीक्षा दो दिन पहिलेसे ही हो रही थी। खच्चर भी आ पहुँचे। अब मैं घर आ गया था—डाक्टर भगवानसिंह और उनकी पत्नी लाजदेवीके आतिथ्यके कारण भी और साथही वह ख्याल करके कि अब यात्राका स्वरूप भी बदल गया है। अभी तक हम ऐसे स्थानमें थे जहाँ पैसा किसी कामको समयपर और अल्पतम असुविधाके साथ करानेमें सहायता नहीं दे सकता था, किन्तु यहाँ ठाणेदारमें मोटरकी सड़क है। वर्षाने कुछ दिनोंसे मोटरके आवागमनको बन्द कर दिया था, किन्तु चिर-स्थायी रूपसे नहीं। यहाँसे खच्चर और आदमी भी मिल जाते हैं। कठिनाइयाँ यहाँ भी हो सकती हैं; किन्तु वह नीचेके शहरोंकी तरह ही, जिनके कि हम चिरभ्यस्त हैं।

२२ यात्रा का अंत

शिमला जाना कब होगा, इसका अभी निश्चय नहीं था। मोटरबस तो शिमलासे अठारह मील ठ्योग तक ही आकर रुक जाती थी। हाँ, जीप यहाँ तक आ जाती थी, किन्तु रास्ता टूटनेसे वह भी अब बन्द थी। कोटगढ़ और ठाणेदार सबोंकी खान हैं। यह सेबोंकी फसलका समय था, लेकिन वर्षाने सड़क खराब करके सबोंके भेजनेमें बड़ी रुकावट पैदा कर दी थी। बागवाले बहुत परेशान थे। खच्चरोंपर ढोनेमें पैसा भी अधिक लगता था और समय भी। मुझे अपनेलिये चिन्ता नहीं थी। अब ठौर पर पहुँच गया था, जब चाहूँ यहाँसे आगे जानेका इन्तिजाम हो सकता था। डाक्टर भगवानसिंह तो डाक्टर ठहरे ही, उनकी पत्नी भी चिकित्सिका हैं। मुझे यह जानकर बहुत संतोष हुआ, कि दो-दिनकी परीक्षामें मैं चीनी नहीं निकली अर्थात् मैंने भी डायबेटिस्को दबोच लिया; तो भी डाक्टर साहबने सावधान किया, कि पहाड़में रोग दब जाता है, मैदानमें दबा रहे तब है असली दबोचना।

कोटगढ़ ईसाई-धर्मप्रचारका केन्द्र प्रायः एक सदी तक रहा है। यहाँ

मिशनके बहुतसे बँगले और बगीचे हैं। किन्तु मिशन अँग्रेजी राज्यके सहारे फल-फूल रहा था—दर्जनों साहब, साहिबिनें यहाँकी तापहीन हवामें रहकर धर्मप्रचार कर रही थीं। किसी-किसी बहाने सरकार भी सहायता देती और बिलायतसे भी पैसा आता था। भारतकी स्वतन्त्रताके बाद दुनिया ही उलट गई। अभी सालही बीता है, किन्तु मिशनका बगलवाला घर ढंड-मंड होने लगा। क्या यहाँके मिशनकी भी वह हालत होगी जो स्पू, चिनी और केलङ्के मिशनोंकी हुई! सभी बँगलों और ठाटबाटके कायम रखनेके लिये पैसोंकी जरूरत है। बगीचे उतने पैसे नहीं दे सकते, लेकिन अभी मिशन कुछ बँगलोंको बेंच-बेंचकर भी जीवन रक्षा कर सकता है। अब मिशनके कर्णधार भारतीय हैं। वह चादरके अनुसार पैरको पसार सकते हैं। स्कूल में मिशनने अवनति नहीं की। स्वतन्त्रभारत हीमें मिडल स्कूलसे वह, हाई स्कूल बनाया गया। पादरी धनसिंहकी मैंने बड़ी प्रशंसा सुनी, जिससे आशा है मिशन सम्हल जायेगा। हमारे देशमें सभी धर्मों को विविध क्षेत्रमें सेवाका अधिकार है। मुझे यह पसन्द नहीं कि, कहीं भी वे स्मृतिशेष रह जायें। अँग्रेजोंके रहते ईसाई-संस्थाओंने अदूरदर्शितासे काम भले ही लिया हो, किन्तु ईसाई-धर्म दुर्राष्ट्रीयताका पोषक नहीं है।

प्रायः चालीस बरस पहिले सत्यानन्द स्टोक ईसाई-धर्मका प्रचार करनेके-लिये यहीं कोटगढ़में आये थे, किन्तु भारत के साधुओं और सिद्धोंके जीवनने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया, और सात बरसके लिये वह एक गुफामें बैठ गये। कोटगढ़से ठाणेदार जाते समय बड़ी खड्ड में सड़कसे नीचे अब भी वह गुफा मौजूद है। फिर गुफावास छोड़कर स्टोकने एक पहाड़ी तरुणीसे ब्याह कर लिया, और अन्तमें तो ईसाई-धर्म छोड़ सत्यानन्द स्टोक बन वह उपनिषद् के भक्त बन गये। जब मैं उनकी सौ वर्ष पहिले हरशिल (गंगोत्तरी) में आकर बसे विल्सन साहेबसे तुलना करता हूँ, तो स्टोककी बुद्धिमानीकी दाद देनी पड़ती है। हरशिलवाले साहेबने वहाँके लोगों का बड़ा उपकार किया। उसीने वहाँ पहिलेपहल आलूका प्रचार किया, गंगा द्वारा नीचे लकड़ी बहाई। उसनेभी स्टोककी तरह एक पहाड़ी स्त्रीसे ब्याह किया। उसने लकड़ीकी मोटी दीवारों का इतना ठोस मकान बनाया, कि आजभी वह बड़ी अच्छी हालतमें है। ब्याह

करते, घर बनाते उसने सोचा होगा, कि उसकी सन्तान हरशिल-निवासी बन जायेगी। लेकिन उसकी सन्तान भारतीय नहीं एङ्लोइंडियन बनी, और कहाँ चली गई इसका पता नहीं। यदि उसने भी अपनी सन्तानको भारतीय बनाया होता तो अवस्था दूसरी होती। हाँ, इसमें सन्देह नहीं, इसकेलिये उस समय परिस्थित अनुकूल नहीं थी। स्टोकने अपनी सन्तानको शुद्ध भारतीय बनाया, और स्वयं भी भीतर और बाहर दोनोंसे वे भारतीय रहे।

मैंने सत्यानन्द स्टोकको १६२१ ई० की बरसात में बम्बईमें देखा था। असहयोगका वह यौवन-काल था, सारे भारतमें राजनीतिक व्याख्यानोंकी धूम थी। स्टोक असहयोगी थे, और शुद्ध खादीके धोती-कुर्तेमें चौपाटीकी सभामें व्याख्यान दे रहे थे—"हिमालयसे कन्याकुमारी तक बस हिमशुभ्र खादी ही खादी हो जाय।" मैं भी असहयोग में भाग लेने कुर्गसे बिहारके रास्तेमें था। असहयोगी स्टोक प्रथम विश्वयुद्धमें सैनिक भरती करानेमें उसी तरह तत्परता दिखला रहे थे, जैसे गांधीजी। किन्तु युद्ध समाप्तिके बाद जो नीति अँग्रेजोंने अपनाई, उससे उन्हें घोर असन्तोष हो गया। जिस असन्तोष का उन्होंने सिर्फ अपने असहयोग द्वारा ही नहीं प्रगट किया, बल्कि युद्धके उपलक्ष्यमें जो विजय-शिखर स्थापित किया था, उसे तोड़कर उन्होंने उसी स्थान पर हिन्दूपूजा-मन्दिर बनाया। मन्दिरमें लकड़ीमें खुदे जगह-जगह उपनिषद् और गीता के संस्कृत वचन हैं। लालचन्द बतला रहे थे, कि इनमेंसे बहुतसे वाक्योंको पिताजी ने स्वयं अपने हाथोंसे खोदा था।

कोटगढ़केलिये तो सत्यानन्द स्टोक बहुत कुछ थे। वह आये थे यहाँके लोगोंको ईसाई बनाने, और बन गये स्वयं हिन्दू। किन्तु, उन्होंने कोटगढ़को एक दूसरीही चीज बना दिया, जिससे वहाँ के सभी नरनारी उन्हें आज भी प्रातःस्मरणीय पितातुल्य समझते हैं। आज कोटगढ़का इलाका उत्कृष्ट जातिके सेबोंका बाग बन गया है, इसका आरम्भ स्टोकने किया था। आज कोटगढ़के लोगोंका जीवन-तल इन्हीं सेबों की बदौलत ऊँचा हो गया है। स्टोकने अपनी ओरसे हाईस्कूल खोलकर लोगोंमें शिक्षाका प्रसार किया। इलाकेमें उसका व्यापक प्रभाव दिखलाई पड़ता है। स्टोक बड़े उदार और दयालु स्वभावके थे। कोटगढ़के लोगोंकी भलाईका ध्यान उनको अपने जीवनके अन्तिम समय (१६४६

ई०) तक रहा। गरीब किसान ऋण लेकर अपनी जमीन बनियोंको बेच देते। यह उन्हें बिना सूद ऋण देते, और कहते थे—अपनी जमीन बेंचो मत, यह आगे चलकर बहुत मूल्यवान होगी। स्टोकने अपने बगीचेमें बयालीस प्रकारके अच्छीसे अच्छी जातिके सेब लगाये थे, जिनकी पौधको उन्होंने अपनी जन्मभूमि अमेरिका से ही नहीं दुनियाके दूसरे देशोंसे भी मँगवाया था, लेकिन सिर्फ अपने लाभकेलिये नहीं। कोटगढ़में सेबोंके प्रचारमें उन्होंने अपनेको सफल और उत्साही मिश्नरी सिद्ध किया। उन्होंने यह भी सिखलाया, कि अपने सेबोंका सच्चा श्रेणी बन्धन करके ग्राहकोंमें अपनी साख बढ़ाना बहुत लाभदायक वस्तु है। उनकी समधिन तहसीलदार अमीचन्दकी पत्नी अपने बागके सेबोंको पैंतालीस हजारपर उठाकर भी श्रेणी-विभाजनका काम ठेकेदारके हाथमें नहीं छोड़ना चाहतीं। वह स्वयं बागोंमें जाकर फलोंका श्रेणीविभाजन करती हैं। स्टोकने सबसे पहिले जबर्दस्त आन्दोलन करके वहाँसे बेगार प्रथाको दूर कराया था। जनताके हितकी कौनसी बात थी, जिसमें स्टोक आगेआगे नहीं थे। फिर क्योंनहीं कोटगढ़के लोग स्टोकके निधनको अपनी वैयक्तिक क्षति समझते?

स्टोकके तीन पुत्र और तीन पुत्रियाँ हैं। दोनों बड़े पुत्र कोटगढ़ के एक बड़े गण्यमान्य व्यक्ति रायसाहेब देवीदासके दामाद हैं। सबसे छोटे लालचन्दका ब्याह स्वयं तहसीलदार रायसाहेब अमीचन्दकी लड़कीसे हुआ है। लड़कियाँ भी अच्छे घरोंमें ब्याही हैं। स्टोकपरिवार एक सुशिक्षित सुसंस्कृत हिन्दू परिवार है, जो अपने पिताके यशः शरीरको चिरंजीवी करना अपना कर्तव्य समझता है।

× × × ×

सड़कें खराब होगई हैं। मेघदेवता रातदिन बरसनेसे थकते नहीं, फिर जल्दी शिमला पहुँचनेकी क्या आशा हो सकती थी? मैं तो और भी दिन लगने की आशा रखता था, लेकिन २६ अगस्त तक ही रह सका।

डाक्टर भगवानसिंहका परिचय १९३७ ई० में केलङ् (लाहुल) में हुआ था। वह एक भक्त बौद्ध हैं, अपने नामके साथ बौध (बौद्ध) लगाते हैं। वह जन्मसे नहीं सत्संगसे बौद्ध हुये। उनकी पत्नी लाजदेवी माता-पिताकी ओरसे

बौद्ध थीं और जातिसे भी तिब्बती। मेरे लिये सालके सात-आठ महीने हिमालयमें बिताना स्वास्थ्य और कार्य दोनों दृष्टिसे अनिवार्य हो गया है। बैरी डायाबेटिसकी रामबाण औषधि हिमालय ही मालूम होती है। मेरे हिमाचलके मित्रोंने कई जगह कुटीर बनानेका निमन्त्रण दे रक्खा है। ठाकुर गोविन्दसिंह बाघी, टूटूपानी और अपने गाँव ककोहमें निमन्त्रित कर रहे हैं, जो ६, और ७ हजार फुट ऊँचे हैं। मैं ५ से ७ हजार फुट तक हीकी ऊँचाईको पसन्द करता हूँ, इससे ऊपर फल खट्टे हो जाते हैं, बर्फ जल्दी पड़ जाती है। साथ ही मैं मोटरकी सड़कसे बहुत दूर नहीं जाना चाहता, जिसमें आवश्यकता पड़नेपर नीचे आनेमें कठिनाई न हो। चन्द्रकान्तजी अपने यहाँ कुल्लूमें आनेकेलिये जोर दे रहे हैं। डाक्टर भगवानसिंहने नारकंडासे २५ मीलपर अवस्थित अनीसे थोड़ा ऊपर एक पाँच-साढ़े पाँच हजार फुटकी जगहकेलिये निमन्त्रण दिया है। ऊँचाई यहाँ बिलकुल ठीक है, पासमें देवदारोंका जंगल है, और पानीभी बहुत है। कोटगढ़के आसपासभी बना-बनाया घर मिल सकता है, किन्तु वहाँ मई-जूनमें पानीका कष्ट होता है। डाक्टर साहब ४-५ एकड़ जमीन खरीद चुके हैं, जिसमेंसे मेरेलिये अपेक्षित एक एकड़ देनेको तैयार हैं और अपने मकानके साथ मेरे कुटीरको भी बनवा देनेको तैयार हैं। इसके साथ-साथ चिकित्सक और चिकित्साकाके प्रतिवेशी होने का भी सुलाभ। देखें अन्न-जल किधर लेजाता है। अगली गर्मियोंमें तो मैं अनीका विचार कर रहा हूँ, यह नारकंडासे २५ मीलपर है, जिसमें चढ़ाई उतराई आधी-आधी है।

डाक्टर साहबको मैंने अगस्त भर रहनेके लिये लिखा था। दो-एक और सहकारियोंके भी नीचेसे आनेकी आशा थी, इसलिये मैंने एक मकान ठीक कर देनेकेलिये कहा था, और तहसीलदारनी महाशया (श्रीमती सुभद्रा देवी अमीचन्द)ने बहुत कृपा करके अपने यहाँ स्थान देना स्वीकार करलिया था। किन्तु जिस "शासन-शब्दकोश"केलिये मैं पहिले आना चाहता था, उसका काम तैयार न था। मैं २३ अगस्तको तहसीलदारनी महाशयके घर मध्यान्ह भोजनकेलिये गया और उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। तहसीलदारनी काममें बहुत चुस्त हैं। उनके लड़के प्रकाशचंद कृषिके एम्० एस्-सी० हैं और उद्यानविद्याके भी पंडित, वैसे तहसीलदारनी भी मजूरी देनेमें कंजूसी नहीं

करती, किन्तु पुत्र तो लाल-लाल बातें करता था। (अफसोस ११५५ ई० में यह तरुण न रहा)।

२४ अगस्तको भी वर्षाने अपने रंगको ढीला नहीं किया। ठ्योग से आगे इधर मोटर या मोटरबसके आनेकी कोई आशा न थी। सर्वेगमा जीप किसी वक्त भी ठाणेदार पहुँच सकती थी, परन्तु आकाशवृत्तिका भरोसा क्या? रेलवे-की बाहरी एजेन्सी ठाणेदारमें है। उसके कार्यकर्ता श्री रमेशचन्द्रजी भी नहीं कह सकते थे, कि जीप कब आयेगी। अन्तमें मैंने यही निश्चय किया, कि जैसे ही वर्षा-बूँदी कम हो, असबाब खच्चर पर लदवा यहाँसे नारकन्डा चल देना चाहिये। आगे देखी जायेगी।

डाक्टर भगवानसिंहके साथ पहाड़ी स्वास्थ्य-समस्यापर एक दिन विचार हो रहा था। उन्होंने बतलाया, कि रतिज रोग यहाँकी भयंकर समस्या है। उनके अनुमानके अनुसार कुल्लूमें ७०% लाहुल में २५% बाघीमें ७०% निर्मंडमें ७०% कोट खाईमें ७०% और कोटगढ़में २५% लोग इस रोगसे पीड़ित हैं। इसे अँग्रेजी शासनकी देन समझिये, जिसे दूर करनेकेलिये भारी परिश्रम और धनकी आवश्यकता होगी। कोटखाईमें वह बतला रहे थे, एक दर्जन घर मूत्रकृच्छ्रके कारण निस्सन्तान हो गये।

२५ अगस्तको धूप निकल आई। मन जानेकेलिए उकताने लगा, किन्तु जीपकी आशाने दिलासा देकर रोक दिया। २६ अगस्तको दिन दुर्दिन नहीं रहा। घूमते-घामते ठाणेदार चले गये। श्री रमेशचन्द्रजीकी बातसे अभीभी जीपका कोई ठौर-ठिकाना नहीं था। फिर उनके साथ स्टोक-भवनमें गये सेब तोड़नेका मौसिम हो, फिर उद्यानपति घरमें कब मिल सकता है? खबर गई तो लालचन्दजी चले आये। उनसे कितनी देरतक पहाड़के जीवनके बारेमें बात-चीत होती रही। अपने पिताके बारेमें बतला रहे थे—पढ़ाईमें मेरा मन नहीं लगा और मैं कालेज छोड़कर चला आया। पिताने जरा भी असन्तोष नहीं प्रगट किया और मेरे हाथमें दोहजार रुपये देकर कहा—जाओ सारा भारत घूम आओ। मैं दो साल तक घूमता रहा। पहाड़ी जनगीतकी बात चली, तो उन्होंने बतलाया—यहाँ एक रामायणका गीत है, जो रात-रात भर गाया जाता है। इसकी कथामें कितनीही विचित्रतायें हैं, जिनमें एक है सीताजीके बनाये

बड़ेका लंकामें पहुँचना। मुझे उस वक्त अपना डिक्टोफोन प्राप्त करनेका प्रयास याद आया। यह मशीन साढ़े पन्द्रहसौ रुपयेमें मिल रही है। वह आपके भाषण या गानेको तार पर रेकार्ड कर लेती है और फिर उसीपर लगाकर आप ग्रामोफोनकी तरह उसे सुन सकते हैं। (तारको सलेटकी तरह साफ किया जा सकता है, और फिर नये रिकार्ड किये जा सकते हैं) चीज बड़े कामकी है। उस पर मैं अपनी पुस्तक भी बोलकर लिखवा सकता हूँ, जिसे पीछे धीमी गति करके टाइप कर लिया जा सकता है, उसपर जन-गीतों और जनपवाड़ोंको भी उतारा जा सकता है, दाम भी बहुत नहीं है, लेकिन वह सिर्फ ए० सी० बिजलीसे चलती है। उसमें न डी० सी० बिजली काम देती है न बैटरी। यदि बैटरी काम देती, तो फिर क्या कहना! मेरे लिखनेपर डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवालने और पूछताछ करके लिखा, कि साढ़े आठसौ रुपये और खर्च किये जायँ तो २३० वोल्ट ए० सी० जेनरेटर और ट्रान्सफार्मर भी लिया जा सकता है। उत्साह मन्द पड़ गया, क्योंकि यह दोनों मशीनें एक-एक मनकी हैं। उनको चलानेकेलिये पेटरौल चाहिये, जो आजकल बड़ी दुर्लभ चीज है। फिर साथ ही लेखकके साथ बिजली-मिस्त्री भी बनना होगा या किसीको रखना पड़ेगा। तो डिक्टोफोनकेलिये तबतक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, जब तक कि बैटरीके चलानेवाला डिक्टोफोन तैयार नहीं हो जाता।

लालचन्दजीने मन्दिर दिखलाया। कोटगढ़के उद्यानपति चमगादड़ोंके मारे परेशान हैं। अँधेरा होते ही हज़ारोंकी संख्यामें वे कहींसे उड़कर चले आते हैं, और खानेसे भी अधिक सेबोंको बरबाद करते हैं। पचासों हजारका नुकसान हो रहा है। लालचन्दकी बन्दूक दो-चारको गिराती है, लेकिन उससे क्या बनने वाला है? उन्होंने उद्यानपति-संघके सामने प्रस्ताव रक्खा, कि दस-बारह मील दूर चमगादड़ोंके दिन के बसेरेमें पहुँचकर उनका संहार करना चाहिये। स्टोक-परिवारने इसकेलिये तीन-चार हजार रुपया भी देनेको कहा, लेकिन दूसरे लोग पैसा खर्च करनेको तैयार नहीं—बकरेकी माँ कितने दिनोंतक खैर मनायेगी? जिस तरह किन्नरों को वानर-यज्ञ करना आवश्यक होगया है, उसी तरह कोटगढ़वालोंके लिये चमगादड़-यज्ञ करना आवश्यक है।

उसीदिन मैंने तै कर लिया—यदि आज जीप नहीं आई तो कल खच्चरपर सामान लादकर नारकंडा चल दूँगा।

× × × ×

२७ अगस्तको खच्चरपर सामान रखवाकर मैं पैदलही नारकण्डे—को चल पड़ा। ११ मीलके रास्तेमें ढाईमील चढ़ाईका था। एक जगह सड़क टूट गई थी, तो भी जीपका रास्ता बना लिया गया था। नारकण्डा पहुँचनेसे चारमील पहले बाघी जानेवाली मोटर-सड़क देखी। यह १२ मीलकी सड़क इसी साल ताजी-ताजी बनाई गई है, जो आशा है कुछ दिनों में आगे खदराला पहुँच जायेगी, फिर कुछ सालों बाद रोहडू होते टौंसके किनारे चलकर एक डाँड़ा पार हो सइयामें आ देहरादून—चकराता मोटर-सड़कमें मिल जायेगी। इसी सड़क पर कुटीर बनानेके लिये ठाकुर गोविन्द सिंहने निमंत्रण दे रक्खा है।

पौने चार घन्टा चलनेके बाद दोपहरको मैं नारकंण्डा पहुँच गया। नारकण्डा वस्तुत: नागकंडाका अपभ्रंश है। कंडा पर्वतपृष्ठको कहते हैं। नाग देवताकी मढी अबभी मोटरके अड्डेके पास मौजूद है, यद्यपि पासकी देवीनेनाग की महिमाको घटा दिया है। नारकंडा ६१६० फुट अर्थात् प्राय: चिनीके बराबर ऊँचा है। जाते समय यह स्थान जितना सर्द मालूम हुआ था, अब उतना नहीं था। हिमालयके सभी डाकबँगलोंको नारकंडेके डाकबँगला जैसा होना चाहिये। यहाँ कोई भी पथिक ३) दिन किराया देकर ठहर सकता है। भोजनकी वस्तुओंका भी मूल्य नियत है, और रसोइयाँ मौजूद रहता है।

यदि आशा होती, तो मैं दोचार दिन भी मोटरकेलिये ठहर सकता था, लेकिन कोई आशा-भरोसा नहीं था। आगेकेलिये मैंने तो तै किया है, बरफ पिघलते ही अप्रैलके आरम्भमें नीचेसे इधर आजाऊँ, और अक्तूबरके अन्तमें लौटा करूँ। अनी यहाँसे २४ मील है; जिसमें सतलुजके किनारे लूरी तक १३ मील उतराई ही उतराई है,—वहाँ तक आज भी जीप जा सकती है। फिर दो मील नदीके किनारे नीचे जाकर पुलपार हो ६ मील चढ़ाई चढ़कर अनी आती है। अनीसे साठ-बासठ मील आगे बनजारमें मोटर सड़क मिल जाती है। नारकंडेमें बैठे-बैठे मेरा ध्यान अनीपर गया, फिर शिमला-कुल्लू सड़कपर भी।

आज कृष्णजन्माष्टमी थी। लोग बड़ी देर तक गानाबजाना करते रहे। मैं भी निश्चिंत होगया था, क्योंकि किसी बीमारको शिमलासे लेकर एक रिक्शा रामपुर गया था और अब खाली लौट रहा था। मैंने उसी को ठ्योग तक के लिये १८) मेंकरलिया। वैसे होता तो २१ मीलकेलिये १८) कौन लेता? लेकिन रास्ता उतराईका था और छूछे जानेसे १८) पैदा कर लेना बुरा नहीं था। यद्यपि रिक्शा सामान और सवारी दोनोंकेलिये किया था, लेकिन सवारी करनेकी इच्छा न थी।

× × ×

चार उबले अंडे और सेब पाकेटमें रखकर २८ अगस्तको मैं सवेरे ही सात बजे चल पड़ा। २२ मीलमें साढ़े सत्रह मील अगियाबैताल की तरह चलता ही गया। सड़क कहीं बुरी नहीं थी, लेकिन मोटर वालोंका काम जब ठ्योगसे ही बन जाता है, तो वे आगे क्यों जायँ? उनकी बलासे सेबके बगीचे और आलूके खेतवाले रोते रहें। मैंने सुना था, दो बजे ठ्योगसे मोटर चलती है। आखिरी साढ़े चार मील मैं रिक्शे पर बैठ गया। वहाँसे कई मील पहले सड़क पर कई जगह कोलतारके पीपे पड़े हुये थे, जिनमेंसे बहुतसा अलकतरा बहकर बरबाद हो रहा था। सड़ककी मरम्मत करके उसपर डालनेकेलिये पीपे लाये गये थे, लेकिन काम खटाईमें पड़ गया। सड़ककी मालिक पंजाब-सरकार यह निश्चय नहीं कर पा रही है, कि अभी सड़कको एकतरफा यातायातकेलिये रखकर मरम्मत कर दी जाये, अथवा उसे दूनी चौड़ी करके दोतरफा यातायात-लायक बना दिया जाये? नौकर-शाहीकी "जय जय" कैसे मनाई जायगी, यदि सड़क दोचार जगह धसक कर नीचे नहीं गिरी, दस-बीसहजारका और खर्चा न पड़ा और पाँच-दस हजारका अलकतरा भी नष्ट न हुआ! सरकारों को कुछ मत कहिये, कामके मारे उन्हें साँस लेनेकी फुरसत नहीं। और बहुतसे काम हो रहे हैं इसी तरह। पुराने नौकरशाह अँग्रेजोंके कोड़ेके डरसे कुछ काम भी करते थे, किन्तु अबतो "परमस्वतंत्र न शिर पर कोई"; क्योंकि मन्त्रियोंको अँगुली पर नचाने की विद्या यह अच्छी तरह जान गये हैं।

मैं सामान-सहित दो बजेसे पहिले ठ्योग पहुँच गया। कैलाश कम्पनीकी मोटर-बस सवारीकेलिये आई थी, लेकिन लादा जा रहा था आलू। मिलने

वाला था आलू का चार रुपये मन, और आदमी का डेढ़ रुपया, फिर वह क्यों सवारी ले जाना पसन्द करती। दस-बारह सवारी बैठाली, और भीतर तथा छतपर जितने आ सके उतने आलूके बोरे लाद लिये, फिर ड्राइवर साहबने हुकुम दिया, कि अब जगह नहीं है। अन्धेर-नगरीमें कौन पूछता है ? मैं ताकता ही रह गया और बस चली गई। बँगलेके चौकीदार-साहेबका भी कहीं पता नहीं था, नहीं तो सामान वहाँ रखाकर निश्चिन्त बैठता। अब मैं छ बजेकी बसकी प्रतीक्षा करने लगा।

बस काफी देर करके आई और धड़ाधड़ आलूके बोरे लादे जाने लगे। ३०८ लादने का अर्थ था १२० रुपया। सवारीसे इतना कहाँ मिल सकता था ? मुझे डर लगने लगा, कि कहीं इस समय भी छूट न जाना पड़े। खैर, मैं उन भाग्यवानोंमें से था, जिन्हें आलूके साथ बसमें बैठनेकी जगह मिल गई। कई यात्री अबभी छूट गये। यह भी कैलाश-कम्पनीकी मोटर-बस थी। आदमीकी जगह आलू लादना अवैध था, दुर्लभ पेट्रौल लोगोंकी सुविधाके लिये इन मोटर-बनियों को दिया जाता था, और उसका था यह सदुपयोग !! आलूके किरायेमें ड्राइवरको भी कुछ मिला होगा, लेकिन २५८ मनके सौ रुपयोंमें पाँच से अधिक नहीं, बाकी रुपये शिमला पहुँचनेसे पहिले ही रास्तेमें सेठ साहबके हाथमें उसने देदिया। इस पाप और अत्याचारके रोकने के लिये वहाँ कौन था ? पुलिसको भी कुछ मिलता होगा, तभी तो छ्योगमें अपने सामने यह सब होते देख आँख मूँदे बैठी थी। भ्रष्टाचार हटानेका सारे देशमें होहल्ला मचा हुआ है, किन्तु वह इतना सहल रोग नहीं। औषधि कठोर है, नहीं तो रोग असाध्य नहीं है। सौ पचास मोटी तोंदवालोंको कालेबाजारा और भ्रष्टाचारी के अपराध में नगरोंके चौरस्तेपर फाँसी पर लटका दीजिये और सर्वस्वहरण कर लीजिये, फिर देखिये किसकी हिम्मत होती है ! यदि भारतको भयंकर आर्थिक संकट और राजनीतिक असंतोषसे बचाना है, तो "नान्यः पन्थ विद्यतेऽयनाय"।

६ बजे बस शिमला पहुँची, और कुछ मिनटों बाद मैं फरग्रोवमें नायर-परिवार में था।

× × ×

चिट्ठियोंसे पता लगा कि ५ सितम्बरको सम्मेलन कार्य-समिति की बैठक है,

जिसमें ३ को चलकर ही मैं उपस्थित हो सकता था। पाँच दिन मेरे पास थे, अब इन्हें चाहे शिमलामें बिताऊँ या दिल्लीमें ! मैंने दिल्लीके प्रोग्रामको स्थगित कर दिया। प्रोफेसर लाजपतराय नायर, उनकी पत्नी और बहिन सबने मेरे स्वास्थ्यमें सुधार होनेकी बात कही। मुझे भी मालूम हो रहा था, किन्तु यह था हिमालय और नित्य प्रति कमसेकम पाँच मील टहलनेका बरदान। शिमलामें एक काम था, मेहताजीसे मिलकर कनौरके संबंधमें बातचीत करना और प्राग्बौद्धकालीन समाधियोंके कांस्य-पात्र तथा मद्य-कुतुपको संग्रहालय केलिये भेंट करना। यह काम अगले ही दिन हो गया। मेहताजीका आग्रह रहा, कि मैं चम्बा जाऊँ, जिससे आठ मील पर खजियार स्थान पाँचहजार फुटसे ऊँचा और बहुत रमणीय है। उनका यह भी कहना था, कि चम्बा चित्रकला तथा पुरातत्त्व दोनोंकी दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है "किधर लेजाऊँ दिल, दोनों जहाँ में सख्त मुश्किल है"।

३ सितम्बरको शिमलासे प्रस्थान किया। पहाड़ी रेलसे कार कालिका जल्दी पहुँचाती है, यह सोचकर कारसे हो चला। शिमला से अव्वल तो कार ही लेट चली, फिर हमारे भद्र सहयात्रियोंने सोलोन के रेस्तोराँमें घंटे भर लगा दिये। गाड़ीकी रोशनी भी जैसी हो तैसी थी। मेरे दाँतमें दर्द अलग हो रहा था और गाड़ीके खड्डमें गिरनेका हर वक्त डर था अलग। जैसे-तैसे आठ बजे कालिका पहुँचे। कलकत्तामेल तैयार था और हमारी बर्थ रिजर्व थी। सामान रखवाकर लेट गये। अबतो सीधे प्रयाग चल कर उतरना था, लेकिन गर्मीकी बात न पूछिये।

२३. किन्नर-देशपर एक ऐतिहासिक दृष्टि*

यह किन्नर देश है। किन्नरकेलिये किंपुरुष शब्दभी संस्कृतमें प्रयुक्त होता है, अतः इसीका नाम किंपुरुष देश या किंपुरुषवर्ष भी है। किन्नर या किंपुरुष देवताओंकी एक योनि मानी जाती थी, किन्तु उससे हमें इतिहासके जाननेमें कोई सहायता नहीं मिलती। यदि किन्नर का शब्दार्थ "बुरा आदमी" ले लें, तो अपने शत्रुकेलिये ऐसे शब्दों का प्रयोग आज भी हुआ करता है। किन्हींने

* विशेष के लिये देखिये "हिमांचल प्रदेश"

अपने शत्रुओंको यह नाम दिया होगा, यह तो जरूर मालूम होता है, और ऐसा नाम आर्यों की भाषामें होनेसे यह अपराध आर्योंका ही हो सकता है, तो क्या किन्नर आर्योंसे भिन्न थे ? हाँ, भिन्न ज़रूर मालूम होते हैं। किन्नरदेशियोंको आजकल आसपास वाले कनौरा कहते हैं। पहिले कनौर या किन्नरका क्षेत्र बहुत विस्तृत था। कश्मीरसे पूर्व नेपाल तक प्रायः साराही पश्चिमी हिमालयतो निश्चित ही किन्नरजातिका निवास था। चन्द्रभागा (चनाब) नदीके तटपर आजभी कनौरी-भाषा बोली जाती है, सुत्तपिटकके 'विमानवत्थु' (ईसापूर्व द्वितीय-तृतीय सदी) में लिखा है "चन्द्रभागानदीतीरे अहोसिं किन्नर तदा", जिससे स्पष्ट है कि पार्वतीय भागके चनाबके तटपर उस समय भी किन्नर रहा करते थे। इसी तरह उत्तरकाशी (टेहरी) के पास के धरासू आदि "सू" शब्दान्त गाँव बतलाते हैं, कि वहाँ किन्नरी भाषा बोली जाती थी—किन्नरीभाषा में "शू" या "सू" शब्द देवता के लिये आता है।

अस्तु, जैसेभी हो आधुनिक "कनौर" शब्द किन्नरका ही अपभ्रंश है, और किसी समय किंपुरुषवर्ष प्रायः सारे हिमालयका नाम रहा होगा, यद्यपि आज वह संकुचित हो बुशहर-रियासत (अब महासू जिला) की एक तहसील चिनी, तथा कुछ नीचे उतरकर उससे लगे हुए २०, २५ गाँवोंके लिये व्यवहृत होता है।

भाषातत्वकी दृष्टिसे विश्लेषण करनेपर कनोरी भाषामें (जिसका सर्वाधिक प्रचलित रूप हम् स्कद है, और बोलियाँ हैं थोशङ् पो-स्कद, शुम्-छो-स्कद्, शुन्नम् स्कद्, उस्कद्, न्यम्स्कद्) तीन भाषाओंके तत्व मिले हुये हैं—तिब्बती (भोटभाषा), संस्कृत और इन दोनोंसे भिन्न एक तीसरी किरात भाषा, जिसे हम "शू भाषा" कह लेते हैं। मानव-समाजकी अतिपरिचित वस्तुओंके नामोंमें इन तीनों भाषाओं का भाग कितना है, इसे अभी ठीकसे नहीं कहा जा सकता, क्योंकि किन्नरका अभी पूर्ण शब्दकोश तैयार नहीं हुआ है। यहाँ हम कनोरी-भाषा (हम्-स्कद्) के शब्दोंकी कुछ बानगी देते हैं।

(१) सबसे पहिले भोटभाषाके शब्दोंको लीजियेः—मे (आग), शिङ् (काष्ठ), सेम्चन् (प्राणी), चङ्कू (भेड़िया), शा (मांस), क्रा (केश), मिक् (आँख), मिक्पू (भौं), कद् या स्कद् (भाषा), निश् (दो), शुम् (तीन),

ङः (पाँच), ट्रुग (छ), किम् (घर), लान् (उत्तर), शीमिक् (मृत्यु), तोङ् मिक् (मारना), ताङ्मिक् (देखना दिखाई देना), ज़ल्मिक (भेंट करना), फ़म्मिक (हराना), शोमिक् (मारना), तुङ-मिक् (पीना-पिलाना) ।

(२) और संस्कृतके तत्सम, तद्भव शब्द हैं, (इनका प्रयोग करते समय अन्तमें बहुधा इङ् - या अङ् - जोड़ दिया जाता है)—मटिङ्- (मिट्टी), दुवङ्- (धुआँ), अन्ध्यारङ्-(अंधार), सोर्गङ्- (स्वर्ग, आकाश), रतिङ् (रात), रितङ् (ऋतु), भारङ् (भार), खेरङ् (क्षीर), दुवारङ् (द्वार), मजङ् (मध्य), कुखिङ् (कुक्षि) । कभी-कभी संस्कृत शब्दोंके अन्तमें अस् भी होजाता है, जैसे—चोरस् (चोर), परमेशरस् (परमेश्वर), ज़ेपालस् (अजपाल) । संस्कृतके शब्द कनौरी भाषामें काफी मिलते हैं और सभी तरह के—काठो (काष्ठ), कोहर (कुहरा), बिजुल (बिजली), रिखा (रीछ), खउ (खाद्य), छोप (सूप, मांसरस), रँडोलस् (रँडुवा), बोगवान् (भगवान्), पुज़ा (पूजा), बोदी (बहुत), बया (भैया) । संस्कृत धातुओंमें निक्, मिक् लगाकर प्रयोग किया जाता है—लोन्निक् (लाना), भगेन्निक् (भागना), हटेमिक् (हटाना), विचारेमिक् (विचारना), भ्यङ्मिक् (भय करना), पुज़ा लन्निक (पूजा करना), पकयामिक् (पकाना), फेक्यामिक् (फेंकना), पोलटेन्निक् (पलटना), जोडेमिक् (जोड़ना), लटक्यामिक् (लटकाना) भूज्यामिक् (भूँजना), वसन्निक् (बसना), बज़मिक् (बजाना), छुरयामिक् (छोड़देना), रङ्-यमिक् (रंगना), सज्यामिक (सजाना), लजाशेमिक् (लजाना), सुँचन्निक् (सोचना), कट्यामिक् (काटना) गोल्यामिक् (गलाना) ।

(३) "शू" (किरात) भाषा वस्तुतः कनौरी भाषाका मूल अंश है । अब कुछ उसके शब्दोंको लीजिये—शू (देवता), ओम् (पथ), रङ् (गिरि) ती (पानी), शुप् (फेन), पोम् (हिम), ठंङ् (बर्फ), ठो (अँगार), राँक् (ताप), लान् (वायु), जू (बादल), युनेक् (सूर्य) लाइ (दिन), गोल् (मास), रुद (सींग), कुइ (कुत्ता), फो (हरिन), होम् (भालू), ऐरङ् (आखेट), खस् (भेड़ी), दमस् (बैल), रो (तख्ता), पोलाच (रुधिर), बस् (मधु), टालङ्-(चमड़ा), शोक् (कण्ठ), ताकुस् (नाक), गार् (दाँत), बङ् (चरण), लिङ् (हृदय), रिङ्स् (बहिन), छुङ् (पुत्र), चिमेत् (बेटी),

छुद् (जामाता), तेम् (पुत्रवधू), रु (ससुर), तेते (दादा) कोतेते (परदादा), कोशस् (मित्र), ज़ङ् (सोना), ठोग् (सफेद) सै (दस), रा (सौ) लोन्निक (बहुत), कुस्क्या (बहुत ज्यादा) केन् (तुम), कोमो (भीतर), रेनम् (बसन्त), ग्या (नीचे) ईमिक् (प्रश्न करना), रोमिक् (बोलना), हुचेमिक् (होना), स्कुन्निक् (उबालना), छुन्निक् (बाँधना), रन्निक् (देना), रेन्निक् (बेंचना), युन्निक् (चलना, चूर्ण करना), लन्निक (करना), कन्निक (बुलाना), बुन्निक् (आना), द्वन्निक् (निकलना, प्रकट होना), लोन्निक् (कहना), ग्वान्निक (खोदना, काटना), कस् मिक् (मिलाना), लन्निक (बनाना, पकाना), उन्निक् (लेना, माँगना), तोशेमिक् (बैठना), बन्निक (परिहास करना, हँसना), छिवमिक (चूसना), पन्निक (उबालना पोंछना), हुन्निक् (सीखना), नार्मिक् (गिनना), चेन्मिक् (सीना), (सक्युबमिक्), लादना (उठाना)।

कनौर लोगोंके प्रागैतिहासिक परिचयके लिये अभी तक उनकी भाषा ही एकमात्र सहायक है, आगे चलकर संभव है, उस समयकी भौतिक सामग्री भी प्राप्त हो जाये। किन्नर जातिका सबसे पुराना स्तर है किरात। आर्योंसे पहले खशोंके साथ उसका समागम हुआ मालूम होता है। आर्य ताम्रयुगमें भारतमें पहुँच चुके थे। उस समय चंद्रभागासे बहुत पश्चिम तक किन्नर रहते और उसी समय खस पशुपालोंसे उनका संपर्क हुआ हो। आगे चलकर तो यह संपर्क तथा प्रभाव इतना बढ़ा, कि आज अधिकांश किन्नरों (कनेतों) ने अपनी भाषाको सर्वथा छोड़ दिया। जैसे हिमाचलके निम्न भागके किन्नर आर्योंके बाहुल्य और प्रभावके कारण आर्य-भाषा-भाषी बन गये, वैसे ही उत्तरी छोरके किन्नर पीछे भोट-देशियोंके प्रभावमें आकर भोट भाषा-भाषी हो गये।

भोटवासियोंके संपर्कमें कब आये? आजकी आबादीकी भाषा और मुखाकृति को देखकर यह समझना गलत होगा, कि मान-सरोवर प्रांत, लदाख और कनौरके सीमांत भाग (हङ्रङ्) में पहिले भोटवासी रहा करते थे। वस्तुतः भोट-जातिका पश्चिममें विस्तार ईसाकी सातवीं सदीमें होने लगा, जबकि भोट-सम्राट् स्रोङ्चन-गेम्बो (६३०-५० ई०) ने सारे तिब्बत, सारे हिमालय और गिलगित्, चीनी तुर्किस्तानसे ह्वाङ्हो तट तक फैले भोटसाम्राज्यकी स्थापना की।

इसी समय चीनी तुर्किस्तानकी भाँति किन्नर-देशमें भी भोट सैनिक और शासक पर्याप्त संख्यामें आकर रहने लगे, कितने ही भोट मेषपाल भी उत्तरी चरागाहोंमें पशुचारण करने लगे। भोट-साम्राज्य-स्थापक स्रोङ्-चन्-गेम्बो ही तिब्बतमें बौद्धधर्मका स्थापक तथा तिब्बती साहित्यका भी आरंभक था। उससे पहिले आधुनिक किन्नर-देशमें बौद्ध-धर्म पहुँच चुका था, यह संदिग्ध मालूम होता है। अशोकके समय बौद्ध धर्म प्रचारक दूर-दूर तक पहुँचे थे, तो भी वह यहाँ के जैसे पिछड़े लोगोंमें पहुँचे, इसका प्रमाण नहीं मिलता। हाँ, अशोकके राज्यसे इनका संपर्क जरूर रहा होगा। देहरादून जिलेमें चकराताकी सड़कपर पहाड़से नीचे उतरते ही कालसीका पुराना किंतु अब ध्वस्तप्राय नगर पड़ता है। इसीके नीचे यमुना तटपर अब भी वह शिला है, जिस पर अशोकके अभिलेख खुदे हैं। अशोकके और अभिलेखोंकी भाँति यह शिलालेख भी ऐसे स्थान पर खुदवाया गया था, जहाँ अधिक जनसमागम होता था। कालसी (खलतिका) उस समय मध्यदेशके साथ हिमालयके व्यापारका एक प्रधान केन्द्र था, इसमें संदेह नहीं। यहीं हिमवन्तकी समूरीखाल (कादली मृग), पशम तथा कोमल ऊनके दुस्स, कस्तूरी तथा दूसरी बहुमूल्य वस्तुयें आकर बिकती थीं। पालीवाङ्मयमें उल्लिखित (अजपथ, बकरीका रास्ता) यहीं से आरंभ होता था। आज भी जाड़ोंमें काफी संख्यामें कनौरे अपनी भेड़-बकरियोंको लेकर कालसी पहुँचते हैं; यद्यपि व्यापारकी मंडियाँ रामपुर (बुशहर), शिम्ला और कुल्लूमें खुल जानेसे अब कालसीका वह महत्त्व नहीं रहा, और वह प्राचीन नगरी सिसक-सिसक कर मर रही है।

उपरोक्त कथनसे यह निश्चित है, कि ईसापूर्व तीसरी सदीमें कनौर लोगोंका अशोकके साम्राज्यके साथ संपर्क था। बौद्ध-धर्मसे संपर्क स्थापित करनेकेलिये उनमें संस्कृतिका स्तर ऊँचा होना चाहिये था, जिसका पता उस समय नहीं मालूम होता। इसका प्रमाण कनौरकी प्रत्येक पुरानी बस्तीमें पाई जानेवाली वह मृतक समाधियाँ हैं, जिन्हें यहाँके लोग भ्रमसे "खछे-रोम्खङ्" (मुसल्मान-कब्र) कहते हैं, इसीलिये कि आधुनिक कनौरे सिवाय आपत्कालके अपने मुर्दोंको जलाते हैं। मकानकेलिये नींव खोदते, खेत बनाते या सड़क निकालते समय जब कोई पत्थरके टुकड़ोंसे चुनी, पटियासे ढंकी मृतक-समाधि निकल आती है, तो उसे वह मुसल्मानकी कब्र कह उठते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम, कि मुसल्मानी

कब्रोंमें बर्तनोंमें भोजन और मदिरा नहीं रखी जाती, और नहीं इस प्रदेशमें मुसल्मानोंका कभी निवास रहा। वह यह भी नहीं समझ सकते, कि कभी उन्हींके पूर्वज अपने मृतकोंको जलाते नहीं गाड़ते थे, और मृतात्मायें कब्रमें आकर भूखी न रह जायें, इसकेलिये प्राचीन मिस्रियोंकी भाँति कब्रमें खाद्य और पेय सामग्री रखते थे।

जहाँ तक मुझे स्मरण है, किन्नरकी इन मृतक-समाधियोंकी ओर विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ, यद्यपि लदाखकी मृतक समाधियों का उल्लेख हुआ है, और यह भी माना गया है, कि पहिले लदाखमें मंगोलायित जाति नहीं रहती थी। जून १९४८ में ऊपरी कनौरके लिप्पा (लितिङ) गाँवमें मैं ठहरा था। वहाँके जोतिसी लामाने किसी गुंबा (मठ) की नींव डालते समय हड्डी निकलने की बात कही। फिर जब मैंने पूछा, तो सीधा सादा उत्तर मिला इधर "खछे-रोम्खङ्" बहुधा निकल आती है। खछे (मुसलमान)-कब्र यहाँ नहीं हो सकती, सोचकर मैंने पूछा—'हड्डीके साथ बर्तन भी रहते हैं।' उत्तर मिला—"बर्तन मिलना अनिवार्य है।" यह भी पता लगा, कि बर्तन बहुधा मिट्टीके होते हैं, जिन्हें लोग फेंक देते हैं, या लड़के खेलकर फोड़ डालते हैं। और पूछताछ करने पर एक आदमीके खेतमें कुछ साल पहिले कब्र निकलनेका पता लगा। उसे बुलाकर कुदाल ले हम लोग उसके बोये खेतकी ओर चल पड़े। वह बारबार कह रहा था, कि कब्रको हमने खोदकर फेंक दिया। उसके खेतमें कुदाल चलानेकी नौबत नहीं आई; उसके पड़ोसी पंजीरामके खेतमें भी कब्र निकलनेका पता लगा। आठ साल पहिले किसी पुजारीकी असावधानीसे आधा गाँव जल गया—यहाँके मकानोंका अधिक भाग लकड़ीका होता है। पंजीरामने अपना घर गाँवके बीचमें अवस्थित अपने खेतमें बनाना आरंभ किया। नींव खोदते समय कुदाल पत्थरके पटियेसे टकराई। पटिया हटाने पर पातालपुरीकी ओर जानेका द्वार मिला, जिसके नीचे उतरनेकी पत्थरकी खुड्डियाँ थीं। पंजीरामने हाथ-दो हाथ खोदकर छोड़ दिया। लोगोंने छिपे खजानेकी बात बतलाकर उत्साहित किया। गाँवके जेलदार बंसीलाल भी पहुँच गये, और कुदालें चलीं। चार-पाँच हाथ नीचे जानेपर जगह कुछ चौड़ी थी, जिसमें मुर्देकी हड्डियाँ और चीजें मिलीं। पंजीरामने चीजोंके मिलनेसे मुझसे इन्कार किया, किन्तु जेलदार

के कथनानुसार उसमें बर्तन आदि निकले थे। हाँ, खजाना नहीं मिला। पंजीराम अब उस स्थानपर अपना घर खड़ाकर चुके थे। मैं उसे भीतरसे देखनेका आग्रह कर रहा था। पंजीरामने कहा—अभी एक मास पहिले इसी खेतमें ऊपरी दीवार (मेंड़) के पास एक "खछे रोम्खङ्" निकली थी।

पंजीरामकी जानमें जान आई, जब मैंने कहा—चलो इसीको खोदो। कब्र खेतके ऊपरी सिरेपर दीवार (मेंड़) की जड़में थी, जिसके ऊपरसे पानीकी नाली बहती थी, और बरसोंसे पानी उसके भीतर पहुँच चुका था। खुदवानेपर तीनहाथ लम्बी डेढ़हाथ चौड़ी हाथभर ऊँची पाषाणखंडोंसे चिनी कब्र मिली। पंजीरामकी पहिली कुदालने ढाँकने की एक पटियाको ही वहाँ रहने दिया था, उसे हटवाया गया। हड्डियाँ अस्तव्यस्त फेंकी हुई थीं, और पानी लगनेसे खुसखुकर टूट रही थीं। खोपड़ी आधी (लम्बाईमें) थी, जिसकी लम्बाईका आधा घेरा १८ इंच और चौड़ाईका आधा घेरा छ इंच था। देखनेसे स्पष्ट मालूम होता था, आदमी दीर्घकपाल था। हाथपैरकी हड्डियाँ बतला रही थीं, कि आदमी लंबे कदका था और उसे कब्र में पैरोंको मोड़कर ही रखा जा सका होगा। खोपड़ीमें ऊपरी दाँतोंकी आधी पंक्ति मौजूद थी, जिसमें तीन दाढ़ें (तीसरी खोखली), फिर दो दाँत, एक कुकुरदंत फिर एक टूटे दाँतकी जगह और तब दो सामनेके दाँत—जड़में कुछ आगे को बढ़े थे। आदमीकी आयु ३५-४० सालकी रही होगी। हड्डियाँ इतनी खुसखुसी थीं, और इतनी टूटती थीं, कि उन्हें दिल्ली पहुँचनेका प्रबन्ध नहीं किया जा सकता था। यद्यपि मेरी बड़ी इच्छा थी, कि एक सम्पूर्ण कंकाल हाथ लगे, किन्तु यहाँ कब्रें स्वेच्छासे खोद कर निकाली नहीं जा सकतीं। गाँवके वैद्यने आँचल फैलाकर हड्डियोंको माँग लिया। उन्होंने उन्हें जला-घोटकर दवा तैयारकी होगी, और उसे कितनेही बीमारोंके पेटमें उतारा होगा।

इस कब्रसे निम्न ऐतिहासिक बातोंका पता लगा—(१) लिप्पाके पुराने निवासी आजकलके अपने वंशजोंकी भाँति गोलकपाल या मध्यकपाल न हो दीर्घकपाल थे—वैसेही जैसे लदाखके पुराने निवासी; (२) वह मुर्दोंको जलाते नहीं गाड़ते थे, (३) कब्रमें मुर्दोंका शिर पश्चिमकी ओर होता था; (४) मुर्देके साथ खाद्य और पेय रखते थे; (५) संभवतः लोग लम्बे कदके थे। कब्र खोदते

समय पंजीरामको मालूम हुआ, कि मैं कब्रसे निकली चीजका अच्छा दामभी दूंगा, इसलिये उन्होंने घरसे लाकर एक काँसेका कटोरा और एक मिट्टीका टोंटीदार मद्यकुतुप देदिया। उनका कहना था, कि दोनों चीजें इसी कब्रमें शिरके पास दाहिनी ओर रखी हुई थीं। लेकिन उनकी बात संदिग्ध है। हो नहीं सकता, कि बड़ी कब्रके मुर्देके पास कोई बर्तन न रहा हो। जेलदारनेभी दूसरे दिन चीजोंके निकलनेपर जोर दिया, और जब पंजीरामको बुलाया, तो उन्हें आने की हिम्मत न हुई। ऐसा कटोरा और मिट्टीका मद्यकुतुप आजकल इस इलाकेमें नहीं बनते। दोनोंके कारीगर अपनी कलामें दक्ष थे। कटोरा साढ़े सात इंच व्यासका पूर्ण अर्धगोल है, जिसकी पेंदीकी धात बहुत जगह उड़ गई है। कुतुपमें अँगूठे जाने लायक मुँह और एक पतली सुन्दर टोंटी लगी है।

समाधिके कालके बारेमें कुछ बातें कही जा सकती हैं—(१) उस समय यहाँ दीर्घकपाल आदमियोंकी बस्ती थी, जिनका तिब्बती गोलकपाल लोगोंसे संपर्क नहीं हुआ था; (२) अभी बौद्ध धर्मके कर्मके सिद्धान्तका परिचय नहीं हुआ था, इसलिये मृतकके खाद्य और पेयका प्रबन्ध करना पड़ता था—अर्थात् यह समाधियाँ उस समयकी हैं, जबकि भोट (तिब्बती) लोगोंका पश्चिममें विस्तार नहीं हुआ था, या राज्यविस्तार होनेपरभी अभी उसका व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा था। भोट-इतिहाससे हमें मालूम है, कि ईसाकी सातवीं सदीके मध्यमें भोट राज्यका विस्तार इस प्रदेशमें हुआ था, व्यापक प्रभावकेलिये कमसेकम एक सदी और होनी चाहिए। इस प्रकार ऐसी कब्रें आठवीं सदीसे पीछेकी नहीं हो सकतीं।

यह कहनेसे यह भी मालूम हुआ, कि कनौरकी भाषामें तिब्बती शब्द और लोगोंमें तिब्बती-रक्त भी सातवीं सदीके मध्यसे सम्मिलित होने लगा। आर्योंकी भाषा संस्कृत और रक्तका भी प्रभाव उनके प्रथम संपर्कके समय ताम्रयुग अथवा ईसापूर्व द्वितीय सहस्राब्दीमें आरम्भ हुआ, जो आगे बढ़ताही गया और आज तो किन्नरोंका ऐसा बहुत थोड़ा ही भाग रह गया, जिसने अपनी आदिम भाषा (किरात) के कुछ अंशको सुरक्षित रखा है। प्राचीन किन्नरोंका भारतकी अन्य प्राचीन जातियों और विशेषकर प्रागार्य सिंधुजातिसे क्या सम्बन्ध था, इसपर कल्पना दौड़ानेका इस छोटे से लेखमें अवसर नहीं है।

× × × ×

किन्नर जाति और देशके इतिहासको हम निम्नभागोंमें बाँट सकते हैं—

(१) प्रागार्य । या प्राग्-खश आदिम किन्नर) काल	ताम्र युग
(२) प्राग्भोटकाल	ईसवी सातवीं सदीतक
(३) भोटकाल	ईसवी तेरहवीं सदीतक
(४) ठाकरशाही	पंद्रहवीं सदीके अंततक
(५) कामरू (रामपुर)-राजवंश	फर्वरी १६४८ ई० तक

प्रथमकालकी भौतिक सामग्री अभी हमें प्राप्त नहीं है, उसके बारे में भाषाके आधारपरही हम कुछ कल्पना कर सकते हैं, जैसा कि हमने ऊपर किया भी और सजातीय भाषाओंके तुलनात्मक अध्ययनसे कुछ और कह सकते हैं। प्राग् भोटकालकी सामग्रीसे हमें अधिक बातोंका पता लग सकता है, यदि इन "खछे-रोम्खङों" की सावधानीसे खोदाई और जाँच-पड़ताल की जाये। इनका पता मुझे लिप्पासे नीचे (जंगी, रारङ् अकूपा) हीमें नहीं बल्कि ऊपर कनम्, स्पू होते भोटसीमापर अवस्थित भारतके अंतिम गाँव नमूग्या तक मिला है। स्पूसे एक मिट्टीका बर्तन भी हस्तगत हुआ। कनम्में कुछ साल पहिले तिब्बत-हिन्दुस्तान सड़कको नई जगहसे निकालते समय कई कब्रें निकलीं, जिनके मिट्टीके बर्तनों और हड्डियोंको "खछे-रोम्खङ्" समझकर फेंक दिया गया। आश्चर्य यह है, कि इस सड़ककी देखरेख भारतीय इन्जीनियर और ओवसियर कर रहे थे, जो अनपढ़ नहीं थे। किन्तु, पठित होनेका अर्थ संस्कृत होना नहीं है। स्वतन्त्र हिमाचल-प्रदेश और उसके योग्य चीफ-कमिश्नर श्री एन० सी० मेहता को देखना होगा, कि अबसे ऐसी बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री नष्ट न होने पाये।

मृतकसमाधियोंकी उपलब्ध सामग्री (काँसेका कटोरा और मिट्टीकामद्यकुतुप) से पता लगता है, कि प्राक् भोटकालमें किन्नर लोगोंका सांस्कृतिक तल आजसे निम्न नहीं था, यद्यपि अभी उनके धार्मिक विश्वास अधिक प्रारंभिक थे।

भोटकाल (७ वीं-१३वीं सदी)—भोट-साम्राज्य-स्थापक स्रोङ्-चन्-गेम्बो (६३०-५०ई०) का वंश ६०८ ई० तक शक्तिशाली रहा। अंतिम सम्राट् ओद्-सुङ्स (काश्यप ६०८-६५) के समय वह छिन्न-भिन्न होने लगा, और अंतमें अवस्था यहाँतक पहुँच गई, कि ओद्-सुङ्सके पुत्र दपल्-खोर्-व-चन (६८३ ई०)

को राजधानी ल्हासा छोड़ पश्चिमकी ओर भागना पड़ा। उसने पश्चिमी तिब्बत (मानसरोवर प्रान्त या ङरीकोर् सुम्) को अपने अधिकारमें किया। बाल्तिस्तान, लदाख, लाहुलही नहीं वर्तमान कनौर और उत्तरकाशी (टेहरी) से नीचे तक गढ़वालके कितने ही भाग परभी उसका अधिकार था। किन्तु उसके पुत्रने राज्यको अपने तीन पुत्रोंमें बाँट दिया, जिसमें ल्दे-चुग्-गोन्को शङ्-शुङ् (गूगे) मिला। इसीके राज्यमें कनौर, ऊपरी टेहरी और ऊपरी बदरीनाथभी था। इसके पौत्र नागराजने उत्तरकाशी (बारहाटमें) एक बौद्ध विहार बनाया था, जिसकी सुन्दर और अपेक्षाकृत विशाल बुद्ध-प्रतिमा आज भी वहाँ दत्तात्रेयके नामसे पूजी जाती है। प्रतिमा नीचे भोट-भाषा के लेखमें दानपति नागराजका स्पष्ट उल्लेख है। दपल् खोर्-व-चन् (६८३) की तेरहवीं पीढ़ी अर्थात् तेरहवीं सदीके मध्यमें ग्रग्स-प-दे गूगेका राजा था, उसके उत्तराधिकारी जिन्दरमल, अजितपल, कलनमल, परतपमल (१३२० ई० ?) के नाम बतलाते हैं, कि उनपर भारतीय प्रभाव बहुत पड़ चुका था और इसमें कनौरवालोंका विशेष हाथ रहा होगा, इसमें संदेह नहीं, क्योंकि गूगेकी जनतामें सबसे अधिक संख्या उनकी थी, और सांस्कृतिक-तलभी उनका आजकी भाँति उनसे ऊँचा था।

दसवीं सदीके बाद भोट-जातिका नेतृत्व—विशेषकर सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र—में गूगेने किया। गूगेके राजा खोर्-ल्दे (भिक्षुनाम येशेओद) ने सतलुजतट पर थोलिङ्का महाविहार बनाया, जिसे गढ़वाली लोग आदिबदरी कहते हैं। इसमें आश्चर्य करना नहीं होगा, यदि खोजसे पता लगे, कि हमारे बदरीनाथ मूलतः एक बौद्धतीर्थ और देवालय था। खोर् ल्देने बौद्ध-प्रचारक बनानेकेलिये २१ भोट तरुणोंको कश्मीर संस्कृत पढ़नेकेलिये भेजा, किन्तु उनमें दोही जीवित लौट सके, जिनमें एक था, महाभाषान्तरकार रिन्-छेन्-जङ्-पो (रत्नभद्र ९५८-१०५५ ई०) इस ऐसे सैकड़ों संस्कृत ग्रंथोंका भोटभाषामें अनुवाद करके सुरक्षित कर दिया, जिनमें अधिकांश संस्कृतमें सर्वदाकेलिये हो चुके हैं। रिन्-छेन्-जङ्गोके बनवाये कई मन्दिर कनौर स्पिती और लदाखमें हैं। कनौरमें कनम्, रिब्बा और स्पूमें अब भी उसके बनाये मन्दिरोंका परिचय कराया जाता है, यद्यपि स्पूकी बुद्ध-प्रतिमाको छोड़कर किसीका उस समयका होना संभव नहीं है। थोलिङ्-संस्थापक येशे-ओके प्रयत्नका ही फल था, जो उसके

मरनेके बाद १०४२ ई० में भारतीय पंडित दीपंकरश्रीज्ञान थोलिङ् पहुँचे। यद्यपि वह कनोर (खुनू) में नहीं गये, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ग्यारहवीं सदीकी धार्मिक और साहित्यिक हलचलका कनौर पर पूरा प्रभाव पड़ा।

ऊपरके वर्णनसे ज्ञात होगा, कि भोटप्रभावान्वित कनौरका इतिहास साम्राजीय और गूगे दो भागोंमें विभक्त है। सातवींसे दसवीं सदीतक भोटसाम्राज्यमें रहनेसे कनौर पर ल्हासाका प्रभुत्व रहा। यद्यपि उस समय भोटभाषा, भोटरक्तके साथ बौद्ध धर्मसे परिचित होनेका उसे मौका मिला, किन्तु था वह विदेशी शासन और शोषण का समय। चीनी तुर्किस्तानकी मरुभूमिमें प्राप्त भोटिया हस्तलेखोंके उदाहरणसे हम जान सकते हैं, कि इन तीन सदियोंमें कनौरमें भी भोटराजकी जगह-जगह सैनिक छावनियाँ रही होंगी, मुख्य-मुख्य स्थानोंपर उनके शासक रहते होंगे। सारे कनौरके शासकका निवास-स्थान चिनीही रहा होगा, भोटिया लोग इसीलिये तो इसे राजधानी चिनी (ग्यल-स्चिने) कहते हैं। वैसे बस्पा उपत्यकाका साङ्ला गाँव भी इसका दावा कर सकता है, किन्तु वह विस्तृत सतलुज उपत्यकाका शासनकेन्द्र नहीं हो सकता था। कनौर और भोटका इतना रक्त और भाषा सम्मिश्रण इन्हीं तीन सदियोंमें हुआ। बल्कि भाषा सम्मिश्रण कहना ही पर्याप्त नहीं होगा, इन तीन सदियोंमें तो मानसरोवर, लदाख, बाल्तिस्तान और स्पितीकी पुरानी भाषा लुप्त हो गई, और उसका स्थान भोट-भाषाने लिया। यही बात मध्यएशियामें हम तुर्कोंको करते देखते हैं। इनके दूरके सम्बन्धी भोटियोंकी भाँति हूणवंशज तुर्क भी छठीं सदीमें मध्यएशिया पर अधिकार करते हैं, और चार-पाँच सदियोंके बाद अपनी भाषा और अपनी जातिका वहाँ पूरा प्रभुत्व छोड़ते हैं।

इस कालमें कनौरे लोग पहिले और आजकी भाँति कृषि और वाणिज्य पर गुजारा करते थे। यहाँके आर्थिक ढाँचेमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। १६२१ में मिस्टर एच्-एम् ग्लोवरने "सतलुज उपत्यका जंगल सर्वे" के विवरणमें लिखा है—"कनौरकी आबादी बहुत कम है, और निवासियोंकेलिये खेती अपर्याप्त है। ऊपरी कनौरमें सिंचाईकी नहरोंके बिना खेती संभव नहीं है।...हालमें, १६१२ १६१३ ई० में सिंचाईकी बड़ी योजना दोषपूर्ण इंजीनियरीके कारण असफल रही। कनौरमें धूपवाले पर्वतगात्रपर, जहाँपर वृक्ष और वन दुर्बल अवस्थामें

हैं, खेतोंकी सीढ़ियाँ मिलती हैं। जान पड़ता है, कुछ शताब्दियों पहिले किसी सफल तिब्बती आक्रमणमें—जिसका वर्णन तिब्बती इतिहासमें और स्मरण स्थानीय परंपरामें मिलता है—सिंचाईकी प्रधान नहरें नष्ट कर दी गईं, जो फिर कभी नहीं बनाई जा सकीं।"

सफल तिब्बती आक्रमण सातवीं सदी का ही था, किन्तु वह क्षणिक लूटके लिये नहीं बल्कि स्थायी प्रभुत्व जमानेकेलिये था। हो नहीं सकता, कि जो शासन मध्यएशियाकी मरुभूमिके नगरोंके जीवनको नहरों द्वारा कायम रख सका, वह कनौरकी नहरोंको ध्वस्त करता। देशकी समृद्धि पर ही तो उसका अपना लाभ भी निर्भर करता था?

सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवनमें इस समय जो परिवर्तन हुआ उसका प्रभाव आज भी कनौरमें वर्तमान है। वह है, मुर्दा गाड़ने की जगह जलाने की प्रथा। तिब्बती रूपके बौद्ध धर्मके स्वीकारके साथ बहुपति विवाह (सभी भाइयोंकी एक पत्नी) की प्रथाको हम तिब्बत की देन नहीं कह सकते। जीवनोपयोगी सामिग्रीकी कृच्छ्रतामें खानेवाले मुखोंकी संख्या सीमित रखनेके-लिये हिमालय ही नहीं लंकाके पर्वतोंमें भी लोगोंने बहुपतिताको स्वीकार किया था। अर्धघुमन्तू भोटिया सैनिक और शासकोंने खुलकर किन्नरियोंके साथ वैध और अवैध यौन संबंध स्थापित किये, जिसका परिणाम भाषा और रक्त-सम्मिश्रणके रूपमें अब भी देखा जाता है।

दसवीं शताब्दीके आरम्भमें भोट-साम्राज्य लड़खड़ाने लगा, उसके दूर-दूरके भाग स्वतन्त्र होने लगे। इस समय हिमालयके सीमान्तपर उसका पड़ोसी कन्नोजका गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य था। वह अपने पड़ोसी की निर्बलतासे लाभ उठाये बिना कैसे रहता? दसवीं सदीके मध्यमें किसी समय किन्नर देशपर प्रतिहारोंका आधिपत्य हो गया। कहा नहीं जा सकता, शासन सीधे कन्नौज द्वारा नियुक्त अधिकारी करता था या कोई किन्नर सामंत। कोठीमें आज भी इस कालकी सरस्वती, हरगौरी आदि ब्राह्मण-देवताओंकी मूर्तियाँ मौजूद हैं। कोठी देवीके कायथ (लेखक) नेगी ठाकुरसिंह वहाँकी पुरानी परम्परा सुना रहे थे, जिसके अनुसार नीचेसे भागकर आया कोई राजा कोठीमें महल बनवाकर रहता रहा। एक दिन जब वह रानी सहित बाहर टहलने या उद्यानमें चौपड़ खेलनेमें

लगा था, तो देवीने उसके महलमें आग लगा दी और राजाको किन्नर-देश छोड़कर भागना पड़ा। इस परम्पराकी व्याख्या यही हो सकती है, कि महमूद गजनवीके बनारस तकके आक्रमणसे जर्जरित होकर जब प्रतिहार-साम्राज्य ध्वस्त हुआ तो स्वयं कनौजका राजा या उसका कोई राजकुमार भागकर किन्नर देशमें शरणार्थी हुआ। कनौजके बिगड़े राजवंशिकका खर्च छोटासा किन्नर देश कहाँ तक वहन करता? लोगोंने विद्रोह किया और ग्यारहवीं सदीके प्रथमपादमें भगोड़े राजाको किन्नरसे भागना पड़ा। इसी राजाने कोठीमें आज भी मौजूद पाषाणकुण्डके साथ एक सुन्दर शिवमन्दिर बनवाया। हो सकता है मन्दिर काष्ट का रहा हो और जल जानेसे उसका अवशेष नहीं मिलता। लेकिन मन्दिर में स्थापित दो फुटकी चतुर्भुजी शिवमूर्ति आज भी कुण्डपर मौजूद है। इस असाधारण सुन्दर मूर्तिके साथ उतनीही बड़ी एक दूसरी मूर्ति भी थी, जिसके प्रभामण्डलका एक खंड मालाधारी किन्नरमिथुनके साथ यहाँ रक्खा हुआ है। बहुत सम्भव है, वह मूर्ति गौरीकी थी। कोठीकी इस अद्भुत शिवमूर्ति और दूसरी इक्कीस काष्ठपाषाणमयी ब्राह्मणधर्मी मूर्तियोंकी व्याख्या केवल इसी तरहकी जा सकती है, कि प्रथम भोट-साम्राज्यके पतन (दसवीं सदी) और पश्चिमी तिब्बतके भोट-राजवंशके शक्तिशाली होनेके बीच किन्नर-देशपर गुर्जरप्रतिहारों का अधिकार हो गया। पश्चिमी तिब्बतके राजवंशका भी हाथ शरणार्थी प्रति-हार राजाके विरुद्ध हुआ होगा। एक प्रतिहार राजकुमार इसी समय भागकर सिंहल गया था, और वहाँ कुछ समय उसे राज्य करने का मौका भी मिल गया था। कुल्लूके राजवंशको पालवंशकी शाखा बतलाया जाता है। परम्परा कहती है कि मुसल्मानोंके आक्रमणसे परास्त हो ११वीं सदीके तृतीय पादमें कोई राजकुमार मायापुरी (हरिद्वार) और गढ़वालके रास्ते कुल्लू पहुँचा। मैं सम-झता हूँ, इस भगोड़े राजकुमार या राजाका सम्बन्ध पालवंशसे जोड़ना गलत है। ११वीं सदीमें पालवंश पर कोई संकट नहीं आया था। जान पड़ता है राजाके नामके साथ पालशब्द आनेसे यह भ्रम हुआ। गुर्जरप्रतिहारोंमें कई पाल नामवाले राजा हुये हैं। महीपाल तो दूसरा विक्रम था। ईसाकी ११वीं सदीके तृतीय पादमें कुल्लू जानेसे सन्देह होता है, कि कहीं वही कोठीसे भगाया राजा कुल्लू तो नहीं पहुँचा।

अस्तु, किन्नर-इतिहासमें गुर्जरप्रतिहार शासनका भी स्थान है।

दसवीं सदीके चतुर्थपादमें स्रोङ्चन्वंशके ही एक राजकुमारने पश्चिमी तिब्बतमें नये राज्यकी स्थापना की। आगे चलकर इस वंशने किन्नर और बार-हाट (उत्तरकाशी) तक भारतकी ओर अपना पैर बढ़ाया। यह भोट प्रभुताका द्वितीय युग है। राज्य पीछे लदाख, गूगे और पुरंग तीन भागोंमें बट गया, यह हम पहिले कह चुके हैं।

भोट-प्रभुताके द्वितीय काल (गूगे काल १०वींसे १३वीं सदी)में कनौर दूरके शासकोंकी शोषित जनता नहीं रह गया। यद्यपि नया वंश ल्हासाके सम्राट्वंशकी ही शाखा थी, किन्तु अब वह कनौरकी सीमापर आकर बस गया था और उसकेलिये अपेक्षाकृत अधिक संस्कृत किन्नर-जातिकी सहायता आवश्यक थी। इस समय शासन मध्यभोटसे लाये शासकों और सैनिकोंके बलपर नहीं नहीं चल रहा था, बल्कि उसका प्रधान आधार था राजवंशके संबंधी (साले, बहनोई, दामाद) के रूपमें कनौरीभद्रवर्ग—जोवो या ठाकरस् (ठाकुर)। इस कालमें विशेषकर ग्यारहवीं सदीमें संस्कृत-ग्रंथोंके भोट भाषामें अनुवाद तथा धार्मिक सुधारका केन्द्र भी गूगे रहा। आशा रखनी चाहिये, कि इस कालमें भी कनौरकी आर्थिक समृद्धिमें बाधा नहीं पड़ी होगी। पहाड़ोंमें जहाँ-तहाँ दूरतक फैले परित्यक्त खेत उस समय आबाद रहे होंगे। कनौज के गुर्जर-प्रतिहारोंकी भाँति उनके उत्तराधिकारी गहड़वारे भी अपने उत्तरी पड़ो-सियोंके दुर्गम स्थानों पर चढ़ाई करनेकी कोशिश नहीं करते रहे होंगे, और उनके व्यापारके लाभ, सौगातों तथा भेंटोंसे ही संतोष कर लेते होंगे और "भोट्‌ता पिट्‌त चले" की नौबत आती होगी।

बारहवीं सदीके अंतमें गूगेके शासनमें पश्चिमी हिमाचल (कमायूँसे कुल्लू) के उत्तरीभागमें बसनेवाली वह सारी (किरात) जातियाँ थीं, जिनके चेहरे पर तिब्बत (मंगोलीय) मुख-मुद्रा और भाषा पर पूर्ण या अपूर्ण तिब्बती प्रभाव है।

गूगेके अन्तिम राजाओंके परतापमल जैसे नाम बतलाते हैं, कि कमसे कम राजवंशमें भारतीयताका बोलबाला था, संभव है उनकी रानियाँ पहाड़ी राणाओंके घरोंसे आती हों। इसका परिणाम यदि ब्राह्मणोंका प्रभुत्व बढ़ानेके

रूपमें न हुआ हो, तो भी जात-पाँतका, छुआ-छूत का प्रवेश तो जरूर हुआ होगा। कनौरमें बाढ़ी (बढ़ई+लोहार+सोनार+कसेरा) और कोली (चमार+कोरी) को अछूत समझा जाता है। इस कालमें उपरोक्त पेशे इन्हीं लोगोंके हाथमें थे, यह कहना मुश्किल है, क्योंकि यह लोग कनौरोंमें ५ या १० सैकड़ेकी कम संख्यामें रहते भी अपनी हिंदीवंशकी भाषा बोलते हैं, जो आजकलकी राजस्थानी और आसपासकी दूसरी भाषाओंके नजदीक है। इसलिये अपभ्रन्शकाल (८वींसे १३वीं सदीमें) इनका पहाड़में जाना मुश्किलसा मालूम होता है।

ठाकरशाही (१४वीं १५वीं सदी)—बारहवीं सदीके अन्तके साथ उत्तरी भारतके बौद्ध-केन्द्रों नालंदा, विक्रमशिला, उडंतपुरीका अंत होता है। अंतिम भारतीय बौद्ध संघ-राज शक्यश्री-भद्र (११२७-१२२५) शरणार्थीके तौरपर १२०३ ई० में मध्यभोटमें गये और वहाँ दस साल रहकर १२१३ ई० में अपनी जन्मभूमि कश्मीर चले गये। कश्मीर जानेका रास्ता गूगे, कनौर, और कुल्लूसे ही रहा होगा, किन्तु इस यात्रा का कोई विवरण देखनेमें नहीं आया, जिससे कि कनौरकी अवस्थाका विशेष परिचय प्राप्त हो सके। गूगे राजवंशकी शक्ति अवश्य उस समय क्षीण होने लगी थी, और तेरहवीं सदीके अंत तक पहुँचते-पहुँचते राजवंशका प्रभुत्व थोलिंगके आसपासके कुछ गाँवों तक सीमित रह गया। बृटिश शासनके उठ जानेपर अगस्त १६४८ में शिमला के पास ठियोगके एक गाँवके रानाने जब अपनेको स्वतंत्र घोषित करनेकी धृष्टता की, तो गूगे राजवंशके निर्बल होनेपर उसके शासक और सामन्त, जिनमें कितने ही राजाके सगे-संबंधी होनेसे काफी प्रभावशाली थे, क्यों न अपने को स्वतंत्र घोषित करते? गूगे राजवंशका उच्छेद नहीं निर्बल होना मैंने कहा, वंशका उच्छेद तो अब भी नहीं हुआ है, और थोलिङ्के पास आज भी एक दो गाँवका "राजा" बनकर वह मौजूद है।

इस प्रकार चौदहवीं सदीके आरम्भमें गूगेके राज्यमें हर दो-दो-चार-चार गाँवके स्वतंत्र राजा बन गये, जिन्हें कनोरी भाषामें ठाकरस् कहते हैं। ठाकर, ठाकुर और ठाकरस् एक ही शब्द है। यह मूलतः किस भाषाका शब्द है, यह कहना मुश्किल है। यद्यपि उसका प्रयोग काठियावाड़, बंगालसे लेकर सारे

भारतमें कहीं सामन्तों, कहीं राजपूतों, कहीं ब्राह्मणों और कहीं हजामोंकेलिये होता है, पुरीके जगन्नाथको भी ठाकुरजी कहा जाता है; किन्तु इससे इसका संबंध संस्कृतसे नहीं जोड़ा जा सकता। मुझे तो सन्देह होता है, इसकी उत्पत्ति हिमालयके इसी कोनेमें हुई। मूलत: यह तिब्बती शब्द ठक्कर (श्वेत रक्त), से निकला मालूम होता है, जो राज-रक्तका पर्याय है। किन्तु इस व्याख्यामें एक दिक्कत है, ठक्-कर् इस अर्थमें तिब्बती साहित्यमें कहीं देखनेको नहीं मिलता। जो भी हो, सोलहवीं सदीके आसपास कामरू (रामपुर) राजवंश द्वारा ध्वस्त होनेके पहिले सारा कनौर सात ठाकरस्में विभक्त था, जिसके अधिकृत क्षेत्रको "सात खुंद" भी कहा जाता था। सातों खुंदोंके अपने-अपने ठाकरस् और अपने-अपने राजदेवता थे, जैसे—

नाम	स्थान	देवता
(१) दोशो खूँद	गौरा और नीचे	ब्रसारू
(२) पन्द्रह-बीस खूँद	गान्मी	लाछी
(३) अठारह-बीस खूँद	सुङ्रा	मेशू (मेशुर)
(४) बङ्पो-खूँद	भावा	मेशू
(५) पग्रामं (राजग्राम) खूँद	ठोलङ् (चगाँव)	मेशू
(६) छुवङ् खूँद	चिर्नी (छुवङ्)	चंडिका (कोठी)
(७) टुकूपा-खूँद	कामरू (मोने)	बदरीनाथ

आज भी कोठीकी चंडिका तथा दूसरे कनौरी देवता लोगोंको धमकाते हैं—हमने सातों खूँदों और अठारह गढ़ोंको नष्ट कर दिया। तुम्हारी भी वही दशा करेंगे, यदि बात नहीं मानोगे। अठारह गढ़ रामपुरसे नीचे शिमलाके पहाड़ी अठारह राजाओंके गिने जाते थे।

सात खूँदोंमें पहिलीको छोड़ बाकी कनौरी भाषा-क्षेत्रमें पड़ती हैं, इनमें अन्तिम चार ही वर्तमान चिनी तहसीलके अंतर्गत अथवा मुख्य कनौरके अंग हैं। ठीक-ठीक सीमा निर्धारित करनेपर नीचे (सतलुज उपत्यकामें) मनोटी-धार (चौरासे ३ मील नीचे और रूपी नाला (रूपीसे ४ मील नीचे) से लेकर ऊपर भावा खड्ड (नदी) और बस्पानदीके उद्गमों एवं श्यासो-खड्ड तक कनौर-देश है। आजकल भाषा और संस्कृतिका कोई विचार कर दो कनौर-भाषा-भाषी

खूँदोंको पहाड़ी भाषा-भाषी-हिन्दी रामपुरकी तहसीलसे जोड़ रखता गया है, जिसमें केवल शासनके सुभीतेको ही ध्यान है।

संभव है, अपने यौवनकालमें गूगेका राज्य दोशो-खूँद (रामपुर वाले इलाके तक) रहा हो, ग्यारहवीं सदीमें वहाँ कनोरी भाषा बोली जाती हो। गूगे-राज्यके छिन्न-भिन्न होनेपर सातों खूँदोंमें सात ठाकरस् कायम हो गये, जिनमें राजधानी (ग्यलस्) चिनी का खूँद (छुवङ्) सबसे विस्तृत होनेसे पीछे कई और ठाकरसोंमें बँट गया, इसका प्रमाण हमें लिप्पा (लितिङ्), लब्रङ्, मोरङ् (स्गिनम्) तङ लिङ् और चोलिङ् में स्पष्ट मिलता है। इनके अतिरिक्त सुङ्नम्में भी ठाकुर रहा होगा। ठाकरोंके वशजोंका अब पता नहीं लगता, सिर्फ स्पिलो (लब्रङ्के-नीचे) में एक ठाकुरवंशका बतलाया जाता है।

यह ठाकरशाही कनौरके ह्रासका काल है। देश सात खूँदों ही नहीं और भी कितनी ठकरैतियोंमें विभक्त हो गया। हर ठाकुर दूसरे ठाकुर पर आक्रमण और लूट करना अपना हक समझता था, ऊपर से समय-समय पर उत्तरी और पूर्वी पड़ोसी भोट-भाषा-भाषी भी लूटमार करनेसे बाज नहीं आते थे। अभी बारूदके हथियारोंका समय नहीं था। ठाकरोंने बड़े गावोंमें छोटे-छोटे गढ़ बना रखे थे, जिनमेंसे कुछ आजभी लब्रङ्, मोरङ् और कामरूके गढ़ोंके रूपमें वर्तमान है। यह गढ़ ३०, ४० हाथ लंबे, कुछ कम चौड़े पाँच छः सात मंजले काष्ठ और पाषाण खंडोंके ऊँचे मकान होते थे, जो ऐसी जगह जाते थे, जहाँ आक्रमणकारियोंके लिये चढ़ना आसान न हो। शत्रुका आक्रमण होनेपर लोग इन गढ़ोंमें पनाह लेते और वहींसे शत्रुओंपर तीरों और पत्थरोंकी वर्षा करते थे। अपने प्राणोंकी रक्षा वह इस प्रकार भलेही कर सकते हों, किन्तु असफल अतएव क्रुद्ध शत्रुसे वह अपनी नहरों और खेतोंकी रक्षा नहीं कर सकते थे। ठाकरशाहीका दूसरा अर्थ था घोर अशांति, धनी-प्राण की अरक्षा, जिसका ही फल है, आजके जगह-जगह परित्यक्त खेत, ग्रामों और विहारों के ध्वंस। तिब्बतमें भी चौदहवीं, पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदियाँ ठाकरशाहीकी थीं, जिसका अंत मंगोल-सेना द्वारा भोट विजय और उसे पाँचवें दलाईलामाके हाथमें समर्पणके साथ १६४२ ई० में हुआ। कनौर में इसका अंत एक सदी या कुछ अधिक पहिले हुआ।

कामरू (रामपुर) राजकाल (१६४८ ई० तक)—बस्पा-उपत्यकामें या टुकूपा खुंदको हम स्मरण कर चुके हैं। बस्पा सतलुजकी शाखा नदी है, और आठ-साढ़े-आठ हजार फुट ऊपर अवस्थित इसकी उपत्यका बहुत ही चौरस विस्तृत और सारे कनौरमें अत्यधिक उर्वर मानी जाती है। यहीं कामरू और साङ्लाके एक दूसरेके अतिसमीप दो महाग्राम हैं। कामरूको कनोरी और तिब्बती भाषामें मोने कहा जाता है। सारे बस्पा निवासी कनोरीभाषा बोलते हैं। यह उपत्यका कृषिकेलिये ही अतिउपयोगी नहीं है, बल्कि बस्पा उद्गमवाले डाँडेको पारकर आसानीसे तिब्बत पहुँचा जा सकता है, जो पशम और ऊनके व्यापारकेलिये बहुत सुभीतेकी चीज है। बस्पा उपत्यकाके दक्षिणमें रोहड़ू (तहसील)में पहाड़ी हिन्दी-भाषियोंकी घनी आबादी है, जहाँसे होते अशोकके समयकी भाँति आज भी कनोर अजपाल कालसी पहुँचते हैं। इस प्रकार बस्पा-निवासियोंको कृषि और तिब्बतसे व्यापारका ही अधिक सुभीता नहीं था, बल्कि वह भारतीय मैदानसे भी सम्बन्ध रखते थे। ऐसी अवस्थामें यहाँके ठाकरस्की शक्ति का बढ़ना स्वाभाविक था। बस्पा या टुकूपा खुंदके-ठाकरस् की राजधानी कामरू (मोने) थी। उसने जहाँ, कृषि और व्यापारकी अनुकूलता से अपनी शक्तिको दृढ़ किया, वहाँ भारतमें नवागत बारूदके हथियारोंसे भी लाभ उठाया। शायद उसकी उपत्यकामें कहीं सीसेकी खान मौजूद थी। इस शक्तिके साथ वह आसपासके ठाकरसों पर चढ़ दौड़ा। यह सोलहवीं सदीका मध्य रहा होगा। एक-एक करके कनौरके सारे ठाकरस् ध्वस्त हुए। विजेताने शत्रुवंशको जीवित रखना पसन्द नहीं किया। उस समयकी चिनीसे नीचे सतलुज पार तङ्लिङ् में ठाकरस् था, जो पहिले कामरूका निशान बना, फिर मोरङ् और आगे तक का सतलुजका ऊपरी बायाँ तट ले उसने नीचेकी ओर मुँह किया होगा।

कामरूके एक या अनेक विजेताओंने किस तरह अपनी विजय यात्रा पूरी की, और अन्तमें ३८०० वर्ग मीलका राज्य स्थापित किया, इसका वर्णन हमारे पास तक नहीं पहुँचा। हाँ, उनके द्वारा ध्वस्त ठाकरसोंके गढ़ और कुछ जन-श्रुतियाँ अवश्य हमारे पास तक पहुँची हैं। चिनीसे नीचेकी ओर जानेपर उरनीके नीचे चोलिङ्के खँडहर अबभी सतलुजके दाहिने तट पर मौजूद हैं। इसका ध्वंस कामरूके ठाकरने किया। इसी तरह चिनी ठाकरस्का भी संहार

हुआ। ठाकरस् जितना आपसमें लड़ने-भिड़नेमें बहादुर थे, उतना ही मिलकर शत्रुसे मुकाबिला न करनेसे निर्बल भी थे। कहते हैं, कामरूके इशारेपर प्रजाने स्वयं चिनीके ठाकरके महलमें आग लगा दी। आग लगाकर चिनीका गढ़ जलाया गया, यह सच्ची बात है। १६१०-११ ई० में जब गढ़के एक भागको स्कूल बनानेकेलिये बराबर किया जा रहा था, तो वहाँ कोयला, जले पत्थर निकले थे। किन्तु यह विश्वास करना मुश्किल है, कि कामरूके ठाकरका बिना लड़ेही चिनीपर अधिकार मिल गया होगा। फिर अन्तिम ठाकरके हाथमें चिनीके अतिरिक्त दो मील पूर्व कश्मीरका भी छोटा गढ़ था, वह वहाँ भी लड़ा होगा। चिनी ठाकरसका नामलेवा न रह गया। उस समयके निवासियोंके सिर्फ दो खान्दान (खटियान और रुवाँ)के बँच रहनेसे जान पड़ता है, लड़ाई बहुत क्रूर हुई। गढ़की जगहके अतिरिक्त आज कोई पुरानी चीज चिनीमें दिखाई नहीं पड़ती। (राङ्) बाई (पाषाणवापी)क. जलस्रोत पुराना है। श्यानङ् (श्मशान)में शायद उस समय भी मुर्दे जलाये जाते थे। इसीके पास परित्यक्त खेतोंकी दीवारें बतलाती हैं, कि किसी समय कृषि और अधिक होती थी। बस्पा-उपत्यकाको छोड़ चिनीके बराबर कृषि-उपयोगी ढालुआँ भूमि सारे कनौरमें कहीं नहीं है, और आज भी बहुतसे ध्वस्त खेत हिमाचल-सरकारकी विशाल नहर-योजनाकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

श्यानङ्के दो फर्लाङ्ग ऊपर किसी समय तलरवेरङ्-नागस्का चश्मा था, जिससे बहुतसा पानी निकलता था। नागस् (नाग) किसी कारण नाराज हो उड़कर सतलुज पार चला गया, और आज वारङ् गाँवको पानी दे रहा है। कश्मीरसे नेपालतक ऐसे कितने ही उड़े नागों तथा सूखे चश्मोंकी कथायें प्रसिद्ध हैं, किन्तु यह हिमाचल-सरकारके हाथमें है, कि कनौरमें नहर निकालकर कितने ही नागोंको फिरसे लाकर बसादे।

किन्नरकी सारी ठकुराइयोंको ध्वस्त कर एक राज्यके रूपमें परिणत करनेवाला वह कामरूका ठाकुर कौन था? कामरूकी परम्परा बतलाती है कि वहाँके किसी शासकने फतेहपर्वत (टौंस पहाड़ी) से बहुतसे सैनिक बुलाकर कामरूमें बसाये और उनकी मददसे उसने चिनीके प्रचंड ठाकर एमरस्को ध्वस्त किया। पीछे कामरू ठाकरके वंशज बुशहरके राजा अपनी किन्नर-जातीयताको छिपानेके लिए

बहुत उत्सुक थे। इसलिए उनकी ओरसे इस बातकी पूरी कोशिश की गई कि उनके वंशका सम्बन्ध किन्नरोंके साथ न जोड़ा जाय। बुशहर राजाको वंशावली बहुत लम्बी-चौड़ी है, जो कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नसे आरम्भ होकर राजा पदमसिंह (१६१४-४७) तक १२१ पीढ़ियोंमें समाप्त होती है। यह वंशावली कितनी झूठी है जिसे हम अन्यत्र बतला चुके हैं। प्रद्युम्नके पुत्रका नाम छुबल एक हस्तलेखमें बतलाया गया है। दूसरे हस्तलेखमें राजाओंकी संख्या और भी अधिक है। उसमें प्रदुमनसिंहके पुत्र अनिरुधसिंहके पुत्रका नाम जमलसिंह बतलाया गया है। छुबल एक ऐतिहासिक पुरुष मालूम होता है, जिसीका ही बिगड़ा रूप जलम है। छुबल् वस्तुतः भोटिया शब्द छोबलका विकृत रूप है। शरानङ् (सराहन) के राजा छोबलके राज्यकालकी सोनेके अक्षरोंमें लिखी अष्ट-साहस्रिका प्रज्ञापारमिता (भोटभाषा) छितकुलसे लाकर आजभी कामरूमें रक्खी हुई है। हो सकता है, यही कामरूका सर्वकिन्नरविजेता शासक हो, और इसीने अपनी राजधानी कामरूसे सराहनमें बदली।

राजधानी क्यों बदली ?

इतने ठाकरोंका राज्य छीनकर कामरूका ठाकर अधिकार रखता था, कि वह अब ठाकरस् नाम छोड़कर राजा बन जाये। कामरू राजाने कनौर-विजय के बाद उत्तरके आक्रमणकारियोंका पीछा करते श्याशो-खड्ड और सुङ्नमकी जोतसे आगेके भोट-भाषाभाषी इलाके हङ्रङ्को भी जीत लिया; वह कार्य सोलहवीं सदीमें ही संपादित हो गया। तब तक पश्चिम और दक्षिणमें भी काफी राज्य विस्तार हो गया था। कामरू ठाकरस्को राजा कहलाने भरसे ही संतोष नहीं हुआ। आखिर उसका शासन कनौर-भिन्न दूसरी जातियों पर भी था, जो सच्चे क्षत्रियको ही बड़ा माननेकेलिये तैयार थीं। अब कामरू राजाको सच्चा क्षत्रिय बननेकी धुन सवार हुई। इस कठिनाईका हल करना ब्राह्मणोंके हाथमें था, लेकिन वह जानते थे, कि जब तक राजधानी कनौर-भाषाभाषी बस्पा-उपत्यकाके कामरू गाँवमें रहेगी, जब तक राजवंश कनौरी-भाषा बोलता रहेगा, तब तक हमारा जोर नहीं लगेगा। राजधानी उठाकर पहाड़ी भाषाभाषी सराहनमें लाई गई। सराहनकी बाणासुरकी राजधानी शोणितपुर बनाया गया, और कामरू ठाकरवंशका वंश-वृक्ष सूर्यवंश चंद्रवंशसे जोड़ दिया गया।

सराहनसे हटते हुये राजधानी पीछे रामपुरमें आई, क्योंकि वहाँ बर्फ और आँधीका डर न था। रामपुर राजवंशने किन्नरी भाषा और रक्तसे इन्कार कर दिया। उसने अपनी रोटी-बेटी राजपूत राजाओंसे ही रखी। अब कौन कह सकता है, कि रामपुर-बुशहरके राजा साहेब चन्द्रवंशावतंस नहीं हैं। इतना होने पर भी राजाकी पुरानी राजधानी कामरू है। कामरूकी गद्दीपर बिना बैठे वह पक्का राजा नहीं हो सकता। अंतिम राजा पदमसिंहको १६१४ में रामपुरमें और १६१५में कामरूमें गद्दी पर बैठना पड़ा।

रामपुर राजवंशमें राजा केहरसिंह भी एक शक्तिशाली राजा था। इसीने सम्वत् १६११ सन् (१५५४) में रामपुर को बसाया और दो साल बाद विजेताके तौरपर तिब्बतके साथ सन्धिकी। इस संधिपत्रका व्यौरा इस प्रकार पाया जाता है—

गूगेके राजा ग्ुजोद् योके समय लदाख के राजाने ङरिकोरसुम् (पश्चिमी तिब्बत) ले लिया। ङरीमर्युल्से नीचेका प्रदेश लदाख और बुशहरके संयुक्त अधिकारमें रहा। उसी समय भोट-सेनापति गल्दन्-छेवङ्ने सोचा, यदि मैं ङरीपर सैनिक अभियान करूँ, तो ङरीमरयुलको जीत सकता हूँ। इसीलिये गल-दन् छेवङ् ङरीकी ओर गया। इसी समय बुशहरके राजा केहरसिंहने पड़ोसके इक्कीस राजाओं और अठारह ठाकुरोंको तिब्बतपर अभियानकेलिये निमन्त्रित किया, लेकिन कोई नहीं आया। तब राजा केहरसिंहने मानसरोवर-तीर्थमें स्नान करनेके बहाने अभियानका स्वयं आरम्भ किया। उत्तरी गूगेमें पूलिङ्-थाङ् पर उनकी सेनापति गल्दन् छेवङ्से मुलाकात हुई। फिर मित्रतापूर्ण सम्बन्धके सुवर्णपथको प्रशस्त करनेकेलिये भोट-राजाकी ओरसे गल्दन् छेवङ् और बुशहर-के राजा केहरसिंहने महामुनि बुद्धकी शपथ ले निम्न प्रकारकी सन्धि की :

"हमारा पारस्परिक मैत्रीपूर्ण सम्बंध तब तक उभयपक्ष द्वारा अपरित्यक्त और अपरित्यज्य रहेगा, जब तक कि भूकेन्द्रवर्ती कैलाश, देवताओंका अनन्त निवास हिमविहीन नहीं होगा, मानसरोवरका जल नहीं सूखेगा, काला कौआ सफेद नहीं हो जायेगा और लोकमें प्रलय नहीं आजायेगी। दोनों राजाओंकी प्रजाकी भलाई और राज्योंकी अक्षुण्णता कायम रखनेकेलिये दूत भेजना तै हुआ, और बुशहर प्रति तीसरे वर्ष ङरीके चार प्रान्तों—चपरङ्, स्पुरङ, त्साम

और रूदोक् तथा राजधानी गर्तोक्में एक दूत भेजा करेगा। दोनों राजाओंकी प्रजा भी हर तरहके शुल्कों और करोंसे पूर्णतया मुक्त हो जहाँ चाहें वहाँ व्यापार कर सकेगी। दोनों राजाओंके बीच बहुत अच्छा सम्बंध रक्खा जायेगा।"

"फिर सेनापति गल्दन्-छेवङ् और बुशहरके राजा केहरसिंहकी संयुक्त-सेनायें एक जगह एकत्रित हुईं और उन्होंने लदाख-विजयकेलिये प्रयाण किया। तिब्बती सेनापति गल्देन्-छेवङ् और बुशहर सेनापति छोदास्ने लदाखमें संगे-गौमीन्में छावनी डाली। मैदानी प्रदेशके हथियारबन्द पठान और (ङरी) कोरसुम्के लोग लेह-लदाखमें जमा हुये। गलदेन्-छेवङ्को इस बातमें सन्देह होने लगा, कि मैं युद्ध जीत सकूँगा और ङरीमर्युलसे आगेके प्रदेश पर अधिकार प्राप्त कर सकूँगा। तब उसने सफेद खता (रेशमीवस्त्रखंड) एक घोड़ेके कन्धे और पूँछमें बाँधके प्रार्थनाकी, कि यदि मुझे विजय मिलनेवाली है, तो घोड़ा शत्रु सेनाके भीतर होता लौट आये; अन्यथा कहीं आधे रास्तेसे ही चला आये। सेनापति गल्देन्-छेवङ्को बहुत चिन्ता हुई, जब देखा कि घोड़ा निश्चित रास्ते पर गये बिना लौट आया। बुशहरके मन्त्री तथा चोपोन् ङ्वङ्-दोन्डुपने सलाह करके मैदानी लोगोंको पाँच तोड़ा सोने-चाँदीका घूस दिया। वह साथ छोड़कर अपने घरकी ओर रवाना हुये। लदाखकी राजधानी तिब्बत और बुशहरके हाथ आई, सेनापति गल्देन् छेवङ्कोबहुत प्रसन्नता हुई। लदाखकी राजधानी लूट ली गई और तिब्बत तथा बुशहरने सभी चीज़ों को ले लिया। थोड़े समय बाद गल्देन्-छेवङ् मर गया। उसके सहायक पल्जङ् ने सेनापतिको ध्यान पूजामें बैठा कहकर अधिकार अपने हाथमें ले लिया।"

कामरू वंशने ठाकरशाही समाप्त कर सारे कनौर और बाहर भी एक बड़ा राज्य स्थापित किया। राज्यमें शांति और व्यवस्था स्थापित होना लोगोंके कम लाभका काम नहीं था। शासन-प्रणाली वही पुरानी थी, जिसमें गुणदोष दोनों रहते भी वह कम खर्चीली थी। शासन और न्याय चलानेकेलिये गाँव-गाँवमें एक "मुखिया", एक "चारस" एक "हलमंदी" और एक "टोकन्या" रहा करते। हलमंदी और टोकन्या कोली (अछूत) जातिके होते। इनके अति-रिक्त गाँवकी पंचायतमें २, ३ "भलेमानुस" भी होते थे। कर जमा करना, झगड़ोंका फैसला करना इन्हींका काम था। साल-दो-सालमें एकबार राजधानी

से दरोगा आता, जो बड़े मुकदमोंका फैसला करता। बंदियोंके रखनेकेलिये एक कूयें जैसा जेल कामरूमें था, जिसमें बंदीको उतारकर समय-समयपर रोटी पानी रस्सीसे लटका दिया जाता। यह शासन, न्याय और दंड व्यवस्था पहिले शासन के समयसे चली आई थी, इसमें संदेह नहीं।

राज्यको गोर्खोंने १८०३-१५ में छीन लिया था, जबकि गोरखा-राज्य काँगड़ा तक फैल गया था। गोर्खोंको हरानेके बाद अँग्रेजोंने बुशहर राज्यको फिर राजा महेंदरसिंहके हाथमें दे दिया। तबसे राज्य अँग्रेजोंकी छत्रछायामें रहा। उन्नीसवीं सदीके आरम्भमें तिब्बत एक अज्ञात, रहस्यपूर्ण देश था। वह स्वयं चीनके अधीन था, जिसकी शक्तिका अभी पूरा पता नहीं लग पाया था, ऊपरसे उसके उसपार कहीं अंग्रेजोंके प्रतिद्वंद्वी रूसियोंका राज्य था; इसलिये बुशहर राज्यकी उत्तरी सीमा पर अँग्रेज खास तौरसे ध्यान रखते थे। उन्होंने इसीलिये "तिब्बतहिन्दुस्तान सड़क" बनाई, रियासतके प्रबन्धक भी कभी-कभी अँग्रेज हुये और बुशहरका विशाल जंगल तो १८६४ ई० में जो अँग्रेजोंने ठीकेमें लिया, तो उनके रहते तक यह फिर नहीं छूट सका, और अब भी हिमाचल-प्रदेशके बन जाने पर भी यहाँके जंगल तथा "तिब्बतहिन्दुस्तान सड़क" का प्रबन्ध पूर्वी-पंजाब सरकारके हाथमें है।

रामपुर राजवंशके समय किन्नर लोगोंको इतना ही लाभ हुआ, कि किसी नऐ ठाकरों और बाहरी डाकुओंकी लूटसे वह बच गये, लेकिन साथही राज और उसके नौकरोंकी लूटखसूट कम न थी। ठाकरशाही जमानेकी ध्वस्त नहरें फिर आबाद नहीं हो सकीं। बड़ी-बड़ी तन्खाहवाले अँग्रेज़ वनाधिकारी जगह-जगह बने भव्य बँगलोमें विहरते रहे, किन्तु उन्होंने जंगलकी आमदनी बढ़ानेके अतिरिक्त यदि किसी और तरफ ध्यान दिया, तो यही कि कनोरीकी भेड़-बकरियोंपर कड़ा टेक्स लगाया जाये, जिसमें उनकी संख्या कम हो, और कनोरे जंगल विभागकी मजूरीकरनेकेलिये मजबूर हों। राज और अंग्रेजी जंगल विभागसे अधिक सेवाका काम बल्कि मोरावियन पादरियोंने अपनी परिमित शक्तिके अनुसार करना चाहा। १८६५ ई० में उन्होंने तिब्बतकी सीमासे दसमील इधर स्पू ग्रामको अपना केन्द्र बनाया और तबसे १६१८ तक ग्रामवासियोंको मसीहका संदेश ही नहीं दिया, बल्कि उनकी अवस्थाको बेहतर

बनानेकी कोशिश की। आधे दर्जनसे अधिक जर्मन तथा दूसरे यूरोपीय पादरी यहाँके लोगोंकी सेवा करते वहीं मर गये। आजभी उनकी उपेक्षित कब्रोंके पत्थर वहाँ मौजूद हैं। उन्होंने बच्चोंकेलिये स्कूल खोला, औरतोंको मोजा-बनियान तथा अच्छे ऊनी कपड़े बुननेका ढंग सिखलाया, दर्जनों मर्दोंको बढ़ईका काम सिखलाया। यद्यपि आज उनके बनाये ईसाइयोंमेंसे एक भी नहीं हैं, किन्तु उनके स्कूलमें पढ़े आदमी मौजूद हैं, मोजा बनियान आज भी स्पूमें अच्छी बुनी जाती है, और दर्जनों बढ़ईके काममें चतुर आदमी, पादरीका गुनगान करते हैं। स्पूसे कुछ समय बाद चिनीमें भी मोरावियन पादरियोंने अपना केन्द्र खोला। यहाँ पर भी उन्होंने शिक्षाप्रसार करनेका ध्यान किया। कनौरमें जो आज सेब, अंगूर, नासपाती, आलूचा, बादाम, खूबानी आदि फलोंका इतना प्रचार हुआ है, इसमें मोरावियन मिश्नरियोंका काफी हाथ था।

राजकी ओरसे सुधार यही हुआ, कि मालगुजारी बढ़ानेकेलिये १८८६ ई० में राजकी बाकायदा सर्वेक्री गई। १८६५ में पुरानी पंचायतों और उनके सस्ते न्यायकी जगह चिनीमें तहसील और पुलीस बैठा दी गई। शिक्षा पर लाज-शरम के मारे कभी थोड़ा सा पैसा खर्च करनेका कष्ट उठाया गया। हाँ, देवताओंकी जागीर और पूजा-उत्सवमें जराभी कसर नहीं रखी गई, न ब्राह्मणों और लामाओं को ही लोगोंको उल्लू बनानेमें सहायता और प्रोत्साहन देनेमें पीछे रहा गया। इस बातका पूरा प्रबंध रखा गया, कि कनौरसे अज्ञानकी काली रात हटने न पाये। इसमें वह सफल हुये, आज कनौर हिमाचलका सबसे पिछड़ा इलाका है।

लेकिन फर्वरी १६४८ के बाद, हिमाचल प्रदेशके बन जानेके बाद भी क्या कनौर वैसा ही पिछड़ा रखा जायेगा? अभी तो यहाँके लोगों को कुछ नहीं मालूम, कि उनके राजनीतिक जीवनमें कोई बड़ी घटना घटी है। यहाँ हिमाचलके इस सुदूर कोनेमें गाँव-गाँव और घर-घरमें हमें विद्याका प्रदीप जलाना होगा, मेवों और खनिज पदार्थोंसे उत्पादन तथा ऊनीवस्त्र व्यवसायके विस्तारसे लोगोंके हाथमें धन पहुँचाना होगा।

२४. किन्नर-गीत

दुनियाकेलिये अल्पपरिचित दूर देशका नाम सुनने पर पहिले वह स्वप्न-लोकसा मालूम होता है। फिर एकाएक वहाँ पहुँच जानेपर कुछ विस्मय, कुछ

अज्ञात आकर्षण, कुछ विचित्र नवीनतासी मालूम होती है। वहाँ कुछ महीनों रह जानेपर उसके वर्तमान और अतीतको नजदीकसे यथाविधि अध्ययन करनेपर उसकी रहस्यमयता जाती रहती है, आत्मीयता आ जाती है। मेरा मन भी किन्नरके बारेमें इन सारी परिस्थितियोंसे किसी समय गुजरा। किन्नरका अतीत मेरे लिये अच्छे मनोरंजनकी वस्तु है, किन्तु मैं उसके भविष्य—युगों बाद कलसे शुरू होने वाले भविष्य—के साथ अधिक आत्मीयता अनुभव करता हूँ।

आदमी किन्नर-सम्बन्धी भावुक, वैज्ञानिक कल्पनाओं और गवेषणाओंमें ही लीन नहीं रह सकता, जबकि उसके आसपास मेवोंके उद्यान लहलहा रहे हों। उनमें छोटेसे छोटे सेब वृक्ष भी फलोंसे इतने लदे हों, कि थून्ही लगानेपर भी शाखाओंकी रक्षा संदिग्ध मालूम होती हो। सेब भी ऐसे जो आपके सामने ही छोटी-छोटी हरी बतियासे बढ़ते गंदे लाल रंगके हो एक दिन एकाएक ऐसे चमकीले रक्तवर्णमें परिणत हो जाते हों, कि उन्हें देखकर ईरानी कवि सुन्दरियों के कपोलको "सेबसुर्ख" की उपमा देनेकेलिये मजबूर हों। नास्पाती—यहाँ नास्पाती नहीं उसीकी श्रेष्ठ जाति नाखें होती हैं—आपके पड़ोसमें हो, जो पिछले साल फलभारसे अपनी एक शाखा नहीं एक अंगको गँवा चुकी हो, और पूछने पर मालूम हो, कि यह अमृतातिशायी फल सितम्बरमें पकेगा, तो आपका मन कैसा करेगा, यदि आपको अगस्तके आरम्भ ही में स्थान छोड़ना पड़े। मैं २० मईको चिनी पहुँचा। तबतक सेबों पर फूलोंकी बहार खतम हो चुकी थी और छोटे-छोटे दाने लगे थे। मेरे सामने ही वे बचपनसे तरुणाईकी ओर अग्रसर होने लगे। मैंने चूलीकी तो बचपनसे ही चटनी शुरू करदी—"जोई राम सोई राम"। फिर पहिला फल जो खानेको मिला, वह चूलियां (इधरकी खूबानियों) का था। लेकिन सोच रहा था, क्या सेब-अंगूरको बिना चखे ही किन्नर छोड़ना पड़ेगा। पहिले तो डौल कुछ ऐसा ही मालूम हुआ था, किन्तु अन्तमें प्रस्थानको जूलाईके आरम्भसे अगस्तमें स्थगित करना पड़ा। जूलाईके उत्तरार्धमें सेब आया—पिछले सालका रखा सेब तो बहुत बार खा चुका था। यह शर्माजीके रेंजरक्वार्टरका सेब था, जो चिनीमें सबसे पहिले पकता है। खट्टा तो था, किन्तु ताजा था। सुन रखा था, उसमें विटामिन 'सी' बहुत है। उसके बाद तो आलूचा भी आने लगा, और अन्तमें उससे मन ऊब गया। डर था,

कहीं नई द्राक्षा बिना चखे ही यहाँसे निकलना न पड़े। देवता कभी-कभी मेरी कड़वी-मीठी बातोंसे कितने ही पाठकोंकी भाँति बिदकते भी हैं, किन्तु अन्तमें स्निग्धता प्रदर्शन किये बिना नहीं रहते। इस प्रकार उन्होंने २५ जुलाईको खबर भी भेजकर दिलासा दी—नीचे नेवल (नदी तट) में अंगूर पकने लगा है। लेकिन मैं भी भारी यथार्थवादी हूँ, मैं देवताओं के दिलासेसे सन्तुष्ट नहीं हो सकता। अन्तमें २७ जुलाईको पके अंगूरोंका गुच्छा देखनेको नहीं खानेकेलिये आया। उसके बादसे तो रोज ही कभी अल्पहरित और कभी काले अंगूर आ रहे हैं। अल्पहरित पहिले आये, खट्टे और अमनोज्ञगंधी होने पर भी अच्छे थे, किन्तु जब किन्नरके अपने काले मधुर अंगूर आने लगे, तो घरसे कई हरितगुच्छोंको हटाना पड़ा। अभी यह पहिले पकनेवाले अंगूर हैं, असली अंगूरोंके लिये महीना भर और ठहरनेकी जरूरत है। खैर पेट भरना नहीं परिचय असल चीज है, खासकर लेखककेलिये! साक्षात् परिचय पर ही उसकी लेखनी इत्मीनान और फुरतीके साथ चल सकती है।

अभी (२ अगस्त) चीनीमें पाँच दिन और रहना है और किन्नरमें तो पूरे डेढ़ सप्ताह, इतने समयमें और भी परिचय प्राप्त हो सकता है।

× × ×

किन्नर-कंठकी प्रशंसामें जब हमारे सतयुग तकके मनीषियोंने "नेति नेति" कहा है, तो उसके बारेमें मेरी अनेक बार पुनरुक्ति, आशा है, यदि भूषण नहीं तो दूषण भी नहीं समझी जायेगी। किन्नर-कंठ मधुर है, किन्नर-गीत मधुर है साथ ही वह अत्यन्त सरल और अकृत्रिम है। उसमें कोई उस्तादी कलाबाजी नहीं है। संगीत और कविता दोनोंसे मेरा सम्बन्ध बहुत अच्छा नहीं रहा है, मालूम नहीं किसका दोष है। संगीत सम्राट और कविपुंगव आदेश करते हैं— रसगुल्लेका पारखी हलवाई होता है और मैं कहता हूँ खानेवाला। मुझे नहीं मालूम छन्द (वोट) मेरे पक्षमें अधिक है या दूसरे पक्षमें। पक्के संगीतके बारेमें मेरा मतभेद हो सकता है, किन्तु जनसंगीत अधिकतर मुझे प्रिय लगते हैं। जनसंगीतमें पहाड़ी संगीत मुझे बहुत मधुर मालूम होता है, और उसमें भी प्रथम स्थान मैं किन्नर संगीतको देता हूँ।

बसंतश्री अबोध-पक्षियोंको मुखरित कर देती है। जान पड़ता है प्राकृतिक

सुषमा, मधुर संगीत तथा मधुर कंठका कोई नैसर्गिक सम्बन्ध है; तभी तो पहाड़िनें कोकिलकंठी होती हैं, और किन्नरकंठकी इतनी महिमा गाई गई है। हिमाचल की नारियाँ कोई भी काम बिना गीतके कर नहीं सकतीं। हृदय सिहरानेवाली पहाड़ी जगहमें खड़ी घास काट रही हैं, और उनकी गीतध्वनि नदीके कलकलके साथ मिश्रित हो रही है। हरे खेतोंमें निराई कर रही हैं, और मधुरकंठ दिगन्त को मुखरित कर रहा है। किन्नरमें तो संगीत नारीका स्वाँस बन गया है। २२ जुलाईको हम टहलने जा रहे थे। बँगलेसे दो मीलसे कुछ आगे देवदारु बनस्थलीमें पहुँचे। एकाएक कहींसे मधुर ध्वनि आने लगी "ना-न न-न-न-न-न-न-ना-इ। ना-न-न-न-न-न-न-न-नो-ो-ो-ो-ऽ।" पुण्यसागरके कथनानुसार गीत था—

जङ् मोपोती बोली, "सखि हे सखी। चलो बिहरने कंडे*, खेत रक्षा करें।..."

कृष्ण भगती बोली, "बिहरने तो कहती हो, कलेवा क्या ले चलें?"

"कलेवा तो ले चलें रोपङ्का भुना गेहूँ...

किल्वा फाफड़का आटा।

टोकरोंके काले उड़दकी दाल।..."

मैं गीतकी भाषा नहीं समझता था, किन्तु सुन्दर सङ्गीतकेलिये भाषा समझनेकी उतनी आवश्यकता भी नहीं है, यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं कि नैसर्गिक सौंदर्य आभूषणके मूल्यको और नहीं बढ़ाता। हम सुनते हुये आगे बढ़ते गये। स्वर मधुर था, साथ ही ठोस भी, यद्यपि उसका अर्थ यह नहीं कि वह कर्कश था। धीरे-धीरे स्वर दूर होता गया, और प्रतिध्वनि अबभी कानों में गूँज रही थी। आध मील जाकर लौटे, तो देखा अब भी वह तरुणकंठ उसी तरह गीत-मग्न है। मैंने गायिकाको देखनेकी कोशिश पहिले व्यर्थ ही की थी, किन्तु अब की ऊँचाईकी ओर सड़कके छोरपर और जाने पर प्रायः पाँचसौ फीटके ऊपर शिलातल पर कोई तरुण बंठिन (सुन्दरी) उसी तरह संगीतमें लीन थी, जैसे बाणकी महाश्वेता आच्छोदसरोवरके तटपर। यहाँ पशुपक्षी संगीतके आनन्दमें विभोर हो निश्चेष्ट अचेतनसे नहीं बन गये थे—मैं नहीं समझता, हम दोनोंके

* पर्वतका ऊपरी भाग।

अतिरिक्त भी वहाँ कोई श्रोता था। यहाँ बंठिनके हाथमें वीणा नहीं थी, और न वह शुभ्र सुन्दर वेष ही, जो उस दिन महाश्वेताने धारण किया था। वीणा का काम उसका शरीर दे रहा था—कभी वह दोड़् को हिलाती कभी चादरको, कभी फिर अपने पैरोंको, फिर दोनों हाथोंको, और वस्त्र—बहुत मलिन ऊनी चादर (दोड़्) कन्धेपर सुईसे बँधी। काफ़ी दूर, और सो भी सीधे शिरके ऊपर जैसे स्थान पर, इसलिये मैं नहीं कह सकता, कि वह रूपहीना थी या नहीं, किन्तु आयुमें षोडर्शा नहीं तो विंशिकासे अधिक नहीं थी। थोड़ी ही देरमें किसी देहवासीने उपद्रव किया और वह संगीत छोड़ दोड़् के ऊपर दोनों कन्धों को ढाँकनेवाली चदरिया उतारकर उसे देखने लगी। हम भी वहाँसे विदा हो गये।

जहाँ संगीत इतना प्रिय हो, वहाँ गीतकी अधिक माँग होना भी आवश्यक है। गीत किन्नरमें बहुत बनते हैं, किन्तु अधिकांशकी आयु दस-पन्द्रह सालसे अधिक नहीं होती। जनगीतोंके कवियोंका नाम तो दुनियामें सभी जगह प्रायः अज्ञात रहता है; इसलिये यहाँ भी वही बात हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्नर-गीतोंके देखनेसे पता लगेगा, कि यहाँ के जनकविका मस्तिष्क काफी विकसित है। छंद बहुत सरल हैं, और वह प्रायः गायत्री छंदकी भाँति तीन पादके होते हैं। छंद भी वैदिक छंदोंकी भाँति ही अक्षर-छंद है, जहाँ गायकको ह्रस्व-दीर्घप्लुत करनेकी पूरी स्वतंत्रता है। गीतमें अन्तिम पदको दुहराते अगले छंदके प्रथम पादसे जोड़नेका वही ढंग दिखाई पड़ता है, जो भोजपुरी आदिके कितनेही जनगीतोंमें पाया जाता है। गीतोंमें नये भावोंके व्यंजक शब्द भी प्रयुक्त होते हैं, जैसे "भाव" (भ्हाव) शब्द ही, जो प्रेम, चाह और भावुकताके-लिये प्रयुक्त होता है। संगीत सार्वजनीन वस्तु है। इसका यह अर्थ नहीं, कि यहाँ संगीतका व्यवसाय करनेवाले व्यक्ति हैं ही नहीं। मैं कोठीकी बढ़इन—हिर-पोतीका जिक्र कर चुका हूँ। उसकी दो बुआयें, जिनमें खइछो अभी भी जिन्दा है, प्रसिद्ध गायिकायें ही नहीं विख्यात जनकवयित्रियाँ भी थीं। मुझे खेद है, उनकी अच्छी कवितायें हिरपोतीको याद न थीं। लेकिन जैसा कि ऊपर कहा, यहाँके जनगीत चिरस्थायी नहीं होते। "मियाँ सा' ब" और "गुरकुम्पोती" के गीत तीन पीढ़ी पुराने हैं, और कुछ वृद्धोंको ही याद है।

किन्नरके जिन ग्यारह गीतोंको मैं यहाँ दे रहा हूँ, उन्हें आजकलके प्रचलित गीतोंमें सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। सर्वश्रेष्ठ ग्यारह गीतोंकेलिये कमसे कम दो सौ सर्वप्रिय अच्छे-अच्छे गीतोंके संग्रह करनेकी आवश्यकता थी, जिसके लिये मेरे पास समय कहाँ था? इन जनगीतोंमें प्रेमका स्थान अधिक होना स्वाभाविक है। किन्तु यहाँ संगृहीत गीतोंमें "रूपसिंह" (१०) और "चुन्नीलाल डागडर" (११) को ही प्रेमगीत कह सकते हैं। "गुरुकम्पोती" (२) और "मियाँ सा'ब" (१) एकान्तेन प्रेम गीत नहीं हैं। "उतमवीर नेगी" (३), "सूरजमोनी" (८) और "व्यासमोनी" (६) किन्नर-जीवन के विभिन्न पहलुओंकी झाँकी देते हैं। "युमृदासी" (६) और "सागरसेन" (५) पारिवारिक-सामाजिक जीवनके चित्रणके साथ करुण भावोंको व्यक्त करते हैं। "पोतिष्टङ्" (४) में कोई कला नहीं है, जहाँ तक भाषाका सम्बन्ध है, किन्तु संगीतका माधुर्य तो कंठ पर निर्भर है। हाँ, इससे यह अवश्य मालूम होगा, कि किन्नरके देवता अब भी कितनी बातोंमें मानवोंसे भेद नहीं रखते। "बेलीराम बाबू" (७) अनियंत्रित कामुकता निदर्शन है, जिसमें यौन सम्बन्ध के कठोर प्रतिबंधवाले समाजसे आये व्यक्तिके ऐसे देशमें अनाचारकी सुलभता को बतलाया गया है, जहाँ यौन-स्वातंत्र्य स्वाभाविक रूप में पाया जाता है।

जनगीत माधुर्यमें उत्तमसंगीत होते हैं, और रस-परिपाकमें सुन्दर काव्य। मानव-जीवनका वास्तविक चित्रण जनगीतोंमें होता है, उतनी और जगह मिलनी कठिन है, और यथार्थवाद तो उनकी अपनी विशेषता है। इसीलिये प्रत्येक जनगीत अपने पीछे जीवन-इतिहास रखते हैं।

किन्नर जनगीत इतने अल्पायु क्यों होते हैं? गायकोंका यहाँ कोई विशेष वर्ग नहीं है, जवानी ढलनेसे पहिले जैसे प्रत्येक किन्नरी नर्तकी है, वैसे ही वह गायिका भी है। इसीलिये वही गीत गाया जा सकता है, जो इन नारियोंके हृदयको अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हैं। जिस गीतने एक बार उनके हृदय को आकृष्ट कर लिया, वह कुछही महीनोंमें मन्योटी-धारसे हङ् रङ्के डाँडे तक नदीतटों, जङ्गलों, खेतों और पहाड़ी डाँडोंको मुखरित करने लगेगा। यहाँ किसी गीतको संरक्षणप्राप्ति या कलाकी दुहाई देकर प्रचारित नहीं किया जा सकता। यही बातें सभी जनगीतोंके बारेमें कही जा सकती हैं।

मैंने गीतोंके कवियों और उनमें वर्णित घटनाओंकी सचाई आदिके जानने-केलिये थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया। "चुन्नीलाल डागडर" का गीत किल्बासे सम्बन्ध रखता है। शर्माजीका नौकर वहींका रहनेवाला है। एक दिन उससे पूछा—क्या जङ्मोपोती अब भी है।

—हाँ, अभी उमर नहीं ढली है, दो बच्चोंकी माँ है।

—क्या वह इस गीतको सुनकर नाराज नहीं होती?

—पहिले नाराज होती थी, लेकिन किसका-किसका मुँह रोके?

उसने बतलाया। जङ्मोपोती तरुण-कुमारी थी। डाक्टरकी उसके भाईसे दोस्ती थी। आते-जाते उसके साथ डाक्टरका प्रेम हो गया। गीतकी कवयित्रीने जङ्मोपोतीके प्रति न्याय नहीं किया है। गीतसे मालूम होता है, डाक्टर सच्चा प्रेमी था, जङ्मोपोतीने ही विश्वासघात किया। किन्तु यह कभी विश्वास करनेकी बात नहीं, कि एक नगर (सरगोधा, पंजाब) का शिक्षित अपने व्यवसायमें भी दक्ष डाक्टर तरुण एक अशिक्षिता ग्रामीण साधारण तरुणीके साथ जीवन बिताना स्वीकार करता। यदि जङ्मोपोतीको यह विश्वास होता, तो वह कभी उसे नहीं छोड़ती। यह भी स्मरण रहना चाहिये, कि जिन देशोंमें स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धमें पूरी स्वतंत्रता बरती जाती है, वहाँ कुमारियाँ निराबाध प्रेम का अधिकार रखती हैं। इसे आप किन्नरही नहीं, तिब्बत, अम्दो, मंगोलिया और जापान तकमें पायेंगे। हाँ, ब्याहके बाद वह स्वच्छंदता सह्य नहीं मानी जाती। जङ्मोपोती कुमारी थी, उसे स्वच्छंदताके उपयोगका पूरा अधिकार था, साथही अपने रास्तेको बदलनेका भी, जबकि उसने देखा, उसका प्रेमी एक क्षणकेलिये ही प्रेमका उपासक रहना चाहता है।

जङ्मोपोतीको अपने प्रेमका गीत पसन्द नहीं, किन्तु "उतमवीर" की प्रेमिका "यालू ज़ोमो" (बनफूल भिक्षुणी) सेरयङ् ६०से ऊपर सालकी वृद्धा अब भी जीवित है। उसका गीत जब यहाँ चिनीके बनोंमें इतना प्रचलित है, तो कनम् और सुङ्नम्में कितना होगा, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। मैंने उसके भाई जेलदार तोबग्यारामके पुत्रसे पूछा—सेरयङ्को तुम जानते हो?

—सेरयङ्! मेरी बुआ है—उसने बड़े इत्मीनानके साथ उत्तर दिया।

—सेरयङ् अपना गीत सुनकर खुश होती है?

—हाँ खुश होती है।

वहाँ, नाखुश होनेकी कोई बात नहीं है। सेरयङ् भिक्षुणी बनी थी, पीछे व्याह कर लिया, इसे बौद्ध देशोंमें कहीं बुरा नहीं समझा जाता। चाहे उत्तम-वीरकी बुआने पचासों रस्सियोंमें बटी चोटीवाली बहूकी जगह शिरमुन्डी "ज़ोमो" को देखकर भले ताना मारा हो। सेरयङ्के लिये यह गीत प्रेमकी एक मधुर-स्मृतिका भी उद्बोधक है, इसलिये भी वह उसे प्रेमसे सुनती होगी।

"मियाँ सा'ब" गीतमें जनजीवनके एक दूसरे पहलूका चित्रण किया गया है। मियाँ साहब फतेहसिंह राजासे ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी साधारण स्त्रीके पुत्र होनेके कारण गद्दीसे बंचित हुये। पीछे भाई राजा शमशेरसिंह से आज्ञा ले सुदूर हङ् रङ्में जा राज्यसे विद्रोह किया; किन्तु इस पहलू ने जनमनको अपनी ओर नहीं खींचा। उसका ध्यान अधिकतर उत्पीड़नकी ओर गया। राजा शमशेर-सिंहभी कनौर आते, तो उसी तरह मेट-मुखियोंको ५० असबाब पर ६० बेगारू तैयार रखने पड़ते, उसी तरह घी-चावल-बकरा जमा करना पड़ता। एकतरह इस गीतमें सामन्ती उत्पीड़नका अप्रत्यक्षरूपेण विरोध है।

किन्नर के जो पुराने गीत अब भी प्राप्य हैं, उन्हें संगृहीत किया जाना चाहिये। ज़इछोकी भाँति अभी भी कितनी ही वृद्धायें मिलेंगी, जिनसे बहुत पुराने गीत मिल सकेंगे। यदि ४४ वर्षकी आयुवाली स्त्रियोंसे अस्सीसाल पुराने गीत मिल सकते हैं, तो ज़इछोसे सवासौ वर्ष तकके गीत भी मिल सकते हैं। फिर व्याह उत्सव आदिके भी गीत हैं, जो और भी पुराने काल तक जायेंगे। किन्नर पाठकोंकी वर्तमान पीढ़ीका यह कर्त्तव्य है, कि वह इन गीतोंको सर्वदाकेलिये लुप्त होनेसे बचायें।

किन्नर भाषाका थोड़ासा नमूना पुस्तकके अन्तमें दिया गया है किन्नर इतिहासपर भी सिंहावलोकन करते समय उसका जिक्र आया है, किन्नरभाषा प्रारंभिक शिक्षाका माध्यम बनकर बहुत जल्द सारे किन्नरसे निरक्षता दूर कर सकती है, किन्तु अभीतो यह बात अरण्यरोदनसी ही मालूम होगी। तो भी इसमें तो किसीको आपत्ति नहीं, हो सकती, कि किन्नर भाषाके शब्दोंका सर्वांग-पूर्ण संग्रह किया जाये। किसी समय प्रायः सारा हिमालय प्राचीन किन्नरभाषा (किरात) बोलता था, किन्तु धीरे-धीरे उसका क्षेत्र संकुचित होते-होते बहुत

कम रह गया।* यहाँभी भाषाके बहुतसे शब्द लुप्त होगये हैं, जिनका स्थान हिन्दी और भोटिया शब्दोंने लिया है। संज्ञा और धातु ही नहीं विभक्तियाँ और सहायक क्रियायें तक हिन्दी या भोटियाकी आ पहुँची हैं—"है" के लिये किन्नरमें प्रयुक्त होनेवाला शब्द "दुग्" भोटिया है; और "गया" के लिये हिन्दीका "ग्योश्,, जिसमें "श" विदेशी शब्दके साथ जुड़नेवाला अनुबन्धमात्र है, "ग्या" वही "गयो" है। जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूँ, किन्नर शब्द-कोशमें प्रायः २५ से ५२ सैकड़ा हिन्दी, १४ सैकड़ा भोटिया और ३६ से ५६ सैकड़ा तक शुद्ध (किरात) भाषाके शब्द हैं। वस्तुतः इन दोनों भाषाओंने किन्नरभाषा-प्रदेशके बहुतसे भागोंको पहिले ही ले लिया। शायद किन्नर-भाषा का यह छोटा द्वीप बचा भी इसीलिये, क्योंकि उसने सीमास्थ देश का रूप ले लिया। जब किसी भाषाका अधिकांश शब्दकोश ही नहीं बल्कि विभक्तियों तक का भी स्थान दूसरी भाषा लेने लगती है, तो समझ लीजिये अब वह अन्तिम घड़ियाँ गिन रही है। अब शायद ही कोई किन्नर पुरुष मिले, जो काम-चलाऊ हिन्दी न जानता हो, स्त्रियोंमें अभी काफी ऐसी हैं, जो हिन्दीसे परिचित नहीं हैं। किन्नर-भाषाको चाहे कुछ दशाब्दियों भर न भी खतरा हो, किन्तु उसके शब्दकोशको खतरा जरूर है। अभी ही पचासों हिन्दीके धातु आचुके हैं, जिनके किन्नर पर्याय लुप्तहो चुके हैं। इसलिये किन्नर-भाषाके शब्दोंके वृहत् संग्रहकी अत्यन्त आवश्यकता है, और इसमें जितनी ही जल्दी हो उतनीही कम हानिकी संभावना है। मैंने मास्टर रामजीदासको इसकी प्रेरणा तो दी है, वह हिन्दीही नहीं भोटभाषा भी जानते हैं। संस्कृतकेलिये मैंने भी सहायता देनेको कहा है। देखें उन्हें अपने "छम्" (जप-ध्यान) में इसकेलिये फुर्सत होती है, या नहीं। आगे तो इस पुनीत कार्यके लिये कितने ही तरुण मिलेंगे, किन्तु उनके कार्य क्षेत्रमें अवतीर्ण होते समय तक किन्नरभाषा और भी सैकड़ों शब्दोंको खो बैठेगी, जिनमें कितनेही शायद कुन्जीके शब्द हों।

किन्नर-भाषाकी रक्षाका काम एक और व्यक्ति कर सकते थे, किन्तु वह

* किरात भाषायें हैं—लाहुली मलाणी, कनौरी, मारछानी, राजी, मगर, गुरंग, सुनवा कर, नेवार, तमंग, दाई, लिंबू, याखा, लेपचा, नागा

प्राचीनताके इतने गह्वरखोहमें डूबे हुये हैं, जिससे उन्हें पता नहीं लग पाता, कि भारतमें भारी परिवर्तनहो चुका है, और कुछही सालोंमें और भी घोर परिवर्तन होना चाहता है। वह हैं नेगीलामा तेन्जिन् ग्यलछुन्, तिब्बती-भाषाके प्रकांड विद्वान्। प्रकांड विद्वान् कहने मात्र से उनकी योग्यताका परिचय नहीं मिलेगा, मैं तिब्बतसे ही जानता हूँ, भोटराजधानी ल्हासामें वहाँके बड़े-बड़े राजपुरुष पढ़नेके लिये अपने लड़कोंको उनके पास आग्रहके साथ भेजा करते थे। वहाँ उनका बहुत सम्मान था, किन्तु सबको लात मारकर वह काशीकी कुछ गर्मियोंमें मृत्यु-मुख में रह कर तीनसालसे अपनी जन्मभूमिमें आकर लोगोंमें ज्ञान-धर्मका प्रसार कर रहे हैं। दूर-दूरसे लोग उनका उपदेश सुनने आते हैं, जो किन्नर-भाषामें होते हैं। उन्हीं उपदेशोंको किन्नर-भाषामें लिखकर छपा दें (जिसके हजार बारहसौ ग्राहक आसानीसे मिल सकते हैं)। इससे जहाँ उनके विचारोंका प्रचार होगा, वहाँ किन्नर भाषा भी लिपिबद्ध हो जायेगी। अभी तक पंडित टीकाराम द्वारा संगृहीत कुछ गीत (बंगाल एसिया सभाके जर्नलमें प्रकाशित), एक इंजील तथा कुछ और पृष्ठ ही किन्नर भाषामें छप पाये हैं।

इन गीतोंको मैंने उनके निर्माणकालके अनुसार रखा है। कालमें भी कुछ वर्षोंका अन्तर हो सकता है।

मियाँ सा'ब

कवि—अज्ञात गीतकाल—१८५६ ई० (?)

गायिका—	विद्याचरनी आयु—२० वर्ष;	जात—कनेत,	ग्राम—चिनी
	कमलानंद आयु ५५ वर्ष	"	"

लेखक— भगतसिंह, पुण्यसागर ता० ६-६-४८

विवरण—मियाँ साहेब फतेहसिंह बुशहरके अन्तिम राजा पदमसिंहके (मृत्यु १९४७ ई०) पितामह महेंद्रसिंह (मृ० १९१४) के बड़े भाई थे। राजकन्याके पुत्र न हानेसे गद्दीसे वंचित रहे, और पीछे हङ्रङ्में जा राज्यसे बगावत करके लोगोंको इतना तंग किया, कि हङ्रङ् वालोंने पकड़ लिया। फतेहसिंह राजकन्याके पुत्र न होनेसे गद्दीसे वंचित रहे, किन्तु उनके भतीजे राजा शम्शेरसिंहके योग्य पुत्र टीका रघुनाथसिंहकी मृत्युके बाद पदमसिंह ही

पुत्र रह गये थे, और वह राजकन्याके पुत्र न थे। शम्शेरसिंहने टेहरीके राजकुमारको गोद लिया, किन्तु अंग्रेजोंको वह पसंद नहीं आया, और उन्होंने पदमसिंहको ही गद्दीपर बिठाया।

ख़ुना रामपुरो, कुमो दरबारु कुमो,
कुमो दरबारु, तुकुथदेन् महाराज,

नीचे रामपुरके बीच दर्बार बीच।
बीच दर्बारके, तख़्त ऊपर महाराज।

गिलमुदेन् शुमूगोर,
गिलम् पर दर्बारी।

मियाँ साबुस् लोतोश, "कोन्सस् या कोन्सस्"
ई ओरज़् लन्तोक् शिरङ् लन्तोया ?"

मियाँ साहेब बोले "छोटक ! हे छोटक !
एक अर्ज करता हूँ, स्वीकार करोगे ?"

दे लोन्निग् बेरङ् महाराजुस् लोतोश्।
"किन् ठ दुया ओरज़ी, गली टू मरोन्चिक्।"
"हेद् ओरजी मानी, ग कनोरिङ् बीतोक्।
कनोरिङ मुलुक् ख्रामा, नुली मशूरियू मुलुक।

यह कहने पर, महराज बोले—
"तुम्हारी क्या है अर्जी, मैं क्यों न सुनूँगा ?"
"और अर्जी (कोई) नहीं, मैं कनौर जाऊँगा
कनौर मुल्क देखूँगा, वह मशहूर मुल्क

देव-कालियु अस्थान, कैलासू ता दरशन।"
महराज लोलितोश्, " की कनोरिङ् था देइ।

देवता कालीका स्थान, औ कैलाशका दर्शन।"
महाराज़ बोले,—"तुम कनौर न जाओ।

पोरज़ाउ तकलिफ रन्तिइ।"
प्रजाको तकलीफ दोगे।"

प्रेग्नइ मश्कोतिश्, ज़ी मियाँ साबा।
"बीतोकी चल्मा ओलिया पालारइँ।

बिल्कुल नहीं माना, मियाँ साहबजी ने।
"जाना चाहे तो गरीबोंको पालना।
भल्या चूलारइँ।"
बड़ोंको नोचना।"
बुलबुली सङ्ता, हुन् बीमिक् नीयो।
"अङ् चलिया हम् तोन्, चलो चलन्दोरा।"
ढाई नीज़ा असबाब, शुम् नीज़ा बूगार।
पह फटते फटते, तभी चल दिये।
"मेरे चलिया* कहाँ हो, चलो चलौवा।"
ढाई-बीस असबाब, तीन-बीस बेगार।
दो रिङ् रिङ् बुन्ना, वङ्तू ना जङ्तू।
राजा ज़ङ-छुम्देन् फोयनामङ् महाराज्,
बाँसे ऊपर ऊपर आ, वङ्तू-जङ्तू में।
राजाके पुलपर, फोकट नाम राजाका,
बन्याशित् अङरेजू।
बनया (उसे) अंग्रेजने।
मियाँ साबिस् लोतोश "मेट-मुखिया हम् तोन ?
बोरो बाथ करा, चबलस् कोनिकङ् बाखोरा।"
मियाँ साहेब बोले "मेट—मुखिया† कहाँ हो ?
रसद-बात लाओ, चावल गेहूँ बकरा।"
एक राती बेशी, शुपारी ता छीलो।
बुलबुली सङ्ता, हुन बीमिक नियो।
एक रात बैठे, और सोपारी छीले।
पह फटते फटते, तभी चल दिये।
"अङ् चलिया हम् तोन्, चलो चलन्दोरा।"
ढाई नीज़ा असबाब, शुभ नीज़ा बूगार।
"मेरे चलिया ! कहाँ हो, चलो चलौवा।"
ढाई बीस असबाब, तीन-बीस बेगार।

* नौकर-चाकर   † गाँवके दो अधिकारी

दो रिङ्–रिङ् बुन्ना, डोकीचु देन् कम्बा !
मियाँ साबिस् लोतोश् "ग (ली) कम्बा बीतोक्

वहाँसे ऊपर ऊपर आ, चट्टान ऊपर कम्बा
मियाँ साहेब बोले "मैं कम्बा जाऊँगा ।

दुरिगायू दर्शन, द्रोरोमा सन्ताङो* ।
द्रोरोमा सन्ताङो, कम्बा दुरिगा याशो ।"
मियाँ साबिस् रन्ग्योश्, ङ रूप्या नजराना ।
मियाँ साबिस् लोतोश् "मेट–मुखिया हम् तोन् ?

दुर्गाका दर्शन, द्वारोमा देवल अँगने ।
द्वारोमा देवल-अँगने, कम्बा-दुर्गा नाचती ।"
मियाँ साहबने दिया, पाँच रुपया नजराना ।
मियाँ साहेब बोले "मेट-मुखिया ! कहाँ हो !

अङ् डेरी हम् तोन् ?"

हमारा डेरा कहाँ है ?"

मेट-मुखिया लोतोश् "ज़ी लो ज़ी महाराज़ा !
किनू डेरो कैलितोक्, डोम्बरी देवराङ ।"
मियाँ साबिस् लोतोश्" ग माबिक देवराङे ।

मेट-मुखिया बोले "जी जी महाराजा !
आपका डेरा देंगे, देवताके देवालयमें ।"
मियाँ साहेब बोले "मैं न जाऊँ देवालय ।"

तन्ज्यान् कोठाल, ग्यातोक् ।

तंज्यान्की हवेली चाहिये ।

डेरो ता चुम् ग्योश्, तन्ज्यानू कोठालो ।
तन्ज्यनु पेरङ् सीम्पोरू मोज़री ब्रिग्योश ।

डेरा तो लग गया, तन्ज्यान्की हवेलीमें ।
तन्ज्यान्-परिवार सबेरे मोजराको गया ।

सोम् मोज़रो बेरङ्, ज़ीमियाँ साबू ।
गुरुकीची वादो मियाँ साबिस् लोतोश्

---

* देवालयके पासकी समतल भूमि, जो नाचके अखाड़ेका काम देती है

"सबेरे मोजराबेला मियाँ साहेबजी।"
मुस्काने हँसते मियाँ साहब बोले।
"तन्ज्यानू नेगानी, तन्ज्यानू नेगानी।"
किन्ना ता चेइतोइँ, मुरतू बन्ठिन् हम्बियोश्" ?
"तन्ज्यान्की नेगानी, तन्ज्यान्की नेगानी।*
तुम सब तो हो, मुरतू सुन्दरी कहाँ गई ?"
दो लोन्ना बेरङ्, नेगानी ता लोतोश्
'बोरे ता बीग्याश् कंडे ज़मी पोरी।'
यह कहने पर, नेगानी तो बोली।
'ननद तो गई, कन्डे खेत राखने'।
दे लोन्मू बेरङ्, मुरतू बन्ठिन् पोच्या।
मुरतू बन्ठिन् पोच्या सोम् मुज़रो बीग्योश्।
मियाँ साबिस् लोतोश् "या मुरतू बन्ठिन्!"
यह कहनेके समय, मुरतू सुन्दरी आ पहुँची।
मुरतू सुन्दरी पहुँची, भोरे मोजराको गई।
मियाँ साहेब बोले "हे मुरतू सुन्दरी!
कशो ओमचू बातङ्, मोरज़ात हले दुया ?
मोरज़ात् हले बीशेइँ, दो गली मानेन्मा।
हमारा प्रथम वचन, मर्याद क्या रखोगी ?"
"मर्यादा क्या भूलूँगी, सो नहीं जानती।
अङ् प्राचू मुन्दी।
मेरी अँगुली मुन्दरी।"
"मुरतू बन्ठिन् लोतोश्," "आम्च् बातङ् तामा।
अङ् त पोल्याशिम् बीतो," मियाँ साबिस् लोतोश्।
मुरतू सुन्दरी बोली "प्रथम वचन रखूँ तो।
मुझे लज्जा आती," मियाँ साहेब बोले।

* नेगीकी स्त्री

"हुन् बीमिक् नीयो, बुलबुली सङ्ता।"
दे लोन्मू बेरङ्, मुरतू बन्ठिन् लोतोश्।
"ज़ी मियाँ साब्, की ता मुलुक मालिक।

"अभी चलना है, पह फटते फटते।"
यह कहने पर मुरतू सुन्दरी बोली।
"मियाँ साहेब ज़ी आप तो मुल्कके मालिक।

ग ता खोशियाउ चीगे।"

मैं तो खशियाकी बेटी।"

दे लोन्मू बेरङ् मियाँसाबुस् लोतोश्।

यह कहनेकी बेला, मियाँसाहेब बोले।

"दो मनेशिश् अङ् मइ।"

"सो अज्ञात मुझे नहीं।"

मियाँसाबिस् लोतोश् "कम्बा ओरस् हम् तोन्?

मियाँ साहेब बोले "कम्बाका बढ़ई कहाँ है?

पोलगी बुनारा।"

पालकी बनादे।"

दे लोन्मू बेरङ्, मुरतू बन्ठिन् लोतोश्।
"अङ् पोलगी माशर, ग खोशिया चीमें।

"यह (बात) कहनेपर, मुरतू सुन्दरी बोली।
मुझे पालकी ना शोभती, मैं *खशियाकी बेटी।

ग पोलगी माग्याक्, ग ताबा ग्यातोक्।"
चलो चलन्दोरा, बुलबुली सङरङ्।

मैं पालकी ना चाहूँ, मुझे घोड़ा चाहिये।"
चलो (फिर) चलौआ, पह फटते सबेरे।

हुन् बीभिक हाचे, चलो चालन्द्रा।
ढाई नीज़ा असबाब, शुम् नीज़ा बूगार।

अब चलनेको हुये, चलो चलौआ।
ढाई-बीस असबाब तीन-बीस बेगार।

* पश्चिमी हिमालयमें बसनेवाले कनेतोंका दूसरा नाम खशिया (खश) भी है। खश (कश) नाम कश्मीर और काश्गर (कशगिरि) में है

दो रिङ् रिङ् बुन्ना, बाटीचु उरने।
मियाँ साब फतेसिंह, उरा बङ्लो कूमो।

वहाँसे ऊपर ऊपर आये कटोरीसी उरनीमें।
मियाँ साहेब फतेसिंह, उडनी बँगलेमें।

मियाँ साब लोतोश् "मेट-मुखिया हत् तोश्?"
मेट-मुखिया लोन्ना, उरा चारसु छाङा।

मियाँ साहेब बोले "मेट-मुखिया कहाँ है?"
मेट-मुखिया कहिये, उडनी चारस्का पूत।

नामङ् ता लोन्ना, बिसिंबर बैयर।
बोरो बात कारोश् चौलश्-कोनिकङ् बोखोरा।

नाम तो कहिये, विश्वंभर भैया।
रसद-पानी लाया, चावल, गेहूँ बकरा।

एक रातो बेशो, उरा बङ्लायू।
बुलबुली सङिरङ् हुन बीमिक नीयो।

एक रात बैठे उड़नी बँगलामें।
पह फटते प्रातः, तभी चल दिये।

दो रिङ्-रिङ् बुन्ना, मातोशोवाल्यङ्।
रोश्मालेयु चीने, तंबुवा चूक्योश्।

वाँसे ऊपर ऊपर आ, मातो शोवाल्यङ्*।
रोशमाले† चीनी, तंबू लगवाया।

राबायू ओमस्को।

पाषाण वापीके पास।

"रोशमालेयु चीनेयु, मेट-मुखिया हात तोश्?"
मेट-मुखिया लोन्ना, सुवारसु छाङा।

"रोश्माले चीनीका मेट-मुखिया कहाँ है?"
मेट-मुखिया कहिये, सुवारसका पूत।

---

* चिनीके पासके इलाकेका नाम, जो रोगीसे पंगीखड्ड तक है, और सदा से अंग्रेजका केन्द्र रहा †अन्य गाँवोंकी भाँति यह चिनीका विशेषण है।

सुखदास बैयारा
सुखदास भैया।
शुम् दियारो बैसो, मोलिया चुल्यायोश्।
तीन दिवस बैठे, बड़ोंको नोचा।
ओलिया पल्यायोश्।
गरीबोंको पाला।
तोंबुवा चुग् चुग्, बुनातो तोंबूवा।
राकइ बाटे डारी, दो नी तंबुवा कुमो।
मुरतू बंठिन् सुरतू, पसम पनिम् मा नेग्यो।
तंबू लगाके, बनातका तंबू।
नीले सूतकी डोरी, वहाँ तंबू भीतर।
मुरतू सुन्दरी मुरतू, पसम कातना न जानै।
बुलबुली सङ् रङ्, हुन् बीमिक आये।
बाटी-बेगार चल्यो, चालेन् चालेयोश्।
पह फटते प्रातः, तभी चलते हुये।
बेठ-बेगार चले, चला चलौवा।
हङ्-रङ् कुमो।
हङ्-रङ्के भीतर।
हङ्-रङ् कुमो, गुरमेल बेशायोश्।
गुरमेल् बेशायोश् डाईगोल कुमो।
हङ्-रङ्के भीतर गुरमहल बनवाया।
गुरुमहल बनवाया, ढाईमास भीतर।
दुम्-साचे लन्ग्योश्, हङ् रङ् न्यामा।
हुन् हला लन्ते, बोसेन् मा हन्शो।
हङो डोमङ्स् लोतोश्, "मजत् किना केरइ।
किया पंचायत, हङ् रङ् मोटोंने।
"अब क्या करिये, बस नहीं सकते?"
हंगोका कोली बोला "मदद तुम करो।
चुम्मिक् गस् चुम्तोक्।"
पकड़ना तो मैं करूँगा।"
ज़बनाचे चुम्ग्योश, हिलन् चे ब्यङ् ग्योश्।
"अङ् दुश्मन् बूदा, अङ् किम्-शू हम् तोइँ?

झपटके पकड़ा, काँपा डरा (मियाँ)।
"मेरा दुश्मन आया, मेरे गृहदेव कहाँ हो ?

अङ किम्-शू हम् तोइँ, मामइ दुरिगा।
मामइ दुरिगा, लंगुरा वीरा !

मेरे गृहदेव कहाँ हो, मातादुर्गा।
माता दुर्गा लकड़ा बीर (है)!

चोरम् जङ् राइँ।"
चमत्कार दिखलाओ।"

ज़ङ् ली ज़ङ्ग्योश्, पोलाच रोदङ्।
पोलाच रोदङ् रनु शोरू ज़ङ् सोरप्।

दिखाया तो दिखाया, रक्तकी वर्षा,
रक्तकी वर्षा, लोहेका ओले सोनेके सर्प।

मियाँ साबस् लोतोश्, "धीरो हङ् रङ् न्यमुछङ्,
देखियो तमासो हुना आङ्न्यूपी कानू।"
दो शोङ् शोङ् कायांश्, शास्यो देशङ् चो।

मियाँ साहेब बोले "ठहरो हङ्रङ् भोट्टो !
देखना तमाशा, अब तो मेरी, पीछे तुम्हारी।"
वहाँसे नीचे नीचे लाये श्यासो गाँवमें।

शास्यो विश्ट लोतोश् "ने लनशिम् मा श्को।
श्यासो-मंत्री बोला "ऐसा करना नहीं ठीक।

नो ली मुलुकु देबङ्।"
यह भी मुल्कके देव*।"

सिक्या खोल्यायोश् विश्टइनरदासस्।
दो शोङ् शोङ् बुन्ना धारेउ देन् पाङ्।

बंधन खुलवाया, मंत्री इन्द्रदासने।
वांसे नीचेनीचे आये धारपर पंगीमें।

एकराती बेशो, दो शोङ् शोङ् बिन्ना।

एकरात बैठे, वहाँसे नीचे आये।

* राजा।

युचा ला डेना, बरन् साबुसत्री।
संत्रीस् लोतोश् "ने लन्निग् मइके।"

नीचेसे ऊपर (आई) बर्नसाहबकी पुलिस ;
पुलिस ने कहा "यह करना नहीं।"

टिप्पणी—मियाँ साहेबको पुलिस पकड़कर नीचे ले गई, किन्तु फतेहसिंह शरीरसे बेकार हो चुके थे। हङ्-रङ् वाले अपने ऊपर किये गये अत्याचारोंसे क्रुद्ध हो उन्हें ताजे चमड़ेमें बाँधकर लाये थे, जिससे जकड़े उनके हाथ-पैर फिर ठीक नहीं हुये। फतेहसिंहको छोड़ दिया गया, किन्तु वह अधिक दिन जीवित नहीं रहे। मुरतू सुंदरी बहुत दिनों तक अपने मायके में जीवित रही। मियाँ साहेबके बारेमें पहाड़ी भाषामें भी गीत बनी थी, जिसके कुछ पद हैं—

मियाँ साहबी पालगी चाली, बीमा कालिओ खाँडो।
मियाँ चालो फतिया सिंगा, लोगी गरची खादो॥

मियाँ साहेबकी पालकी चली, साथे भीमा कालिका खाँड़ा।
मियाँ चला फतेहसिंह, लोगोंकी खर्ची (जीविका) खाने॥

थड़ पाँचे काँडइदी, जलाँ आगियो बेटो।
ते ना जाणोंगो देवी मसाइया! मियाँ राज़ियो बेटो॥

थड़ेके पीछे कंडेमें, जलती आगकी ज्वाला।
तू नहीं जानता देवी मसोई! कि मियाँ राजाका बेटा॥

पारबाती घाडणे लाये देवियारे डंबा।
छेबीये थालटू घाले, नोबीये जगा॥
खाई गरचीं देवी मसोई, दलमल उई।
खाई गरची हुतडूई, रोटी लैना उई॥

पारसे निकालने लगी देवीकी संदूकें।
छ-बीस (१२०) थालियाँ निकालीं, नौ-बीस कटोरे॥
देवी मसोईकी खर्ची खाई, खूब मौज हुई।
हुतडूकी खरची खाई, एक रोटी भी न हुई॥

(२) गुरकम्पोती

कवि—अज्ञात गीत-काल १८७० ई० (१)

गायिका—हिरपोती, आयु—४४ वर्ष, जात—बढ़ई, गाँव—कोठी

लेखक—पुण्यसागर ता० ३०-७-४८

विवरण—गुरकम्पोती ग्वारंगी निवासी वजीर गुरदासकी बहिन थी, जिसका ब्याह चिनीके चिनचारस् वंशके देवारामसे हुआ था। उसे पुत्र हुआ, किन्तु देवारामने उसे अपना पुत्र नहीं स्वीकार किया। राजा शमशेरसिंह (मृत्यु १९१४ ई०) उस पर मुग्ध हुये और पालकी पर चढ़ा उसे अपने अन्तःपुरमें ले गये।

दो गोल्यो दङ् शोङ्, खोनेउ रम्पूरो।
कुमो दरबारो, तोगतु देन् माराज।

वहाँसे वहाँ, रामपुर उपत्यका
बीच दर्बारके, तखतपर महाराज।

गेलमुदेन् शुम् गोर।

गिलमपर दर्बारी।

माराज़स् लोतोश् "गुरदास वज़ीर हम् तोइँ?

महाराज बोले "गुरुदास वजीर कहाँ हो?

अङ ओम्पे जारइँ।"

हमारे संमुख आओ।"

दे लोन्नुबेरङ् गुरदास वज़ीर।
निश्* गुद्-हथ् ज़ोरयो "ठ रिङ् तोइँ माराज़?"
"रिङ मिग् ठ रिङ् तोग् किन् रिङ् जे ते दुइँ?"

यह कहने पर, गुरुदास वजीर।
दोनों कर-हाथ जोड़के "क्या कहते महाराज?"
"कहना क्या कहूँ, तुम्हारी कितनी बहिन हैं?"

"ज़ी (ले) ज़ी माराज! अङ् रिङ्जे मा दुग्।"
"रिङ्ज़ मादुग् रिङो, अङ् पोय् रङ् सोत्यइँ।"

"जी, जी महाराज! मेरी बहिन नहीं है।"

---

* गुद कनौरीमें हाथको कहते हैं।

"बहिन नहीं कहते, (तो) मेरा पैर छूओ।"

"पोयूरङ् मा सोत्याक्, अङ् शुमूले रिङ् ज।

पैर ना छूऊँगा, मेरी तीन बहिनें।

जेश्मङ्से रिङ् जे मरखोन्यो*जाङे।

ज़ाङे विश्पोन् गोरे; मज़ङ् से रिङ् जे,

अक् पा-विश्टु गोरे, कोन्सङ् से रिङ्ज़े,

जेठी बहिन मरखोनी जंगीमें।

जंगी बिश्पोन् (वंश) के घरे, मझली बहिन,

अक्पाके विश्टुकों† घरे; कनिष्ठा भगिनी,

आनेनु मय्टे, चिनेचारस् छङ् रङ्,

चिनचारसु देवाराम "अङ् छङ् मारिङो।"

अपने मैकेमें, चिनचारस् के पुत्रके साथ,

चिनचारस् देवाराम बोला "मेरा पुत्र नहीं।"

बन्ठिन् गुरकम्पोती शोङ् दरबारोजब् क्योश्।

खोनउ रम्पूरो, कुमो दरबारो।

मुन्दरी गुरकम्पोती नीचे दर्बार गई।

रामपुर उपत्यका, बीच दरबारके,

तोखतुदेन् माराज, गुरकम्पोतिस् लोतोश्:

"ज़े देव जे माराज् ! ई ओर् जी लन्तोक्।"

हेद् ठ दु ओर् जी, "चिनचारस् देवरामस्

तख्त पर महाराज, गुरकुम्पोती बोली

"जयदेव जय महाराज ! एक अर्जी करूँगी।"

दूसरी क्या अर्जी, "चिनचारस् देवाराम,

'अङ् छङ् मा' रिङो।"

'मेरापुत्र नहीं' बोलता।"

माराज़स् लेतोश्, 'रूबङ-ज़ोर्मङ् ख्याते।'

* कनौरके गाँवोंके अपने स्थायी विशेषण होते हैं, यह जंगीका विशेषण है। † मन्त्री, इस घरमें कभी कोई मन्त्री बना होगा।

रुवङ् ख्यामा, चिनचारसु रुवङ् ।

महाराज बोले "रूप-रंग देखें।"

रूप-रङ्ग देखा तो, चिनचारसका रूप (था) ।

माराज़स् लोतोश् "ग कनोरिङ् बूतक् ।

महाराज बोले "मैं कनौर जाऊँगा ।

कनारिङ्-तमासो ।

कनौरके तमाशाको ।

दो रिङ्‌रिङ् बीना, रोश्मालेउ चीने ।

माराज़स् लोतोश् "गुरदास वज़ीरऽ

वाँसे ऊपर आये, रोश्माले चीनीमें ।

महाराज बोले "गुरुदास वजीर !

पइँ सेली बीते ।

चलो सैर चलें ।

माज़ा कोश्टिङ्पे, मामाय् दरशण

कोठीके बीच, माताका दर्शन ।

देबिउ चंडिके ।"

देवी चंडिका का ।"

दो शोङ् शोङ् बीमा, थुरको बेरासो ।

वाँसे नीचे नीचे आके, ऊपर भैरवका,

ज़ी बेरो दरशण ।

भैरवजीका दर्शन ।

दो शोङ् शोङ् बीमा, कुमो देवराङ् ।

गंगाछम्बोदेन् देवियो चंडिके ।

वाँसे नीचे-नीचे आये, देवलके बीच ।

देवताविमानमें देवी चंडिका ।

मारज़ शम्शेर सिङ्स, मिलाकात् लन्योश ।

दो नेस्-नेस् बुमा, जाखोल्यो ग्वारिङ् ।

महाराज शम्शेरसिंहने मुलाकात की ।

उससे परे परे आके झाडीवाली* ग्वारंगी ।

बिश्टू गोरिङ् देन्, बिश्टू पेरङ् ता ।

* ग्वारंगी गाँवका स्थायी विशेषण ।

"किना तो चेइ तोई, गुरकम्पोती हम् तोश् ?"
"गुरकम्पोती तोशा, कल्पा-सेरिङ्ङ् ,
कल्पा-सेरिङ् ङो, ग्यम्डस् * तीशेदो ।"

मन्त्रीके घरपर, मन्त्री-परिवार मिला।
"तुम सब तो हो, गुरकम्पोती कहाँ है ?"
"गुरकम्पोती है, कल्पाके खेत में,
कल्पाके खेतोंमें, ओग्लाको पानी देती ।"

माराज़ चल् ग्योश् कल्पा सेरिङ्ङो ।
गुरकम्पोतीयू, जमूनाचे चुम्ग्योश् ।

महाराज चलेगये, कल्पाके खेतों में ।
गुरकम्पोतीको झटसे जा पकड़ा ।

हिल्नाचे क्यङ् ग्योश ।
"ठ बातङ् रिङ् तोइँ ?"
"ग चिनचारस् छङ् रङ् , उमासरन नेगी ।"
माराज़स् लोतोश् "बाहा लगेदा,

(वह) काँपी और डर गई ।
"बात क्या कहती हो ?"
"मेरा चिनचारसपुत्रसे उमाशरण नेगी !"
महाराज बोले "भाव† (तुझसे) लग गया ।
अब तो जाना होगा ।"

हुनता बूमिग् हाचे ।"
"ज़ोरमङ् ता कोरमङ् , अमा रङ् बापू ।
तकदिर लिख्या शिद्, अङ् (भालो) माई ।"
ओम चू बेरङ् शोङ् , चिनचारस् देवाराम ।

"जन्म और कर्म तो, माता औ पिता ।
तकदीर लिखा है, मेरे (अच्छा) लाहीं ।"

* एक प्रकारका फाफड़

† भाव = प्रेम, चाह

पहिले समय तो चिनचारस् देवाराम
"अङ् छङ् मा रिङो।" बोला (था) "मेरा पुत्र नहीं।"
जादोबेरङ् शोङ् माराजु पलगीउ।
बुलबुली सङ्रङ् हुन् ब्रीग् हाचे।
इस समय तो महाराजकी पालकी पर।
पह फटते प्रात: अब जाना होरहा।

(३) उत्तमवीर नेगी

कवि—अज्ञात गीतकाल—१६०८ (?) ई०
गायिका—विद्याचरनी, आयु—२० वर्ष, जाति—राजपूत, ग्राम चिनी
लेखक—रतनचंद (सुङ्नम्) ता० ६-६-४८

विवरण—उत्तमवीर नेगी कनम्के रहनेवाले समृद्ध परिवारके आदमी थे। उनके घरका नाम "गेलोङ्" था, शायद उनके पूर्वज गेलोङ् (भिक्षु) से गृहस्थ हुये थे। उतमवीरकी पत्नी अब (जुलाई १६४८) भी जीवित (६० वर्षकी आयु) हैं, किन्तु गीतका नायक कई साल पहिले मर गया। सेरयङ्की बहिन ज़ोमो अपने भाई सुङ्नम् निवासी जेलदार तोब्ग्या रामके घरमें भिक्षुणी हैं। उतमवीरकी दो पुत्रियाँ हुईं—बुटित् ल्हामो (दीवानसेनकी पत्नी) और हिरकोली। हिरकोली का पति अगरराम घर-दामाद बनकर गेलोङ् वंशको जीवित रखे है। गीतमें कुछ कनम्की बोलीके (उद्धरण चिन्हवाले) शब्द भी हैं।

दो गोलयो दङ् शोङ्, जङ्चो थङ् कनम्।
जङ् चो थङ् कनम्, गेलोङ् गोरिङ् देन्।
वहाँसे वहाँ जा कनम् सोनेका मैदान।
कनम् सोनेका मैदान, गेलोङ् घर में।
गेलोङो छङा, उतमवीर नेगी। गेलोङ्का पूत, उतमवीर नेगी।
उतमवीर लोतोश् "अङ् ज़ोमो नाने!
तोरोगस् तङ् पखोली, हुन मोरछङ् हाचिशे।
उत्तमवीर बोला "मेरी भिक्षुणी बुआ!
अब तक अबूझ था, अब सयाना हुआ।
पोरमी मायेच हाले, पोरमी थोग्याम् बूतोक्।

छेरेब वीयुरतो केरिङ्, नीज़ा ढाई-नीज़ा।

बहू बिना कैसे चले, बहू खोजने जाऊँगा।

थोड़ा द्रव्य दे, बीस ढाई-बीस।

ज़ोमो नानेस लोमोश "बंजा उतमवीरा!

छेमा छेरेब, छेमा छेरेब् छेरेब्?

भिच्छुणी बुआ बोली "भांजे उत्तमवीर।

क्यों थोड़ा-थोड़ा, क्यों थोड़ा-थोड़ा?

सन्दूकी ठ्वायारिङ्, पेसा छु गाटा?

ओम्चो गिलटू पैसा, तू सयालखू रुङ्-रग्।

सयालखू रुङ् रग्, चुली-रेमा बराबर।

सन्दूक लेजा, पैसेका क्या घाटा?

पुराना गिलटका पैसा, वह दसलाख कंकड़का ढेरा

दस लाख कंकड़का ढेर, चुली*गुठलीके बराबर।

नरनर ली हजार, पक्-पक् ली हजार।

दे लोन्ना बेरङ् उत्तमवीरस् लोतोश।

"बैटू छोपेलो हाम्तोन्, तोन् ठ बैटू?

"तबा" चाबीम बीरा, कोरती खोनाचा।

गिन-गिनके हजार, नाप-नापके हजार।

यह कहने पर उत्तमवीर बोला।

बैटू† छोपेल! कहाँ है, कहाँ है चाकर

घोड़ा लाने जा, कोरतीके मैदानसे।

डाई-नीज़ा तावा, बीन्या न्याकारा,

शुम् बोशङ् ठुरू, काचुग् मताई गोन्मा।

तिङ् डो से तावा, बङखोनो थोरिङ।"

ढाई बीस घाड़े (वहाँ) से बीनकर ला।

तीनसाला बछेड़ा, बछेड़ी बिन व्यायी घोड़ी।

* छोटी खूबानी। † चाकर

सुन्दर चालका घोड़ा, पाँवके ऊपर लच्छन ।

पलब्रोरो बेरङ् ताबा पोंच्याग्यो ।
योरुङ् खातङ् चो, तवा (ता) तङ्-तङ् ।

पलभरके समयमें, घोड़ा आ पहुँचा ।
नीचे द्वारपर घोड़ेको देखके ।

उतमवीर खुशी हाचि ग्योश् खुशी हाचियोश् ।
तावा पन्होन पहन्यो, चीलडी रङ् अरगा ।
माश्यो रङ् माटन, यापचेनू रोनो ।

उत्तमवीर खुश हो गया, हो गया ।
घोड़ेको पहनाव पिन्हाया, घन्टी और घुँघरूँ ।
आस्तरण और जीनथोश, लोहेकी रिकाब ।

दङ् पीपलू अरगा ।

औ पीतलका घुँघरूँ ।

उत्तमवीर नेगी, तावा "थोरिङ्" शोकसिस् ।
उत्तमवीस ताँबा, गोङ् युला मा पकसी ।

उत्तमवीरनेगी, घोड़ा ऊपर सवार हुआ ।
उत्तमवीरका घोड़ा गोङ् युलके योगा ।

उत्तमवीर अरगा, शुम्-छोओ रोन्यातो
दोरिङ् रिङ् बुमा, थङ् लिङ् गोङ्युलो ।

उत्तमवीरका घुघरूँ, शुम्छो*में गूँजा ।
बाँसे ऊपर ऊपर जा, थङ लिङ†में गोङ्युल्के ।

मारब्रोरिस् गोरे मारबोरिस् न्योटङ् ज़ाई ।
नामङ् ठ दू गयोश् , नामङ् ठ दू ग्योश् ?

मारब्रोरिसके घरे, मारबोरिसकी दो जाई ।
नाम क्या था, नाम क्या था ?

नामङ् तालोब्रा, जीछोरङ् सेर् यङ् ।
बन्ठिन् ता ज़ोछो, चालाक ता सेरयङ् ।

---

* शुम्छो = लब्रङ्, कनम् , स्पीलोकेगाँव † सुङ्नम् गाँव

नाम तो कहिये, ज़ीछो और सेरयङ् ।
सुंदरी तो ज़ीछो, चालाक तो सेरयङ् ।

ज़ीछो माइटङ् छेछाचङ् । ज़ीछो मायकेकी कन्या ।

"अङ् भात्रों मा बदा, सेर्यङ् यालू ज़ोमो ।"
चालाकी ता ग्याशो, गोर-बनु मा पकुसी ।

"मेरे भावमें नहीं जची, सेरयङ् यालू*भिच्छुणी"
चालाक तो चाहिये, घर-बनके योगा ।

"चालक पोरमी फीमा, गोर-बन चाल्यातो ।"
उतमवीरस लोताश्, "पन्ठङ् बङ् पेरङ् ।

"चालाक बहू ले जायँ, घर-बन चलायेगी ।"
उत्तमवीर बोला, "घर भरके लोगों ।

कितान् ता तोचू, सेरयङ् लोन्निक् हम् तोश् !"
सेरयङ् ता लोन्ना, थङ् गोन्पो कुमो ।
लामा चेईनो बागे, ज़ीमो चेइनू दूरे ।

तुम तो हो, सेरयङ् नामक कहाँ है !"
"सेरयङ् तो कहिये, ऊपर मठके भीतर ।
लामा सबसे कहिये पीछे, भिच्छुणी सबसे आगे ।

युम् पोती स्तीलो ।" प्रज्ञापोथी †पढ़ती ।"

गुद चुम्चुम् कातोश् , बाहरे गोन्पागू ।
उतमवीरस् लोतोश् "सेरयङ् यालू ज़ोमो ।

हाथ पकड़े लाया, बाहरमें मठके ।
उत्तमवीर बोला सेरयङ् यालू भिच्छुणी ।

रिङ् जे या रिङ् जे ! बहिन हे बहिन !

मोरज़ात हाले दूया, काशो ओमीचू बातङ् ।"
सेरयङ् ज़ोमो लोतोश् फाने गोन्की मा ज़ाइँ ।

विचार (तुम्हारा) कैसा ? हमारी पहिली बात ।"

* गुलाबकाफूल । †प्रज्ञापारमिताकी पोथी

सेरयङ् भिक्षुणी बोली "पहिल सबेरे नहीं आये।
हुनाग यालू ज़ोमो, 'छोमों' बरछोत् बूतीक।
छोसो बरछोत् बन्ना, बरछोत् सिल्सिल् शेते।"
अब में यालू भिक्षुणी,† धर्ममें बाधा आयेगी।
"धर्ममें बाधा होगी; निवारक पाठ करायेंगे।
डसङ् मङ्चा फुल्तो
विहारमें भोज देंगे।"
उतमवीर नेगी सेर्यङ् लिकशिस् बीग्योश।
अनेनु गोरे ज़ोमो, नाने लोतोश्।
"बन्ज़ा उत्मवीर! ज़ोमो पोरमी ठ कइँ?"
उत्तमवीर नेगी सेरयङ्को साथ लेगया।
अपने घर (जानेपर) भिक्षुणी बुआ बोली।
"भाँजे उत्तमवीर! भिक्षुणी बहू क्यों लाये?"

(४) पोतिष्ठङ्

कवियित्री—बनाछों और खइछों भगिनीद्वय, खइछों आयु—७० साल
गायिका—हिरपोतीं, आयु—४४वर्ष, जात्—बढ़ई, गाँव—कोठी
लेखक—पुण्यसागर (गीतकाल—१६२०) ता० ३०-७-४८

विवरण—कोठी (कोष्टि थे) किन्नरका पुरातन केन्द्र है, जहाँकी देवी चंडिका सारे किन्नरमें प्रसिद्ध है। चंडिकाको पार्वती दुर्गासे मिलानेका प्रयत्न न कीजिये, यह पहाड़की देवी है, जिसका अपना पृथक् वृत्तवंश है। यहाँ पूजा होमके समयका वर्णन है।

दो गोल्यो दङ् शोङ्, माज़ो कोष्टिङ्पे।
देवियो चंडिके, शुम् बोर्शङ् बाहेर।
वहाँसे वहाँ, कोठीसे माझे।
देवी चंडिका, तीसरे वर्ष बाहर (आई)।
थुस्को बैरासो।
ऊपर भैरवके (आगे)।
चंडिकेस् लोतोश् "अङ् कम्दार हम् तोइँ।
दे लोन्नु बेरङ्, निश् गुद-हथ जोरयो।

† भिक्षुणी व्रत में।

"ठ रिङ्-तोइँ मामइ, मामइ चंडिके !"
रिङ्‌म् ठ रिङ् तोक, पोतिष्टङ् लन्मिग् । अङ् ओम्पे जारइँ ।"
चंडिका बोली "मेरे कामदार*कहाँ हो ! मेरे सम्मुख जाओ ।"
यह कहनेपर (कामदारने) दोनोंकर हाथ जोड़ा ।
"क्या कहती हो माता, माता चंडिका !"
कहना क्या कहूँ, प्रतिष्ठा करनी (है) ।
बन्जस् अरियाते । भांजे बुलाओ ।
बन्जस् अरियाते रोगे नारेनस् ।
रङ् चिने बन्जस् बिश्नू नारेनस् ।
भांजे बुलाओ रोगीके नारायणको ।
और चिनीके भांजे विष्णुनारायणको ।
†शीशेरिङ् डंबर, रङ् ‡मरकारिङ् ।
रोगशू नारेनस् , कनारो थोम्यारइँ ।
शिशेरिङ् देवता और मरकारिङ्को बुलाओ ।
रोगी-देवता नारायण भूतोंको थाम्हें ।
चिने नरेनस कैलस थोम्पारइँ ।
शेशरिङ् डंबर रङ् कूमो थोम्पारइँ ।
मरकारिङ् डंबर डेवोरङ् थोम्पारइँ ।
चीनीका नारायण, कैलाशको थाम्हे ।
शेशरिङ् देवता, पर्वत बीच थाम्हे ।
मरकारिङ् देवता देवलको थाम्हे ।
कालिका देवी बहेरी थोम्यारइँ ।
ब्योटङ् बामने होम्बुकार लानो ।"
देवी चंडिके आनेनु जकु देन् तोशिस् ।
कलिका देवी भैरवको थाम्हे ।
ब्राह्मण युगल होम कार्य करें ।"
देवी चंडिका अपने यज्ञमें बैठी ।

---

* कारबारी † पंगी का देवता ‡ ख्वारिंगका देवता ।

होम्बुकार लाने रङ् शेशोरिङ् डंबर बीक्योश ।
चंडिके रोशायोश्, शीरङो में बारो ।
बायङ् देन् हिले दो, दम् बिन्निक् मादु ।"

होम कार्य करते समय शेशोरिङ् देव आया ।
चंडिका रोषमें आई, चेहरेसे आग बली ।
बाहें हिल गईं, भला होने को नहीं,

बिगनी ता बीयी ।

विघ्न हो गया ।

(५) सागरसेन

कवि—अज्ञात

गीतकाल—१६२८ (?)

गायिका—रामदेवी, आयु १६ वर्ष, जात—कनैत, ग्राम—चिनी

लेखक—रतनचंद विद्यार्थी छठी श्रेणी (सुङ्नम) ता० ६-६-४८

विवरण—सागरसेन सुङराका रहनेवाला था, जो चिनी तहसीलके बाहरके कनौरमें पड़ता है। जंगलमें पेड़ ढुलाई-चिराईका काम हो रहा था, उसीमें लकड़ीके स्लीपरके आ गिरनेसे मर गया। गीत जहाँ-तहाँ अपूर्ण है।

दो गोलेङ् दङ् शोङ्, राठोली ग्रोस्नम् ।
कोदारङ् डानेउ नुस्की, लोदङ् दमथस् गोरे ।

वहाँसे वहाँ रठोली सुङरा ।
कोदारङ् वाहीसे परे, लोदङ् दम्यस घरे ।

पांज़ीतोइ या मातोइ, मातो मा ब्सक्यङ्
अनेनु शुम् पांज़ी, नामङ् ठ दु गयोश् ?

पूत है या नहीं, की बात नहीं ।
उसके तीन पूता, नाम (उनका) क्या था ?

अचो साउ नामङ् सागरसेन पिजारी ।
बेते साउ नामङ् बुदराम बैयर ।

जेठका नाम, सागरसेन पुजारी ।
बिचलेका नाम, बुदराम भैयार ।

बइचे साउ नामङ् मोनसुखदास बैयार ।
दो शुम् लिउ पांज़ी हातु लो बन्ज़स् ?

हातु लो मा लोन, छुलट्टूचो बन्जस्।

छोटेका नाम था, मनसुखदास भैयार।
ये तीनों पूत (थे), किनके भांजे।
(और) किसीके नहीं, छुल्टूके भांजे।

सागरसेन गुरबई हात् दू गयोश ?
गुरबई ता लोश्मा, स्पूलिङ् विश्ट छाङा।

सागरसेनका मीत, कौन था ?
मीत तो कहिये, बदरीसेन नेगी।

नामङ् ता लोन्ना, बोदरीसेन नेगी।
सागरसेन पिजारिङ पोंरमी, नलचे फनमु जाई।
रुपी लमट्टू बन्जी, शिवदयाली बन्ठिन्।

नाम तो कहिये, बदरीसेन नेगी।
सागरसेन पुजारीकी बहु, नचार फनसूकी जाई।
रूपी लमट्टूकी भांजी, शिवदयाली बन्ठिन्।

बोदरीसेनस् लोतोश गुरबई या गुरबई।
पइँ सेली बुीते, ते-ग्रोस्नम् नस्को।

बोदरीसेन बोला "मीत हे मीत !
चलो सैर चले, बड़े सुङराके पार।

ते-ग्रोस्नम् नीचोलु, कोनीच छुकशिम्।
काशङ् कोनीच साथे थारू रोक्शनम्।

बड़ेसुङरा अपने मीतसे मिलने।
हमारे मीतके साथे बाघ मारने।"

दे लान्मिउ बेरङ्, सागरसेनस् लोतोश्।
"नाने या नाने ! ग कामङ् बूीतोक।
नल्चे जंगलू कुमो, ढुलान चिरानु कामङ्।"

यह कहनेपर, सागरसेन बोला।
"बुआ हे बुआ ! मैं कामसे जाता हूँ।
नचारके जंगल भीतर, ढोने-चीरनेका काम।"

नाने ता लोतोश "बन्जा सागरसेना !
की कामङ् था बूीं, ढुलान कामङ् दम् मइ ।
गेली गिराइ बूीतोक्, शिम् बूीतो ।

बुआ तो बोली "भांजे सागरसेन !
तुम कामपर न जाओ, ढोनेका काम अच्छा नहीं ।
सिल्ली गिरके आयेगी, मृत्यु तेरी लायेगी ।

पैसा चु ठ गाटा; पैसा गाटा मइ ना ।
बाशुरी पाटी शेतोक्, लदख चूलु बाशुरी ।
पीतलु पाटी संसारु, मुलु पाटी शेतोक ।

पैसेका क्या घाटा, पैसा घाटा नहीं है ।"
"बाँसुरीमें पट्टी लगाऊँगा, लदाखी खूबानीकी बाँसुरी ।
पीतल पट्टी लोगोंकी, रूपेकी पट्टी लगाऊँगा" ।

शीमिक् बीग्याशी, सागरसेनु शोमिक् ।
माऊस तङ् जुम्बिक् कोखङ् मा ग्याशो ।
शिवदयाली बन्ठिन्, का तो शीरङ् चाले ।
सरशिम् सागरसेना, अनेनू इपटो रिङ्जे ।

मौत आ गई, सागरसेनकी मौत ।
बिन फूले मुर्झानेसे कोख ना जाये ।
शिवदयाली सुन्दरी ! तुम बैठना चाहती ।
सागरसेन चल बसा, उसकी एकली बहिन ।

नामङ् ता लोन्ना, कुन्डा ता बन्ठिनां ।
कुन्डा बन्ठिन ढुलढुलिउ करावो ।

नाम उसका कहिये, कुन्डा सुन्दरी ।
कुन्डा सुन्दरी छलछल (आँसू) रोती ।

ढुलढुली करावो, बाशुरी ख्याउ करावा ।
बाशुरी ख्याउ आनेनू युङ्जू बाशुरी ।
"अङ् युङ्चे बाशुरी चांदी पाटी शेशे ।

छल्-छल् रोती, बाँसुरी देखि रोती।
बाँसुरी देखि, अपने भाईकी बाँसुरी।
"मेरे भाईकी बाँसुरी, चाँदी पट्टी लगाई
हतरङ् मा रुकशिश्। किसी को न मिलती।"

(६) युम्दासी (प्रज्ञादासी)

कवि—अज्ञात गीतकाल—१६३२-३३ ई०
गायिका—विद्याचरणी, आयु-२० साल, जात—कनेत, गाँव-चिनी
लेखक—भगत सिंह २-६-४८

अनोचो देना शोवङ् अनोचो देना ठ मा लोन्ना।
अनोचके ऊपर शोवङ्, अनोचके ऊपर क्या नहीं कहें।
ठंटीचु देना शोवङ्। चबूतरेके ऊपर शोवङ्।
ठंटीचु देना शोवङ् माथमु गोरिङ् देन।
पोरमी हम्चा दूगयोश ?
चबूतरेके ऊपर (सा) शोवङ् (गाँव), महताके घरे,
पत्नी कहाँकी थी ?
पोरमी ता लोन्ना, याना देशङ्, छेचा, हातु लो जाई ?
पत्नी तो कहिये, जानी गाँवकी कन्या। किसकी जाई ?
हातु लोन् मालोन्, होमङ्टो जाई।
होमङ्टो जाई, नामङ् ठ दू गयोश् ?
नामङ् ता लोन्ना, ब्न्टिन् कमला देवी
किसीकी नहीं, होमङ्टोकी जाई।
होमङ्टोकी जाई, नाम क्या था ?
नाम तो कहिये, सुन्दरी कमला देवी।
ब्न्ठिन् कमला देवीयु, ठ कुखिङ् दू गयोश ?
ठ कुखिङ् दू गयोश आनेनू इपटो पाजी।
आनेनु इपटो पाजी, नामङ् ठ दू गयोश ?
सुन्दरी कमला देवीके, क्या कोखमें था।
क्या कोखमें था अपना अकेला पूत।

अपना अकेला पूत, नाम क्या था ?

नामङ् ता लोन्ना, रतनसींग नेगी ।

रतनसींग नेगियु, पोरमी हामूच दू गयोश ?

नाम तो कहिये, रतनसिंह नेगी ।

रतनसिंह नेगीकी, पत्नी कहाँकी थी !

पोरमी तो लोन्ना, ब्रूयो छेचाचेन् ।

ब्रूयो छेचाचेन, हातू लो जाई ?

पत्नी तो कहिये, ब्रूयेकी कन्या ।

ब्रूयेकी कन्या किसकी (थी) जाई ।

हातूलो मानी, मेबानो ज़ाई ।

मेबानो जाई, हातूलो बन्ज़िक ?

किसीकी नहीं मेबान्की जाई ।

मेबानकी जाई, किसकी भांजी ?

हातू लो मालोन् साङ्ला रेपालट्ट बन्ज़िक ।

साङ्ला रेपाल्ट्ट बन्ज़िक्, नामङ् ठ दू गयोश ?

किसीकी नहीं, साङ्ला रेपल्टूकी भांजी ।

साङ्ला रेपल्टू भांजी, नाम क्या था ?

नामङ् तो लोन्ना, बन्ठिन् युमदासी ।

बन्ठिन् युमदासीयु, ठ कुखिङ् दू गयोश ?

कुखिङ् यूने ज़र ज़र सुनियारु कुखिङ् ।

नाम तो कहिये, सुन्दरी प्रज्ञादासी ।

सुन्दरी प्रज्ञादासीकी, क्या कोखमें था ?

कोखमें सूर्य उदय, सोनेकी कोख (थी)

आनेनू न्योटङ् पान्ज़ीयु नामङ् ठ दू गयोश् ?

नामङ् ता लोन्ना विद्योचंद रङ् रामपाल ।

उसके पूतोंकी जोड़ी, नाम क्या था ?

नाम तो कहिये विद्याचंद औ रामपाल ।

× × × ×

युमे ग्रामास् लोतोंश "नम्शा युम्दासी।
नम्शा युम्दासी ! पालेस् बूमि् ग्यातो।

सासूजी बोलीं "बहू प्रज्ञादासी !
बहू प्रज्ञादासी ! चरवाही जाना चाहिये।

नोरङ् देन् पालेस्। नोरङ्पर चरवाही।
नो रङ् देने पालस्, ब्रीमे यागानु पालेस्।
ब्रीमे यागानु पालेस् बोतरङ् मर चापरिइँ।"

नोरङ्पर चरवाही, चकरी-चमर चराना।
चमरी-चमर चराना, मट्ठा माखन लाना।"

युम्दासिस लोतोश ग्रङ्युमे ग्रमा !

प्रज्ञादासी बोली "(हे) मेरी सासूजी !
किनो जवाब केतोक्। तुम्हें जवाब देती हूँ।
किनो जवाब केतोक्, ग पालेस् माब्रिक।

तुम्हें जवाब देती हूँ, मैं चरवाही ना जाऊँ।
ग्रङ् डेयङ् दम् नाय, पनूज़े मुङो शेते।
विद्याचंद रङ् रामपाल, "दे लोन्ना बेगङ्।
कमला पोतीस् लोतोश् नो ठ वातङ् रिङ् तोइँ।

मेरी देह ग्रच्छी नहीं, पूतोंको भेज दें।
विद्याचंद ग्रौर रामपाला" यह कहने पर।
कमलावती बोली "यह क्या बात बोलती ?"

नमशा युम्दासी ! किनू बूीम सिनूज्यातो।
हाले माब्रिक रिङ्तोइँ गोर छङ् ले पालेस्।
गोरछङ् ले पालस्, हातो सिन ज्यातो।

बहू प्रज्ञादासी : तुझे जाना होगा ॥
क्यों 'नहीं जाऊँगी' कहती, सासरे चरवाही
सासरे चरवाही, किसको नहीं जाना पड़ता ?

किनो सिन् ज्यातो। तुझे जाना होगा ?
बन्ठिन् युम्दासी बीगयोश नो रङ् देन् पालेस्।

नो रङ् देन पालेस्, ढाई गोली पालेस्।
ढाई गोला दोम्या, खोरग्यु माज़न् सरसर।

सुन्दरी प्रज्ञादासी गई, नोरङ्पर चरवाही।
नोरङ्पर चरवाही, ढाई मास चरवाही।
ढाई मास पीछे, उदास असुखी पड़ी।

डा नियु देन् द्राक्यो।
इंडेके ऊपर निकली।

डानियु देन द्रा द्रा "हाह भगवान ठाकुर !"
इंडेके ऊपर निकली "हा भगवान ठाकुर !"

"युमे कुटोनी लान्ाशित्।"
सास कुटनीने कर दिया।

कोट था छङ् बल, आ खा क्योदु।
ढाई गोलो दोम्या, उख्याङ् बदारिङ्।

कोटका गोठमें सिर दर्द दे रहा।
ढाई मास पीछे "फुलाईच* आई" बोले।

शालङ् योवा चप् ग्योश।
उख्याङ् ठंटीचु देन् ज़ये बन्ठिन् हात् तोश् !

पशुगण नीचे उतरे।
फुलाईचके चौतरे पर, सबसे सुन्दरी कौन थी ?

ज़ये शोकिन् हात् तोश ?
सबसे शौकीन कौन थी ?

ज़ये बन्ठिन् लोन्ना, बॉन्ठन् युमूदासी।
बड़ी शोकियू छोटियु मलूडोगङ्।

सबसे सुन्दरी कहिये, प्रज्ञादासी।
सबसे सुन्दरीकी छोटी आयु मृत्युलोकमें।

युमूदासी बलदेन् शुम् डालङ् गुलबास्।
सम् बेला चोम्बे, निम् लाइ बरङ् रिप्राची नलूग्यो।

प्रज्ञादासीके सीस पर, तीन गुच्छा (था)
प्रातः बेला कली, सायंबेला एकदम मुरझा गई।

---

* एक महोत्सव

ठ बीछल हाचे, हेद् बीछल मानी।
युम्दासी आनेनी बीछल् पीङ् पोरयातोश्
डेयङ् पीरङ् पोडेदाश, मासोके च पीरङ्।

क्या कारण हुआ ? और कारण नहीं।
प्रज्ञादासी अपने कारण, व्याधिमें पड़ी।
देहमें व्याधि पड़ी, असह्य व्याधि।

मनाङो मासोक्याच अपसोस।
मनमें असह्य अफसोस।

युम्दासिस् लोतोश "भावोचो प्रेमी !
सच्क्यो डुब्याशे, डंबर तोल्याम् बीरइँ।"
रतनसिंह बूी ग्योश्, छिल् छिल् गङ् ज़ेर गश।

प्रज्ञादासी बोली प्रेमके पती !
सचही मरूँगी, देव उठाने जाओ।"
रतनसिंह गया, चमचम प्रकट हुआ।

गंगाछवो देन डम्बर तोल्या ग्योश।
देवता विमानमें* देवता उठाया।
डंबर तोल्याइश शोवङ् नरेनस्।

देवता उठाया, शोवङ का नारायण।

डोम्बोरस् लोतोश्, 'जु माजो लाये ठूल्यो।
"ठूल्यो जान्यो चुत् कन् पनश ग यानीख।"
"रतनसिंहिस लोतोश्" पद्शो हाहस रिङ्ग्योश।
देवता बोला 'इस मध्याह्नमें'।

"क्यों तूने उठवाया; तृण पूला मैं नहीं।"
रतनसिंह बोला "तृणपूला किसने कहा ?"

की सोथिङो डम्बर अर्ज़ीचु तङिस।
अरज़ी चु तङ्सि्, अरजी मोन्या रइँ।
"पोरमी पीरङ् पोरयाश् दोशङ् खोरया केरिङ्।"

* डोली जैसी देवताकी सवारी (विमान)

आप शक्तिमान देव, अरज करनेकेलिये ।
अरज करनेकेलिये (उठाया), अरज स्वीकारो ।
"पत्नी व्याध पड़ी, दोष-कारण (बता) देना ।"

दोशङ् खोरयाम् बस् क्यङ् चमनङ् मा तोल्याश् ।
डोम्बरिस् लोतोश् "अङ्तङ्शित् मादुक ।

दोष कारण बताना दूर, मूड़ नहीं उट्ठा ।
देवता बोला "मुझे (भला) नहीं दीखता ।

नो रङ् देन् यूने, रेन्निगो त्यारी ।

उस पर्वतपर सूर्य, डूबनेको तैयार ।

होत्याशिम् माश्के ।

हटा नहीं सकता ।"

रतनसिंह बूँग्योश पुिजिरो कुर्मों ।
युमदासिस् लोतोश "डम्बरस् ठ रिङ्श ?"

रतनसिंह गया चारदीवारीके भीतर ।
प्रज्ञादासी बोली "देवता क्या बोला ?"

रतनसिंह नेगिस् लोतोश् ठ रिङ्म् बस् क्यङ् ।
चमनङ् हि मा हिंल्याश पोरमी या पोरमी !

रतनसिंह नेगी बोला "कुछ कहना तो दूर ।
मूँड भी नहीं हिलाया, पत्नी हे पत्नी !

कित् हाचिमिङ मुशकल ।"

तेरा रहना मुश्किल ।"

युम्दासीयु मिगो, ढुलढुली मिस्ती ।

प्रज्ञादासीकी आँखमें, छल-छल अँसुआ ।

ढुल् ढुल् कराब् ग्योश् ।

छल-छल रो पड़ी ।

युम्दासिस् लोतोश 'अबोचो प्रैमी ।
हेत् लोशिश् दयलो, अङ्थुमो पाँजी ।

प्रज्ञादासी बोली "प्रेमके पती ।
और बात रहे, मेरी गोदके बच्चे,

हातो लो शुदो ।

किसके हाथमें ?

भावोची प्रैमी ! अङ् सुत्चेत् ना ।

हास् पोरमी था फीरइँ ।

प्रेमके पती ! मेरा विचार करो तो ।
दूसरी पत्नी ना लाना ।

हास् पोरमी फीमा, पञ्चियू गाटा देतो ।
फिनोकी चल्मा, अङ् बइचेची फीरइँ ।
बईचें निसवबाग, पन्जे शाङ्यातो ।

दूसरी पत्नी लाओगे तो बच्चों को कष्ट होगा ।
यदि लानाही चाहो, तो मेरी बहिनिया लाना ।
बहिनिया निसवबाग, बच्चोंको पालैगी ।"

शमूशम् तुरङ्स् युमूदासी डुन्याश् ।
छिल् छिल् ज़रग्योश शुप्याज देरका ।

गोधूली बेला प्रज्ञादासी डूब गई ।
उषाकाल प्रकटे देवपत्नी जैसे ।

रालो आठङ् चप्ग्यो शुरिशङ् फुक्यायो ।

(नदी) तटके घाटे उतार पद्मकाठे फूँक दिया ।

(७) बेलीराम बाबू

कवि—अज्ञात गीतकाल—१६३६-३७ ई०
गायिका—सुखदेवी, आयु-१६ वर्ष, जात—कनैत, ग्राम—चिनी
लेखक—भगतसिंह ता० २-६-४८

योचा डेनोई देग्यू बाबू, नामङ् ठ दू गयोश् ?
नामङ् ता लोन्ना, बेलीराम बाबू ।

नीचेसे ऊपर एक बड़ा बाबू, नाम क्या था ?
नाम तो कहिये, बेलीराम बाबू ।

दो डेन् डेन् बन्ना, रेशमालो चीने,

वहाँसे ऊपर ऊपर आये, रेशम सी चीनीमें ।

रेशमालो चीने, ठ ज़ागा दूगयोश् ? रेशमसी चीनी, कैसी जगह है ?
छुनेस् क्यु ज़ागा, सरानङ् दरबार देसकी ।

कैसी (सुंदर) जगह, सराहन दर्बार जैसी ।

रिङ्कोचङ् ख्यामा, सोमोने कैलास। ऊपरकी ओर देखें, सामने कैलास।
कैलास-परबतीयू, शुमूजन डालङ्योश। शिव-पार्वतीको तीनबार प्रनाम है।
लोकोचङ् ख्यामा, ठ ज़ागा दूग्योश ? उरली तरफ देखें, कौन जगह है ?
नु छावनियु मुलको। यह नगरका स्थान।
दो लो लो बिुन्ना, रग-बङ्यू देन् शोङ्।
रग बङ्यू देन् शोङ् युगगे पानी तुङ् तुङ्।

उससे उरे उरे आये तो पाथर बापी ऊपरे।
पाथर बापी ऊपरे ठंडा पानी पीकर,

मा भ्रिक्शे ऐ तुङ्मिक्। नहीं तृप्त हो पीना।
दो नेस् नेस् बीमा शीलसु, कोज़ङ् बङ्लो।

वहाँसे परे परे जा, शीतल पंगी बँगला।

बेलीराम बाबू, गुरवई हात् दूग्योश। बेलीराम बाबूका मीत कौन था ?
गुरबई ता लोन्ना, ख्वङ् केज़ायू छाड़ा।

मीत तो कहिये, ख्वागीके केज़ाका पूत।

नामङ् ता लोन्ना, होरू बैयारा। नाम तो कहिये, होरू भैयारा।
बेलीरामस् लोतोश् गुरबई या गुरबई ! बेलीराम बोले मीत हे मीत !
राक तुङ् मिक् चलशे, केज़ागू छाङा होरू।

सुरा पीना चाहते, केज़ाका पूत होरू।

किगोटीयू मायी, अङरेज रङ् गुरबाई। तुम घटिया नहीं साहेबके मीत।
गुरबाई रङ् दरम् बाई। मीत और धरम भाई
कुलीशु बीरइँ, जाखोर्यो ब्यारिङ्।

बुलानेवाले होके जाओ, झाड़ीवाली ब्यारंगी।

सीमंच्यानो गोरे। सीमंच्यान् के घरे।
सीमंच्यान् ज़ाई, नोरपुरी बन्ठिन्।
होरू बैयारूस् बीम्योश्, जाखोरयो ब्यारिङ्।
होरू बैयारूस् लोतोश्, "रिङ्ज़े या रिङ्ज़े !

सीमंच्यान्की बाई, नरपुरी सुन्दरी।
होरू भैया गया, झाड़ीवाली ब्यारंगी।

होरू भैया बोला "बहिन रे बहिन ।

कुबीगुमी शोचेश्, बेलीराम बाबू ।
बुलानेको भेजा, बेलीराम बाबू ।
बीते पईं क ज़ङ् कोज़ङ् बङ्ला ।"
चलो चलें पंगी, पंगीके बँगले ।"
नरपुरी बन्ठिन् तुरेरङ् ग्वारिङ् ।
नरपुरी सुन्दरी शाम होते ग्वारंगी,
शुपा कोज़ङ् बङ्लो ।
रात पंगली बँगले ।

दो नेस नेस् बीमा, शीलशु कोजङ् बङ्लो ।
बेलीरामस् लोतोश् "कोनीच या कोनीच !"

बाँसे परे परे जा, शीतल पंगी बँगला ।
बेलीराम बोला "प्यारी हे प्यारी !"

भावोचो पोरमी, चारपाई तोशिईं ।
चाहकी नारी, चारपाई पर बैठो ।
भावोचो पोरमी, भावो ठ दुइया ?
चाहकी नारी ! चाह क्या है ?

"ज़ा मिगू भावो दुइया, लान्चिग्यू भावो दुइया ?"
नोरपुरीस् लोतोश्, "लान् चिग्यू भावो मा दुग् ।
ज़ा मिक् ता ग्यातोक्, रोपङ् ज़ीदु चपटी ।

"भोजनकी चाह है, पहिरनकी चाह है ?"
नरपुरी बोली "पहिरनकी चाह नहीं है ।
भोजन तो चाहिये, रोपङ् गेहूँकी चपाती ।

रो-माशू पोयथङ् ।"
काले उड़दकी दाल ।"

नरपुरी बन्ठिन्, ठ पेटीये दू योश ।

नरपुरी सुन्दरी, कैसी पेटू थी (वह) ।

सो-निस् चपटी ज़ा ग्योश् ।
बारह चपाती खा गई ।

शुपा कोज़ङ् बङ्लो, सङेरङ् छोजुरङ्,

रातको पंगी बँगले, सबेरे छोजुपर्वत,

ज़ीमीचु पोरी ।
खेतकी रखवाली ।

नोरपुरी बन्ठिन् ठ लोबी बूदा ?
हेद् लोबा मानी, रोपङ् जोद् चपटी ।
रो-माशु पैथङ्, चौपरङ् मार् अरपारे ।

नरपुरी सुन्दरीको कितना लोभ हो गया ।

और लोभतो नहीं, रोपङ् गेहूँकी चपाती ।
काले उड़दकी दाल, मक्खनसे सराबोर ।

(८) सूरजमनी

कवि—सूरजमनी गीतकाल—१६३६ ई०

गयिका— { विद्याचरनी आयु-२० साल जात-कैनत ग्राम-चिनी
{ जोंमों बागरती ,, ३५ साल ,, ,, ,, ,,

लेखक—भगतसिंह (विद्यार्थी) और पुण्यसागर ता० १-६ ४८

बल्-खोनङ् सिगनिम्, ख्यल्टूचा गोरिङो देन्, ख्यल्टूचो गोरिङो देन् ।
पर्गनेके सिरे मोरङ्, ख्यल्टूके घरे, ख्यल्टूके घरे ।

ख्यल्टूचो गोरिङो देन्, ख्यल्टू इपटो ज़ाई ।
ख्यल्टू इपटो ज़ाई नामङ् ठ दूगयोश् ?
नामङ् ता लेन्ना, बन्ठिन् सूरजमनी ।

ख्यल्टूके घरे, ख्यल्टूकी एकली जाई ।
ख्यल्टूकी एकली जाई, नाम क्या था ?
नाम तो कहिये, सुन्दरी सूर्यमणि ।

सूरजमनीयु सुन्चो, स्यानाजीत् दोर् बीनोकी ।
वारिङ् का तोगङो युन्तोक्, वारिङों पस्राङो तोशक् ।
सूर्यमणि (का) मन था, सेना जीतको ब्याहना ।
बाहरके ओसारे चलूँगी, बाहरली ओर बैठूँगी ।

स्यानाजीतो सुन्चो सूरजमनी फीतोक् ।
सूरजमनी फीसत, शोमिक् मा बच्ग्यो ।
सेनाजीत विचार था, सूर्यमणिको लाऊँगा ।
सूर्यमणिके ब्याह तक, मृत्यु नहीं रुकी ।

सेनाजीतु शोमिक्, मा-उस् तङ् जुम्मिक् ।
मा-उस् तङ् जुम्मिक् बस् रुङ्, मा जोर् मेन्निक् दम् दूँ ।
सेनाजीतका मरना, बिन फूले मुर्झाना ।
बिन फूले मुर्झानेसे तो, न जनमना अच्छा ।

स्यानाजीतु डब्यानो बेरङ् सूरजमनी इल्मोंप्यार लन्ग्योश् ।
सूरजमोनिस् लोतोश् , "बापू या बापू !"

सेनाजीतके डूबनेपर, सूर्यमणिको विद्याका प्रेम हुआ ।
सूर्यमणि बोली, "बापू हे बापू !"

अङ् प्यो लोशदु अङ् प्यो मा थीक ।
ग कागली हुशोक् , ग सकूलो बीतक् ।

मेरे ब्याहकी कहते, मैं ब्याह न जाऊँ ।
मैं पोथी सीखूँगी, मैं स्कूल जाऊँगी ।

चिनो सकूलो कुमो, इलम पका लोशदु ।
तेग्यो छावनी चिने, सकूलो मस्टर हात् तोश् ?

चिनीके स्कूलमें, पक्का इलम (है) बोलते ।
बड़े नगर चिनी, स्कूलके मास्टर कौन हैं ?

हातो (लो) मा लोन्, चीने ठुर्क्यानो छाङा ।
ठुर्क्यानो छाङा, नामङ् ठ दूगयोश ?

(और) कोई नहीं कहो, चीनी ठुर्क्यानका पूत ।
ठुर्क्यानका पूत, नाम क्या था ?

नामङ् ता लोन्रा, जी भूपसिंह मास्टर ।
दोगोल्यो न्युम्ची, तेले डेखरा चन् हरीलाल मास्टर ।

नाम तो कहिये, भूपसिंहजी मास्टर ।
उनके बाद तेलंगीके पुरुष हरीलाल मास्टर ।

दोगोल्यो न्युम्ची वारङ् माथसू छाङा ।
नामङ् ता लोन्रा, सोहनलाल मास्टर ।

उनके बाद वारङ्के महता पूत ?
नाम तो कहिये, सोहनलाल मास्टर ।

दोगोल्यो न्युम्ची, बाबू नरायनसिंह मास्टर ।
ठ होशियार ताक्योश् , निश नुकरी चाल्यो ।

उनके बाद बाबू नारायण सिंह मास्टर ।
कितने होशियार हैं, दो नौकरी चलाते ।

इद् ता डाखाने बाबू, अ इद्ता सकूलो मास्टर ।
बापुस् ता लोतोश "अङ् चीने सूरज !

एक तो डाकखाने बाबू, औ एक स्कूलके मास्टर ।
बाप बोला "मेरी बेटी सूरज !

ठ चीने वीम् ग्याच, रिदङ् सकूला बीरइँ ।"
रिदङ् सकूलो कुमो, मास्टर हात् लोकिश ?

क्या चीनी जानेकी जरूरत, रिब्बा स्कूले जइयो ।
रिब्बाके स्कूलमें मास्टर कौन है ?

मास्टर ता लोन्ना गंबीरचंद मास्टर ।
सूरजमनी लोतोश् 'गुरूजी ! परनाम ।

मास्टर तो कहिये, गंभीरचंद मास्टर ।
सूर्यमणि बोली "गुरूजी प्रणाम ।

ग सकूलो बितोक् , ग कागली हू शोक्
रोक् अखरङ् शेस्तोक् , ग नुकरी लान्तोक्
मास्टरानी हाचोक् , कन्या पाठशाला खोल्यो तोक् ।

मैं स्कूलमें आऊँगी, मैं कागज सीखूँगी ।
काले अक्षर चीन्हूँगी, मैं नौकरी करूँगी ।
मास्टरानी होऊँगी, कन्या पाठशाला खोलूँगी ।

हिन्दीयू परचार लान्तोक् ।

हिन्दी प्रचार करूँगी ।

सूरजमोनी ठ होशियारी, स्कूलो छाङानू ओस्ताद ।
बन्ठिन् सूरजमोनी बन्युङ्जका बागे छेचाका दूरे ।

सूर्यमणि कितनी होशियार, स्कूलके बच्चोंकी उस्ताद ।
सुंदरी सूर्यमणि पुरुषोंके पीछे स्त्रियोंके आगे ।

कलङ् कोलम् , गुदो कताबरङ् ।

कानमें कलम और हाथमें किताब ।

सूर्यमनीयू कोनीच, बीनोलो जाई ।
इलमो तेग सूरजमोनी, बन्ठिन् ता विदापोती ।
दो न्योटङ् कोनिच रिगेन् सेरकिम् सन्तङ् ।

शुम् कलङो कायङ, शुम् कलङो कायङ ।

सूर्यमणिकी सखी, बीनोकी जाई ।

विद्यामें बड़ी सूर्यमणि, सुंदरी तो विद्यावती

वह दोनों सखियाँ, उपरले सेरकिम् नृत्यांगनमें ।

तेहरा नृत्य-चक्र, तेहरा नृत्य-चक्र ।

नो कायङ् माज़ाङ् ज़हे दूरे हातोश् ?

दूरे ता ताशा ख्यल्टू छाङा ज़वाला जीत ।

उस नृत्य-चक्र मध्ये, सबसे आगे कौन बैठा ?

आगे तो बैठा, ख्यल्टू-पूत ज्वालाजीत ।

सी-परीलु देन् शोङ्, शुम् दम् मीयु छाङा ।

कायङ् अन्ताज़ लानो, ज़हे बन्ठिन् हाद् तोश् ?

सिंह पौरि ऊपर, तीन भले मानुसके पूत ।

नृत्य-चक्रमें ढूँढते, सबसे सुन्दरी कौन है ?

बन्ठिन् तो तोशा, बन्ठिन् विदापोती ।

सुन्दरी तो थी, सुन्दरी विद्यावती ।

टानाङ् तेग सूरजमोनी ।

गहनोंमें बड़ी सूर्यमणि ।

सूरजमनीङ् गुदो, प्राचो ज़ङो मुन्दी ।

विदा पोतीङु गुदी, जोड़ी चंदीयु ठाणुमा ।

परताप बाबुस् लोतोश् 'न्योटङ् पलबर आरम् लानीच ।

सूर्यमणिके हाथकी, अँगुलीमें सोनेकी मुँदरी ।

विद्यावतीके हाथमें, जोड़ा चाँदीका कंकण ।

प्रताप बाबू बोला "दोनों पलभर आराम करो ।

कायङ् नीतो सोदाई ।"

नृत्य-चक्र होता सदा ही ।"

सूरमोनिस् लोतोश् "ग आरम् मा लानिक् ।

सूर्यमणि बोली "मैं आराम ना करूँगी ।

आरम् नीतो सोदाई, कायङ् नीतो ई जीब् ।"

आराम होता सदा ही, नृत्य-चक्र होता एक बार ।"

× × × ×

दो-न्योटङ् रिङ्ज़े, द्वन् लोशिश् द्वा तोश् ।
पल्बर आरग लान्योश् , थङ्को ठंटीय् देन् ।
परतप बाबुस् लोतोश् "जु नासपती अई ।"

वह दोनों बहिनें, निकलनेको तो निकल बैठीं ।
पलभर आराम करने, ऊपरके चौतरेपर ।
प्रताप बाबू बोले "यह नास्पाती लो ।

सूरजमोनिस् लोतोश् युङ्ज़े या युङ्ज़े !
ग नासपती मा ग्याक्, ग नासपती मार याक ।
नासपती ग्यामा, अङ् युङ्ज़् बगीचा ओ ।"

सूर्यमणि बोली भाई हे भाई !
मुझे नास्पाती ना चाहिये, नास्पाती ना चाहिये ।
नास्पाती चाहिये तो, मेरे भैयाके बागमें हैं ।

बन्ठिन् सूरजमोनी, पकाई मनसुबी ।

सुन्दरी सूर्यमणि, पक्के मंसूबेकी ।
फुसलावा ना माना ।

धीजेन् मा श्कोचोश् ।
हुनाणु बेरङ् गुरु द्वर् परायो ।
रग्चन्टो गोरे, छाङ्गा गबीरचन्द मास्टर ।

इसी समय (अपने) गुरुको परन्या ।
रगचन् टो घरके पूत गंभीरचंद्र मास्टर ।

(६) व्यासमोनी

कवि—व्यासमोनी गीतकाल—१६३७-३८ ई०
गायिका—विद्याचरणी, आयु—२० वर्ष, जात—कनैत, गाँव—चिनी
लेखक—भगतसिंह ता० २-६-४८

शीलस् पुन्नम् थबक्यानु गोरिङ देन् ।
अनेनु गुयलव पंजी, नामङ् ठ दू गयोश ।

शीतल पूर्वणी, थबक्याके घरे ।
स्वयं गुयलबका पुत्र, नाम उसका क्या था !

नामङ् ता लोन्ना नाराक-सैराकु छेचा ।
नाराक सैराक ठ मालोगू खोनाचु तेले ।

नाम तो कहिये, नारक-सैराकका पुरुष ।
नारक-सैराक*क्यों नहीं बोली, मैदानकी तेलंगी ।

हतु लो जाई, हतु लो मालोन ।
थेर गज़गुज़ाई, नामङ् ठ दूगयोश् ।

किसकी जाई ? किसकी नहीं ।
थेरगज़की जाई, नाम क्या था ?

नामङ् ता लोन्ना, व्यासमोनी बन्ठिन ।
व्यासमोनीस् लोतोश् "युङ्जे या युङ्जे !

नाग तो कहिये, व्यासमणि सुन्दरी ।
व्यासमणि बोली "भाई हे भाई !

ख्वकूच डोलङ् चोक्, थ्वरवासी ज़री जारईं ।"
बरज़रामिक् बस् क्यङ् कुकुलिकङ् र्नुग्योश् ।
अम्मीर चन्दु लोतोश् "अङ् डोलचिम् म ग्या ।

नीचे सिर नवाती हूँ, स्वीकार करना ।"
स्वीकार तो दूर, बुलाकर ताना मारा ।
अमीरचंद बोला "मुझे सिर नवाना नहीं चाहिये ।
अपने पतिको सिर नवा ।

किन् प्रेमिचु डलङ् रईं ।
थपक्यानु छङ् पुरोनीच डलङ् रईं ।"
व्यासमोनिस् लोतोश् 'युङ्जेया युङ्जे !
नइ छोकङ् थाकेईं, अङ् विशिद् मानी ।

थपक्यानके पूत, पूरनको सिर नवा ।"
व्यासमणि बोली 'भाई हे भाई' !
ऐसा ताना न दो, मैं (तो) गई नहीं

मुन्बोनु शोचिशिद् गोर्छङ् ।

---

* चिनीके पाससे गाँवोंका इलाका ।

दो (ली) मा बिशिम् गश्को ।

माँ बापने लगादिया सासरे।
वह इन्कार नहीं हो सकता ।

माबिक् की चल्मा बोन्युङ् चु ईजत बियोदु ।
तोशोगी चल्मा, अङ् भाव मा बि ।

नहीं जानेको विचारती, तो कुलकी इज्जत जाती ।
(सासरे) बैठनेकी सोचती, तो मेरा प्रेम नहीं है ।

शीलसु पुन्नम् अङ् भाव मा बि ।
थोरिङ् ख्यामो डोकङ् ओपङ् ख्यामो गंगा ।

शीतल पूर्वणी, मेरा (उससे) प्रेम नहीं ।
ऊपर देखो पत्थर, नीचे देखो गंगा (सतलुज) ।

नो दुश्मोन् गंगा । वह दुश्मन गंगा ।

मयटे होचोख् चल्मा, अङ् पीठकेच हत् माय ।
अमा लोन्निक् स्याना, बापू सर्शिङ् दुर्गस् ।

मायके रहना सोचती तो, मेरा सहारा कोई नहीं ।
माई तो बुढ़िया, बापू सिधारे परलोक ।

युङ्ज़े लोन्निङ् आगे रएसी कुमो ।
बोरे लोन्निङ् हेद्मी, खङ् कोअङ् ज़ाई, गंगासोरोनी बन्ठिन् ।

भैया तो (गये) परराज्य-बीच ।
भाभी तो परजन, खगीं कोअङ्की जाई, गङ्गासरनी सुन्दरी ।

दम् चल्मा बोरे कोचङ् चल्मा हेदु मी ।
फोय मुशूरिङ् "व्यासमोनी बन्ठिन् दम् दुग्यो ।

अच्छा सोचे तो भाभी, बुरा सोचै तो परजन ।
फोकटमें मशहूर—व्यासमणि सुन्दरी अच्छी थी ।

शवनङ् चूलियु शुट्के, कतङ् रेशु काजे ।
मय् तोशिङ् पुन्नम् मय्को बियु ईमान ।
हुनागु बेरङ् शीङ् को शुम्पोतनु नम्शा ।

सावनमें चूलीका छिल्का, कातिकमें बेमीकी भूसी ।

नहीं बैठूँ पूर्वणी, नहीं (तो) जाये ईमान ।
अबकी बेरा तो कश्मीरके पोतकी बहुआ ।

(१०) रूपसिङ् ठाणेदार

कवि—अज्ञात गीतकाल—१६४० ई०
गायिका—विद्याचरनी, आयु—२० वर्ष, जात—कनेत, ग्राम—चिनी लेखक—
लेखक पुण्यसागर ता० ५-८ ४८

विवरण—नेगी रूपसिंह चीनीमें थानेदार होकर कितने समय तक रहे थे । उन्हींकी प्रेम कथा इस गीतमें वर्णित है ।

दङ् गोल्यो दङ् शोङ् रुशमालो चिने ।
ठ ज़गा दूगयोश् ! ज़ागा ला देमो ।

ततः ततः रुश्माले चीनी ।
कैसी जगह है ! जगह तो सुन्दर ।

जागा ले देमो, पानी ले ठंडा ।
ठ ज़गा दूगयोश्, गोमा शिम्ले छावनी ।

जगह तो सुन्दर, पानी भी ठंडा ।
कैसी जगह ! शिमलानगर जैसी ।

गोमा अँङरेज़् मापकस्, सरन हवा चल्ले दो, डेयङ् सङ्पो वङ् रे ।
जगह अंग्रेजो जैसी, सनसन हवा चलती, देहको स्वस्थ करती ।

यूठङ् माराज़ू तासील, थोरिङ् अङ्रेज् बङ्ला ।
नीचे महाराजकी तहसील, ऊपर अंग्रेज़का बँगला ।

नामीशे नाज़क, सेब नास्पाती ।
जेन् खोरोश् बारमासी फूले ।

नाना भाँतिके, सेब नास्पाती ।
अत्यंत अच्छे बारहमासी फूल ।

ज़ेन् खोरोश् बारमासी फूले, लांचिमिगी चल् शे ।
अत्यन्त अच्छे बारहमासी फूल, लगानेको (मन) चाहे ।

रिंगेन् सीसमहलो, अफसर हात् तोश् !

अफसरता लोन्ना, कुले बोना-युङ्जा ।

शीशेके घरमें अफसर कौन था ?

अफसर तो कहिये, कुलेका पुरुष ।

कूलेयु वज़ीरू बेटा ।

*कूलेके वज़ीरका बेटा ।

मन् बन् ताशित् नामङ्, जी नेगी रूपसिङ् ।

बय्यारू ताशित् नामङ्, ज़ी हिरदयाल सिङ् ।

माँ-बापने रखा नाम, नेगी रूपसिंहजी ।

भाई बन्दोंने रखा नाम, हरदयालसिंहजी ।

ठाणेदार हिरदयाल सिङ् ।

थानेदार हरदयाल सिंह ।

ठाणेदार हिरदयालसिङ् शुरबई, नामङ् ठ दू गयोश ?

शुरबई ता लोन्ना सुगेसरपारू बन्-युङ्जे ।

थानेदार हरदयाल सिंहके मीतोंका नाम क्या था ?

मीत तो कहिये, *सुगेसरपारका पुरुष ।

हातो लो छाङा ? पर्शेट्क् छाङा ।

नामङ् ठ दूगयोश् ? कानुगो फकीरचंद ।

दो गाल्यो न्युमची थङ् कनम् बन्-युङ्जे ।

कनम् छुद्पोश्रो छाङा, मन् बन् ताशित् नामङ्,

किसका पूत ? पर्शेट्कूक† पूत ।

नाम क्या था ? कानूनगो फकीरचंद ।

उसके बाद मैदान (जैसे) कनम्का पुरुष ।

कनम्के छुक्पोका‡ पूत, मा-बापने रखा नाम ।

सोनम् छेतन् नेगी ।

सोनम् छेतेन् नेगी ।

बैयारू ताशित् ज़ी काहनसिङ् मास्टर ।

दो गोल्यो न्युम्ची, यू-ढुक्पा बोन्-युङ्ज़ ।

भाई बंदोंने रखा, काहनसिंह मास्टर ।

* गाँवका नाम । † गाँवका नाम ‡ खान्दानका नाम

§ वस्पा उपत्यका ।

उसके बाद, निचले § टुकूपाका पुरुष।

शोवङ् माथासु छाङा, नामङ् बोगवानसिङ् नेगी।
दो शुमूल्यो गुरबई, मोल्ङ्ग बोटङ् चू यूठङ्।
बातङ् रौवा लन्नो, बीते माँ बीते यूठङ् नेपालु*।

शोवङ् † महताका पूत, नाम भगवानसिंह नेगी।
ये तीनों मीत सफेदेके वृक्षके नीचे।
बातकी सलाह करते, "नीचे ख्वांगी जायँ या नहीं।

साये बहादुरे, होमङ-जोग् लोशोदू!
दे लोन्ना बरेङ् कानसिङ् लोतोश्!

दस भादो ‡, होम-यश कह रहे हैं।
यह कहनेपर काहनसिंह बोले।

गुरबई या गुरबई किशी बीमा वीरच्।
अङ् फुरसदु मादू, नोकरीरङ् बातङ्।
मीत हे मीत तुम्हें जाना है जाओ
मुझे फुर्सत नहीं नौकरीकी बात है
माराज़स् दम् मा लन्चिश्, इलम गल्ती बीतो।

महाराजा अच्छा नहीं करेंगे, पढ़ाई खराब होगी।

नोकरी खारिज लन् चिश्। नौकरीसे खारिज कर देंगे।
दे लोन्ना बेरङ्, बोगवानसिङ् लोतोश्!
गुरबइ या गुरबई, दो मा नेशित् अङ् मइ।

यह कहनेपर भगवान्सिंह बोले!
मीत हे मीत! यह हमें अज्ञात नहीं है।

बैयारू हरामी, कोनीच बेमानी।
मा बीते चल्मा न्योटङ् कोनीचू दरम।
बीमें लोशिश् बीम्योश्, दो शुम्ल्यो गुरबई

भाईलोग हरामी हैं, मीत बेईमान है।

* ख्वांगीका। † दूसरा नाम। ‡ सौर भाद्रपद (सितम्बर)

नहीं चलना सोचें तो मीतोका घरम है।"
जाना कहके गये वे तीनों मीत।

यूठङ् नेपालू, सीप्रोलू देन् शोङ्।
कोयङ् बाबू निश् गुत्-हत् ज़ोङ्थाम्रा!
नीचे ख्वांगीमें, सिंहपौरके ऊपर।

कोयङ्के बाबूने दोनों करहाथ जोड़के (कहा)।

पोंलुयायाँ गुरबाई?

आगये मीत!

पइँ किमों बीते, तमाकू तुङ् मू।
दो नेस् नेस् बीमा, कोंयङ् गोंरे।

आओ चलें घर तमाकू पीयें।
ततः ततः जाके कोयङ्के घरमें।

कुमो बङ्लू तोशिश्।

बैठकके भीतर बैठ।

दारूपोतिश्, "पोंलुयायाँ कोनीच,
बाटीचू शराब तुङ्डी।

दारुपोतीने कहा "आगये मीत।
कटोरीमें शराब पीजिये।

जी रूपसिङ्, कोनिच् लम्याचू जाई, बन्ठिन् स्याम्पोती।

रूपसिंहजीकी प्रेमिका, लम्पाकी जाई, सुंदरी श्यामावती।

कानसिङ् कोनिच् बन्ठिन् दारुपोती।
बोगवानसिङ् कोनिच, बन्ठिन् देवामोनी।
स्याम्पोतिस लोतोश् "कोनीच या कोनीच!

काह्नसिंहकी प्रेमिका सुन्दरी दारुपोती!
भगवानसिंहकी प्रेमिका, सुन्दरी देवमणि।
श्यामावती बोली "सखी हे सखी!

पइँ सोबत बीते, द्रमा सन्तङ् डोम्बरू दर्शन।
डोम्बरू दर्शन, शुम् डम्बर जोम् जोम्।"
दो नेस्-नेस् बीमा सिप्रोलु देन् शोङ्।

आओ सभी चलें, दूबवाले अखाड़ेमें।

देवताका दर्शन, तीन देवता एकत्रित।"
ततः ततः जाके, सिंहपौर (फाटक)के ऊपर।

कुमोकौ ख्यायो।
भीतरको देखा।

कुमोकौ ख्यामा, शुमूलेउ ठाकुरे।
धूरे कौ ख्यामा, स्क्योदङ् देस् स्प्रोशिश्।

भीतर देखा, तीन जने देवता।
आगेको देखा, बनालपच्चीसी सजी।

देबिउ चंडिके।
देवी चंडिका।

दोगाल्यो दङ्सी मरकारिङ् डोम्बर।
दो गाल्यो दङ्सी अनेन् कालीयु देवी

उसकेबाद फिर मरकारिङ् देवता।

स्याम्पोती ठटियुदेन् तोशिश्।
निश् गुतहत् जोडाइचा अर्ती शेदो।

उसके बाद फिर, स्वयं कालीदेवी।
श्यामावती चबूतरेपर बैठी।
दानों करहाथ जोड़े आरती गाने लगी।

अर्ती शेदे रङ्।
अरती गाते (देख)।

जी रूपसिंङ् ठाणेदार हैरान् हाचेश्।
रूपसिंङ् बीग्योश् स्यम्पोतियुदङ् कायङ्।
स्यम्पोतिस लोतोश् "युङ् जे या युङ्-जे !

रूपसिंह थानेदार हैरान होगया।
रूपसिंह गये श्यामावतीकी नृत्य मंडलिकामें।
श्यामावती बोली "भाई हे भाई !

अङ् कायङ् ठ दई, ग हौलास् चामे।
अङ् ओरङ् छाटेस्, की बजीरु बेटा।

हमारी मंडलिकामें क्यों आये, मैं छोटेकी बेटी।
मेरा आँचल छोटा, तुम वजीर के बेटा।

किन् पालो लामस् ।
तुम्हारा *दामन लम्बा ।
देलोन्ना बेरङ्, रूपसिंगिस् लोतोश् ।
"रिङ्जे या रिङ्जे ! दो मानेशित् अङ् मइ ।
यह कहने पर रूपसिंह बोले ।
"बहिन हे बहिन ! सो नहीं अज्ञात मुझे ।
देलू लागेन् शुङ्-शुङ् ।"
दिल लग गया है ।"
रूपसिङ् लोतोश् "कोनीच् या कोनिच् !
रूपसिंह बोले "मीत हे मीत !
हुन् बीमक् हाचे ।
अब जाना है ।
जु हाला लन्ते, बेन्नङ् बोदेदा ?"
स्याम्पोतिस् लोतोश् "कोनीच या कोनीच
अब क्या करें, प्रेम बढ़ गया ?"
श्यामवती बोली "मीत हे मीत !
बेन्नङ् बोदेन्ना, स्तेन्फ़तच हाल्यशे ।"
रूपसिङ् स्तेन्फ़च मोखमोलू चोली ।
कस्तूरीचो साबुन, रङ् फूलेन् तेलङ् ।
प्रेम बढ़ा तो, भेंट प्रेषण करेंगे ।"
रूपसिंहकी भेंट मखमलकी चोली ।
कस्तूरीका साबुन, और फुलेलका तेल ।
श्याम्पोतिस् शेतोश्, शुलरी रङ् जोद्युग् ।
खकङ्-मेबारो स्ताकुच दूमङ् द्वादा ।
श्यामावतीने भेजा चिलगोजा और गेहूँ भुना ।
मुँहमें आग जलाते, नाकसे धुआँ देनेवाला ।
बन्ठिन् स्याम्पोती रै यारू दोम्या ।
बेमार पोरथातोश् ङेयङ् मा-सुकेच्च बेमार,
सुन्दरी श्यामावती आठ दिन पीछे ।

---

* आंचल और दामन खान्दानका संकेत है ।

बीमार पड़ी, देहमें असह्य पीड़ा ।

मोनङ् म-सुकेच्च अपसोस ।
मनमें असह्य शोक ।

कुखिङ् जा शङ् रन् ग्यो ।
कुक्षिमें अत्यन्त पीड़ा करती ।

शिम्शिम् गङ् तुरगस्, स्याम्पोती डून्याश् ।

सूर्यास्त होते-होते श्यामावती अस्त हुई ।

शुम् द्यारू दोम्या श्यम्सरन् बाबू ।
चीटी लिख्यायो "स्याम्पोती डून्याश् ।"

तीन दिवस पीछे श्यामसरण बाबूने ।
चिट्ठी लिखा "श्यामावती अस्त होगई ।"

दो चीठी शेतो रूपसिङ् गूदो ।
बच्चो कागली, "स्याम्पोती डून्याश् " ।
थसे रङ् जी रूपसिङ् ठाणेदार हेरान हाचेश् ।

उस चिट्ठीको मैं भेजा रूपसिंहके पास ।
कागजमें पढ़ा "श्यामावती अस्त होगई ।"
सुनकर रूपसिंहजी थानेदार शोकाकुल होगये ।

सोङा द्यारी शोपङ् ।
पंद्रह दिवसतक शोक ।

कानसिङ् लोतोश् "गुरबई या गुरबई ।
अपसास था लर्न्गी ।

काहनसिंह बोले "मीत हे मीत ।
अफसोस मत करो !

कोनीच हौल्स् चामेत्, की वज़ीरू बेटा ।
दे लोन्नू बेरङ् रूपसिंगिस् लोतोश्,

प्रेमिका छोटेकी बेटी थी, तुम वजीरके बेटा ।
यह कहनेपर रूपसिंह बोले,

दो मा-नेशित् अङ् मई,
हतली खोशियाउ छाङा ।

"सो अविदित मुझे नहीं है,
हम (दोनों) खशियाकी सन्तान ।"

(११) चुन्नीलाल डाक्टर

कवयित्री—गंगासरनी (जीवित), ग्राम—खवांगी, गीतकाल—१९४०
गायिका—विद्याचरनी, आयु—२० साल, जात-कनैत, ग्राम—चिनी
लेखक—भगतसिंह (चिनी स्कूल) और पुण्यसागर तारीख १-६-४८

घटना—डाक्टर चुन्नीलाल, सरगोधा (पंजाब) निवासी १९४०-१९४४ ई० के करीब चार साल जंगलविभागकी ओरसे क़िल्बा अस्पतालमें डाक्टर रहे, उसी समयकी यह प्रेम-कथा है।

बाट्यो किलिंबा थोरिङ् हसपतालों।

कटोरी जैसे किल्बाके ऊपर अस्पताल।

डागडर बाबू हत् तौश् ? — डाक्टर बाबू कौन थे ?

बाटि चुशाया किलिम्बा, ओपङ् अङरेजू हस्पतालो।
ओपङ् अङरेजू हस्पताली, डागडर बाबू हात् तोश् ?

कटोरी जैसे किल्वाके नीचे अंग्रेजी अस्पताल।
नीचे अँग्रेजी अस्पताल, डाक्टर बाबू कौन थे ?

डागडर बाबू लोन्ना, हात् द-मीचो छाङो।
हात् दा-मीचो छाङा, देसो सेठो छाङा।

डाक्टर कहिये, किसी भले आदमीके पूत।
किसी भले आदमीके पूत, देशके सेठके पूत।

देसो सेठो छाङा, नामङ् छदा दूगयोश् ?
नामङ् ता लोन्ना, चुन्नीलाल डागडर।

देशके सेठके पूत, नाम क्या था ?
नाम तो कहिये, चुन्नीलाल डाक्टर।

चुन्नीलाल डागडरा, गुरबाई हात् दूगयोश ?
गुरबाई ता लोन्ना, रोङ् जेलदारो छाङा।

चुन्नीलाल डाक्टरके, मीत कौन थे ?
मीत तो कहिये, रोङ् जेलदारके पूत।

* हिमाचलके कनेतोंका दूसरा नाम।

रोङ् जेलदारो छाङा, नामङ् वादा दूगयोश ?
नाकङ् ता लोन्ना, कम्पोटा जेहरसिंह ।

रोङ् जेलदारके पूत, नाम क्या था ?
नाम तो कहिये, कम्पौंडर जाहर सिंह ।

दो न्योटङ् गुरबाईचो, बेन्नङ् (लिया) बोदी ।
नुकरी च (लिया) ईफङ्, किल्वा हस्पतालो ।

उन दोनों मीतोंमें, प्रेम था बहुत ।
नौकरी करते एकसाथ, किल्वा अस्पतालमें ।

चुन्नीलाल डागडरू, कोनीच हता दूगयोश् ?

चुन्नीलाल डाक्टरकी प्रेमिका कौन थी ?

कोनीच ता लोन्ना, फयूलो छेचाचो ।
फयूलो छेचाचो, हातू (लो) जाई ।

प्रेमिका तो कहिये, स्वदेशकी तरुणी ।
स्वदेशकी तरुणी, किसीकी (थी) जाई ।

हात् (लो) मानी, थङ् गोरो ज़ाई ।
थङ् गोरो जाइयू, नामङ् छुदा दूगयोश ?
नामङ् ता लोन्ना, बन्ठिन् ज़ङ् मोपती ।

(और) किसीकी नहीं, थङ्गरकी जाई ।
थङ्गरकी जाई, नाम क्या था ?
नाम तो कहिये, सुन्दरी भद्रावती ।

बन्ठिन् जङ् मोपतिस् लोतोश "डागडरा बाइसाई ।
डागडरा बाइसाई, ओखी-सोखी बातङ् ।

सुन्दरी भद्रावती बोली "हे डाक्टर मीत !
हे डाक्टर मीत ! दुख-सुखकी बातमें ।

ओखी-सोखी बातङ्, बाइसाइयू मोरज़ात तारईं ।"
दे लोशिमिगू बेरङ् परनाम लोशिश् ब्रोलशिगयोश् ।

दुख-सुखकी बातमें, मिताईकी मर्यादा (रखना)।"
यह कहकर प्रणाम बोल बिदा हुई ।

ब्न्ठिनू ज़ङ् मोपतीउ, कोनेच हात् दू गयोश ?

सुंदरी भद्रावतीकी सखी कौन थी ?

कोनेच ता लोन्ना, यङ्वाङो ज़ाई ।

यङ्वाङो ज़ाई; नामङ् ठ दू गयोश ?

नामङ् ता लोन्ना, ब्न्ठिन् किशनभगती ।

जङमोपोतिस् लोतोश "कोनिच या कोनिच !

सखी तो कहिये, यङ्वङ्की जाई ।

यङ्वङ्की जाई, नाम क्या था ?

नाम तो कहिये, सुंदरी कृष्ण भक्ती ।

भद्रावती बोली, "सखी हे सखी !

पोइँकंडे बीते, जमीयू पोरी लान्ते ।

जमीयू पोरी मा लन्मा, दो मन् रिङ्ज मा नर्शं ।

चलो कंडे बिहरने खेत रक्षा करें ।

खेत रक्षा न करे, वह नारी ना समझी जाये ।

दो खाटिये नाशा ।"

वह खोटी समझी जाये ।"

किशनभगती लोतोश "बीते ता रिङ्तोइँ, शिल्पुग ठ फीते ?"

कृष्णभक्ति बोली "बिहरने तो कहती, कलेवा क्या ले चलें ?"

"शिल-पुग ता फीते, रोएङ्-ज़ादू पुग ।"

"शिल-पुग् ता फीते, फुल्-गस् ठ फीते ?"

"फुल् गस् ता फीते, किल्वा ओल्गो तीसङ् ।"

"कलेवा तो ले चलें, खेतका गेहूँ भुना ।"

"कलेवा तो लेवें, भोजन वस्त्र क्या ले चलें ?"

"भोजनवस्त्र लेचलें, किल्वा फाफड आटा ।

ठोकरोके काले उड़दकी दाल ।"

ठोकरो रोमशु पैथङ् ।"

दो न्योटङ् कोनीच बीम् लोशिश् बीगयोश् ।

कान्डेयो फ़युल् लो, ज़मीयो पोरी लानो ।

ज़मीयो पोरी लानो, टागू ती शेदो, ब्रासो चो शालो ।

वह दोनों सखियाँ, यह कहके चली गईं।
गाँवके कंडेकी खेतकी रक्षा करतीं।
खेतकी रक्षा करती जौमें पानी देतीं, फाफड् निरातीं।

बन्ठिन् ज़ङ्मोपोती, खोर्ग्यु माज़न् सरसर।
शुम् ग्यारो कुमो, ज़ङ्मोपोती पीरङ्।

सुन्दरी भद्रावती, रोगी असुखी पड़ गई।
तीन दिनोंके बीच, भद्रावतीको व्याधी।

पीरङ् पोरयातोश्, बल् जशङ् पीरङ्।
बल् जशङ् पीरङ्, डेयङ्ो मा-सोकेच पीरङ्।

व्याधि आपड़ी, सिर दर्दकी व्याधी।
सिर दर्दकी व्याधी, देहे असह्य पीड़ा

मोनाङो मा-सोकेच अफसोस। मनमें असह्य शोक।

चिठी कुमो चेयोश्, चुनीलालु गुदो।
चुनीलालो गुदो, वन्चो कागली।

चिट्ठी लिख भेजा, चुन्नीलालके पास।
चुन्नीलालके पास, कागजको बाँचा।

अन्चो कागली, व्योरा ठ दुगयोश ?
व्योरा ता लोना, कोनीच पीरङ् पोरयोश्।

कागजको बाँचा, व्योर (वहाँ) क्या था ?
व्योरा तो कहिये, प्रेमिका बीमार पड़ी।

चुनीलाल डागडर, कोनीच पीरङ् थस् थस्।
कोनीच पीरङ् थासे रङ्, स्तिङ् शूलङ् लन्ग्यो।

चुन्नीलाल डाक्टरको, प्रेमिकाकी बीमारी सुनके।
प्रेमिकाकी पीड़ा सुनके, हृदय-शूल लगगया।

रातो-रात कंडे दवाग्योश्। रातों-रात कंडे दौड़ गये।

× × ×

गुदो ललटिन रङ्, कंडे शेन्नङ्चु।
अहरेङ् पोश शम्भु दे, टिन्यङ्च कुमो ख्यायोश्।

बेहरङ् इशारा रनग्योश, शङ् पोटङ्स ठीसो ।

हाथे लालटेनले, कंडेकी मंडईको ।

बाहर घासपरसे, झरोखे भीतर झाँका ।

बाहरसे संकेत करते, कंकडियाँ फेंकी ।

जङ्मोपोती कोनीचु, इशारा थसेरङ् पीरङ् घट्याग्योश ।

जङ्मोपोतिस लोतोश, "कोनीच या कोनीच !

भद्रावतीकी पीड़ा संकेत सुन घट गई ।

भद्रावती बोली "प्यारे हे प्यारे !

ठ इशारा लन्ताइँ, कुमो ठ मा बिइँ ?

कुमो जाइँ कोनीच ! खेरपोशी देन तोशी ।"

क्यों संकेत करते, भीतर क्यों न आते ?

भीतर आओ प्यारे । आसन बैठो ।"

चुनीलाल बिग्योश् जड़मोयोतियु पोशुदेन ।

चुन्नीलालस् लोतोश् 'कोनीच या कोनीच, डेयङ् पीरङ् हाल तोश ?

चुन्नीलाल गये, भद्रावतीके आसन ऊपर ।

चुन्नीलाल बोले "प्यारी हे प्यारी ? देखें पीड़ा कैसी है" ?

जङ्मोपोतिश लोतोश "ज पीरङ् गन्डु ।

जु पीरङ् गन्डु, सचक्यु डुवेशे ।"

भद्रावती बोली "यह व्याधी बुरी व्याधी ।

यह व्याधी बुरी व्याधी, सच मरूँगी ।"

चुन्नीलालस् लोतोश् "कोनीच या कोनीच !

होने कादर था जाइँ, ठिद् मठिद् लान्ते ।

चुन्नीलाल बोले, "प्यारी हे प्यारी !

ऐसी कातर न हो, कुछ न कुछ करेंगे ।

शेल् मानू इलाज लान्ते ।

दवा इलाज करेंगे ।

शेल् मानू इलज लान्ते, पाइँ हस्पतालो बीते ।

हस्पतालो बीमुँ तागत दुइँ आ मा दुइँ !"

दवा इलाज करने, चलो अस्पताल चलें ।

अस्पताल चलनेकी ताकत है या नहीं !'

जङ्मोपोतिस् लोतोश् "कोनीच या कोनीच !
अङ् ता मादुग तागोद, हस्पतालो बीमु।"
चुन्नीलालस् लोतोश "कित् तागत् मा निमा डंडी टुयाते।"

भद्रावती बोली "प्यारे हे प्यारे !
मुझे नहीं ताकत, अस्पताल जानेकी।"
चुन्नीलाल बोले "तुम्हे ताकत नहीं तो डंडी बनवाते हैं।"

टुयाम् टुयायोश् पलबरू माज्ञाङो।
ायमिचु डंडी।

बनाकर तैयारकिया पलभरके बीच,
आठ आदमियों की डंडी।

दो शोङ् शोङ् बी मा, कागे गोरङ् देन्।

वहाँसे नीचे नीचे गये, कागेगढ़के ऊपर।

चुनीलालस् लोतोश "दसपाँचु बैयार !
पलबर आराम लानिच, पलबर गस् उठायतोक्।"
दो शोङ् शोङ् बी मा, कातो थोरिङ्ग बँगलो।

चुन्नीलाल बोले "दस-पाँच भैया !
पलभर आराम करो, पलभरमें उठाना।"
वहाँसे नीचे-नीचे जा, लाये बँगले पर।

थोरिङ् अस्पतालो कुमो कुमाराउ, चारपाई देन्।
चुन्नीलाल लोतोश् "कम्पोटर जेरसिंह !

बँगलेपर कमरेके भीतर चारपाईके ऊपर।
चुन्नीलाल बोले "कम्पौडर जहरसिंह।

नीचलु कोनीच पोचाश, इलाज दम् लानी।
इलाज दम् लानी, कलथानङ् शुम् जब।

अपनी प्यारी पहुँच गई, इलाज अच्छा करना।
इलाज अच्छा करना, सबेरे तीन बार।

द्यारकि चु स्तिस् जब।"

दिनको सात बार।

जङ्मोपोतीस् लोतोश् "कोनीच या डागडर !
जो पीरङ् होट्यामा, जु छे गोरी वस् क्यङ्

भद्रावती बोली "प्यारे हे डाक्टर !
यह रोग हटजाये तो इस जन्मकी बात क्या

छिमा चु ईमान तातोक्
परलोक में सत् रखूँगी।"

हुनाणु बेरङ् जङ्मोपोती इमान मा ताता।
छिसाचु इमान बसक्यङ् जुछेओ मा रख्यायोश।

इसी समय भद्रावतीने सत् नहीं रखा।
परलोकमें सतकी बात क्या, अभी नहीं दिखाया।

हुनाणु बेरङ् कोठिस्यानो नम्शा।
जोङ् मोपोतिस् लोतोश् "अङ् भाव मा बि।

इसीसमय कोठिस्याकी बहू (बन गई)।
भद्रावतीने कहा "मेरा प्रेम नहीं होता।

नो देशी कोचा अङ् भावो मा बि।"
चुन्नीलालो लोतोश "गंगाजीतु गुरबई !
अङ् सुन्चन् मा, मुनरिङ्जु दन्दे था लन्राईं, ईमान हथेरङ् बमान।

इस देशी कोच* में मेरा भाव नहीं है।"
चुन्नीलाल बोले "गंगा जीत मीत !
मैंने सोचा कि नारीपर विश्वास न करो, सत् होके असती।

हेद् लोशिश् दयले, इमान मायच रंडिऊ।
अङ् च देउ काउथङ्, अङ् सोनी बितरी।

और तो छोड़ो, सत नहीं रंडीके पास।
मेरी चाँदीकी कंघी, मेरा सोनेका कंठा !

दुनियाँ ता बेइमान, कि (ली) बेमान हाले !
ओमचु बेरङ् शोङ् ठी गोलिस् प्रानु बेनङ्।

दुनिया तो बेईमान, तू बेईमान कैसे !
पहिली बेरा कैसे गले प्राणसा प्रेम।

* देशी = मैदानी, कोचा = कनौर भिन्न लोगोंकेलिये अपमानपूर्ण नाम।

हुनागु बेरङ् शोङ् पुरइ बेईमानी।"
जङ्मोपतियु कनुउ जङ्ग गुँगरू।

अबकीबेरा तो पूरी ही बेईमान।"
भद्रावतीके कानमें सोनेका कुन्डल।

मियन् चेय लोतोश, दो (ली) पीतलु गुँगरू।
मि मा खुशिश बतङ् जङ् गुँगरू थग् छोत्।

लोग तो बोलते, वह पीतलका कुन्डल।
लोग अप्रसन्न बात, कुन्डल तो अवश्य सोनेका।

चुन्नीलाल हिम्मत देन, जङ् मो विवग बेरङ् ख्यायो,
शबदङ् न्वादो चुन्नीलालु लोतोश्।
"हेद् लोशश् दयलो अङ् प्राचो मुँदरी।"

चुन्नीलालने हियाबसे, भद्राको जातेसमय देखा।
(मुँहसे) शब्द निकालते, चुन्नीलाल बोले—
"दूसरी बात छोड़ो, मेरी अँगुलीकी अँगूठी।"

२५

किन्नर-भाषा

अन्यत्र लिखा जा चुका है, कि किन्नर भाषामें तीन तत्व पाये जाते हैं—मूल (किरात) भाषा, हिन्द-योरपीय (संस्कृत पारिवारिक) भाषा, भोट (तिब्बतीय) भाषा। हम यहाँ उसका कुछ तत्व-विश्लेषण करना चाहते हैं*—

१—शब्द सूची

[१] पृथ्वी वर्ग—		डला—डेला	हि
१. पृथ्वी—मटिङ्	हि	भूकम्प—वन चुलिङ्	कि
मिट्टी—शो	भो	[२] जलवर्ग—	
बालू—वाल्यङ्	हि	२० जल—ती	कि

* संकेतों का अर्थ है, कि = शू (किरात) भाषा, भो = भोट भाषा, हि = हिन्दी, संस्कृत तथा दूसरी भाषामें।

कंकड़—शङ् कि
पत्थर—रग ,,
खेत—रिम ,,
क्यारी—डोभ्यङ् हि
चबूतरा—ठंटी कि
उपत्यका—नालङ् हि
१० अधित्यका—पावङ् हि
पर्वत—रङ कि
शिखर—बल ,,
सानु—रङ् येठङ हि
डाँड़ा—तीरङ ,,
गुफा—अग कि
गुफा—डब्रङ हि
टीला—डनी कि
रस—रोस हि
स्वाद—जमङ् कि

[३] अग्निवर्ग—

अग्नि—मे भो
अंगार—मे-ठो कि
भस्म—वोस्पा हि
४० चिनगारी—क्यङ कि
अँगीठी—ग्यठुरू ,,
चूल्हा—मे-लिङ भो-कि
चिमनी—दुसरङ ,,
भौर—पपिल्स ,,
चकमक—मेरक भो-कि
बारूद—दारु हि
धुआँ—दुवङ हि

भाप—वन कि
नदी—गारङ् ,,
नदी—समुद्रङ् हि
नाली—कुलङ् ,,
नहर—कुलङ् ,,
धारा—दारङ् ,,
चश्मा—नागस् ,,
कूप—कुवङ् ,,
सर—सोरङ् ,,
३० जलपात—छतगङ् कि
बर्फ़—ठनङ् ,,
हिम—प्वम् ,,
ओला—शोरू भो
बादल—जू कि
छाल—वोद् कि
६० हीरा—सग ,,
देवदार—क्यलमङ् ,,
न्योज़ा—रोब्रोटङ् कि-हि
कैल—लिम् कि
पदुम—शुर ,,
भुर्ज—पद वाटङ् हि-कि
खूबानी—खमानी, चुल हि
अंगूर—दाखङ् हि
अखरोट—का कि
नासपाती—नसपोती हि
७० बादाम—बदम हि
बीरी—श्वन कि
सफेदा—क्रमल ,,

[४] वायु-आकाश-वर्ग—

वायु—लान कि

आँधी-लीलान ,,

५० आकाश—सोरगङ हि

नर्क—नोरोक हि

[५] वनस्पतिवर्ग—

वन—वोन्यङ् हि

वृक्ष—वोटङ् कि

लता—लानिङ् ,,

पौधा—सोलिच ,,

झाड़ी—ज़रम्ररङ् ,,

लकड़ी—शिङ् भो

पत्ता—पतरङ् हि

शृगाल—शालस् हि

रीछ—होम कि

बानर—बन्दरस् हि

हरिण—खो कि

कस्तूरा—रोच ,,

६० नर—स्क्यो ,,

मादा—मन ,,

चमगादड़—तुर्प्यात्च ,,

बैल—दमस् ,,

याक—यग भो

याकगाय—ब्रीमे भो

गाय—खलङ कि

बकरी—बाखोंर ,,

बकरा—आज़ हि

भेड़—खस कि

गुलाब—यालू कि

प्याज—प्यास हि

लहसुन—लोस्नङ् हि

बत्थू—टका कि

फाफड़—ब्रस भो

मड़ुआ—कोद्रो हि

कंगुनी—शग कि

८० आलू—हालू हि

कद्दू—कोदू हि

शलगम्—शोशमङ् कि

[६] पशुवर्ग—

पशु—सेमचन भो

भेड़िया—चङ्कू भो

जोंक—तिशम कि

[८] पक्षिवर्ग—

पक्षी—प्या भो

मोर—मोरेस हि

चकोर—तिक कि

गौरेया—किम-प्याच भो

चील—दङ्शुरस कि

बाज—पाजी हि

गिद्ध—गोल्डेस हि

उल्लू—कुक कि

१२० कबूतर—र-प्या भो

पंडुक—कोआ कि

तीतर—तितरस हि

मुर्गा—कुकुरी हि

कठफोरा—शी-ठोङ्- भो-कि

१०० मेढ़ा—कर कि
गदहा—फ़ोच ,,
घोड़ा—रङ् ,,
घोड़ी—गोन्मा ,,
हाथी—हथी हि
खच्चर—कोचर कि
कुत्ता—कुई ,,
बिल्ली—पिशी ,,
चूहा—क्युच ,,

[७] जलचर वर्ग—

मछली—मछस हि
११० मेंडक—तिपलोक्च कि
भौंरा—बौरस हि
डंस—छुतिक कि
मक्खी—यङ् ,,
मधुमक्खी—बसयङ् ,,
मच्छर—गुज़रे ,,

[१०] सरीसृप वर्ग—

१४० सर्प—सपस हि
बिच्छू—सोकोक कि
साँडा—छमर ,,

[११] धातु वर्ग—

सोना—ज़ङ् भो
चाँदी—मल कि
ताँबा—त्रोमङ् हि
जस्ता—सोत कि
राँगा—कोली हि
लोहा—रोन कि

[६] कीट वर्ग

कीट—होङ् कि
पिस्सू—श्पग ,,
खटमल—सुट ,,
जूँ—रिग् ,,
चीलर—,, ,,
१३० झिल्ली—वुतुकच् ,,
घुन—प्याच ,,
कनखजूरा—कनासोल
जाछुस—हि-कि
पतंग—शूप्याच भो-कि
तितली—,,
चौरा—चोरङ हि
१६० रथ—रोथङ हि

[१३] मनुष्य वर्ग—

मनुष्य—मी भो
पुरुष—डेखरस् कि
छाङ् मी भो
स्त्री—छेचस कि
बूढ़ा—बूरुज़ा कि
बूढ़ी—यङ्ज़े भो
तरुण—डेखराच कि
तरुणी—छेचाच ,,
बालक—छङ् भो
बालिका—छेचाच कि
१७० शिशु—थितलकच ,,
पत्नी—नार हि
पति—दाच कि

पीतल—पीतल हि

१५० काँसा—कासङ हि

[१२] देव वर्ग—

देव—शू,डंबर कि

भूत—शुना रकशस हि-कि

भूतनी—सावनिक कि

पिशाच—बोनशिरस हि-कि

राक्षस—रकशश हि

देवालय—देवरङ, सन्तङ हि

मूर्ति—कुँडा भो

विमान—रोथङ हि

मौसा—वपुच हि-कि

मौसी—अमनिच भो

बुआ—नाने कि

फूफा—ममा ,,

बहिन—दाओचा, रिङ्चे ,,

बहनोई—शक्पौ हि

१९० भाई—अते, क्या (छोटा) कि-हि

भाभी—बोरे हि

दामाद—छुद कि

बहू—नमशा भो

दुलहा—खतुच कि

दुलहन—खतिच ,,

चचा—वपुच ,,

चची—अमनिच ,,

सासु—युमे भो

ससुर—रू कि

२०० भतीजा—अत्योछुङ् ,,

माता—अमा भो

पिता—बबा हि

बेटा—छुङ् भो

बेटी—चमेद भो

पोता—स्पाच कि

पोती—छुचाच, स्पाच ,,

नाती—स्पाच ,,

१८० भाँजा—बंजा हि

भाँजी—वंजिक, बनुच हि

मामा—मोमा हि

मामी—नाने कि

हाथ—गुद कि

हथेली—इस्तलङ् हि

पैर—वङ् कि

जाँघ—लुम् ,,

मुँह—खकङ् भो

गाल—पिङ् कि

नाक—स्तुकुच ,,

ओठ—तुनङ् हि

कान—कनङ् ,,

२२० बाल—क भो

आँख—मिक ,,

भौं—मिक्स्पू ,,

अँगुली—प्रच कि

शिर—बल ,,

[१४] ग्राम वर्ग—

गाँव—देशङ हि

घर—किम् भो

नाना—तेते कि
नानी—ममापो, आई ,,
दादा—तेते ,,
दादी—अपी, अई ,,
परदादा—कोतेते हि
परदादी—कोअपि ,,
नौकर—नुकुर, चाकोर हि
नौकरानी—छुन्पा भो
शरीर—डेयङ् हि
२१० जीभ—ले भो
धरन—जलदारङ् हि
चारपाई—माज़ा ,,
बिछौना—पोश कि
२४० तकिया—कुम ,,
ओढ़ना—फोका शेमिक गस ,,
कंबल—दोरी ,,
लोई—चदर हि
पट्टू—चदरपट्टी=पोरिन ,,
नगर—सोर ,,
सड़क—सोलोक ,,
रथ—रोत् ,,
गाड़ी—गडी ,,
२५० डंडी—टंडी ,,

[१५] कृषि वर्ग—

कृषि—जमीमोरी हि
खेत—रिम् कि
मेड़—दोरिङ ,,
जोतना-हालङ् लच्चिक हि
कमरा—पन्ठङ् हि
कोठरी—पन्ठङ्च हि
भीत—बितिङ् ,,
द्वार—द्वारङ् ,,
खिड़की—टिनङ् कि
गवाक्ष—,,
छत—मलथङ् भो
फर्श—फोर कि
आँगन—खतङ् हि
केवाड़—पितङ् कि
हल—स्‍ल कि
कुदाल—गोलिङ ,,
हँसिया—ज़ेथङ हि
कुल्हाड़ी—लस्त कि
कुल्हाड़ा—,, ,,
गँडासा—लेमा ,,
२७० डलिया—छुटोच ,,
टोकरी—,,
हलवाहा—हालस हि
चरवाहा—पालस ,,
सईस—खसदार ,,

[१६] वाणिज्यवर्ग

वाणिज्य—छोङ भो
दूकान—दुकान हि
दुकानदार—दुकानदार ,,
सौदा—सौदा ,,
तराजू—त्राज़ू ,,
२८० बटखरा—बटे ,,

बोना—पुशमिक कि
निराना—अरलन्निक ,,
काटना—लाम्मिक हि
दावना—मांडोलन्निक ,,
मोसना—बरमिक कि
२६० ओसाना—लींमिक ,,
बाँधना—छुन्निक हि
सींचना—तीशन्निक कि
क्यारी—डोंव्यङ हि
२९० छटाँक—छटाँक हि
सोलोक = छ छटाँक
ब्रे = दो सोलोक,
कोतट् = ३ या ४ सोलोक्
टमेट—४ ब्रे]

[१७] शिल्पि वर्ग—

बढ़ई—ओरचस् कि
बसूला—बासिङ् हि
रुखानी—न्यागू कि
रंदा—रंदो हि
आरा—अरी ,,
३०० बर्मी—बारेमा ,,
खराद—छुकोर भो
लोहार—डोमङ् कि
हथौड़ा—थोङुच ,,
हथौड़ी—,, ,,
घन—गोनङ् हि
संडासी—सोनेशङ् ,,
भाथी—सखुल कि
नाप—पग बनिङ् हि
तेल—तेलङ् ,,
गुड़—गुडङ् ,,
चीनी—खंड ,,
तमाखू—तमाखू ,,
मसाला—बोशार
हल्दी—पीग बोशार हि
मिर्च—पिपली ,,
सेर—सेर ,,
मोची—मोची हि
चमड़ा—टलङ्च कि
जूता—श्पङ् भो
जूती—श्पङ्च ,,
३२० जाल—स्तरवोत् कि

[१८] आयुध वर्ग—

हथियार—योजङ् हि
तलवार—त्राल् ,,
छुरा—खुर् ,,
छुरी—खुर्च ,,
भाला—बोर्छो ,,
तीर—मो कि
धनुष—गुम ,,
बाणफल—मोबल हि
बंदूक—तुपुक ,,
३३० तोप—तोप ,,
डंडा—बेशी कि
सोंटा—छुङ्मा भो
लाठी—जल् कि

सोनार—सोनारस् हि
चिमटी—चिमट „
३१० ठठरा—डायेङ् „
हजाम—नाई „
अस्तुरा—खुरङ्च „
कैंची—कतू „
दर्जी—सूँई „
सूई—क्यब् भो
चपरासी—चपरासी हि
मुहर्रिर—केतस् „
दूत—फोञ भो
पञ्चायत—पञ्चात् हि
मेट—चारस् „

[२०] अन्नपान वर्ग—

भोजन—खऊ हि
रोटी—रोटे „
सत्तू—युद् कि
आटा—चीसङ् „
३५० गेहूँ—ज़ोद् „
जौ—टग भो
मटर—ञ्यर कि ?
कलाय—बड़ी मटर हि
नंगा जौ—औय् टग् कि
चीला—होत् „
लपसी—थुक्पा, फटिङ् „
हलवा—पोरसाद् हि
पूड़ी—पोले „
साग—स्कन् कि
गफन—स्कोल्डा कि

[१९] राज वर्ग—

राजा—राज़ा हि
रानी—रानी „
मुखिया—गोबा भो
कायथ—कयतस, केतस् हि
चौकीदार—चोकदार हि
३४० सिपाही—सोपाई „
मधु—बस कि
पान—तुङ् मिक भो
शराब—रक हि
३७० कच्ची शराब—शुदुङ् भो
दूध—खेरङ् हि
दही—दायेङ् „
छाछ—बोत हि ?
मक्खन—चोपरङ् मार भो
घी—स्क्वशिच्चमार „

[२१] वस्त्र वर्ग—

परिधान—गस कि
कुर्ता—कुर्ती हि
चोली—चोली „
अँगरखा—छुबा भो
३८० कमरबन्द—गछुङ् कि
पायजामा—सुथन हि
साड़ी—दोडी कि
चादर—छल्ली „
मोजा—वङ्-सब „
दस्ताना—शु-सब „

३६० तरकारी—बाजी हि
मांस—शा भो
सूप—न्योरा कि
चावल—रल् हि!
चटनी—चटनी हि
अचार—अंचार ,,
तेमन—छोबश ,,
प्याला—नङच कि
घड़ा—गगरी (पीतल) हि
,, —पाटू (मिट्टी) कि
सुराही—होरिच् (मिट्टी) ,,
चमच—ख्योट ,,
कलछी—करछी हि
चीमटा—चीमट ,,
तुम्बा—तोमङ् ,,

[२३] यात्रा वर्ग—

४०० पथिक—मुसाफिर हि
पथ—वोम् कि
पंथशाला—सराइ हि
कुली—कुली ,,
टोपी—ठेपङ् कि
पगड़ी—पाग हि

[२२] पात्रवर्ग—

बर्तन—वनिङ् कि
लोटा—लोटरी हि
३९० थाली—नङ् कि
कटोरा—बटिञ्च् हि
किराया—कराया हि
सड़क—सोलोक ,,

[२४] सर्वनाम वर्ग—

वह—दो कि
वे—दोगा, दोगो (स्त्री) ,,
तू—क ,,
तुम—कि ,,
४१० आप—कि ,,
मैं—ग, हम्, कशा ,,
अपने—माउँ, वह-अनु ,,
सब—चोइ, और-ऐ हवै ,,
आधा—अदङ्, पूरा-पूरी हि
४१५ कुल—चोइ, थोड़ा गटो, छेरप् कि

२—विभक्तियाँ

कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण इन सातों विभक्तियोंमें शब्दोंके रूप निम्न प्रकार चलते हैं।

हदो (वह) के रूप

	एक वचन	बहुवचन
१. कर्त्ता	हदो (वह)	हदोगो (वे)
२. कर्म	हदोपङ् (उसको)	हदोगोन् (उनको)

३. करण	हदोस् (उसके द्वारा)	हदोगोनस् (उनके द्वारा)
४. सम्प्रदान	हदोताईं (उसके लिये)	हदोगोनताईं (उनके लिए)
५. अपादान	हदोदोक्स (उससे)	हदोगोक्स (उनसे)
६. सम्बन्ध	हदोम्यू (उसका)	हदोगोनू (उनका)
७. अधिकरण	हदोदन (उसपर)	हदोगोनू दन् (उनपर)

तू (का) के रूप — **ग (मैं) के रूप**

१	का (तू)	किनो (तुम आप)	१	ग (मैं)	निङ (हम)
२	कानू	किनू	२	आङू	निङानू
३	कस	कन्	३	गस	निङोस
४	कानू	कन्	४	अङताईं	निङानुताईं
५	कनदोक्स	कनूनूदोक्स	५	आङदोक्स	निङोदोक्स
६	कन	कनानू	६	आङ	निङोनू
७	कनदन	किनूनूदन	७	अङदन	निङोनूदन

इन तीनों सर्वनामों में ग का भोट भाषासे सम्बन्ध जान पड़ता है, बाकी दोनों किरात भाषाके हैं।

शब्दोंके रूपकेलिए अज (बकरी) — **मी (मनुष्य)**

	एकवचन	बहुवचन		एकवचन	बहुवचन
१	अज	मुलुक अज	१	मी	कुस (नदी) मी
२	अजू	अजानू	२	मीयू	मीनू
३	अजुस्	अजानुस्	३	मीस	मीनुस
४	अजतादूँ	अजानूताइँ	४	मीयूताइँ	मीनूताइँ
५	अजुदोक्स	अजानूदोक्स	५	मीयुदोक्स	मीनूदोक्स
६	अजू	अजानूदोक्स	६	मीयू	मीनू
७	अजूदेन (दन)	अजानुदेन	७	मीयूदेन	मीनूदेन

३—किन्नर धातुयें

कटैमिक (हि)—काटना	दौरसोमिक (हि)—दौड़ना
कुलमिक (कि)—मारना-पीटना	फुकारमिक (हि)—फूँकना
खाऊ (हि)—खाना	फैंक्यामिक (हि)—फैंकना

खाऊरञिक (हि+कि)—खिलाना
खाऊलञिक (हि+कि)—पकाना
ख्यामिक (कि)—देखना
गनम् (हि)—सूँघना
चरान् लञिक (हि)—चीरना
चल्यामिक (हि)—चलाना
चुम्मिक (हि)—पकड़ना
चुरमिक (कि)—दूहना
चुरामिक (हि)—चुराना
चूलन्निक (कि)—खाँसना
चेमिक (कि)—लिखना
छरामिक (हि)—छोड़ना
छिक्यामिक (हि)—छींकना
जोगमिक (कि)—खरीदना
तुङ्मिक (भो)—पीना
तैरन्निक (हि)—तैरना
तोरोमिक (कि)—रहना, बैठना
थुक्यामिक (हि)—थूकना
थोमिक (कि)—उठाना
बुी-मिक (कि)—जाना
यगमिक (कि)—सोना
यन्चीमिक (कि)—जागना
युन्मिक (कि)—चलना
रनिमूशोन्निक (कि)—दिलाना
रन्निक (कि)—देना
रुन चिमिक (कि)—सुनना
रेन्निक (कि)—बेंचना
लनिमूशोन्निक (कि)—कराना
लन्निक (कि)—करना
लुटामिक (हि)—लूटना
लेम्मिक (कि)—चाटना
वसन्निक (हि)—बसना
समजन्निक (हि)—समझना
सरशीमिक (भो)—उठना
सैली बीमिक (हि+कि)—घूमना
स्तेलमिक (कि)—बाँचना, पढ़ना
हुद्मिक (कि)—पढ़ाना
होशिमिक (कि)—पढ़ना

४—क्रिया रूप

किन्नर-भाषाके क्रिया-रूप वर्तमान, भविष्य, भूत और आज्ञामें निम्न प्रकार होते हैं—

लञिक (करना) धातु वतमान

	एक वचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	लानो दु (करता है)	लानोदुच (करते हैं)
मध्यम पुरुष	„	„
उत्तम पुरुष	„	„

भविष्य काल

प्रथम पुरुष	हदो लन्तो (वह करेगा)	हदोगोलन्तोश (करेंगे)
मध्यम पुरुष	का लन्तोन	किनो लन्तोन
उत्तम पुरुष	ग लन्तोक	निङा लन्तिच

भूतकाल

लनशिद् (क्रिया) सभी पुरुषों और बचनोंके लिये

आज्ञा (विधि)

सभी पुरुषोंकेलिये एक वचन में लनी (कर) और बहुवचनमें लनिच (करो) है।

किन्नर-भाषा में वार्तालाप

यह रास्ता कहाँ जाता है ?	जु आमे हम बियोदु !
सड़क कहाँ है ?	सोलोक हम् दु ?
तुम कहाँ जाते हो ?	कि हम् बियोतोइँ ?
मैं चिनी जाता हूँ।	ग चिने बियोतोक।
यह रास्ता ठीक है ?	जु ओम् निया ?
दूकान कहाँ है ?	दुकान हम् दु ?
दूकानदार कौन है ?	व्हत् तोश ?
डाक कब आयेगी ?	डाक लेरङ् बितोक ?
हमको दूध चाहिये ?	अङ् खरेङ् ग्यमिक तो ?
यहाँ आटा मिलैगा ?	ज्वा चीमङ् पोरयातोंबा ?
यहाँ मजूर मिलैगा ?	ज्वा कुली।
अंडेका दाम क्या है ?	लीट् मोलङ् तेता ?
दूधका दाम क्या है ?	खेरङ् " "
एक सेरका दाम ?	ई सेस मोलङ् ?
यहाँ कोई फल मिलेगा ?	उशोपाशो पोरया तोबा ?
यहाँसे गाँव कितनी दूर है ?	जिङ्च देशङ् तेता बर्क दु
मेरे पास आओ।	अङ् नङ जाइँ

तुम्हारा नाम क्या है ?	किन् नामङ् ठित ?
तुम्हारा घर कहाँ है ?	किन किम हम ?
तुम्हारे गाँवमें दुकान है ?	किन देशङ् दूकान तोचा ?
तुम्हारे गाँव में दूध मिलेगा ?	किन् देशङ् खेरङ् पोरथातोक
फल मिलेगा ।	श-उशो पोरथातोक
वहाँ क्या है ?	दङ् ठदु ?
वहाँ पानी है ?	दङ् ती तोचर ?
वहाँ चश्मा है ?	दङ् नागस ती तोचा ?
यहाँ स्कूल है ?	अङ् स्कूलदु ?
कब तक गाँव आयेगा ?	देशङो तेरङ् पिशोन !
सवेरे चलेंगे ।	सोम बिते ।
शामको वहाँ पहुँचेंगे ।	शुया दङ् ब्रिते ।
धूप बहुत है ।	जाँक दु ।
आज बादल है ।	तोरो जु जु दु ।
अभी चलो ।	हुनइँ पइँ ।
अभी नहीं चलेंगे ।	हुल मा बुीते ।
मुझे भूख लगी है ।	अङ् श्रोन ब्रिसेदु ।
तुम्हें प्यास लगी है ?	किती स्करो तो याँ ?
उसे नींद लगी है ।	दो निदरङ् तङो दू ।
यहाँसे जाओ ।	जङ्स ब्रिइँ ।
उसके पास जाओ ।	दोदङ् ब्रिइँ ।
यहाँ आओ ।	जङ् जाइँ ।
यहाँ न आओ ।	जङ् थ जाइँ ।
कुर्सी पर बैठो ।	खुरसीदङ् तोशिङ् ।
चारपाई पर लेटो ।	मजो देन ब्रिन दिशिइँ
हम थक गये ।	कस यल शे ।
हम नहीं थके ।	कसेङ्-म यल शे ।
चढ़ाई बहुत है ।	वाली टङ् दु ।

उतराई बहुत है ।	वाली छुर दु ।
रास्तेमें खतरा है ।	श्रोमो ब्यङ् दु ।
रास्ता खलरेका है ।	ब्यङ् मिक श्रोम दु ।
सीधी चढ़ाई है ।	चोपट टङ् दू ।
रास्ता सीधा है ।	श्रोम सोल्डस दु ।
रास्ता श्रासान है ।	श्रोम सुकङ् दु ।
रास्तेमें पानी है ।	श्रोमो ती दु ।
रास्तेमें जंगल है ।	श्रोमो जंगल दु ।
रास्ता खराब है ।	श्रोमो कोचङ् दु ।
श्राज पानी बरसैगा ।	तोरो ग्लया तो ।
कल धूप होगी ।	नसोम युने द्वा तो ।
कल हम रोगीमें रहेंगे ।	नसोम निङा होगे तोशेचा ।
देवता कब उठेगा ?	शूतेरङ् तोल्यातो ।
देबताका उत्सव है ।	शूजतरङ् ।
देवता क्या बोलता है ?	शू ठे रिङोतोशू ?
यह देवी श्रच्छी नहीं है ।	जु शू दम मदु ।
देवताका माली कौन है ।	शु ग्रोक्च हत दु ?
देवतासे सवाल पूछना है ।	शु ईमिक तो ।
तुम्हारा धर्म क्या है ?	कि ठ मोन्या च ?
तुम बौद्ध हो ?	कि छोस्पा तोइँ ?
हम बौद्ध हैं ।	निङ् छोस्पा तोच ।
हम धर्म नहीं मानते ।	निङ् दोरम म मन्याच् ।
तुम भूत मानते हो ?	कि शुना मन्याच् ।
हम छुश्राछूत नहीं मानते ।	निङा थन् शिंमिक म मन्याच् ।
माँस पकाश्रो	शा पइँ ।
रोटी बनाश्रो	रोटे लनी ।
चावल पकाश्रो	रल पइँ ।
चाय उबालो	चा स्कोइँ ।

साग भाजी बनाओ।	बाजी लनी।
सरसोका साग बनाओ।	शेरशो स्कम् लनी।
फाफडेका चीला बनाओ।	वोस्तो होदा लनी।
मीठा चीला बनाओ।	थीग होदा लनी।
चूलीकी लपसी बनाओ।	चुल फटिङ् लनी।
यहाँ कुछ नहीं मिलता।	ज्व ठ्ची मापोरेच।
यहाँ सब कुछ मिलता।	जङ् चोइ पोरथातो।
लड़के इधर आओ।	लाटू जङ् जाइँ।
लड़की, तुम्हारा नाम क्या है?	शुटीच किन् नामङ् ठद्।
भाई, तुम कहाँ जाते हो?	अते, कि हम् व्यो तोइँ।
हमें रास्ता बताओ।	अङ् ओम् जङ् चिइँ।
हमारे साथ चलो।	अङ् कङ् पइँ।
आपको धन्यवाद।	किन कोस्टङ।
तुम अच्छे आदमी हो।	कि दम् मी तो कइँ।
यह तुम्हारी मजूरी है।	जु किनू मजूरी तो।
यह तुम्हारा इनाम।	जु किनू बखसीस।
हमारे पास रुपयेका पैसा नहीं।	अङ्ख रूप्यो पैसा गमाइँ।
नोटका रुपया है?	बोटु रुप्या तोबा?
रुपयेका पैसा भुना दोगे।	रुप्यो पैसा गा स्क्वौल तोजाँ।
तुम हमारे साथ रहोगे?	कि अङ् दङ् तोश जाँ।
हम तुम्हारे साथ रहेंगे।	निङ् किन्‌दङ् तोशिच्।
हम तुम्हारे पास नहीं रहेंगे।	" " म तोशिच्।
हम नौकरी नहीं करेंगे।	निङ् नुकरो मलानिच्।
हम तुम्हारा काम करेंगे।	निङ् किन् कमङ् लन् तोच्।
दिनकी कितनी मजूरी?	ध्यारो मजूरी तेता?
महीनेकी कितनी तन्खाह?	गोलू तन्खा तेता।
कल काम नहीं है।	नसोम् कमङ् मैच।
वह आदमी सुस्त है।	दो मी सुस्त।

आज छुट्टी है।	तोरो छुट्टी।
रघुवर चालाक है।	रघुवर चलाग दू।
तुम झूठ बोलते हो ?	कि अस्कोलङ् रिङो तोइँ।
नहीं, मैं सच बोलता हूँ।	मनिग, टोव रिङोतोक।

— o —